छायावाद

काव्य तथा दर्शन

छायावाद : काव्य तथा दर्शन

डॉ० हरनारायण सिह



ग्रन्थम
रामबाग कानपुर

ग्रन्थम, कानपुर

◉ मूल्य पन्द्रह रुपये

● प्रकाशक
ग्रन्थम
रामबाग कानपुर

● प्रकाशन तिथि
नवम्बर १९६४

● मुद्रक
अनुपम प्रेस, कानपुर

अभिमत

डा० हरनारायण सिंह लखनऊ विश्वविद्यालय के शोध छात्र रहे है। उन्होने मेरे मित्र डा० भगीरथ मिश्र के निर्देशन म छायावादी काव्य के दार्शनिक पक्ष पर शोध-काय किया है। डा० मिश्र का निर्देशन स्वय ही निर्देश्य वस्तु के सम्यक स्तर की सभावना प्रकट करता है, परन्तु डा० हरनारायण सिंह न मुझे भी अपना शोध प्रबन्ध दिखाया था और उस पर मेरी सम्मति मागी थी। मैंने उनके प्रबन्ध को देख लिया है और मुझे उनके काय से सन्तोष और प्रसन्नता हुई है। छायावादी कवियो के दार्शनिक पक्ष के विवेचन का यह प्राथमिक प्रयास है। अतएव इसके लेखक हमारे साधुवाद के अधिकारी है। उनका प्रबन्ध पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हो रहा है, यह और भी प्रसन्नता की बात है। मै इस पुस्तक के प्रकाशन का स्वागत करता हूँ।

नन्ददुलारे वाजपेयी,
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर (म० प्र०)

भूमिका

साहित्य और दर्शन का क्या सम्बन्ध है ? यह सदैव एक विचारणीय प्रश्न रहा है और इसके उत्तर में अनेक प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। आजकल के साहित्य के विशिष्ट सन्दर्भ में कुछ लोग यह कहते हैं कि दर्शन का साहित्य से कोई खास सम्बन्ध नहीं होना चाहिए क्योंकि साहित्य एक रचना है—एक कला है और दर्शन एक विचार पद्धति है। दर्शन से अत्यधिक सम्बन्धित करके हम साहित्य को बोझिल बना देते हैं और ऐसा होकर साहित्य या काव्य कला की विशिष्टताओं और रचनात्मक प्रवृत्तियों से क्षीण हो जाता है।

परन्तु इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि साहित्य या काव्य दर्शन के बिना हल्का रहता है और जीवन में उसकी उपयोगिता और महत्ता प्रायः नहीं रह जाती। उपर्युक्त दोनों ही मतों में वैचारिकता का अतिरेक देखने को मिलता है। यहां हम यह सोचते हैं कि दर्शन अथवा विचार पद्धति कोई जीवन और तदनुसार साहित्य से अलग और बाहर की वस्तु है। जिस प्रकार जीवन की सुन्दर गतिविधि और नियन्त्रित प्रगति के लिए विचार पद्धति आवश्यक होती है उसी प्रकार साहित्य अथवा काव्य के लिए भी दर्शन का समावेश जीवन अथवा साहित्य में होने का यह तात्पर्य नहीं कि वह जीवन या उस दर्शन के प्रचार के लिए है। प्रचार का उद्देश्य न रखते हुए भी जीवन और काव्य के अन्तर्गत दर्शन की अपेक्षा और महत्व है। कहा जा सकता है कि दर्शन या विचार पद्धति के बिना जीवन या साहित्य का ढांचा बिना रीढ़ का और शिथिल रहेगा। स्पष्ट है कि यहाँ दर्शन का तात्पर्य किसी साम्प्रदायिक विचारधारा में न होकर युग की मुख्य वैचारिक चेतना और अपनी निजी निर्णीत तथा अनुभूत विचारसरणि है जिसकी आवश्यकता जीवन और साहित्य में मेरी दृष्टि में अनिवार्य है।

जब हम व्यापक रूप में संसार का और विशेष रूप में भारतीय काव्य का अवलोकन करते हैं तो यह बात और भी अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाती है। जितने भी महान कवि हैं और जितनी भी उनकी उत्कृष्ट रचनाएं हैं उन सबमें हमें एक न एक विचार पद्धति अवश्य मिलती है। कभी कभी भावों और कल्पनाओं के सुन्दर अवगण्ठन में विचार इस प्रकार से आवृत्त रहता है कि उसका स्पष्ट अनुभव हम नहीं कर पाते। परन्तु जब उसके अस्तित्व का भान होता है तो हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। और प्रायः महान कृतियों में यह बात अवश्य मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि दर्शन का जीवन और

साहित्य से अनिवार्य सम्बन्ध है। वास्तव में दर्शन या विचार, साहित्य या काव्य का एक तत्व है। और जहा पर उसका अभाव रहता है, वहाँ पर न जीवन और न ही काव्य पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

हिन्दी साहित्य के सदर्भ में विचार करने पर हम देखते हैं कि उसके प्राचीन साहित्य के अन्तर्गत भक्तिकाव्य में और आधुनिक साहित्य के अंतर्गत छायावादी काव्य में दार्शनिक तत्व विशेष रूप से मौजूद हैं। भक्तिकाव्य तो दर्शन को किसी न किसी पद्धति को अपनाकर चलने वाला काव्य है और अधिकांश रचनाएं ऐसी भी हैं जिनमें उन पद्धतियों के प्रचार का आग्रह है। इस कारण से उनमें काव्य का कलापक्ष कहीं कहीं क्षीण भी हो गया है। परन्तु जिन कवियों ने प्रचार का वैसा उद्देश्य नहीं रखा, वरन जीवन के सुन्दर और आदर्श रूप से अभिभूत होकर उसको केवल दार्शनिक भूमिका ही प्रदान की है उनका काव्य सर्वांग सुन्दर है। सूर और तुलसी का काव्य इसी प्रकार का है।

छायावादी काव्य इस दृष्टि से और भी अधिक कला के प्रति जागरूक है। परन्तु उसमें दार्शनिक विचार की अन्तःसलिला विद्यमान है इसमें संदेह नहीं। इस काव्य के सम्पूर्ण गौरव का स्पष्टीकरण उसके अन्तर्व्याप्त दर्शन की व्याख्या से ही हो सकता है। छायावादी काव्य के प्रमुख स्तम्भ हैं—प्रसाद निराला पन्त और महादेवी वर्मा। इनकी रचनाओं में कोई न कोई दार्शनिक पूर्वभूमि मौजूद है। वरन हम यह कह सकते हैं कि पूर्ववर्ती और समवर्ती अनेक दार्शनिक विचारधाराओं के सम्मिश्रण से जो उस समय एक नवीन दार्शनिक संस्कृति का निर्माण हुआ था वह इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में मौजूद है। उसमें कोई साम्प्रदायिक आग्रह नहीं। इसके साथ ही वह एक राष्ट्रीय संस्कृति के रूप में प्रगट हुई है। समकालीन राष्ट्रीय चेतना की उसमें अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऐसी दशा में छायावादी काव्य का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए तथा उसकी गरिमा को हृदयगम करने के लिए सहस्रधार होकर बहने वाली इस दार्शनिक विचारधारा को समझना आवश्यक है। इन छायावादी कवियों ने दर्शन का मंथन करके उसको मृदु रसमय बना लिया। वह शुष्क चिंतन नहीं। चिंतन की विविधता उसकी सतरंगी आभा होकर प्रगट हुई है। अतः यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि इन कवियों की काव्यकला भी इस सतरंगी दार्शनिक आभा से अलग करके देखी नहीं जा सकती। प्राचीन काव्य और छायावादी काव्य के अध्ययन में यह विशेष अंतर परखने की आवश्यकता है। इस अध्ययन के लिए विविध दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण सर्वप्रथम अपेक्षित है। इस पृष्ठभूमि को समझने पर हम यह देख सकते हैं कि अनेक स्रोतों और दिशाओं से

प्राप्त वचारिक मम्पति को इन कवियो ने किस प्रकार से एक युगीन राष्टीय और कलाचतना के रूप म ग्रहण किया है। यह राष्ट्रीय चेतना और क.ा चेतना छायावादी कविया की विशिष्ट उपलब्धि है। इस युग का प्रगतिवादी काय कला चेतना के प्रति उदासीन है और परम्परागत कला को महत्व देन वाला का य वचारिक चेतना म विकरित ह। इसीलिए छायावादी काय युगीन और शाश्वत दोना ही प्रकार का गरिमा स युक्त काव्य है।

दाशनिक और कलागत समन्वित चेतना के प्रति जागरुक रह बिना शायद हम छायावादी काव्य का समुचित मूल्याकन नही कर सकते। जिन कविया न छायावादी काय सपत्ति के वभव को बनाया है उन्होन इस समन्वित चेतना को प्राप्त करने क लिए बडी गम्भीर साधना की है जिसकी ओर आज के नये कवि और नये आलोचक का ध्यान जाना चाहिए। यदि एसा नही किया जाता तो हम उन गभीर मौन सास्कृतिक साधको के प्रति बहुत बडा अन्याय करेंगे जिन्हाने बड धय के साथ अपनी राष्ट्रीय एव *अध्यात्म दोना ही प्रकार की चतना म मडित कृतिया साहित्य-ससार को* भट की और उसके उपलक्ष मे किसी भी अभिनन्दन और प्रशसा की अपेक्षा भी न रखी। उन्होन उस समन्वित चतना का विकीण करना अपना एक पावन कतव्य समझा और उसके द्वारा जीवन के प्रति गभीरता से देखने का दृष्टिकोण प्रदान किया क्योंकि उनके लिए जीवन खिलवाड नही था। वह उद्दश्यपूण एव पावन कत्तव्यमय था। अपन साहित्य को ऐसा रूप प्रदान करते हुए इन कविया ने अपने राष्टीय दायित्व को भी निभाया क्योंकि उन्हाने अपने युग क उत्कृष्ट सस्कार उस साहित्य क द्वारा बनाने का प्रयत्न किया

उपयुक्त दृष्टिकोण क समझने पर हम छायावादी काव्य क दार्शनिक विश्लेषण की आवश्यकता का अनुभव हो जाता है। इसी आवश्यकता का अनुभव करके डा० हरनारायण सिंह ने छायावादी काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत ग्रन्थ म स्पष्ट किया है। उनका परिश्रम और उनकी साधना विषय के पूणतया अनुरूप रही। जिस धय और अध्यवसाय से उन्होने काय किया ह वह अभिनन्दनीय ही नहा वरन अनुकरणीय है।

डा० सिंह के इस काय को प्रकाशित होते देख मुझे बडी प्रसन्नता है। मुझे विश्वास है कि उनके द्वारा इसी प्रकार के उपयोगी और महत्वपूर्ण काय किये जायेंगे। मुझ पूण आशा है कि हिन्दी जगत म उनके इस ग्रन्थ का उचित सम्मान और स्वागत होगा।

दीपावली १९६४
पूना विश्वविद्यालय।

—भगीरथ मिश्र

प्राक्कथन

छायावाद काव्य हिन्दी साहित्य का अत्यन्त समृद्ध अंग है। अतः इसके सम्बन्ध में हिन्दी के अनेक अधिकारी विद्वानों ने चिन्तन मनन किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डा० नगेन्द्र, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, बाबू गुलाबराय, डा० भगीरथ मिश्र जैसे हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने छायावाद-काव्य का स्वरूप—निर्धारण एवं मूल्यांकन किया है। छायावाद के प्रमुख कवियों—प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी—को लेकर हिन्दी में अनेक महत्वपूर्ण शोध एवं आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखे जा चुके हैं। उनमें उक्त कवियों की कृतियों के विविध रूपों—कला, भाव, दर्शन आदि—का गम्भीर विवेचन भी हुआ है। किन्तु जहां तक छायावादी काव्य के दार्शनिक पक्ष का प्रश्न है, उसका अद्यावधि अध्ययन अभी तक सम्यक् रूपेण नहीं हो पाया है। अतः आज से आठ वर्ष पूर्व आचार्यप्रवर डा० भगीरथ मिश्र ने मुझे छायावादी हिन्दी काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर शोध कार्य करने के लिए प्रेरित किया। निदान छायावादी काव्य और दर्शन के सम्बन्ध में अत्यल्प जानकारी रखते हुए भी छायावाद के प्रति अपनी विशेष रुचि के कारण मैंने उनका आदेश सहर्ष स्वीकार कर लिया। यह शोध प्रबन्ध उन्हीं की प्रेरणा का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध दो खण्डों में विभक्त है। पहले खण्ड में काव्य एवं दर्शन का सम्बन्ध स्थापित करके तथा छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों और समकालीन पृष्ठभूमि का विस्तृत परिचय देकर उन दर्शनों का संक्षिप्त विवेचन किया गया है, जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर छायावादी हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि निर्मित हुई है। दूसरे खण्ड में वेदान्त, वैष्णव वेदान्त, व्यावहारिक वेदान्त, श्री अरविन्द दर्शन, शैव दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि के सिद्धान्तों का छायावादी काव्य पर प्रभाव दिखाया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिखने का सुअवसर मुझे श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त, डीन फैकल्टी आफ आर्ट्स तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के अनुग्रह द्वारा ही प्राप्त हुआ था। डा० साहब ने विषय की स्वीकृति से लेकर उसकी समाप्ति तक मेरे मार्ग में आने वाली समस्त कठिनाइयां

को दूर कर मुझ अपने काय मे आगे बढने का प्रोत्साहन दिया है साथ ही इस प्रब ध को पूरा करने के लिए हर प्रकार की अपेक्षित सुविधा भी प्रदान की है। अत म उदारचेता श्रद्धय डा० गुप्त के प्रति विनम्र भाव से श्रद्धावनत हू ।

इस प्रबन्ध के सुयोग्य निर्देशक श्रद्धेय डा० भगीरथ मिश्र के विषय म क्या कहू ? प्रब ध के विषय निर्धारण स लेकर उसकी समाप्ति तक की सभी स्थितियो से वे परिचित रहे है। उन्होंने जिस उदारता, कुशलता एव स्नेह स मेरा पथ प्रदशन किया है उसे शब्दो मे बाँधने म मैं असमथ हू । इस सम्बन्ध मे बस इतना ही कह सकता हू कि परम श्रद्धय डा मिश्र जी के शोध विषयक उत्कृष्ट अनुभव गहन तत्वचिन्तन तथा विद्वतापूण निर्देशन से पूण लाभ उठा कर ही म इस दुस्तर काय को पूरा करने म सफल हो सका हू । इस प्रबन्ध म यदि कोई अच्छाई है तो उसका सवस्व श्रेय डा मिश्र जी को है त्रुटिया का सम्पूण दायित्व मरे ऊपर समझना चाहिए।

प्रस्तुत शोध काय म मैंने अपने प्रिय मित्र डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी, प्राध्यापक लखनऊ विश्वविद्यालय के सत्परामर्शो म भी लाभ उठाया है अत मैं उनक प्रति कृतज्ञताज्ञापन करना अपना कत्तव्य समझता हू ।

अन्त म म उन समस्त लेखको एव विद्वानो के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहू गा जिनकी कृतिया के आधारभूत इस प्रबन्ध का कलेवर निर्मित हुआ है।

अगस्त १९६२ —लेखक
लखनऊ

विषय-क्रम

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड



प्रथम खण्ड



१

काव्य एव दर्शन का सामजस्य

दशन एव काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। त्रिविध ताप से सतप्त मानव की शान्ति क्लशमय ससार की आत्यतिक दुख स निवत्ति एव मानव कल्याण के लिए ही भारत म दशन और काव्य का आविर्भाव हुआ।१ भारतीय जीवन तथा धम पर प्रकृष्ट प्रभाव डालने के कारण दशन और काव्य की भारत भूमि म बडी प्रतिष्ठा है किन्तु दशन और काव्य का तो मुख्य विषय ही जीवन का चरम लक्ष्य, परम तत्व की खोज करना है। परम तत्व की खोज जितनी तत्परता और तन्मयता स कवि और दाशनिक करते हैं उतनी तत्परता और तन्मयता से दूसरा नही करता। इस प्रसग म भारत भूमि अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

दशन और काव्य के लिए उपयुक्त भूमि

भारत-देश की भौगोलिक स्थिति, स्वस्थ जलवायु प्राकृतिक सौन्दय उवर भूमि कन्दमूल फल फूल एव सुस्वादु खाद्य पदार्थों का सहज ही पर्याप्त मात्रा म उपलब्ध हो जाना आदि विशिष्ट सुविधाओ ने भारतवासियो को

१ वेद को प्रमाण मानने वाले भारतीय दशन शास्त्रो ने उपनिषदो को ही अपना आधार माना है जिसके परिशीलन से ससार की कारणभूता अविद्या का नाश हो जाता है दुखो स सवथा छुटकारा मिल जाता है और परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है उसी का नाम उपनिषद है। ज्ञात्वा देव सवपाशापहानि क्षीण क्लेशैर्जन्ममृत्यु प्रहाणि। परमात्मदेव को जानकर सारे बन्धन कट जाते हैं क्लशो के क्षीण होने पर जन्म और मृत्यु स छुटकारा मिल जाता है। —श्वेताश्वतर

चिरकाल से शान्तिप्रिय और गम्भीर बना रखा है। इन्हीं अनुकूल परिस्थितियों के फलस्वरूप भारतीय मानसिक एवं दैविक शक्तियाँ आध्यात्मिक तत्वों तथा जीवन और जगत की गहनतम समस्याओं को समझने में आदिकाल से सफल होते आये हैं।

भारतीय जीवन में दार्शनिक तत्व—आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तत्व—इस प्रकार ओतप्रोत हैं कि वे किसी प्रकार एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जा सकते। जीवन की स्वच्छन्दता, उच्चादर्शों में आस्था, अन्तःकरण की प्रशान्त भावना, सत्यनिष्ठा, परम सुख अथवा आनन्द की खोज, पारमार्थिक दृष्टि से जगत का मिथ्यात्व आदि गुण अथवा विशेषताएं साधारण तथा प्रत्येक भारतीय के विभिन्न कार्यों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होंगी। जीवन के झमेलों से तटस्थ होकर सुख-दुख, जड़-चेतन, सत्य-असत्य, पर-अपर, प्रिय-अप्रिय, श्रेयस-प्रेयस आदि का रहस्योद्‌घाटन भारतीय सृष्टि के आरम्भ से ही करते आये हैं। वेद से लेकर आज तक का सम्पूर्ण साहित्य इसका साक्षी है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की पुण्य भूमि दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

या तो जहाँ संवेदनशील हृदय है वहाँ अनायास काव्य भूमि निकल आती है, किन्तु भावनाओं के स्फुरण के लिए जिस बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा होती है वह भारत भूमि में प्रचुरता से विद्यमान है। हिमाद्रि के उत्तुंग शृंगों की गरिमा, शुभ्र अमराइयों की अठखेलियाँ, हिन्दसागर की गहन-गम्भीरता, जाह्नवी यमुना की लोल-लोल लहरें, कोकिल की स्वर लहरी, सारिका का कलगान, षड ऋतुओं की नित नवीनता आदि भावना का सद्यः उद्दीप्त और

कटुकौषधवच्छास्त्रमविद्या व्याधिनाशनम्।
आह्लादामृतवत् काव्यमविवेकगदापहम्॥

अर्थात वेद और शास्त्र के उपदेश अविद्या रूपी व्याधि के लिए गुणकारी अवश्य होते हैं पर वे कटु औषधि के समान हैं, किन्तु काव्य के माध्यम से कथित वे ही उपदेश अमृत के समान सरस और मधुर होते हैं।

काव्य और साहित्य समानार्थी हैं और साहित्य की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

हितेन सह सहितं तस्यभावः साहित्यम्।
सह एव सहितं तस्य भावः साहित्यम्॥

हृदय को मस्त कर देते हैं। वस्तुतः भारत भूमि स्वयं एक भव्य काव्य है जिसमें जीवन के सम्पूर्ण रसों का सुंदर परिपाक सन्निविष्ट है। सम्भवतः इसी से कविता भारतीय आर्यों की अत्यंत प्रिय वस्तु थी। केवल काव्य से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ ही कविता में नहीं लिखे गये अपितु वैद्यक, ज्योतिष, व्याकरण, अंकगणित, बीजगणित आदि अनेक विषयों के ग्रन्थ भी छन्दों में ही लिखे गये। इतना ही नहीं हम देखते हैं कि गुप्तवंशी राजाओं के सिक्कों पर भी कविताबद्ध लेख अंकित हैं। इतने प्राचीन काल में संसार के किसी भी देश में सिक्कों पर कविता-बद्ध लेख नहीं लिखे जाते थे।[1] यह वैदिक कवि के प्रकृति के रम्य रूप-खण्डों के बीच निर्द्वन्द्व विचरण करने का ही फल था जो उपनिषदों में एक अलौकिक सौन्दर्य और आकर्षण पाया जाता है। उनमें विचारों की उच्चता, अनुभूति की गम्भीरता, मनुष्य में निहित सत्यं शिवं सुन्दरम् की अनुप्रेरणा और भाषा की दिव्य व्यंजना शक्ति के पाये जाने का एक प्रधान कारण वैदिक कवि का प्राकृत जीवन-यापन भी था। प्रकृति के प्रांगण में ही उन्हें उन्मुक्त प्रेम और दिव्य ज्योति के दर्शन हुए थे। उसकी चिरन्तन सत्य की खोज में प्रकृति का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही काव्य का भी मूलाधार है।

चिरंतन सत्य की जिज्ञासा काव्य एवं दर्शन का मूलाधार

मनुष्य की इच्छा अनन्त और जिज्ञासा असीम है। उसका जीवन प्रश्नों का जीवन है। अनेकानेक प्रश्नों के समाधान के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। मूलतः मनुष्य की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है इसलिए उसकी दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के स्थूल वैभव विलास पर टिकती है। उससे वह स्थूल सुख भोग की सामग्री ग्रहण करता है किन्तु प्रकृति और मानव सम्बन्ध की इति यहां नहीं हो जाती। शनैः शनैः मानव मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगता है। वह जिज्ञासा करता है—हम कौन हैं? क्या हैं? कहाँ हैं? कहाँ से आये हैं? हमारे चारों ओर फैली हुई प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? उसका कर्ता कौन है? वह स्वयं चेतन है अथवा अचेतन? यह प्रपंच (लीला विलास) किसका है? किसके लिये है? यदि ब्रह्म अथवा आत्मा (अयमात्मा ब्रह्म) ही समस्त जगत का मूल तत्व है तो पुनः प्रश्न उठता है—वह ब्रह्म क्या है? जगत से उसका सम्बन्ध क्या है? जीव

---

१ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति—महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा पृ० ८४

क्या है ? प्रकृति और परमात्मा के साथ उसका क्या लगाव है ?[1] उक्त प्रश्नों के आधार स्वरूप वाह्य सौन्दर्य पर टिकी हुई उसकी दृष्टि धीरे धीरे अन्तमुखी होने लगती है और वह प्रकृति के वाह्यान्तर से चिरन्तन सत्य को पा लेने के लिए व्यग्र हो उठता है। यही मनुष्य की दार्शनिक दृष्टि है।

दार्शनिक की भाँति कवि को भी चिरतन सत्य की खोज अभीप्ट है। जैसा कि चर्टन कालिन्स ने कहा है—

काव्य का मुख्य उद्देश्य केवल मनोरंजन करना मानव जाति की उदात्त अथवा अनुदात्त भावनाओं को अभिव्यक्ति देना अथवा मानव स्वभाव सम्बन्धी हमारे ज्ञान की अभिवृद्धि करना नहीं है बल्कि इनके साथ साथ काव्य का एक श्रेष्ठतर उद्देश्य भी है। वह है आध्यात्मिक सत्य को व्यक्त करना उस जगत का चित्रित करना जिसकी यह जगत छाया अथवा अनुकृति मात्र है उस शाश्वत सत्य को अभिव्यक्त करना जो क्षण क्षण परिवतनशील रूप नाम रूपात्मक जगत में निहित है।[2] चिरन्तन सत्य की दृष्टि से ही शलीन काव्य को 'Heaven s light on earth Truths brightest beam भूतल पर स्वर्ग का प्रकाश (एवं) सत्य की उज्ज्वलतम किरण कहा है। गेटे का यह कथन कि प्रकृति की समस्त परिवर्तनशीलता के मध्य भी एक अपरिवर्तनशील

---

१ किं कारण ब्रह्म कुत स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठा ।
अधिष्ठिता केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम ॥१॥

जगत का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है? किससे उत्पन्न हुआ है ? किससे हम जी रहे हैं ? किसमें हमारी सम्यक प्रकार से स्थिति है? किसके अधीन रहकर सुख और दुःख में निश्चित व्यवस्था के अनुसार बत रहे हैं ? श्वेताश्वतर, प्रथम अध्याय ।१। ऋग्वेद १०।८१।२

२ The chief office of poetry is not merely to give amusement not merely to be the expression of feelings good or bad of mankind or to increase our knowledge of human nature and of human life but that if it includes this mission it also includes a mission far higher the revelation namely, of ideal truth, the revelation of that world of which this world is but the shadow or the drossy copy the revelation of the eternal which underlies the unsubstantial and the ever dissolving phenomena of earths, empire of matter and time

Churton collins, The true function of poetry, quoted by Radha Krishnan in his ' The Philosophy of Tagore p 128

शक्ति विद्यमान है वही सत्य किंवा शाश्वत सत्ता है जो सौदय के परिवेश म व्यक्त हो रही है[1] काव्य के उक्त पक्ष को ही पुष्ट करता है। सक्षप म कवि परम सत्ता (ईश्वर) की आराधना परम सुदर के रूप मे और दार्शनिक परम सत्य के रूप म करता है। यदि दशन सत्य का मदिर है तो काव्य सौन्दय का शिवालय है। दोना परस्पर अविरोधी हैं क्योंकि 'Truth is beauty and beauty is truth' के आधारभूत दोना म अभेद है। दार्शनिक वस्तुओं म निहित सत्य को व्यक्त करके वाह्य रूपो को नगण्य ठहराता है और कवि उनके आभ्यन्तर म प्रवेश कर आध्यात्मिक सौदय की झांकी देखता है।

जिस प्रकार जगत का वाह्याकार जो दार्शनिक जिज्ञासा का प्रथम आधार है उस समय विलीन हो जाता है जब दार्शनिक जागतिक पदार्थों म सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार कवि की कल्पना जगत के वाह्यरूपो स खेलते-खेलते उनके आभ्यन्तर म पहुच कर परम सत्य को अभिव्यक्त करने लगती है।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि और दार्शनिक दोना को चिरन्तन सत्य की खोज समान रूप से अभीष्ट होती है। अत हम चिरन्तन सत्य की जिज्ञासा को काव्य एव दशन का मूलाधार मान सकते हैं।

काव्य एव दशन के आध्यात्मिक तत्व

इस प्रकार शाश्वत सत्य को पा लेना मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। काव्य और दशन दोना उसी पथ के पथिक है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होगा कि दोना नित्य तत्व पर आधारित हैं। आध्यात्मिक दृष्टि स उनके मूलाधार तत्व है–आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। आत्मा परमात्मा की नित्यता निर्विवाद है। रही प्रकृति की नित्यता की बात तो उपनिषद उस पूर्ण और नित्य घोषित करती है—

ओ३म पूणमद पूर्णमिदं पूर्णात्पूणमुदच्यते।
पूणस्य पूणमादाय पूणमेवावशिष्यते॥[2]

साख्य दशन भी प्रकृति की नित्यता स्वीकार करता है। शकर न भी प्रकृति की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है। उनके अनुसार विषय सत नहा

---

1 As all natures myriad changes still one changeless Power proclaim —This is truth Eternal Reason That in beauty takes its dress Ibid P 140

२ वृहदारण्यक ५/१/१

कहे जा सकते। कारण वे विशेष और विकासशील हैं। किन्तु वे वन्ध्यापुत्र की तरह सर्वथा असत अथवा तुच्छ नहीं कहे जा सकते। उनमें भी सत्ता है जो आभासित हो रही है। अत वे न तो सत कहे जा सकते हैं न असत—वे अनिर्वचनीय हैं। यह समस्त विषय संसार और उसकी जननी माया या अविद्या भी सत असत से विलक्षण अनिर्वचनीय है। सत्ता की तीन कोटियाँ हैं—(१) प्रातिभासिक (२) व्यावहारिक (३) पारमार्थिक। इस प्रकार संसार एक रूप नहीं है। किन्तु यदि संसार को व्यावहारिक सत्ता के अर्थ में लिया जाय तो शंकर भी यह स्वीकार करते हैं कि यह जगत अवश्य ही सत्य है। उनके अनुसार कारणरूपी ब्रह्म की सत्ता त्रिकाल में (भूत भविष्य और वर्तमान में) रहती है अतएव कार्य रूपी जगत में उसका (सत्ता का) कभी अभाव नहीं रह सकता[1]। दर्शन के अनुसार ब्रह्म ही अपने को दो रूपों-आत्मा और प्रकृति पुरुष और प्रकृति ईश्वर और माया में विभक्त किये हुए है। इसी आधार पर शैव दर्शन ईश्वर की माया प्रकृति को सत्य मानता है।[2] सर राधाकृष्णन के शब्दों में भारतीय विचारधारा ने आत्म शक्ति विहीन प्रकृति की कभी चिन्ता नहीं की। उसके निकट प्रकृति आत्म शक्ति का अभिव्यक्त करने के कारण सत्य है।[3] दूसरे शब्दों में भारतीय दृष्टि से प्रकृति आध्यात्मिक शक्ति की अभिव्यक्ति का साधन है। अत इनके मत में कवि का उद्देश्य भूतसमुदाय में निहित आत्मा को अभिव्यक्त करना है। इस प्रकार सत्काव्य का सिद्धान्त स्थूल प्रकृति का अतिक्रमण कर उसमें अनुस्यूत आत्मा से तादात्म्य स्थापित करना है।[5] और दर्शन तो प्रकृति में तिरोहित चिरन्तन सत्य की खोज करता ही है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा और नित्य प्रकृति ही काव्य एवं दर्शन के आध्यात्मिक तत्व सिद्ध होते हैं।

---

१ ब्रह्मसूत्र २/१/१६

२ उमेश मिश्र-भारतीय दर्शन प्रथम संस्करण पृ ४८

3 Indian thought never cared for nature divorced from spirit It is real as revealing the divine essence or spirit
Radha Krishnan The Philosophy of Tagore P 135

4 The aim of the poet is to reveal the life within things the soul within matter
Ibid P 134

5 Fidelity not to nature but to the real soul in it, is the principle of true poetry
Ibid, P 136

काव्य और दशन मे भेद

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि कवि और दाशनिक दोना जीवन भर विचार और चिरतन सत्य की खोज करते रहत है तो फिर काव्य और दशन म भद क्या है दशन शास्त्र को काव्य स पृथक करने वाली वस्तु कौन सी है इसके उत्तर म डा० राधाकृष्णन के शब्दो म इतना कहना अलम है कि दशन और काव्य दोना का लक्ष्य एक ही है किन्तु उनके प्ररणा स्रोत भिन्न भिन्न है। भिन्न भिन्न दष्टिकोणो से वे सत्य तक पहुचते ह।[1] अर्थात जहाँ दशन बुद्धि द्वारा विश्व के वषम्य म सामजस्य स्थापित कर सत्य तक पहुचने का प्रयास करता है वहा काव्य अन्तद ष्टि अथवा अनुभूति द्वारा विश्व के नाना रूपो म परम सुन्दर का खोज करता है। छायावाद का कवि काव्य और दशन क इसी भद को स्वीकृति देता है। उसका कथन है कि जहा तक सत्य के मूल रूप का सम्बन्ध ह वे दोनो (कवि और दाशनिक) एक दूसरे के अधिक निकट ह अवश्य पर साधन और प्रयोग की दष्टि से उनका एक होना सहज नहा। दाशनिक बुद्धि के निम्न स्तर स अपनी खोज आरम्भ करके उस सूक्ष्म बिन्दु तक पहुचा कर सन्तुष्ट हो जाता है। अन्तजगत का सारा वभव परख कर सत्य का मूल्य आकन का उसे अवकाश नही भाव की गहराई म डूबकर जीवन की थाह लेन का उसे अधिकार नही। वह ता चितन जगत का अधिकारी ह। (किन्तु) काव्य म बुद्धि हृदय से अनुशासित रह कर ही सक्रियता पाती है इसी स उसका दशन न बौद्धिक तक प्रणाली है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुचने वाली विशष विचार-पद्धति। वह तो जीवन का चेतना अनुभूति के समस्त वभव के साथ स्वीकार करता है। अत कवि का दशन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है। दशन म चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी सम्भव है परन्तु काव्य म अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असम्भव ही रहेगी। जीवन के अस्तित्व को शून्य प्रमाणित करके भी दाशनिक बुद्धि के सूक्ष्म बिन्दु पर विश्राम कर सकता है परन्तु यह अस्वीकृति कवि के अस्तित्व को डाल स टूट पत्त की स्थिति दे देती ह।[2] आशय यह है कि बुद्धि द्वारा विश्व को समझने का प्रयत्न दशन है और प्रतिभा अथवा

---

1 While both philosophy and poetry aim at the same end their starting points are different They approach reality from different angles Ibid p 163

२ महादेवी वर्मा—दीपशिखा १९४५ चिन्तन के कुछ क्षण पृ० ६

अनुभूति द्वारा विश्व के रहस्य को हृदयगम करने का नाम कविता है। दशन विश्व के सत्यभूत वास्तविक स्वरूप को देखता है काय उस मूतित करता है। दशन हमारी बुद्धि को सतुष्ट करता है और काव्य हमारी कल्पना और आत्मा के लिये मधुमय भोजन प्रस्तुत करता है। दशन तक प्रणाली का अव लम्बन करता है और उपदेश पर बल देता है किन्तु काव्य की परिणति आनन्द म होती है तक तथा उपदेश से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं ह। काय सहृदय को उदात्त भावो की ओर अनायास ही उन्मुख कर देता ह।

काय और दशन म एक और भद किया जा सकता ह। दाशनिक चिन्तन व्यवस्थित होता है। जीवन पर विधिपूवक किसी विशष पद्धति से विचार करना दशन है। क्रमानिक अध्ययन उसकी प्रशस्ति है। किन्तु कवि जीवन पर विचार करते समय प्राय किसी नियम अथवा परिपाटी का अनु गमन नही करता सम्भवत इसीलिए उस निरकुश कहते हैं।

काव्य और दशन म भद जान लेने उपरात यह स्मरण रखना आव श्यक है कि दोना का लक्ष्य एक ह अर्थात सष्टि के रहस्य को समझना। सष्टि का रहस्य समझन क लिए दशन विश्व को सिद्धान्तो के भीतर बाधता है। और जब वे ही सिद्धात भावना और प्रतिभा का अग बनकर हमारे सामने आते हैं तब वे काव्य का स्वरूप धारण कर लेते हैं। किन्तु जब तक वे बौद्धिक धरातल पर रहते हैं तब तक दशन और काय म अन्तर बना रहता है। अत दशन का काव्य म दीक्षित होन के लिए अपनी विभाजक रेखाओ को काय के सगीत और कल्पना म विलीन कर देना होता है। इस प्रकार काव्य की भावभूमि म दशन अपनी विशषताओ को खोकर सजीव हो उठता है। इसी से डा० राधाकृष्णन ने कहा है कि काय म दशन प्राणवान बन जाता है।[1] कहना न होगा कि विश्व का समूचा भक्ति एव रहस्यवादी काव्य दाशनिक सिद्धान्तो एव धार्मिक भावनाओ की भावमयी अभिव्यक्ति ही है। इससे यह निष्कष निकलता है कि श्रेष्ठ काव्य का मूल दशन म निहित है। थोडा विस्तारपूवक विचार कर लेना अनुचित न होगा।

श्रेष्ठ काव्य का मूलाधार—दशन

काव्य के विधायक तत्वो म यद्यपि भाव-तत्व का प्रधान स्थान है

1 In Poetry Philosophy lives
The Philosphy of Tagore P 166

तथापि उसमे ज्ञान का पूर्णतः बहिष्कार नही किया जाता। सच तो यह है कि ज्ञान (सत्य) ही काव्य एवं दर्शन का आधार बिन्दु है। ज्ञान के साथ हमारे भाव लगे रहते हैं जैसे मित्र के दुख म करुणाभाव और अत्याचारी को देखकर क्रोध का उदय होना स्वाभाविक है। भावो के साथ क्रिया का भी निकटस्थ सम्बन्ध है जैसे प्रेम म स्वागत और घृणा म दुत्कारने की क्रिया देखन को मिलती है। यद्यपि हमारा ज्ञान भी अभिव्यक्ति चाहता है और उसका परिणाम किसी न किसी क्रिया म होता रहता है किन्तु भावो म अभिव्यक्ति और क्रिया की जितनी तीव्र प्रेरणा रहती है उतनी कोरे ज्ञान म नही। शुष्क ज्ञान का अन्वेषण दर्शन का क्षेत्र है, किन्तु काव्यगत ज्ञान शुष्क ज्ञान के रूप म उपस्थित नही किया जाता वरन उसम भावना का रस मिला कर उसे ग्राह्य एवं संवेदनशील बनाया जाता है।

साहित्य म विचार की निरपेक्षता जैसी कोई वस्तु नही होती। उसे तो भाव और विचार के योग से मधुर रसायन तयार करना ही इष्ट होता है।[1] गोस्वामी तुलसीदास जी ने निर्मल काव्य सृष्टि के लिए भाव के साथ साथ विचार के हेतु भी अपनी तीव्राकाक्षा प्रकट की है—

हृदय सिन्धु मति सीप समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना।
जो बरसइ बर बारि विचारू। होहि कवित मुक्तामणि चारू॥

यहाँ पर मति सीप समाना और बर बारि विचारू' द्वारा हृदय सिन्धु म सुदर मुक्तामणि रूपी कविता का सृजन दिखाकर काव्य म ज्ञान-तत्व की आवश्यकता अथवा महत्ता स्थापित की गई है। हमारे हृदय की भावनाए प्राय अव्यवस्थित रहती है। बुद्धि उनम व्यवस्था स्थापित करने म सफल होती है। अत कवि बुद्धि तत्व की अवहेलना कैसे कर सकता है। वास्तव म सत्काव्य भावनाओ और विचारो का सम्मिश्रण है। केवल भाव मूक हैं। विचार द्वारा जब तक भाव मर्यादित न होंगे तब तक सच्ची अनुभूति नही हो सकनी अत सच्चा काव्य भी नही हो सकता।

इस प्रकार काव्य म हृदय पक्ष और बुद्धि पक्ष का सन्तुलन आवश्यक है। ज्ञानशून्य भाव अन्धा और भाव शून्य ज्ञान पगु के समान हैं। बाबू गुलाबराय के अनुसार साख्य शास्त्र के प्रकृति और पुरुष के अन्ध पगु-न्याय मे

1 In literature there is no such thing as pure thought thought is always the handmaid of emotion
Merry, The Problem of Style. p 73

काव्य गतिशील होता है। वेद की ऋचाए इसका प्रमाण हैं। वे नान और भाव के युगपत सयोजन के कारण दशन और काय दोनो को अपनी परिधि म परिवेष्ठित कर लेती हैं। कालान्तर मे (ज्ञान) को ही एकमात्र प्रधानता देने के कारण दशन काय स पृथक हो गया किन्तु काय के लिए नान का आमूल बहिष्कार न तो सम्भव था और न आवश्यक।

काव्य एक कला है अत इसका उद्देश्य दशन की गुत्थिया सुलझाना नही हो सकता। किन्तु बिना दाशनिक दृष्टिकोण के काय का उद्देश्य पूरा नही हो सकता। काय के लिए सत्य का सम्यक स्पष्टीकरण आवश्यक है। डा० राधाकृष्णन के शब्दो म काय आनद की सृष्टि म सफल नही हो सकता यदि वह अपने स्वरूप द्वारा शाश्वत की अभिव्यक्ति नही करता।[1] अरस्तू का कथन है कि काय समस्त विषयो म सबसे अधिक दार्शनिकता लिए हुए है क्योकि उसका उद्देश्य सत्य को पाना है।[2] इस प्रकार श्रेष्ठ कवि वह है जो प्रत्यक अश म पूण को देखता है और अपने काव्य को पूण सत्य की अभिव्यक्ति का साधन बनाता है। अत यह कहन के बजाय कि दर्शन और काय परस्पर विरोधी है यह कहना अधिक समीचीन होगा कि काव्य को अपनी नित्यता के लिए अनिवायत दार्शनिकता लिए होना चाहिए।

मोटे तौर पर काय के दो वर्गीकरण किय जा सकते हैं—(१) यथाथवादी (२) आदशवादी। काव्य का यथाथवादी दृष्टिकोण जो बाह्यरूपा से सम्बन्धित है और आदर्शवादी दृष्टिकोण जो सूक्ष्म भावो की अभिव्यक्ति पर बल देता है दशन मे दो छोरो—(१) प्राकृतिक यथाथवाद 'Naturalist Realism) और (२) विश्वातीत आदर्शवाद (Trenscendental Idealism) का द्योतन करते है।[3] आचार शास्त्र म एक को सुखवाद (Hedoni m) और दूसरे को सयास (Asceticism) कहग।[4] किन्तु जीवन के लिए ये दोना दृष्टिकोण अलग-अलग है। अध्यात्म दशन हम यह बतलाता है कि आदर्श यथाथ म ही निहित है—The real is the rational जो सत्य है वह बुद्धि गम्य है। अत दोनो म स एक को सत्य कहना और दूसरे को निरथक मानना गडबड म डालना है। केवल यथाथ की चाट ही नहा वल्कि आदर्श की कामना

1 The Philosophy of Tagore p 127 Radha Krishnan
2 Ibid p 127
3 Ibid p 139
4 Ibid p 139

भी जीवन को कल्याण मार्ग की ओर ले जाने मे समर्थ होती है। यथार्थ का चित्रण यदि काव्य म स्वाभाविकता और सवेदना उत्पन्न करता है तो आदर्श का सकेत उसे मगलमय बनाता है। वास्तव म यथार्थ आदर्श को और जड चेतन को छिपाए हुए है और कवि कर्म की कुशलता उसी आध्यात्मिक सत्य का उदघाटन करने म है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार भी (भौतिकवाद) और आदर्शवाद (अध्यात्म) दोनो अलग-अलग हैं। उनके विचार म समस्त भूमण्डल परम चेतन स आवृत है– एक ऐसा परम चेतन जो केवल कल्पना की उपज नही है अपितु जिसकी ओर सभी वस्तुए गतिशील हैं। उस परम चेतन को सूर्य के प्रकाश पृथ्वी की हरीतिमा वसन्त की सुषमा और शीतकाल के प्रात कालीन नि स्वन म देखा जा सकता है। विश्व मे सर्वत्र वह परम चेतन विद्यमान है और अपना आभास दे रहा है[1]। इस प्रकार सच्चा कवि वह है जो यथार्थ को आदर्श की ओर ले जाने अथवा वस्तु मे निहित आत्मा को व्यक्त करने म व्यस्त है। किन्तु ऐसा उसी समय सम्भव है जब कवि आध्यात्मिक भावना से अभिभूत हो। आध्यात्मिक भावना से अनुप्रेरित होकर जब कवि वस्तु को स्पर्श करता है तब वस्तु अपनी भौतिकता खो देती है और जो ससीम और अपूर्ण है वह असीम और पूर्ण बन जाता है। उस विशेष मनोदशा म आध्यात्मिकता से अभिभूत कवि का हृदय वस्तुओ म निहित सत्य को पा लेता है। हार्वेल के अनुसार यही आध्यात्मिक दृष्टि कवि कर्म की सर्वोत्तम कसौटी है। कवि को उसी पर निर्भर रहना चाहिए इन्द्रियो द्वारा प्राप्त ज्ञान पर नही[2]। यही पर कवि और दार्शनिक का दृष्टिकोण भौतिकवादी अथवा वैज्ञानिक स भिन्न हो

---

1 I believe that the vision of Paradise is to be seen in the sunlight and the green of the earth in the following streams in the beauty of spring time and the repose of a winter morning Every where in this earth the spirit of Paradise is awake and sending forth its voice
(Shantiniketan, by W W Pearson Epilogue by Rabindra nath Tagore)

2 The spiritual vision is the best and truest standard for him He should depend upon it and not at all upon the visible objects perceived by external senses Harvell s Indian sculpture and Painting, P 54

जाना है। भौतिकवादी विश्व को खण्ड खण्ड करके देखता है अत उस भिन्न भिन्न वस्तुओं में भिन्न भिन्न गुण दिखाई देते हैं। किन्तु कवि और दार्शनिक के निकट वस्तुओं का पारस्परिक अथवा अन्तर्विरोध वास्तविक नहीं होता। प्रकृति का सौन्दर्य और नियम कवि की अन्तर्दृष्टि और दार्शनिक के मस्तिष्क में समान रूप से जाते हैं। दार्शनिक तर्क के आधार पर सिद्ध करता है कि विश्व की समस्त विभिन्नताएं आन्तरिक एकता से अभिभूत हैं और कवि उसी आन्तरिक एकता विश्वात्मा को सौन्दर्य के माध्यम से हृदयगम करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार काव्य मानवात्मा द्वारा प्रकृति के रूप-व्यापारों में निहित आध्यात्मिक सत्य एवं सौन्दर्य को हृदयगम करने का महान प्रयत्न है। इसी से डा० राधाकृष्णन ने कहा है जो कवि विश्वात्मा में विश्वास नहीं रखता या वह व्यक्ति जो समझता है कि ईश्वर संसार में नहीं है क्योंकि उसका अधिवास स्वर्ग है महान कवि नहीं हो सकता।[1] अत उनका मत है कि सत्काव्य का आधार वह दर्शन है जिसके अनुसार ईश्वर सृष्टि में सर्वत्र व्यापक है।[2] भारतीय कवि के लिए सृष्टि में परम सत्ता की स्थिति दार्शनिक कल्पना मात्र नहीं है अपितु वह उसके लिए उतनी ही सत्य है जितना कि सूर्य का प्रकाश अथवा उसके पगतल की पृथ्वी।[3]

साधारणतया बुद्धि द्वारा सत्य की खोज करने वाले को दार्शनिक कहा जाता है। किन्तु केवल बौद्धिक धारणाओं द्वारा दार्शनिक सत्य को पा लेना सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रातिभज्ञान और साधना अपेक्षित है। अत यदि दार्शनिक से अभिप्राय बौद्धिक मदारी से है तो दर्शन का काव्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु यदि दार्शनिक से अभिप्राय है वह व्यक्ति जो प्रतिभा द्वारा आत्मा की गहराइयों में उतर चुका है तो अवश्य ही वह कवि का सहधर्मी है जो आत्मा का सन्देशवाहक है। उपनिषदों के प्रणेता ऐसे ही दार्शनिक कवि थे। फारसी के श्रेष्ठ कवि सूफी और रहस्यवादी थे जिनके जीवन का लक्ष्य आत्मानन्द की प्राप्ति था। हिन्दी के भक्त एवं सन्त कवियों कबीर दादू सूर मीरा आदि का अभीष्ट भी आत्मानन्द की ही प्राप्ति है। अत डा० राधाकृष्णन

---

1 Radha Krishnan The Philosophy of Tagore P 142

2 It is a philosophy of divine immanence that should be at the basis of true and great poetry Ibid, P 142

3 Rabindra Nath Tagore Personality, P 27

का यह कथन यथाथ है कि 'यदि कवि दाशनिक नही तो वह कुछ भी नहा है। एक सच्चा कवि दाशनिक और एक सच्चा दाशनिक कवि अवश्य होगा।[1] एक बात और है काव्य का विषय जीवन और जगत है। जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति उसी समय सम्भव है जब हमारा हृदय विशाल उदार एव पवित्र हो। हृदय के ये गुण आदर्शो के सहारे ही विकसित किय जा सकते है और आदर्शो की अभिव्यक्ति दशन म होती है। अत हमारे विचारो तथा भावा को उदात्त बनाने का बहुत कुछ श्रय दशन का है। विचारोऔर भावा की उदारता पर ही काव्य का सौदय निभर करता है। जिस काव्य म विचार और भाव जितने ही श्रेष्ठ और उदात्त होगे वह काव्य उतना ही श्रेष्ठ समझा जायेगा। अतएव काय को अपनी श्रेष्ठता स्थिर करने के लिए दाशनिक आदर्शों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। इसी स जब काय दाशनिक किंवा आध्यात्मिक स्फूर्ति का साधन न रह कर साधारण मनोरजन की सामग्री बन जाता है तब वह काय की दृष्टि सअपना वास्तविक स्वभाव खो देता है। इस सम्बध म राधाकृष्णन का निम्न कथा दृष्टव्य है —

सत्काव्य मे यथाथ को आदश और आदश का यथाथ रूप म चित्रित किया जाता है इस प्रकार कवि को एक लोकोत्तर मौलिक सत्य की उपलधि हो जाती है। जसा कि टेनिसन ने कहा है काव्य यथाथ से अधिक सत्य है। अत महान काय के लिए आध्यात्मिक अथवा दाशनिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इस दाशनिक दृष्टिकोण के अभाव म महान काय की सृष्टि नही हो सकती। काव्य उक्तिया द्वारा हम मुग्ध कर सकता है अपने कौशल स हम चकित कर सकता है अपनी गरिमा स हमारे हृदय को उद्वलित कर सकता है अपने विभिन्न रूपो स हमारा मनोरजन कर सकता है किन्तु उसम अन्तद ष्टि अथवा आध्यात्मिक दृष्टि का अभाव है ता वह काव्य-पुग स च्युत होकर मात्र तुकबन्दी रह जायगा।[1]

---

1 The Philosophy of Tagore P 165

2 In true poetry the real is idealised, and the ideal realised, and we have quite a genuine but a higher kind of real object As Tennyson puts it, poetry is truer than fact So the greatest poetry must embody an ideal vision or a true philosophy Without this philosophic vision no great poetry can exist Poetry may charm us by its wit surprise us by its

काव्य दर्शन की पूर्णता है

दर्शन जगत को बुद्धि बल से समझने का प्रयत्न करता है और काव्य भावना की भव्य भित्ति पर खड़ा होकर उसका (जगत का) रहस्योद्घाटन करता है। किन्तु यह कहना कि दर्शन जो चिन्तन करके निश्चित कर देता है उस निश्चय को साहित्यकार जनता के हृदय में उतारने का प्रयत्न करता है[1] केवल अंशतः ही ठीक हो सकता है। इस मत से तो काव्य का स्वतन्त्र चिन्तन ही संकट में पड़ जायगा और कविमनीषी परिभू स्वयम्भू की मर्यादा जाती रहेगी। वास्तव में न तो यह आवश्यक है और न सम्भव हो कि कवि जिसे निरंकुश कहा जाता है दार्शनिक का अनुगामी बना रहे। वस्तुतः दार्शनिक और कवि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में स्वातन्त्र्य अस्तित्व है। इतना अवश्य है कि जिस सत्य का निरूपण दार्शनिक तर्क से करता है उसी सत्य को कवि भावना के तार से सहज ही हृदय में उतार देता है। तुलसी का मानस इसका प्रमाण है। मानस सत्काव्य के साथ-साथ दर्शन की अपूर्व निधि भी है। इस कथन में सम्भवतः अयुक्ति न होगी कि जिस तथ्य में दार्शनिक अपने तर्क जाल से बड़े-बड़े पौधे तयार करने के पश्चात भी स्थायित्व नहीं ला पाता उसमें कवि अपने भावयोग से स्थायित्व लाने में सद्य सफल हो जाता है। भक्ति का प्रतिपादन बड़े-बड़े मेधावी व्यक्तियों ने किया किन्तु जो सफलता तुलसी को मिली वह अप्रतिम है। कारण तुलसी ने बुद्धि का नहीं हृदय का पकड़ने का प्रयास किया। भावानुकूल ही वह कह उठे—

> मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥
> पुनि रघुवीरहि भगति पियारी। माया खलु नतकी बिचारी ॥
> भगतहि सानुकूल रघुराया। तातें तेहि डरपत अति माया ॥

स्पष्ट है कि उक्त तर्क एक भावुक कवि का है दार्शनिक का नहीं। सारे ज्ञान को केवल कथनी समझकर कवि भावना और अनुभूति के सहारे

---

skill thrill us by its variety lull us into sleep by its rhythm and satisfy our craving for extra ordinary incident, but let it lack the vision it sinks to the level of verse and ceases to be poetry

The Philosophy of Tagore P 145

1 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रथमबार पृ० २

उसे (ज्ञान) अत्यन्त मार्मिक और हृदयग्राही बनाकर सामाजिक क्षेत्र म उपस्थित करता है। तसव्वुफ जिस परम सत्ता का स्पष्टीकरण बुद्धि द्वारा नही कर सका उसे जायसी ने अपने मधुर सकेतो द्वारा सहज ही हृदयगम बना दिया।[1] रहस्यवाद म यदि आत्मा और परमात्मा का निरूपण दार्शनिक पद्धति पर किया जाता तो कबीर और रवीन्द्र की क्या गति होती कहा नही जा सकता। दार्शनिक कहते-कहते थक गया कि आत्मशुद्धि से हृदय म परम तत्व का साक्षात्कार होता है और आत्मा परमात्मा से मिलकर परमानन्द का अनुभव करती ह। किन्तु उसका यह व्याख्यान कितनो को रुचा ? परन्तु जब इसी पक्ष को सन्त कबीर न कविता के माध्यम स व्यक्त किया तब हमारा मानस मयूर नाच उठा। किस प्रकार विरहिणी आत्मा अपने आराध्य से मिल कर आनन्दानुभव करती है देखते ही बनता है—

दुलहिनी गावहु मगलचार।
हम घरि आये हो राजाराम भरतार॥
तन रति करिहौं, मन रति करिहौं पाचौ तत्व बराती।
रामदेव मोरे पाहुन आये मैं जोबन मदमाती॥[2]

कहने की आवश्यकता नही कि रहस्यवादी कवियो ने दर्शन द्वारा निरूपित आत्मा परमात्मा की एकता को स्त्री पुरुष के रूपक द्वारा अभिव्यक्त कर दार्शनिक का काम पूरा तथा बुद्धिगत तथ्य को स्वानुभूत रूप म प्रकट कर दिया है। रहस्यवाद की गुत्थियो को न समझने वाले और आत्मा-परमात्मा के प्रति अविश्वासी भी जीवन के माध्यम स व्यक्त होने वाले मीरा और

---

१ बहुत जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जह जह विहसि सुभावहिं हसी। तह तह छिटकि जोति परगसी॥
× × ×
नयन जो देखा कवल भा निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हस भा दसन जोति नग हीर॥
× × ×
अनु-धनि ! तू निसिअर निसि माँहा। हौं दिनिअर जेहि क तू छाँहा॥
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज क जोति चाँद निरमरा॥
—रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली पदमावत पृ० ४४ २५ १३५।

२ श्यामसुन्दर दास कबीर ग्रन्थावली पृ० ८७

महादेवी के रहस्य गीतों को बड़ी लगन से पढ़ते हैं। बात यह है कि कवि का व्यापार हृदय का व्यापार है। उसके भाव अन्तस से उद्भूत होते हैं और जो हृदय से निःसृत है उसकी पहुँच हृदय तक अवश्य होती है। एक हृदय का स्पन्दन दूसरे को स्पंदित किये बिना नहीं रह सकता। यदि तर्क ज्ञान का जनक है तो आवेग भी आवेग का उद्गम है। तर्क जब भावयोग से सबल ग्रहण कर हमारे सामने आता है तब वह अत्यन्त कोमल और सरस हो उठता है। अतः हम काव्य द्वारा जगत के सत्य का सहज ही हृदयगम कर लेते हैं। काव्य के इस गुण को राधाकृष्णन ने इस प्रकार व्यक्त किया है—If the truth of the world cannot be hammered into a mans head by the engines of argument and proof the beauty of the poet s verse may yet win a way to the heart and succeed where reasoning has failed [1]

दर्शन में केवल धारणाओं को निश्चित करने की शक्ति होती है। वह जीवन जगत ब्रह्म और उसकी शक्ति माया आदि पर अपना तर्क सम्मत मत व्यक्त कर तिरोहित हो जाता है। कवि आगे बढ़कर उन्हीं धारणाओं का जीवन में साक्षात्कार कराता है। दर्शन को यदि हम बुद्धि का विलास कहे तो काव्य को हृदय का उल्लास कहना समीचीन होगा। वस्तुत काव्य अपनी पीयूषवर्षी घनमाला के मध्य ज्ञान की विद्युत छिपाये रहता है जो तमस के आवरण (अज्ञान) को सद्य चीर देती है। इस दृष्टि से काव्य दर्शन की पूर्णता भी है। अंगरेज आलोचक मैथ्यू अर्नाल्ड[2] और योगी अरविन्द[3] ने स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की है कि आज जो धर्म और दर्शन के रूप में मान्य है कल उसका स्थान काव्य ग्रहण कर लेगा।

---

1 The philosophy of Tagore P 168

2 More and more mankind will discover that we have to turn to poetry to interpret life for us to console us to sustain us Without poetry our science will appear incomplete and most of what now pas es with us for religion and philosophy will be replaced by poetry
Mathew Arnold Essays in criticism second series 1935, Ch I

3 The future poetry will be the voice and rhythmic utterance of our greater our total our infinite existence and will give us the strong and infinite sense the piritual and vital joy the exalting power of a greater breath of life
Sri Anrobindo The future Poetry First Edition, 1953, P 329-30

२

छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ और समकालीन पृष्ठभूमि

सांस्कृतिक जागरण की परम्परा

भारतवर्ष का इतिहास इस तथ्य की घोषणा करता है कि भारतीय संस्कृति अपनी जीवन शक्ति के क्षीण होने पर जब-जब विदेशी किन्तु बलवती सभ्यताओं के सम्पर्क में आई है तब-तब उसने स्फूर्ति ग्रहण कर अपने को सशक्त सक्षम और प्रगतिगामी बनाने का प्रयत्न किया है। भारतीयों के साथ मुसलमानों और अंगरेजों के सम्पर्क-संघर्ष का इतिहास इसी की कथा कह रहा है।

विक्रम की आठवीं शताब्दी में यवनों के आगमन के समय भारत की प्राचीन संस्कृति का तेजोमय धुँधला पड़ने लग गया था। वैदिक और पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ बौद्ध और जैन धर्म अपने वास्तविक आदर्शों और सिद्धान्तों से बहुत दूर हट गये थे। तान्त्रिक प्रवृत्ति बौद्धधर्म में एक मनोरंजक ढंग से प्रविष्ट कर गई थी। बौद्ध तान्त्रिकों का विश्वास था कि वासनाएँ दबाने से मरती नहीं अपितु और भी अन्तस्तल में जाकर छिप जाती हैं। अवसर पाते ही वे उदबुद्ध हो जाती हैं और साधक को दबोच लेती हैं। इसीलिए उनको दबाना ठीक नहीं। उचित पथ यह है कि समस्त कामनाओं का उपयोग किया जाय तभी शीघ्र चित्त का संक्षोभ दूर होगा और सच्ची सिद्धि होगी।[1] इस प्रकार बौद्ध मार्ग के साधना-क्षेत्र में कामोपयोग

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ-सम्प्रदाय पृ० ९१

का प्रवेश हुआ । सिद्धि के लिए गुप्त मन्त्रों का जप आचार विहीन गुप्त क्रियाओं विशेषकर निम्न जातियों की स्त्रियों के संग सम्भोग आदि को स्थान मिला । योगिनियाँ मनुष्य की स्वभावगत कामुकता बढ़ाने में सहायक होने लगीं और धार्मिक चेतना पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो गई । विक्रम की नवीं शताब्दी के लगभग तन्त्रविद्या की गोपनीयता हटाकर खुल्लमखुल्ला मन्त्रयान तन्त्रयान और वज्रयान का अध्ययन होने लगा और प्रायः सभी तान्त्रिक देवताओं के मन्दिर बन गये । वज्रयान का प्रचार भी जनता की भाषा (प्राकृत) में होने लगा । इस तरह अनधिकारियों में रहस्य की बातें फैलाई जाने लगीं । तन्त्रों का सांकेतिक भाषा के ग्रन्थों का प्रचार जनता में होने लगा जिससे चलकर तान्त्रिक सिद्धियों का दुरुपयोग और पंचमकार का दूषित प्रचार हुआ । दुराचार फैलने लगा ।[1] बौद्धों के अतिरिक्त वैष्णवों में पांचरात्र शैवों में पाशुपत कालमुख कापालिक रसेश्वर आदि सम्प्रदाय इसी ढंग के हैं । इन सब में साधना का उक्त बौद्ध प्रणालियों का कुछ हेर फेर के साथ चलन हुआ । समाज का बहुत बड़ा वर्ग इन वामाचारियों का क्रीड़ा क्षेत्र बना । वह अपनी अपनी रुचि और परम्परा से अपनाये सम्प्रदाय के इन विकृत मार्गों पर चलने लगा ।[2] शाक्त (सकट या सारवत) मद्य-मांसादि के व्यवहार के लिए और सिद्ध तान्त्रिक आदि स्त्री सम्बन्धी आचारों के कारण घृणा की दृष्टि से देखे जाने लगे । इन अनाचारों के साथ ही इन सिद्धों और साधकों की यौगिक क्रियायें भी डूब रही थीं । इन यौगिक क्रियाओं के उद्धार के लिए ही उस समय नाथ-सम्प्रदाय की सृष्टि हुई ।[3] सिद्ध सम्प्रदाय के महान गुरू गोरखनाथ का आविर्भाव विक्रम संवत की दशवीं शताब्दी में हुआ ।[4] उस काल की धार्मिक दशा के विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं —

उन दिनों भारतीय धर्म-साधना की अवस्था विचित्र थी । शुद्ध जीवन सात्त्विक वृत्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना उन दिनों अपनी निम्नतम सीमा तक पहुँच चुकी थी ।[5] विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी तथा उसके आगे बौद्ध धर्म

१—रामदास गौड़ हिन्दुत्व पृ० ७०४
२—डा० भगीरथ मिश्र–हिन्दी साहित्य का उद्गम और विकास पृ० ५६ ५७
३—रामदास गौड़–हिन्दुत्व पृ० ७०६
४—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी–नाथ-सम्प्रदाय पृ० १८८
५—वही

के हिन्दू धम म अतर्भाव हो जाने के बाद भी शकराचाय के मायावाद, सन्यास ज्ञान तथा योग के मार्गो का देश के धार्मिक क्षेत्र म इतना प्रचार हुआ कि जनता लोक धम और लोक जीवन से उदासीन होने लगी। ससार का व्याव हारिक पक्ष छोड कर लोग परोक्ष चिन्तन म मग्न हो गये। अधिकारी साधको की देखा-देखी साधारण पुरुषाथ और बुद्धि वाले लोग भी जो बुद्धि के परि ष्कार और ज्ञान के साधन के लिए बहुत अशा म अयोग्य थ अपन को ब्रह्म समझने और परम तत्व को पहचानने का ढाग रचन लग गय। इस प्रवत्ति के कारण समाज म दम्भ और अकमण्यता वेग स फल रही थी।[1] सामाजिक मर्यादाओ के पालन म भी शिथिलता आ गई थी जिससे लोक चारित्रिक दुबलताओ के शिकार हो रहे थे। इसी समय इसलाम ने धक्का दिया। यद्यपि यह धक्का नवीन नही था किन्तु इसका वग प्रबल स प्रबलतर होता गया। ईसा की ग्यारहवी शताब्दी म जब अरबो क साथ से तुर्कों क हाथ म इसलामी दुनियाँ का नेतत्व आया तब इसलाम न बडी तजी से पश्चिम और पूरब की ओर बढना प्रारम्भ किया। उस समय भारतवष छोटे छोटे (दिल्ली कन्नोज कालिजर ग्वालियर चदेरी उज्जन बिहार बगाल आदि) राज्यो म बटा हुआ था। लोग आपस की फूट और मिथ्याभिमान म चूर थ। ऐस अवसर स लाभ उठाकर अकेले महमूद गजनवी ने हिन्द पर लगातार सत्तरह हमल किय। उसने बडे-बड मन्दिर (जिसम सबस प्रसिद्ध काठियावाड म सोमनाथ का मन्दिर था) लूटे मूर्तिया तोडी और अपार धन राशि समट कर वतन की राह ली। किसी ने डटकर उसका प्रतिरोध नही किया। बुजदिली का यह हाल था कि लुटेरा का सघटित विरोध करन के स्थान पर देवी-देवताओ स रक्षा की याचना की गई। इसम उस समय की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का खोखलापन विदित होता है। ऐसी परिस्थिति म मुसलमान भारत म शीघ्र ही सत्तारूढ हाकर बल प्रयोग तथा प्रलोभन से हिन्दू जनता का इसलाम धम म दीक्षित करन लगे। इतना ही नही हिन्दुओ के शोषण तथा उत्पीडन के लिए उन पर जजिया का कर भी लगाया गया और उन्हे शान्तिपूवक अपन धार्मिक उत्सव समारोह सम्पन्न करन की सुविधा छीन ली गई।[2] फलत शान्ति सन्तोष और सुख के नितान्त और निरन्तर अभाव क बीच हिन्दू-जनता म निराशा का साम्राज्य हो गया। किन्तु जसा कि रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि

१—डा० दीन दयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३५

२—डा० ईश्वरीप्रसाद, हिस्टी आव मडिवल इण्डिया पृ० ४६५ ४७१

हिंदुत्व का स्वभाव रहा है कि वह कठिनाइयों के अभाव में सो जाता है और निद्रा उसकी तब टूटती है जब उसके अंग पर वज्राघात किया जाय।[1] निदान इसलाम के भयंकर आघात से हिन्दू धर्म और संस्कृति के महासिन्धु में फिर से ज्वार आया और भारतीय धार्मिक आन्दोलन मुसलमान धर्म प्रचार की प्रतिक्रिया रूप में उसके प्रहारों से बचने के लिए बहुलता के साथ खड़ होगये। इस प्रकार सामाजिक मर्यादाओं के उन्मूलन के उस हीन युग में मनस्वी सन्तों ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा सामाजिक और धार्मिक मूल्यों की रक्षा का व्रत लिया। आगे चलकर जब हिन्दुओं और मुसलमानों ने यह यथार्थ अनुभव किया कि दोनों को एक ही देश में रहना है तब धीरे धीरे इसलामी और भारतीय संस्कृतियों का समन्वय प्रारम्भ हुआ जिससे कला और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आदान प्रदान हुआ। इसी से मध्ययुग में निर्गुणिये सन्त और सूफी हिंदुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करते दृष्टिगत होते हैं। नानक कबीर दादू आदि ऐसे ही वातावरण किंवा दो महान धर्मों तथा संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न परिस्थितियों की उपज हैं[2]। ये सुधारवादी आन्दोलन १४वीं शती से १७वीं शती तक चलते रहे। उनके द्वारा देश के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में पवित्रता और दृढ़ता आई। किन्तु १८वीं शताब्दी के समाप्त होते-होते मध्यकालीन सभ्यता के विरुद्ध लम्बे संघर्ष में उनकी शक्ति खप चुकी थी और विरोधी राजनीतिक परिस्थितियों का भी उन पर बुरा प्रभाव पड़ा था अतः भारतीय संस्कृति और धर्मों के लिए दूसरा संकटकाल १९वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजों के पूर्णरूपेण से प्रतिष्ठित हो जाने पर प्रारम्भ हुआ। जिसके साथ ही आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का बनना प्रारम्भ होता है।

पृष्ठभूमि

सन १७५७ ई० में प्लासी युद्ध की विजय से बंगाल में अंगरेजों की प्रभुता का सूत्रपात हुआ और सन १७६५ ई० में बक्सर की विजय ने इस कार्य को पूरा किया। इस युद्ध में केवल मीरकासिम ही की नहीं प्रत्युत अवध के

१—रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४३५

२—डा० विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य डा० दीनदयालु गुप्त द्वारा लिखित भूमिका पृ० ट

3—A C Majumdar—An Advanced History of India P 400-401

नवाब और मुगल सम्राट की भी पराजय हुई जिससे उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग में अंग्रेजों की धाक जम गई। बक्सर के युद्ध के पश्चात अवध का नवाब फिर कभी अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ने का साहस न कर सका। सन १७६१ ई० में कर्णाटक युद्ध में अँगरेजों ने फ्रांसीसियों को पराजित किया और सन १७७०ई० में फ्रान्स की ईस्ट इंडिया कम्पनी विघटित कर दी गई। इसके बाद कोई योरोपीय राष्ट्र अंगरेजों का प्रतिद्वंदी के रूप में नहीं रह गया। अब अंगरेजों को केवल भारतीय शक्तियों से ही निपटना था। १७९८ ई० में वेलेजली ने निजाम को अँगरेजी सरकार के साथ सहायक संधि की शर्तों को स्वीकार कर लेने पर बाध्य किया जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि निजाम अपनी वदेशिक नीति में अँगरेजों की आधीनता स्वीकार करेगा। १८०० ई० के बाद अँगरेजों और निजाम के बीच जो संधियाँ हुई उनके परिणाम स्वरूप हैदराबाद के राज्य पर अंगरेजों की सत्ता स्थापित हो गई। १७९९ ई० में वेलेजली ने टीपू को परास्त कर मसूर राज्य पर आधिपत्य कर लिया। इस प्रकार दक्षिण भारत में भी अंगरेज प्रभुत्वशाली हो गए।

लार्ड हेस्टिंग्ज (१८१३–२३) के गवर्नर जनरल होने पर राजपूत राज्यों के प्रति एक निश्चित नीति अपनाई गई। हेस्टिंग्ज के आगमन के समय राजस्थान विभिन्न राज्यों के पुराने बैर तथा शासन-सम्बन्धी अव्यवस्थाओं के कारण जर्जर हो गया था। १८१७ ई० में दिल्ली में ब्रिटिश रेजीमेंट मास्टर मेटकाफ को गवर्नर जनरल से यह आदेश मिला कि वह राजपूत नरेशों के साथ रक्षात्मक संधि मित्रतापूर्ण संरक्षण और स्वाधीनतापूर्ण सहयोग की वार्ता चलाये। इस नीति के अनुसार कोटा बूंदी किशनगढ़ (अजमेर के निकट) बीकानेर जयपुर प्रतापगढ़ बांसवाड़ा तथा डूंगरपुर के तीन राज्य जिन पर उदयपुर के राजवंश के नरेशों का अधिकार था और जो गुजरात की सीमा पर अवस्थित थे तथा जैसलमेर और सिरोही इन सभी राज्यों के शासकों ने अंगरेजी कम्पनी के साथ संधि करली और अपनी स्वतंत्रता बेच कर ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार कर लिया।

जो हाल राजस्थान का हुआ वही मध्यभारत का भी होना था। मध्य भारत के देशी राजाओं ने भी ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार किया। सर्वप्रथम भोपाल के नवाब ने कम्पनी के साथ 'रक्षात्मक' और अधीनतापूर्ण संधि की और जओरा तथा टोंक के नवाबों ने भी उनका अनुसरण किया। मालवा

और बुन्देलखण्ड के छोटे छोटे राज्यों ने भी अंग्रेजी कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ तक प्राय सभी भारतीय शक्तियों का पतन हो गया जिनका उदय मुगल साम्राज्य के ह्रासोन्मुख होने पर हुआ था। इन शक्तियों में मसूर हैदराबाद अवध रुहेला अफगान आदि उल्लेखनीय हैं। मराठे सबसे प्रबल थे। किन्तु अंग्रेजों के सामने उनकी भी न चली। सन् १८५७ के पश्चात् नरेशों और नवाबों का कोई ऊँचा आदर्श नहीं रहा इतिहास इसका साक्षी है। राज्य अथवा भूमि हथिया कर केवल भोग विलास के बीच में दिन रात सने रहने का व्यसन ही शेष रह गया था। प्रजा के प्रति भी राजा या शासक का कुछ कर्तव्य है इस ओर सभी विलासी राजाओं और प्राय उनके अच्छे शासकों का भी ध्यान नहीं गया। राजाओं और नवाबों का यह घोर पतन नीति कुशल अंग्रेजों से छिपा नहीं था। इसी से लाभ उठा कर वे भारत के बिगड़े गए बीते शासकों को एक एक करके आचरणहीन और उनके राज्यों को हस्तगत करते गये थे।[1] किन्तु १८५७ की शान्ति के उपरान्त अंग्रेजी नीति में विचित्र परिवर्तन हुआ। कुशासित भारतीय रियासतों का हड़प कर ब्रिटिश भारत में मिला लेने की नीति का परित्याग कर उन्हें कठपुतली राज्यों के रूप में अवसर आने पर अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए सुरक्षित रखा गया।[2] इस प्रकार अनेक सैनिक कार्यों तथा राजनीतिक सम्बन्धों द्वारा अंग्रेजों ने अपना अधिकार हिमालय से लेकर कन्या कुमारी और सतलज से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक स्थापित कर लिया।

जैसे-जैसे अंग्रेजी राज्य का विस्तार भारत में होता गया वैसे वैसे अंग्रेजों को जैसा कि उनके लिए स्वाभाविक ही था अंग्रेजी शासन की नींव को सुदृढ़ करने और भारतीयों के घाव को भरने के लिए जनता के सुख शान्ति और मन बहलाव के उपकरण प्रस्तुत करने की चिन्ता भी हुई। निदान लाड कार्नवालिस (१७८६ १७९३) ने भारत के शासन राजस्व और न्याय व्यवस्था में वह महत्वपूर्ण सुधार किये। कार्नवालिस में कर्तव्य भावना न्यायपरायणता सचाई दृढ़ता और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी। उसने अपने इस्तमरारी बन्दोबस्त के द्वारा जमींदारों के साथ मालगुजारी निश्चित करते हुए राज्य का भाग नियत कर दिया और भूमि के

---

1 A C. Majumdar—An advanced History of India p 766
2 R Palme Dutt—India Today and Tomorrow p 111

स्वामित्व के प्रश्न पर जमींदारों को कानूनी स्वीकृति दे दी। जमींदार भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो जाने के कारण राजभक्त हो गये जिनसे भारत में ब्रिटिश सत्ता को एक शक्तिशाली वर्ग का पूर्ण सहयोग तथा समर्थन प्राप्त हो गया जो १५ अगस्त १९४७ में अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय तक किसी न किसी रूप में बना रहा। लार्ड कार्नवालिस की आधुनिक न्याय-व्यवस्था तथा भारतीय जुलाहों और अन्य कारीगरों के साथ उचित व्यवहार ने भी कम्पनी सरकार के पक्ष में सबल लोकमत का निर्माण किया। १८१३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा यह निर्दिष्ट हुआ कि कम्पनी-सरकार भारतीयों के हितों का ध्यान रखेगी और उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करेगी। इस चार्टर द्वारा भारतीय विद्याओं के प्रोत्साहन एवं वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के लिए एक लाख रुपया वार्षिक अनुदान की व्यवस्था की गई। लार्ड हेस्टिंग्ज (१८१३-२३) के शासन-काल में शिक्षा के क्षेत्र में भारतीयों की प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसी के कार्य-काल में कलकत्ता में हिन्दू-कालेज खोला गया। हिन्दू युवकों को यूरोप और एशिया की भाषाओं तथा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त हो गया। सन् १८३३ ई० में जो कानून बना उसके महत्त्व को लार्ड आफ डाईरेक्टर्स ने इस प्रकार समझाया—

'इस धारा का आशय कोर्ट यह मानता है कि ब्रिटिश भारत में कोई शासन करने वाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दूसरी कुछ भी कसौटियाँ रखी जायँ जाति या धर्म का कोई भेद-भाव नहीं रखा जायेगा। सम्राट के प्रजाजन में से किसी को वे उनकी नौकरियों से वंचित नहीं रखा जायगा और न वे उनकी नौकरियों से ही वंचित रखे जायेंगे, यदि दूसरी बातों में उनके योग्य हों।'[1] इस चार्टर में सबसे महत्त्व की बात यह थी कि जब यूरोपीय और देशी प्रजाओं के हितों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न होगा तब देशी प्रजाओं के हितों को मान्यता दी जायेगी। लार्ड हार्डिंज ने अपने कार्य-काल के आरम्भ में ही अपनी शान्तिपूर्ण नीति का परिचय दिया। उड़ीसा पर्वतीय जिलों में लोगों में यह भ्रमपूर्ण धारणा फैली थी कि नरमेध से भूमि की उर्वरता बढ़ाई जा सकती है अतः वे प्राय मनुष्यों का वध कर उनकी बलि चढ़ा देते थे। हार्डिंज ने समझा-बुझाकर तथा प्रचार-कार्य द्वारा इस कुप्रथा का अन्त किया। लार्ड डलहौजी के समय में भारत में रेलवे लाइनें बनीं लोगों को तार की सुविधा प्राप्त हुई तथा डाक की सस्ती और सर्वसुलभ व्यवस्था प्रच

1 पट्टाभि सीतारमय्या—कांग्रेस का इतिहास, भाग १ पृष्ठ ४।

लित हुई। उसने सिंचाई के लिए नहरें खुदवाई। यातायात की सुविधा के लिए सड़कों का निर्माण कराया और बंगाल मद्रास तथा बम्बई के अहातों में इंजीनियरिंग कालेज भी खुलवाये।

भारत में पाश्चात्य शिक्षा की दृष्टि से विलियम बैंटिंग का कार्य-काल स्मरणीय है। शिक्षा के सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न यह था कि सरकार प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए हिन्दू पाठशालाओं और मुसलिम मकतबों को आर्थिक अनुदान दे अथवा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से देश में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार की व्यवस्था करे। दोनों प्रकार की शिक्षा पद्धतियों के समर्थकों के बीच प्रचण्ड शास्त्रार्थ छिड़ गया। किन्तु सती प्रथा उन्मूलन के विचार की भाँति पाश्चात्य शिक्षा प्रचलन की विचारधारा का अनेक भारतीयों ने समर्थन किया। अन्ततोगत्वा मैकाले और राममोहन राय के प्रयत्न से भारतीय भाषाओं और साहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के पक्ष में निर्णय हुआ और उस शिक्षा पद्धति की नींव पड़ी जो भारत में आज तक प्रचलित है। किन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जनता के लिए सुख समृद्धि और सुव्यवस्था के इन आयोजनों में ब्रिटिश का हित अथवा स्वार्थ चिपटा हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बनियों का मधुरतम स्वप्न यह था कि बदले में कुछ दिये बिना ही भारत का धन लूट लिया जाय'।[1] मार्क्स के शब्दों में इंग्लैंड का भारत में दो उद्देश्य थे। पहला ध्वंसात्मक और दूसरा विकासात्मक--प्राचीन एशियायी समाज का सत्यानाश करना और एशिया में पाश्चात्य समाज की भौतिक बुनियाद डालना'।[2] ब्रिटेन की स्वार्थ-साधना के लिए ब्रिटिश मन्त्रि मण्डल को भारतीयों के हितों का हनन करना पड़ता था। अतः भारतीयों के स्नेह भाजन बनने के लिए अंग्रेजों को बाध्य होकर भारत में न्याय और शान्ति की सुन्दर व्यवस्था करनी पड़ी। उनके इस प्रयत्न से पश्चिम के उदार

1 The dearest dream of the merchants of the East India Company was to draw the wealth out of India without having to send wealth in return
R. Palme Dutt—India To-day and Tomorrow, p 13

2 England in Marx s view had a double mission in India one destructive, the other regenerating--the annihilation of the old Asiatic Society, and the laying of the material foundations of Western society in Asia
R Palme Dutt—India to-day and Tomorrow, p 39

मानवतावाद व्यक्तिस्वातन्त्र्य समानता आदि सिद्धान्तों का भारत में प्रवेश तथा देश की भौतिक समृद्धि की वृद्धि के लिए पाश्चात्य वैज्ञानिक आविष्कारों का भी प्रचलन हुआ।[1] इससे स्पष्ट है कि भारतीयों की सच्ची सेवा-सहायता करना अंग्रेजों को इष्ट न था। उनके सुख शान्ति और सहयोग की तह में भयंकर कूटनीति काम कर रही थी। वास्तव में १८५७ ई० के पूर्व का अंग्रेजी शासन पूर्णतया स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। लार्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओं की रियासतें जब्त कर ली थीं और अवध की रियासत को भी कुशासन का बहाना बनाकर ब्रिटिश भारत में मिला लिया था। इसके अतिरिक्त आर्थिक शोषण भी जारी था जिसमें लोग दिन दिन कंगाल होते जा रहे थे। रियासतों के छिनने और उनके स्थान पर विदेशी शासन स्थापित होने के कारण लोग मन ही मन कुपित हो रहे थे। परिणाम यह हुआ कि १८५७ में उन्होंने विदेशी हुकूमत के जुए को उखाड़ फेंकने का अन्तिम सशस्त्र प्रयत्न किया। इस विद्रोह का धार्मिक कारण भी था। लार्ड डलहौजी ने १८५० ई० में एक कानून पास कर दिया कि यदि कोई ईसाई धर्म स्वीकार कर लेगा तो सम्मिलित परिवार की सम्पत्ति पर उसका अधिकार बना रहेगा। इससे हिन्दुओं के भीतर ब्रिटिश सरकार के प्रति गहरी आशंका के भाव उत्पन्न हो गए। सेना की टुकड़ियों में भी ईसाई धर्म फैलाने का प्रयास किया जाता था। ईसाइयों द्वारा संस्थापित स्कूलों और कालेजों में हिन्दू और मुसलमान धर्मों की निन्दा की जाती थी और केवल ईसाई धर्म को ही सच्चा धर्म बताया जाता था। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार को सन्देह की दृष्टि से देखने लगी। निदान लोगों ने ब्रिटिश सत्ता को उलट देने का निश्चय किया। हालांकि विद्रोह बेकार गया किन्तु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी तिरोहित हो गई और भारत सरकार का शासन-सूत्र सीधे ब्रिटिश ताज अर्थात् पार्लियामेंट के हाथों में आ गया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की जिससे शान्ति और विश्वास का वातावरण उत्पन्न हुआ। जो कुछ भी अशान्ति बच रही उसका कोई सहारा बाकी न रह गया था। राजा और मुख्यरूप से नवाब तहस-नहस हो चुके थे। कोई नामधारी पराक्रमी व्यक्ति ऐसा नहीं रह गया था जिसके आस-पास लोग एकत्र होने और पुनः कोई विप्लव खड़ा करते। निदान लोग यह समझने लगे कि भारत में

1 An Advanced History of India by R C Majumbar p 368

अगरेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने काम-काज म लग गये जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक विशेषता है । १

क्रान्ति असफल तो रही किन्तु उसने भारतीयो को एक नये स्तर पर सोचने की प्रेरणा दी । क्रान्ति ने भारतीयो पर विज्ञान के चमत्कार और महत्व को प्रकट कर दिया । भारतवासी रूढ़िवादी थे और उनका दृष्टिकोण प्रधानत आध्यात्मिक और आदर्शवादी था । अत वे विज्ञान से अभिभूत ऐहिकता का स्वागत करने के लिए उद्यत न थे । अतएव प्राचीन और नवीन विचारधाराओ म सघर्ष अनिवार्य था । यह द्वन्द्व सन ५७ की क्रान्ति म प्रस्फुटित हो गया । अन्तिम परिणाम यह हुआ कि प्राचीनता की पराजय हुई और जयलक्ष्मी आधुनिकता को प्राप्त हुई । सन ५७ की क्रान्ति के काले बादलो के बीच यही एक रजत रेखा परिलक्षित होती है । क्रान्ति के पश्चात अगरेजी शासन की नीव दृढ़तर होने के साथ ही पाश्चात्य सभ्यता के मूल्यो का समादर होना प्रारम्भ हुआ । भारत म सवत्र विज्ञान के सुलभ उपकरणो का उपयोग होने लगा । गमनागमन के साधनो म अप्रत्याशित वृद्धि आरम्भ हुई शासन म एकरूपता उत्पन्न हो गई व्यापार म उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी पाश्चात्य शिक्षा की ओर लोग विशेष रूप से आकृष्ट होने लगे और नि सकोच समुद्र यात्रा करने लगे । इससे भारतीयो की उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो गया । सक्षेप म क्रान्ति ने मध्यकालीन व्यवस्थाओ तथा मान्यताओ का उन्मूलन कर आधुनिक काल की व्यवस्थाओ तथा धाराओ का आरोप किया । निस्सन्देह इस क्रान्ति ने भारतीयो को अन्धकार से प्रकाश म पदार्पण कराया और उनके समक्ष राजनीतिक सामाजिक सास्कृतिक तथा आर्थिक जीवन का एक नवीन चित्र उपस्थित किया जिससे वे सवथा अपरिचित थे परन्तु वह इतना चित्ताकर्षक था कि उसका आलिंगन करने के लिए सभी आतुर हो उठे ।

वास्तव म यह एक विरोधाभास है कि एक विदेशी शासन और शिक्षा प्रणाली भारत की मौलिक अथवा परम्परागत सस्कृति के नवोत्थान अथवा जागरण का हेतु बनी । अगरेजी शिक्षा का प्रचलन अगरेज अधिकारियो ने शुद्ध हृदय म नही किया । साम्राज्यवाद की ओर से जब मकाले ने अगरेजी शिक्षा का बोझ भारत पर लादा तब उसका उद्देश्य भारत म राष्ट्रीय चेतना को जन्म

१ पट्टाभि सीतारमय्या—कांग्रेस का इतिहास भाग १ पृ० ५

देना नही था अपितु उसे आमूल नप्ट कर देने का था ।[1] मकाले ने स्पष्ट कहा है— 'हम एसे वग के निर्माण का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए जा हमारे और लाखो शासितो के बीच दुभाषिये का काम करे—लोगो का एक ऐसा वग जो रक्त और रग म तो भारतीय हो किन्तु अभिरुचि विचार आचार और ज्ञान मे अगरेजो का-सा हो । [2] अगरेजी शिक्षा का हथकण्ड कम्पनी के सरकारी कार्यों के लिए क्लक उत्पन्न करने के साथ-साथ भारतीया को अपनी सस्कृति से विमुख और पथभ्रष्ट करने के लिए भी अपनाया गया था। किन्तु इसके द्वारा शिक्षित भारतीयो को मिल बक मकाले स्पेन्सर आदि के प्रगतिशील विचारो के सम्पक म आने का अवसर प्राप्त हुआ जिससे उनके भीतर राज नीतिक स्वतन्त्रता के भावो का उदय हुआ। जिस समय भारत म पश्चिमी शिक्षा का प्रचलन हुआ उस समय इगलण्ड तथा योरोप के अन्य देशो म उदारवाद व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा राष्ट्रीयता की लहर बड़ वेग से फल रही थी। वही समय इग्लण्ड म कथोलिक इमासिपेशन ऐक्ट (१८२९) रिफाम ऐक्ट (१८३२) दासता उन्मूलन (दि अबालिशन आफ स्लवरी) (१८३२) तथा पू पुअर ला (१८३४) के पारित होने का था। अत अगरेजी भाषा के माध्यम से भारतीयो का जो अपनी स्वतन्त्रता के लिए जोर मार रहे थे, पाश्चात्य जनतान्त्रिक विचारधाराओ और सघर्षों से अनायास सम्पक हो गया, जिससे भारतीय समाज म पुनर्निमाण और नव विकास क बीज अकुरित हो उठ और पराधीनता से पीडित अनेक भारतीय विदेशी शासका द्वारा अपन दश के आर्थिक शोषण का अन्त कर देने के लिए मदान म उतर आय ।[3]

---

1 R Palme Dutt—India Today and Tomorrow, P 108

2 Modern Indian Culture by D P Mukerji P 109

3 The fact that the sy tem of education imposed in the interests of imperialist administration opened the avenues at the same time to the great stream of English democratic and popular inspiration and struggle of the Miltons the Shelley and the Byrons fighting against the self same figures of the ruling class oligarichy the Pitte and the Hastings and the Wellingtons as were enslaving and exploiting India was a characteristic contradiction of the whole system of imperialism conducted by the ruling class of a country in which simultaneously the peop e were themselves pressing forward to their freedom

R Palme Dutt –India Today and Tomorrow, P 100

इस प्रकार अंगरेजी शासन के न अधीन भारतीयों की राजनीतिक स्वतन्त्रता का अपहरण तो हुआ और खुलकर उनके देश का आर्थिक शोषण भी हुआ किन्तु अंगरेज जाति के नवीन और शक्तिमय जीवन ने भारत की कई शताब्दियों की कुम्भकर्णी निद्रा को भंग किया और उसे पूर्णतया झकझोर कर नव चेतना के पथ पर डाल दिया। १९वीं शती के पतनोन्मुख भारत के लिए कदाचित् इस प्रकार का भीषण आघात आवश्यक था। यदि अंगरेज इस देश में न आते तो यहाँ सांस्कृतिक जागरण न होता ऐसा कहना अनुचित होगा। किन्तु अंगरेजों ने भारत के रूढ़िग्रस्त और गतानुगतिक जीवन को जबरदस्त धक्का देकर उसमें उस गति का संचार किया जिससे अविलम्ब सांस्कृतिक जागरण सम्भव हुआ और उसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक हो गया। कर्मठ अंगरेज जाति के सम्पर्क से भारतीयों ने इस बात का अनुभव किया कि यदि उन्हें जीवित रहना है तो योरप की वैज्ञानिक विचारधारा तथा प्रगतिशील औद्योगिक सभ्यता से लाभ उठाकर अपना जीवन क्रम बदलना और अपनी संस्कारक पोषक तत्वों के साथ पाश्चात्य संस्कृति के हितकर तत्वों को अपनाना होगा। इस प्रकार इस नये आघात से मध्ययुगीन संस्कृति की आचार विचार रीति नीति और प्रथा-परम्परा की भित्ति ढह गई। शताब्दियों की निश्चेष्टता और कूपमण्डूकता दूर हुई। भारतीय मानस के बन्द द्वार और वातायन नये भावों और गतिशील प्रगतिशील विचारों के लिए उन्मुक्त हो गये। पुरातन श्रद्धा और आस्था के स्थान पर तर्क और विवेक प्रतिष्ठित हुए, अन्ध विश्वास और अकर्मण्यता पर बुद्धि और कार्यशीलता ने विजय पाई और पराधीनता और आतंक के मध्य में भी स्वतन्त्रता और मुक्ति का अभिनन्दन हुआ।[1] इस प्रकार जैसा कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा है— अंगरेज अनजाने में ही अपने आप भारत में नवजागरण के प्रतिनिधि और अग्रदूत बने।[2]

१—जुदा भी यदि करें या मुझे अमीर करें।
मेरे स्याह को वही फिरा नहीं सकते॥ —बरजस्त

२—The British became the dominant in India and the formost power in the world, because they were the heralds of the new big machine industrial civilization. They represented a new historic force which was going to change world and were thus unknown to themselves the fore runners and representatives of change and revolution.

Pt. Nehru—The Discovery of India, p 268—269

हि दुआ की पौराणिक परम्परा वतमान युग को 'कलियुग बताती है जो जीवन के ह्रास का द्योतक है कि तु पश्चिम म कल-युग का दौरदौरा था जो विकासवाद का सूचक है। अत यात्रिक सभ्यता के प्रकाश म लोगो के मन मस्तिष्क से धम का अनुचित प्रभाव हटने लगा। कि तु इसका यह अथ नही लगा लेना चाहिए कि पाश्चात्य सम्पक और शिक्षा का काई कुप्रभाव भारतीय संस्कृति अथवा धम पर नही पडा। सच तो यह है कि प्रारम्भ म लोग अगरेजी शिक्षा की मूल भावना को ठीक-ठीक हृदयगम न कर सके। उसकी विचारवादिता तथा स्वतत्रतानुरागिता का अथ वे बिलकुल ही गलत समझ बठ। आचार विचार की प्राचीन मा यताओ का विरोध करना तो उ होने सीख लिया किन्तु उनके स्थान पर तक पर आश्रित उन नियमो का अपनाने की ओर स वे उदासीन रहे जिन नियमो के द्वारा उनका व्यक्तिगत आचरण सुनियन्त्रित रह सकता। अगरेजी शिक्षा की वज्ञानिक भावना ने शिक्षित भारतीयो को अ धविश्वासपूण रूढियो से अपने को मुक्त करने के लिए प्ररित तो किया किन्तु इस मुक्ति का उसने यह अथ भी अपन आप लगा लिया कि उसक लिए आचरण सम्ब धी किसी नियत्रण को स्वीकार करना निरथक है। उसने स्वतत्रता का आशय यह समझा कि वह स्वेच्छानुसार सुरा सेवन कर सकता है और जसा चाहे वसा जीवन बिता सकता है। बात यहा नहा रुकी भारतीय परम्पराओ विश्वासो और मर्यादाओ का मखौल उडाया जाने लगा। अनेक उच्छ खल युवको ने हि दू नामधारी प्रत्येक वस्तु के प्रति घृणापूण दृष्टि कोण अपना लिया और अपने धम के सिद्धान्तो को निस्सार बता कर त्याग दिया। स्वर्गीय लाला लाजपतराय के श द म प्रत्यक वस्तु उनकी दृष्टि म घणित थी। यदि उनके अगरेज साहब चच जाते थ तो वे भी वसा ही करत थे। यदि उनक साहब स्वतत्र विचार रखते तो वे भी वसा ही करते थे। उनकी दृष्टि सदा साहबो की वशभूषा मदिरा-सेवन और मास भक्षण की ओर लगी रहती थी।[1] इस प्रकार अगरेजो का निणय ही औचित्य और अनौचित्य की कसौटी बन गया था। निदान बौद्धिक और सास्कृतिक दासता और अध पतन के उस कगाल युग म कलकत्ता हि दू कालज के अनेक विद्यार्थियो न ईसाई

1 Everything Indian was odious in their eyes If their English masters went to church they did the same If their English masters indulged in free thinking they did the same They looked to their dress their drinks their beef

—Young India by Lajpat Rai, Page 120

धर्म ग्रहण कर लिया जिससे मकाले की यह धारणा कि पाश्चात्य शिक्षा के कारण हिन्दू धर्म नष्ट हो जायगा और ईसाई धर्म का प्रचार होगा सत्य प्रतीत होने लगी।[1] शिक्षित वर्ग का यह अधःपतन पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। उपनिषदों के युग में और बौद्ध-काल में भारत के मनीषियों ने जो सूक्ष्म चिन्तन किया था जिस प्रकार शास्त्रों प्रश्नों और बौद्धिक समस्याओं का सामना किया था उसकी कहानी अब किसी को याद नहीं थी। सिद्धों और निर्गुणिये सन्तों ने क्रान्ति की जिस मशाल को जीवित रखा था मुगल कालीन विलास से वह भी बुझ चुकी थी। कबीर के बाद न तो भारत में विचारों का कोई क्रान्तिकारी सन्त जन्मा था न तुलसी और कृष्ण चैतन्य के बाद इनके समान कोई भक्त हिन्दुत्व सिमट कर पौराणिक हो गया था।[2] भारतीय समाज के सम्मुख बड़ी विषम समस्या उपस्थित थी। वह देख रहा था कि समाज का भविष्य जिन युवकों के हाथों में है वे मिशनरियों के प्रचार और अंगरेजों की शिक्षा-दीक्षा के कारण अपने समाज के विरोधी बने जा रहे हैं। उनका मस्तिष्क बुद्धिवादी तर्कों से भरा हुआ था वे मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं मानना चाहते थे तीर्थों और मन्दिरों के पीछे किसी आध्यात्मिक सत्य का पता उन्हें नहीं चलता था न वे धर्म के हिन्दू अनुष्ठानों को बुद्धि से समझते थे।[3] ऐसी परिस्थिति में समाज की स्थिति रक्षा और दृढ़ता के लिए किसी नये कबीर किसी नये नानक और किसी नये दादू की आवश्यकता पड़ी। अतः योरोप और भारतवर्ष की टकराहट से एक बार फिर वह भाव भीतर से जाग पड़ा जो बुद्ध के समय प्रकट था जो कबीर के समय प्रत्यक्ष हुआ था और लोग गम्भीरता से धर्म और समाज के ढाँचे पर एक बार फिर उसके मूल से ही सोचने लगे।[4] प्राचीन शास्त्रों की व्याख्या आलोचनात्मक ढंग से की जाने लगी और उनकी आधारशिला पर युग की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उज्ज्वलतर भविष्य के निर्माण की प्रवृत्ति बलवती हो उठी। परिणामस्वरूप वर्ग जाति सम्प्रदाय,

---

1 It is my firm belief that if our plane of education are fol lowed up there will not be a single idolat r among the re pectable classes in Bengal in thirty years hence
—Macaulay, 18 6 in a letter to his father

२—रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४३३

३—वही पृ० ६ ४

४—वही पृ० ६३७

अस्पृश्यता आदि से पीडित भारतीय समाज मध्ययुगीन जडता से छूटकर सामाजिक एकता धार्मिक समन्वय और राष्ट्रीय चेतना से प्रबुद्ध हो उठा। चेतना की लहर उच्च स्तर से प्रारम्भ हुई और उसका कम्पन धीरे धीरे निम्न-स्तर तक पहुचा जिसके स्पर्श से सकीर्णता से अभिभूत भारतीय जीवन म युगान्तर उपस्थित हुआ। इस नवोत्थान ने जिन प्रक्रियाओ द्वारा अपने को प्रकट किया उसका थोडा परिचय यहाँ पर प्राप्त कर लेना समीचीन होगा।

सांस्कृतिक आन्दोलन

आधुनिक भारत म पुनर्जागरण की ज्योति सवप्रथम सास्कृतिक आन्दोलनो के रूप मे प्रकट हुई। वतमान युग म जीवन के पाश्व म जो दृढता विश्वास और अध्यवसाय की शक्ति दिखाई पड रही है उसका सूत्रपात सास्कृतिक आन्दोलनो द्वारा ही हुआ था। इन आन्दोलनो के प्रेरक कारण ब्रिटिश शासन से उत्पन्न व परिस्थितियाँ थी जिन्होने भारत म ईसाई धम के अनिष्टकारी प्रचार मिशनरियो द्वारा भारतीय धर्मों का भत्सना पढे लिखे अगरेजी बाबुओ द्वारा हिन्दुत्व के निरादर एव पश्चिमी सभ्यता की क्रान्तिकारी विचारधाराओ आदि को प्रश्रय अथवा उत्तजन दिया।

१९वी शती का भारत अपन धम प्रवत्तको के मूल सिद्धान्तो को भुला कर तरह-तरह के अन्धविश्वासो और रूढियो निगलित प्रथा परम्पराओ आदि के भँवरजाल म फस गया था। पाश्चात्य सम्पक म भारत के समथ मनीषियो को जब इस विषम स्थिति का भान हुआ तब उन्होने भारतीय जीवन और दृष्टिकोण म परिवतन लाने की आवश्यकता समझी। उसी का परिणाम उन्नीसवी शताब्दी के ब्राह्म-समाज प्राथना-समाज ब्रह्मविद्या-समाज आदि आन्दोलन हैं। इन सभी आन्दोलनो की प्रतिक्रिया का कारण एक था तथा इनके दाशनिक पक्ष का प्रभाव हमारे आलोच्य काल की कविता पर किसी न किसी रूप मे पडा है अत यहाँ पर सक्षेप म इनके विशिष्ट तत्वो का परिचय प्राप्त कर लेना ठीक होगा।

ब्राह्म–समाज

सन १७७७ ई० म एक बन्द्योपाध्याय ब्राह्मण कुल म बगाल के प्रकाण्ड पण्डित सुधारक और ब्राह्म समाज के आदि सस्थापक राजा राममोहनराय का जन्म हुआ। उनकी शिक्षा फारसी अरबी म प्रारम्भ हुई जिसके द्वारा उन्होने इस्लाम धम के मूल सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त किया। बाद म काशी मे वेदान्त दशन और सूफीमत का गहन अध्ययन किया जिसम ब्रह्मवाद उनकी रग रग म

भिद गया। बाईस वर्ष की अवस्था में अंगरेजी की ओर झुके और ईसाईयों के सम्पर्क में आये। ईसाई धर्म के मूल सिद्धान्तों का समर्थन करने के लिए उन्होंने ईरानी और यूनानी भाषायें पढ़ीं, किन्तु औपनिषदिक ब्रह्म के सामने ईसाइयों का अवतारवाद हल्का लगा, अतः उसका खण्डन किया। हिन्दू धर्म शास्त्रों में जाति-पाँति, अस्पृश्यता, सती आदि रीति रिवाजों का कोई शास्त्रीय विधान न देखकर उन्होंने उनका मूलोच्छेदन करने का उपक्रम किया और हिन्दू समाज में ब्रह्मवाद का मन्त्र फूँका। राजा राममोहनराय विश्व मानवतावाद के समर्थक थे और भारतीय संस्कृति का समन्वय पश्चिम के नवीन अनुसन्धानों के साथ करना चाहते थे। मोनियर विलियम्स के शब्दों में वे तुलनात्मक धर्म विधान में संसार में कदाचित प्रथम जिज्ञासु मस्तिष्क थे।[1]

राजा राममोहनराय एक उदारचेता भावप्रवण व्यक्ति थे। उनका दार्शनिक ज्ञान उच्चकोटि का था। उन्होंने सन १८२८ ई० में एक ब्रह्म की उपासना सर्वधर्म-समन्वय और विश्व बन्धुत्व के लिए ब्राह्म समाज की स्थापना की जिसमें वे एक साधारण सदस्य के रूप में सम्मिलित हुए किन्तु उसके कर्ता धर्ता वे ही थे।

ब्राह्म-समाज की प्रथम बैठक २० अगस्त १८२८ में हुई। उपनिषदों के ब्रह्म को आधार मानकर ब्राह्म समाज के अधिवेशनों में वेद के मन्त्रों का उच्चार, उपनिषदों के बंगला अनुवाद का वाचन और बंगला में उपदेश प्रारम्भ हुआ। ब्राह्म-समाज में इस बात की मान्यता थी कि मन्दिर मस्जिद गिरजा सब में ब्रह्म स्थित है। ब्रह्म की सर्वव्यापकता के आधार पर सभी धर्मों अथवा मतवादों के प्रति उदारता की भावना जगाई जाने लगी। इस प्रकार ब्राह्म-समाज में वेद, कुरान, इन्जील आदि सभी धर्म-ग्रन्थों को सम्मान मिला और संसार के सभी धर्म शिक्षकों का समादर हुआ। राजा राममोहनराय के जीवन-काल में ही इसे विश्व-व्यापी बनाने के लिए इंगलैण्ड और अमरिका में यूनिटेरियन चर्च की स्थापना हुई। इस प्रकार ब्राह्म-समाज ने हिन्दू धर्म की बँधी-बँधाई मर्यादा को इतना विस्तृत कर दिया कि उसके सदस्य मुसलमान और ईसाई भी हो सकते हैं। मुसलमानों[2] पर ब्राह्म-समाज का प्रभाव

१—सरकार तथा दत्त—आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग २ (१९५६) पृ० ४९९

२—रामदास गौड़—हिन्दुत्व, पृ० ७४५

कान्तिकारी सम्प्रदाय की स्थापना में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार राजा राममोहनराय ने बुद्ध के पश्चात भारतवर्ष को इस अवस्था में रक्खा ताकि वह समूचा मानव जाति को आध्यात्मिक सन्देश दे सके और निर्णयकारी राष्ट्रीय इतिहास की दौड़ आरम्भ कर सके।[1]

सन १८३३ ई० में राजा राममोहनराय ज्वर-ग्रस्त होकर ब्रिस्टल में दिवंगत हुए। १० वर्ष बाद १८४३ में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ब्राह्म-समाज के प्रधान नेता हुए। उन्होंने ब्राह्म समाज को साम्प्रदायिकता पर संघटित किया। उसके सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उन्होंने तत्वबोधिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया और इस कार्य के लिए कुछ धर्म शिक्षक भी नियुक्त किये। तत्वबोधिनी पत्रिका में यह स्पष्ट कहा गया कि वेद अपौरुषेय हैं और ब्राह्म समाज के सिद्धान्त के मूलाधार वेद ही हैं।[2]

सन १८५७ ई० में ब्राह्म-समाज में पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित एक १९ वर्षीय अत्यन्त भावुक तथा वाग्मी व्यक्ति केशवचन्द्र सेन का प्रवेश हुआ। वे बड़े ही उत्साही भक्तिपरायण और तरुण वक्ता थे। उनके अथक प्रयत्न से १८६५ के अन्त तक देश में ब्राह्म समाज की ५४ शाखाएँ खुल गई। केशवचन्द्र सेन ने ब्राह्म-समाज में भक्ति का समावेश किया और वैष्णवों की सकीर्तन प्रणाली को अपनाया। वे स्वयं ढोलक बाद्य के साथ कीर्तन गाते हुए सड़कों पर निकलते थे। विश्व धर्म का स्वप्न द्रष्टा होने के कारण उन्होंने सभी धर्मों की उपासना आरम्भ की। अत उनके प्रार्थना-संग्रह में हिन्दू बौद्ध, यहूदी ईसाई मुसलमान और चीनी सभी धर्मों की प्रार्थनाएँ सम्मिलित थी। इस प्रकार राममोहन राय देवेन्द्र नाथ और केशवचन्द्र के प्रयत्नों द्वारा हिन्दू धर्म एवं समाज में बुद्धिवाद और चेतना का आविर्भाव हुआ। ब्राह्म-समाज के प्रभाव से हिन्दुओं में अपने धर्मशास्त्र के प्रति आस्था उत्पन्न हुई। जो शिक्षित वर्ग पहले हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों और अनुष्ठानों की खिल्ली उड़ाता था वह उसका दार्शनिक समर्थन करने लगा। ब्राह्म-समाज के प्रशस्य प्रयत्न से हिन्दू समाज में विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता मिली। उसने पर्दा प्रथा बहु विवाह और बाल विवाह की कुप्रथाओं को मिटाने तथा स्त्रियों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। ब्राह्म-समाज द्वारा जनता में इस बात का पर्याप्त प्रचार हुआ कि हिन्दू धर्म मूलत एकेश्वरवादी (अद्वैतवादी)

१—सरकार तथा दत्त-आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग २, पृ० ५००

2 R C Majumdar—An Advanced History of India, p 878

है और वेदों में निहित सत्य मसीही मत के सिद्धान्तों से अधिक पूर्ण और शाश्वत है। ब्राह्म समाज ईश्वरोपासना के लिए मठ मंदिर गृहत्याग आदि को आवश्यक बताता है। उसके अनुसार ईश्वरोपासना में समस्त प्राणियों का समानाधिकार है। धार्मिक और सामाजिक सुधार की दृष्टि से ब्राह्म समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। किन्तु इसका प्रभाव-क्षेत्र अत्यन्त ही सीमित रहा। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार ब्राह्म-समाज ने बंगाल के उदबुद्ध मध्य वर्ग को प्रभावित तो किया परन्तु एक धार्मिक मतवाद के रूप में यह उन लोगों तक जिनमें कुछ विशिष्ट व्यक्ति और कुटुम्ब भी शामिल थे सीमित रहा। किन्तु सामाजिक और धार्मिक सुधार में विशेष अभिरुचि रखने वाले ये कुटुम्ब भी वेदान्त के प्राचीन भारतीय दार्शनिक आदर्शों (अथवा स्थापनाओं) की ओर प्रवृत्त रहते थे।[1] इस प्रकार राजा राममोहन राय की दूरदर्शिता ने राष्ट्र एवं संस्कृति की रक्षा के एक महान उद्देश्य को पूर्ण किया। अपने पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर और ब्राह्म-समाज से ही कवीन्द्र रवीन्द्र ने जन मन में सर्वधर्म समन्वय विश्व-बंधुत्व ब्रह्मवाद तथा बुद्धिवाद के भाव भरने की प्रेरणा ग्रहण की। ब्राह्म समाज ने ही उन्हें बहुत कुछ अंशों में एक महान सांस्कृतिक जागरण का अग्रदूत बनाया जिसकी किरणें बंगाल के सीमान्तों का अतिक्रमण कर दूर दूर के प्रान्तों में पहुंची। छायावाद के युवक कवियों पर भी उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं काव्य प्रणाली का बहुत प्रभाव पड़ा। निराला छायावादी काव्य ब्राह्म-समाज के चेतनावादी भक्तिपरक एवं रहस्यवादी मूल्यों से प्रत्यक्षतः तो कम किन्तु अप्रत्यक्ष में कवीन्द्र के कारण विशेष प्रभावित हुआ।

प्रार्थना-समाज

केशवचन्द्र के प्रभाव से ब्राह्म-समाज का आन्दोलन धीरे धीरे बंगाल के बाहर पतन लगा था। किन्तु महाराष्ट्र को छोड़कर भारत के किसी और भाग में इसकी जड़ें न जम सकीं। सन १८६४ ई० में केशवचन्द्र के प्रयत्नों द्वारा बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। प्रार्थना समाज हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ही एक सुधारवादी आन्दोलन था। उसका मुख्य उद्देश्य एक ब्रह्म की उपासना और सामाजिक सुधार था। यदि ब्राह्म-समाज द्वारा बंगालियों के भावप्रवण चारित्र्य की प्रेरक मिली तो प्रार्थना समाज में महाराष्ट्रियों की

---

1 Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 290

व्यवहार कुशलता प्रतिबिम्बित हुई। प्रार्थना-समाज ने सहभोज अन्तर्जातीय विवाह विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। वह जन्मना एक मनुष्य को श्रेष्ठ और दूसरे को अधम मानने की प्रथा का विरोधी था। किन्तु ब्राह्म-समाज की भांति मूर्ति-पूजा और परम्परागत धार्मिक अनुष्ठानों के परित्याग का आग्रह उसमें नहीं था। प्रार्थना-समाज के सदस्य मराठी सन्तों—नामदेव तुकाराम और रामदास—के अनुयायी थे। उसकी पूर्ण सफलता का श्रेय जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे को है। प्रार्थना समाज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था। रानाडे के परम शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले ने लिखा है—रानाडे ने प्रायः तीस वर्ष तक भारतवर्ष के ऊँचे से ऊँचे विचारों तथा ऊँची से ऊँची आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व किया था।[1] स्वर्गीय सी० एफ० एंड्रूज के शब्दों में अनेक दृष्टियों से भारतवर्ष के नये सुधार आन्दोलन का आविर्भाव बम्बई अहाते में हुआ और उसका अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रानाडे के नाम के साथ रहा है।[2] रानाडे ने प्रार्थना समाज द्वारा दो मौलिक सिद्धान्तों को हृदयंगम करने का आदेश किया। प्रथम उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया कि सुधार का लक्ष्य मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। वे धर्म को सामाजिक सुधार से उसी प्रकार अविच्छिन्न मानते थे जिस प्रकार मानवीय प्रेम ईश्वरीय प्रेम से।[3] वे राजनीतिक अधिकारों के उचित प्रयोग के लिए सामाजिक व्यवस्था को न्याय और सत्य पर आधारित करने के पक्षपाती थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अपूर्ण सामाजिक व्यवस्था द्वारा सुदृढ़ आर्थिक व्यवस्था का निर्माण असम्भव है। धर्म के क्षेत्र में वे उच्चादर्शों के प्रेमी थे। उनका कहना था कि यदि हमारी धार्मिक भावनाएँ निम्नकोटि की होंगी तो हम सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में कदापि सफल नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार की अन्तर्निर्भरता को वे आकस्मिक न मानकर मानव मात्र

---

१ रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ ४५७।

2 The last and in many ways the most enduring aspect of the new reformation in India has had its rise in Bombay Presidency and is linked most closely with the name of Justice J Ranade

R C Majumdar—An Advanced History of India, p 881

3 R C Majumder—An Advanced History of India p 882

की स्वभावगत विशेषता बतलाते थे।[1]

दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सुधारक वर्ग को उतावली में अतीत से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर लेना चाहिए। उनकी समय की नस को पहचानने की अनुभूति उनके कथन इस वाक्य से लगाया जा सकता है कि सच्चे सुधारक का कार्य कोरे स्लेट पर लिखना न होकर अर्ध लिखित वाक्य को पूर्ण करना है।[2] इस प्रकार रानाडे ने अपने प्रार्थना-समाज द्वारा ब्रह्म की उपासना और प्राचीन धार्मिक मूल्यों तथा आदर्शों को आधुनिक युग के मूल्यों की भूमिका में अपनाने का महान सन्देश अपने देशवासियों को दिया। प्रार्थना समाज ने देश में आध्यात्मिक और पवित्र वातावरण उत्पन्न करने में यथेष्ट योग दिया।

ब्रह्मविद्या-समाज

एक रूसी महिला मदाम हेलना पेत्रोव्ना ब्लावात्सकी तिब्बत में बौद्ध मत की महायान शाखा में दीक्षित होकर अमरिका गई। वहाँ उन्होंने न्यूयार्क में सन् १८७५ ई० में आलकाट की सहायता से थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। महर्षि दयानन्द सरस्वती का आमन्त्रण पाकर वे १८७९ ई० में भारत आये और अड्यार (मद्रास) में रहने लगे। कुछ दिनों तक स्वामी दयानन्द के साथ उनका समागम रहा। किन्तु ऋषि दयानन्द प्राचीन आर्य संस्कृति और वेदों के बनाये हुए मार्ग पर चलने का निश्चय कर चुके थे। वे संसार के सभी धर्मों का खण्डन करके वैदिक धर्म की स्थापना करना चाहते थे। सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाना उनका ध्येय था। किन्तु श्रीमती ब्लावात्सकी और कर्नल आलकाट भिन्न भिन्न धर्मों में सत्य मानते हुए भी उनमें समन्वय द्वारा विश्व बन्धुत्व स्थापित करना चाहते थे। दोनों ध्येय दो ध्रुवों की भाँति दूरस्थ थे अतः दोनों पक्षों में मेल असम्भव था। निदान दोनों ने अपना कार्य क्रम पृथक्-पृथक् रखा। श्रीमती ब्लावात्स्की और कर्नल आलकाट ने सन् १८८९ में अड्यार (मद्रास) में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की और उसे (अड्यार को) ही केन्द्र बनाकर अपने धार्मिक विचारों का भारत में फैलाना प्रारम्भ किया। अपने व्याख्यानों में वे हिन्दूधर्म की भूरि भूरि

1 R. C. Majumdar—An Advanced History of India, p. 882

2 "The true reformer has not to write on a clean slate. His work is more often to complete the half written sentence." Ibid, p. 882

प्रशंसा करते थे। वे हिन्दुओं की उन त्रुटियों का भी उल्लेख करते थे जिनसे लाभ उठाकर अन्य धर्मों के प्रचारक हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते थे। उनका उद्देश्य परोक्ष नियमों का अनुसन्धान, विज्ञान की प्रगति के साथ बढ़ने वाली अति भौतिकता पर रोक, उच्च नैतिकतापूर्ण पवित्र जीवन-यापन और प्राच्य उच्च धर्मों के तत्वों का प्रचार एवं धार्मिक कट्टरता का शमन था। सन् १८८९ ई० में आयरिश महिला श्रीमती एनीबेसेण्ट का ब्रह्मविद्या समाज में प्रवेश हुआ। उनके सक्रिय सहयोग से ब्रह्मविद्या समाज को बड़ी स्फूर्ति मिली। उन्होंने बड़ी धूम धाम और लगन से उसके सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ किया। श्रीमती एनीबेसेण्ट का हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में दृढ़ विश्वास था अतः वे जहाँ कहीं जातीं—हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताती और हिन्दू धर्म पर ईसाई धर्म प्रचारकों के मिथ्यारोपों का खण्डन करतीं। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व द्वारा हिन्दू-संस्कृति की प्राचीन परम्परा और कर्म-काण्ड का बड़ा ही विशद और वैज्ञानिक समर्थन हुआ। भारतीय आदर्शों एवं प्रशस्तियों को पुनरुज्जीवित करने में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। उन्होंने ब्रह्मविद्या समाज के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू-स्कूल की स्थापना की जिसने बाद में (१९१६) हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया।

ब्रह्मविद्या-समाज में ब्राह्म-समाज की भाँति एक ब्रह्म की उपासना आवश्यक न थी, और न जाति पाँति या प्रतिमा-पूजन का खण्डन ही अनिवार्य था। धार्मिक वाद विवाद से उसका कोई सरोकार न था। उसका एकमात्र ध्येय था विश्वबन्धुत्व, सर्वधर्म समन्वय और गुप्त क्रियाओं का अनुसन्धान। ब्रह्मविद्या-समाज इस बात को मानता है कि सभी ईश्वर की सन्तान हैं, अतः सभी समान हैं और ईश्वर सब पर समान रूप से कृपालु है। ब्रह्मविद्या समाज का द्वार भी सभी सम्प्रदायों, वर्णों और वर्गों के लिए उन्मुक्त था अतः उसमें हर प्रकार के स्त्री और पुरुष सम्मिलित हुए।

जन्मान्तरवाद, कर्मवाद, अवतारवाद जो हिन्दुत्व की विशेषताएँ हैं आरम्भ में ब्रह्मविद्या-समाज में विद्यमान थी। गुरु की उपासना और योग साधना उसके रहस्यों में सन्निविष्ट थे। तप, जप, व्रत आदि का भी उसमें विधान था। इस प्रकार उसकी नींव हिन्दू-संस्कृति थी। श्रीमती एनीबेसेण्ट अपने को पूर्वजन्म की हिन्दू बताती थीं। उनकी उत्तर क्रिया हिन्दू धर्म के अनुसार की गई थी।

की स्वभावगत विशेषता बतलाते थे।[1]

दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सुधारक वर्ग को उन्नति में अतीत से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर देना चाहिए। उनकी समझ की नस को पहचानने का अनुमान उनके केवल इस वाक्य से लगाया जा सकता है कि सच्चे सुधारक का कार्य कोरे स्लेट पर लिखना न होकर अर्ध लिखित वाक्य को पूर्ण करना है।[2] इस प्रकार रानाडे ने अपने प्रार्थना-समाज द्वारा ब्रह्म की उपासना और प्राचीन धार्मिक मूल्यों तथा आदर्शों को आधुनिक युग के मूल्यों की भूमिका में अपनाने का महान सन्देश अपने देशवासियों को दिया। प्रार्थना-समाज ने देश में आध्यात्मिक और पवित्र वातावरण उत्पन्न करने में यथेष्ट योग दिया।

ब्रह्मविद्या-समाज

एक रूसी महिला मदाम हेलना पेत्रोव्ना ब्लावात्स्की तिब्बत में बौद्ध मत की महायान शाखा में दीक्षित होकर अमरिका गई। वहाँ उन्होंने न्यूयार्क में सन् १८७५ ई० में आलकाट की सहायता से थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना की। महर्षि दयानन्द सरस्वती का आमन्त्रण पाकर वे १८७० ई० में भारत आये और अड्यार (मद्रास) में रहने लगे। कुछ दिनों तक स्वामी दयानन्द के साथ उनका समागम रहा। किन्तु ऋषि दयानन्द प्राचीन आर्य संस्कृति और वेदों के बताये हुए मार्ग पर चलने का निश्चय कर चुके थे। वे भारत के सभी धर्मों का खण्डन करके वैदिक धर्म की स्थापना करना चाहते थे। सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाना उनका ध्येय था। किन्तु श्रीमती ब्लावात्स्की और कर्नल आलकाट भिन्न भिन्न धर्मों में भेद मानते हुए भी उनमें समन्वय द्वारा विश्व बन्धुत्व स्थापित करना चाहते थे। दोनों ध्रुव दो ध्रुवों की भाँति दूरस्थ थे अतः दोनों पक्षों में मेल असम्भव था। फिर तो दोनों ने अपना कार्य क्रम पृथक्-पृथक् रखा। श्रीमती ब्लावात्स्की और कर्नल आलकाट ने सन् १८८९ में अड्यार (मद्रास) में थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की और उस (अड्यार को) ही केन्द्र बनाकर अपने धार्मिक विचारों का भारत में फैलाना प्रारम्भ किया। अपने व्याख्यानों में वे हिन्दूधर्म की भूरि भूरि

1 R C Majumdar—An Advanced History of India p 882

2 The true reformer has not to write on a clean slate His work is more often to complete the half written sentence Ibid, p 882

प्रशसा करते थे। वे हिन्दुओं की उन त्रुटियों का भी उल्लेख करते थे जिनसे लाभ उठाकर अन्य धर्मों के प्रचारक हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते थे। उनका उद्देश्य परोक्ष नियमों का अनुसन्धान विज्ञान की प्रगति के साथ बढने वाली अति भौतिकता पर रोक उच्च नैतिकतापूर्ण पवित्र जीवन-यापन और प्राच्य उच्च धर्मों के तत्वों का प्रचार एव धार्मिक कटटरता का शमन था। सन १८८९ ई० म आयरिश महिला श्रीमती एनीबेसेन्ट का ब्रह्मविद्या-समाज म प्रवेश हुआ। उनके सक्रिय सहयोग स ब्रह्मविद्या समाज को बडी स्फूर्ति मिली। उन्होंने बडी धूम धाम और लगन से उसके सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ किया। श्रीमती एनीबेसेन्ट का हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान म दृढ विश्वास था अत व जहा कहीं जातीं—हिन्दू धर्म को सर्वश्रेष्ठ बतातीं और हिन्दू धर्म पर ईसाई धर्म प्रचारकों के मिथ्यारोपों का खण्डन करतीं। उनके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व द्वारा हिन्दू-संस्कृति का प्राचीन परम्परा और कर्म-काण्ड का बडा ही विशद और वैज्ञानिक समर्थन हुआ। भारतीय आदर्शों एव प्रशस्तियों का पुनरुज्जीवित करन म उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। उन्होंने ब्रह्म विद्या समाज के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस म सन्ट्रल हिन्दू-स्कूल की स्थापना की जिसन बाद म (१९१६) हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया।

ब्रह्मविद्या-समाज म ब्राह्म-समाज की भाँति एक ब्रह्म की उपासना आवश्यक न थी और न जाति पाँति या प्रतिमा-पूजन का खण्डन ही अनिवार्य था। धार्मिक वाद विवाद म उसका कोई सरोकार न था। उसका एकमात्र ध्येय था विश्वबन्धुत्व सर्वधर्म समन्वय और गुप्त क्रियाओं का अनुसन्धान। ब्रह्म विद्या समाज इस बात को मानता है कि सभी ईश्वर की सन्तान है अत सभी समान हैं और ईश्वर सब पर समान रूप से कृपालु है। ब्रह्मविद्या समाज का द्वार भी सभी सम्प्रदायों वर्णों और वर्गों के लिए उन्मुक्त था अत उसम हर प्रकार के स्त्री और पुरुष सम्मिलित हुए।

जन्मान्तरवाद कर्मवाद अवतारवाद जो हिन्दुत्व की विशेषताए हैं आरम्भ म ब्रह्मविद्या-समाज म विद्यमान था। गुरु की उपासना और योग साधना उसके रहस्यों म सन्निविष्ट थे। तप जप व्रत आदि का भी उसमे विधान था। इस प्रकार उसकी नींव हिन्दू-संस्कृति थी। श्रीमती एनीबेसेन्ट अपने को पूर्वजन्म की हिन्दू बताती थीं उनकी उत्तर क्रिया हिन्दू धर्म के अनुसार की गई थी।

ब्रह्मविद्या समाज की शाखाएं आज भी संसार के भिन्न भिन्न भागों में पाई जाती हैं। भारतवर्ष में इसका प्रधान केन्द्र अड्यार है। इसके सदस्यों में सबसे अधिक संख्या हिन्दुओं की ही है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से जिनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया था परन्तु अपने विचारों के कारण न तो ब्रह्म समाजी हो सकते थे क्योंकि पुनर्जन्म वर्णाश्रम विभाग आदि को ठीक मानते थे और न आर्य समाजी हो सकते थे क्योंकि और मतों का खण्डन उन्हें पसन्द न था ऐसे हिन्दुओं की एक भारी संख्या थी जिसने थियोसोफिकल सोसायटी को अपनाया और उसमें अपनी सत्ता बिना खोये हुए शामिल हो गये।[1]

ब्रह्मविद्या समाज की प्रारम्भिक सफलताओं के उपरान्त भी उसकी जड़ें भारत में न जमाई जा सकीं कारण प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान के जोश में उसने हिन्दू धर्म की पुरानी रूढ़ियों और विश्वासों जैसे रहस्यमय कर्मकाण्ड और तन्त्रवाद का भी समर्थन किया जो शिक्षित समुदाय की दृष्टि में प्रगति पथ में अत्यन्त बाधक थे अतः उनमें ब्रह्मविद्या समाज के प्रति आकर्षण घट गया। भारतीय समाज में ब्रह्मविद्या समाज का जो भी महत्व था उसके मूल में श्रीमती एनीबेसेन्ट का व्यक्तित्व था अतः उनकी मृत्यु के पश्चात उसका प्रचार शिथिल पड़ गया। फिर भी उन्नीसवीं शताब्दी के नवीन सांस्कृतिक जागरण में योग देने की दृष्टि से ब्रह्मविद्या समाज का महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीयता का विकास और भारतीय आध्यात्मिकता का नवोत्थान इस ब्रह्म विद्या-समाज के द्वारा निश्चय रूप से हुआ यद्यपि इस समाज का नाम और उत्पत्ति विदेशी है।[3] भारतीयों में आत्मसम्मान अतीत के प्रति स्वाभिमान और भविष्य में विश्वास उत्पन्न करने में ब्रह्मविद्या-समाज का विशेष हाथ रहा है।

---

१ रामदास गौड़—हिन्दुत्व पृष्ठ ७५१।

२ डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास पृ १३० १५१

3 In her autobiography (1893) she writes The Indian work is first of all the revival strengthening and uplifting of ancient religions This has brought with it a new self respect a pride in the past a belief in the future and as an inseparable result a great wave of patriotic life the beginning of the rebuilding of a nation
R C Majumdar—An Advanced History of India, p 886

आर्यसमाज

रोम्या रोलाँ के शब्दो मे यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस समय दयानन्द के मानस का विकास हो रहा था भारतवर्ष की महान आत्मा इतनी दुर्बल हो गई थी कि योरोपीय धार्मिक प्रवत्ति उसकी मन्द ज्योति को बुझाने ही वाली थी, यद्यपि उसका स्थानापन्न देने म वह असमर्थ थी।[1] उन्नीसवी शती के हिन्दू-जागरण के प्रत्येक पृष्ठ से यह विदित होता है कि योरोपियनो के भारत म आने के समय भारतीय धर्म और संस्कृति मे ह्रासोन्मुख प्रवत्तियाँ घर कर गई थी। अत यह अनिवार्य हो गया था कि इन प्रवत्तियो को हटा कर हिन्दुत्व का वास्तविक विमल और बुद्धिगम्य स्वरूप प्रकट किया जाय। वदिक युग के पश्चात सहस्रा वर्षों के दीर्घकाल म हिन्दुओ ने जो रूढ़ियाँ अर्जित की उनसे हिन्दू संस्कृति का वास्तविक स्वरूप तिरोहित होने लगा था। उधर शिक्षित वग पश्चिम की वज्ञानिक उन्नति के प्रभाव म उसका अन्धभक्त बनकर आत्मगौरव खो बठा था। उसम अपनी प्राचीन सांस्कृतिक मर्यादा तथा राष्ट्रीय अभिमान का लोप होता जा रहा था। राजा राममोहन राय ने अपनी सांस्कृतिक सुधार सम्बन्धी योजनाओ को प्राय बगाल तक ही सीमित रखा। उनके अनुयायी केशवचन्द्र सेन अपनी वाग्मिता के लिए सुप्रसिद्ध अवश्य थ परन्तु उनकी वाग्धारा प्राय अंग्रजी भाषा के समुद्र म ही बहती थी। वे उसी म अपना बड़प्पन मानते थे। सही अर्थ म वे भारतीय संस्कृति के पोषक न थे। अत उनका प्रभाव अंग्रजी शिक्षा प्राप्त समुदाय को छोड़कर सामान्य जन-वर्ग म नहीं के बराबर था। ऐसे अधकचरे उपायो से हिन्दू-संस्कृति की रक्षा नही हो सकती थी। भारत भाग्य विधाता को यह स्वीकार न था कि भारतीय संस्कृति अरब के समुद्र म अथवा भूमध्यसागर म एकदम डूब जाय। अस्तु

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥[3]

---

1 It is a historical fact that when Dayanand's mind was in process of being formed the highest religious spirit of India had been so weakened that the religious spirit of Europe threatened to extinguish its feeble flame without the satisfaction of substituting its own

Life of Ram Krishna by Rolland

२ रामदास गौड़—हिन्दुत्व पृ० ७४८।

३ श्रीमद्भगवद्गीता ४।७।

के अनुसार कर्मभूमि भारत में भगवान दयानन्द का आविर्भाव हुआ। सन
१८६९ ई० में हरिद्वार के कुम्भ में हिन्दू धर्म की हीनावस्था देखकर महर्षि
दयानन्द ने उसके महान पाखण्ड के विरुद्ध पाखण्ड खण्डिनी पताका गाडकर
अपने जीवन का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ किया। स्वामी जी ने हिन्दुओं को
व्यर्थ के भ्रमजाल और आडम्बरों से मुक्त कर अपने पुरातन धर्म में निष्ठावान
होना सिखाया।। रूढ़ियों और गतानुगतिकता में फंसे हुए भारतवासियों की
उन्होंने भर्त्सना की और उनके संस्कारों की मोटी मोटी पर्तों को तोड़कर सच्चे
वैदिक धर्म पर आरूढ होने का उपदेश दिया ताकि वे पुन विश्व संस्कृति के
अग्रदूत बन सकें। स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में केवल पौराणिक हिन्दू धर्म
तथा हिन्दू समाज के अन्धविश्वासों का ही खण्डन नहीं किया प्रत्युत इस्लाम
और ईसाई धर्म के अनेक सिद्धान्तों की खरी आलोचना भी प्रस्तुत की।
हिन्दुओं से कहीं अधिक कड़ी फटकार उन्होंने उन ईसाई मूसाई पादरियों और
मुसलमानों मुल्लाओं को सुनाई जो निधड़क हिन्दुत्व की अनर्गल निन्दा में
अनाप शनाप बका करते थे। इसी पक्ष को सामने रखकर पण्डित नेहरू ने
लिखा है—आर्य समाज इस्लाम और ईसाई धर्म के प्रभाव की प्रतिक्रियात्मक
शक्ति था। वह हिन्दू धर्म के भीतर एक धार्मिक युद्ध एवं सुधार विषयक
आन्दोलन तथा बाह्य आक्रमणों से बचाने के लिए एक रक्षात्मक मोर्चा था।[1]
ऋषि दयानन्द ने मसीहियों और मुसलमानों के ससमाचारों और मजहबी
किताबों में से वैसे ही दोष अथवा त्रुटियाँ निकाल दिये जिनके आधार पर वे
हिन्दुत्व की हीनता का बवाल खड़ा करते थे। इस पर्दाफाश से दो प्रत्यक्ष
लाभ हुए। एक तो यह कि अपनी निन्दा से घबराई हुई हिन्दू जाति को यह
जानकर कुछ ढाढ़स बंधा कि पौराणिकता के विषय में ईसाइयत और इस्लाम
भी हिन्दुत्व से अच्छे नहीं हैं। दूसरा यह कि हिन्दुओं का ध्यान अपने धर्म
के मूल रूप की ओर आकृष्ट हुआ और उनमें अपनी प्राचीन परम्परा के प्रति
अनुराग और स्वाभिमान जाग उठा।

स्वामी दयानन्द की आत्मा की यह पुकार थी कि सभी लोग वेद का
अध्ययन करें। उनका अडिग विश्वास था कि वेद अपौरुषेय है और संसार
की समस्त विद्याएं उनमें बीज रूप में निहित हैं। उनके इस प्रचार से भार
तीयों में आत्म विश्वास आया और राष्ट्रीयता की भावना पुष्ट हुई साथ ही
पाश्चात्य संस्कृति के बवण्डर से हिन्दू राष्ट्र आक्रान्त होने से बच गया। स्वामी

---

1 Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 289 90

जी के समीप आर्यों का वास्तविक धर्म वैदिक धर्म था। अत वे सुधार के कार्यों में ब्राह्म समाज, ब्रह्मविद्या-समाज आदि से सहमत होते हुए भी धार्मिक सिद्धान्तों में उनके विरोधी थे। उनका सिंहनाद था— 'वेद की शरण लो'। वेदों के अतिरिक्त किसी अन्य धर्म पुस्तक को वे ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे। वेदाध्ययन में किसी वर्ग का एकाधिकार उन्हें स्वीकार न था। वेद समस्त हिन्दू राष्ट्र की सामूहिक सम्पत्ति है अतएव उनके निकट प्रत्येक हिन्दू वेद के श्रवण और मनन तथा निदिध्यासन का अधिकारी था। यद्यपि वे गुजराती थे और उनकी शिक्षा दीक्षा संस्कृत में हुई थी तथापि कलकत्ते में केशवचन्द्र सेन के सुझाव से उन्होंने हिन्दी में जो सामान्य जनता के मध्य राष्ट्र भाषा या अन्तर्प्रान्तीय भाषा का काम कर रही थी अपना प्रचार काय आरम्भ किया। वेद को सब सुलभ बनाने के लिए उन्होंने परम्पराप्राप्त टीकाओं को ताक पर रखकर हिन्दी में वेदों की मौलिक एवं सारगर्भित व्याख्या की। यह बड़ा बढ़िया काम हुआ। संस्कृत की विशाल ज्ञान राशि की कुञ्जी जो अब तक परिमित द्विजों के हाथों में थी वह वेदों के हिन्दी में अनूदित हो जाने से सब साधारण को सुलभ हो गई। इससे हिन्दुओं को वैदिक समाज और संस्कृति का ज्ञान हुआ और आर्य साहित्य की उच्च एवं उदार भावनाओं का परिचय मिला। लोगों में यह विश्वास अटल हो गया कि वैदिक संस्कृति विश्व संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है जिससे उनके भीतर अतीत के प्रति असीम श्रद्धा और ममता के भाव जाग्रत हो उठे।[१]

वेदों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों तथा अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था अतएव स्वामी दयानन्द ने उन्हें अप्रामाणिक, अत त्याज्य घोषित किया। अस्पृश्यता के विचार को अवैदिक बताकर उन्होंने अनेकानेक अन्त्यजों को पवित्र यज्ञोपवीत देकर हिन्दू समाज के भीतर आदर का स्थान दिया।

राजा राममोहन राय और रानाडे ने ईसाइयत और इस्लाम के विरुद्ध रक्षात्मक मोर्चे पर लड़ाई लड़ी थी। स्वामी जी ने आक्रमण का श्री गणेश किया क्योंकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। स्वामी जी के समय में हिन्दुओं में एक विशाल जन-वर्ग ऐसा था जो अति शीघ्र यदि मुसलमान या ईसाई न हो जाता तो कम-से-कम अपनी संस्कृति से

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल, आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० ५०

हाथ धोकर भारत म रहते हुए भी अभारतीय हो जाता। स्वामी जी ने उन पथ भ्रष्ट होने से बचाया। परन्तु यह गौरव तो कबीर नानक दादू और राजा राममोहन राय को भी प्राप्त है। स्वामी जी एक बात म उनसे भी आगे बढ़ गये। उन्होंने करोडों धर्मच्युत अथवा जाति-बहिष्कृत हिन्दुओं को प्रत्येक अवस्था म अपने धर्म म पुन आ जाने का निमन्त्रण दिया। इस प्रकार उन्होंने हिन्दू धर्म और राष्ट्र को विनाश के गर्त म गिरने से बचा लिया और गिरे हुओं को उठाकर सीने से लगा लिया।

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु स्वामी दयानन्द ने १८७५ ई म बम्बई म आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने भारतीय संस्कृति के उन उत्कृष्ट निदर्शनों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जिनके स्मरण मात्र से वे गदगद हो उठे और सजीवनी शक्ति का अनुभव करने लगे। आर्य-समाज ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन सामाजिक एकता निम्नवर्ग के उत्थान और नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया। किन्तु उसकी अन्य मतों की कटु आलोचना की नीति अनेक उदार दृष्टिकोण रखने वाले हिन्दुओं को पसन्द नहीं आई। आर्य समाजियों द्वारा पुराणों का विरोध किये जाने तथा वेदों के अतिरिक्त हिन्दुओं के अन्य धर्मग्रन्थों को स्वीकार न किये जाने के कारण साम्प्रदायिक स्तर पर उसका प्रचार अधिकतर पंजाब जैसे प्रान्तों म हुआ जहाँ हिन्दू संस्कृति की ज्योति मन्द पड़ गई थी। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र म स्वामी दयानन्द और उनके आर्य-समाज द्वारा बड़ा ही ठोस कार्य हुआ। आगे चलकर जो कांग्रेस के लिए तपे तपाये कर्मठ सेनानी मिल सके वे आर्य-समाज के ही मंजे मंजाये कार्यकर्ता अथवा योद्धा थे। स्वामी जी ने धार्मिक अन्धविश्वास और जड़ता को हटाकर बड़े ही प्रबल एवं सशक्त धर्म का रूप प्रकट किया और अनेक युक्तियों और प्रमाणों से वैदिक धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दिखाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि रगारूढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए वैसा दूसरा कोई नहीं हुआ।

दार्शनिक स्तर पर आर्य-समाज ईश्वर जीव और प्रकृति को नित्य मानता है तथा त्रैतवाद का समर्थन करता है। आर्य-समाज के द्वारा आधुनिक हिन्दी-काव्य म पवित्रतावाद का प्रचार हुआ और शृङ्गारिकता तथा रसिकता का स्थान बुद्धिवाद और विवेक संयम और सदाचार ने ले लिया। प्राचीन वैदिक संस्कृति के प्रति भी साहित्यकारों का अनुराग जाग उठा जिसकी बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कृतियों म हुई।

रामकृष्ण मिशन

जिस समय महर्षि दयानन्द वैदिक धर्म की पताका उत्तरभारत में सर्वत्र फहरा रहे थे उसी समय बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस अपने अपूर्व व्यक्तित्व और अनन्य भक्ति से शिक्षित वर्ग को प्रभावित कर रहे थे। वे अत्यन्त सहृदय भावुक और पहुँचे हुए सन्त थे। आत्म साक्षात्कार के लिए उन्होंने ईसाई सन्तों और मुसलमान फकीरों तक का सत्संग किया था। अनेक वर्षों की साधना के उपरान्त कलकत्ता के निकट दक्षिणेश्वर में वे आश्रम बनाकर रहने लगे थे। उनके साधु जीवन में अपूर्व दैवी शक्ति थी। जो कोई उनके सम्पर्क में आता अत्यन्त प्रभावित होता। उनमें हिन्दू धर्म और दर्शन के सभी रूप समाहित थे। धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता से वे बिलकुल परे थे। जिस किसी ने उनको देखा उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ी और अनेकानेक जिन्होंने उन्हें कभी नहीं देखा था उनकी जीवन-कथा से प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी दुष्प्राप्य साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया कि संसार के सभी धर्म एक ही ईश्वर को प्राप्त करने के अलग अलग मार्ग हैं। उनके महाप्रयाण के पश्चात उनके महामहिम शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने उनके उपदेशों का देश विदेश में प्रबल प्रचार किया।

स्वामी विवेकानन्द अपने प्रारम्भिक जीवन में घोर प्रतिक्रियावादी के रूप में प्रकट हुए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आने के पूर्व वे नास्तिकों की भाँति शास्त्रार्थ करते थे। किन्तु उनमें सत्यान्वेषण की ज्वाला प्रज्वलित थी अतः रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव से नास्तिकता का बाना फेंक कर घोर आस्तिकवादी हो गए। उनके शक्तिशाली व्यक्तित्व तप पूत चारित्र्य और ओजस्विनी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक उदीयमान युवकों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। १८९३ ई० में उन्होंने शिकागो के सर्वधर्म-सम्मेलन में भाग लिया और वहाँ पर उपस्थित समस्त श्रोताओं और प्रतिनिधियों को अपनी गम्भीरता तेजस्विता और वक्तृता से मन्त्र-मुग्ध कर दिया। उनकी अप्रतिम प्रखर प्रतिभा से चमत्कृत होकर हावर्ड विश्वविद्यालय के सुविख्यात प्रो० मि० जे० एच० राइट ने कहा था कि आपसे परिचय पत्र के लिए पूछना मानो सूर्य से यह पूछना है कि तुम्हारा चमकने का क्या अधिकार है।[1] उन्होंने यह भी कहा है कि मेरा विश्वास है कि यह अज्ञात हिन्दू सन्यासी हमारे सभी

१ स्वामी विवेकानन्द–विविध प्रसंग दो शब्द पृ० १

विद्वानों को एकत्र करने पर जो मद्द हो सकता है उसमें भी अधिक विद्वान है।[1] स्वामी विवेकानन्द की विद्वत्ता उनके विचारों की गहनता विवेकशीलता एवं निर्भीकता के कारण अमरिका में उनका चारों ओर महान स्वागत और सम्मान हुआ। वहाँ वे एक तूफानी हिन्दू (Cyclonic Hindu) के नाम से विख्यात थे। पंडित नेहरू ने लिखा है कि इस हिन्दू संन्यासी को एक बार देख लेने पर उसे और उसके सन्देशों को भूल जाना कठिन था।[2] योगी अरविन्द का कथन है कि पश्चिमी जगत में विवेकानन्द को जो सफलता मिली वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचने के लिए नहीं जगा है वरन् विश्व विजय करके दम लेगा।[3] स्वामी विवेकानन्द ने शताब्दियों से निश्चेष्टता और पराधीनता के पंक में पड़ी हुई हिन्दू जनता को कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग का अमर सन्देश दिया। अपने देशवासियों को सचेत करते हुए तथा भारतीय स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले विदेशियों को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा— दीर्घ रजनी अब समाप्त हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्रायः अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जाग्रत हो रहा है। जो अन्धे हैं वे देख नहीं सकते और जो पागल हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसकी उन्नति को रोक नहीं सकता। यह अब और नहीं सोयेगी। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती।[4]

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की कुरीतियों और कुप्रथाओं का जोरदार खण्डन किया। अन्धविश्वास को आध्यात्मिक जीवन की सबसे बड़ी बाधा बताई और धार्मिक सिद्धान्तों को तार्किकता की कसौटी पर कसने का आग्रह किया।[5] हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बरों की उन्होंने खुलकर आलोचना की। हिन्दुओं की छुई-मुई प्रवृत्ति और सामाजिक व्यवस्था की तथाकथित पवित्रता

---

१ स्वामी विवेकानन्द—विविध प्रसंग दो शब्द पृष्ठ १

२ Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 291

३ रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४९७।

४ स्वामी विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १।

5 'I would rather see everyone of you rank atheists than superstitious fools for the atheist is alive and you can make something of him But if superstition enter the brain is gone degradation has seized upon the life
Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India p 293

पर व्यग कसते हुए उन्होंने कहा—'हमारा धम चूल्हे चौके म है। भोजन बनाने का बतन हमारा ईश्वर है और हमारा धम है मुझ स्पश न करो मैं पवित्र हू।'[1] पण्डित नेहरू के शब्दो म— निरुत्साहित तथा अशक्त हिन्दू मस्तिष्क के लिए उन्होने टानिक का काम किया और उसम आत्म विश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की।

स्वामी विवेकानन्द को अपनी मातभूमि भारत पर विशेष गव था। उनका कहना था कि हमारी मातभूमि दशन धम नीति विज्ञान मधुरता कोमलता अथवा मानव जाति के प्रति अकपट प्रम रूपी सदगुणो की प्रसविनी है। य सब बातें अभी भी भारत म विद्यमान है। मुझे इस सम्बन्ध म जो जानकारी है उसके बल पर दम्भतापूवक कह सकता हू कि भारत इन सब बातो म पृथ्वी के अन्य प्रदेशो की अपेक्षा श्रेष्ठ है।[3]

स्वामी विवेकानन्द भारतभूमि का मरुदण्ड मूलभित्ति अथवा जीवन केन्द्र एकमात्र धम ही को मानते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि भारत की अध्यात्मविद्या और धम की बाढ समस्त जगत को डुबाकर राजनीतिक महत्वाकांक्षा एव प्रतिदिन नय रूप स समाज सगठित करने की चेष्टा म प्राय अधमत तथा हीन दशापन्न पाश्चात्य एव दूसरी जातियो में नव जीवन का सचार करेगी।[4] उनका मानना था कि प्रत्यक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है भारत में वह धम है।[5] उनकी समझ में प्रकृति के मुह का घूघट हटाकर कम से कम एक बार उस देशकालातीत सत्ता के दशन का यत्न करना ही हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण था।[6] उनके अनुसार हिन्दू जाति के जीवन का प्रधान उद्देश्य धम और वराग्य है जिसका एकमात्र मूलमन्त्र यह है कि जगत क्षण स्थायी भ्रममात्र और मिथ्या है और धम के अतिरिक्त ज्ञान विज्ञान भोग एश्वय नाम यश धन-दौलत जो कुछ भी है सभी का धम के अधीन रखना होगा। एक सच्चे हिन्दू के चरित्र का रहस्य यह है कि वह अपनी पाश्चात्य विद्या धन मान पद मर्यादा सभी को धम के सहायक

1 Pt Jawaharlal Nehru 'The Discovery of India p 292
2 Ibid p 291
३ विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० ५।
४ ,, ७।
५ , ३३ ३०।
, ८।

विद्वानों को एकत्र करने पर जो युद्ध हो सकता है उसमें भी अधिक विजय है।[1] स्वामी विवेकानन्द की विद्वत्ता उनके विचारों की गहनता विवेकशीलता एवं निर्भीकता के कारण अमरिका में उनका चारों ओर महान स्वागत और सम्मान हुआ। वहाँ वे एक तूफानी हिन्दू (Cyclonic Hindu) के नाम से विख्यात थे। पंडित नेहरू ने लिखा है कि इस हिन्दू संन्यासी को एक बार देख लेने पर उसकी ओर उसके सन्देशों को भूल जाना कठिन था।[2] योगी अरविन्द का कथन है कि पश्चिमी जगत में विवेकानन्द का जो राजनीतिक मिली वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचने के लिए नहीं जगा है वरन विश्व विजय करके दम लेगा।[3] स्वामी विवेकानन्द ने शताब्दियों से निश्चेष्टता और पराधीनता के पंक में पड़ी हुई हिन्दू जनता को कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग का अमर सन्देश दिया। अपने देशवासियों को सचेत करते हुए तथा भारतीय स्वतन्त्रता का अपहरण करने वाले विदेशियों को चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा– दीर्घ रजनी अब समाप्त हुई जान पड़ती है। महान् स्वप्न का प्राय अन्त ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निद्रित शव मानो जाग्रत हो रहा है। जो अन्ध हैं वे देख नहीं सकते और जो पागल हैं वे समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसकी उन्नति को रोक नहीं सकता। यह अब और नहीं सोयगी। कोई बाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती।[4]

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की कुरीतियों और कुप्रथाओं का जोरदार खण्डन किया अन्धविश्वास को आध्यात्मिक जीवन की सबसे बड़ी बाधा बताई और धार्मिक सिद्धान्तों को तार्किकता की कसौटी पर कसने का आग्रह किया।[5] हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बरों की उन्होंने खुलकर आलोचना की। हिन्दुओं की छुईमुई प्रवृत्ति और सामाजिक व्यवस्था की निर्मम परिभाषा

१ स्वामी विवेकानन्द—विविध प्रसंग दो भाग पृष्ठ १

२ Jawaharlal Nehru – The Discovery of India p 291

३ रामधारी सिंह दिनकर –संस्कृति के चार अध्याय पृ० ४९७।

४ स्वामी विवेकानन्द–स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १।

5 I would rather see everyone of you rank atheists than superstitious fools for the atheist is alive and you can make something of him But if superstition enter the brain is gone degradation has seized upon the life Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India p 293

पर व्यग कसते हुए उन्होने कहा—'हमारा धर्म चूल्हे चौके में है। भोजन बनाने का बर्तन हमारा ईश्वर है और हमारा धर्म है मुझे स्पर्श न करो, मैं पवित्र हूं।'[1] पण्डित नेहरू के शब्दों में—निरुत्साहित तथा अशक्त हिन्दू मस्तिष्क के लिए उन्होने टानिक का काम किया और उसमें आत्म विश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की।[2]

स्वामी विवेकानन्द को अपनी मातृभूमि भारत पर विशेष गर्व था। उनका कहना था कि हमारी मातृभूमि दर्शन धर्म नीति विज्ञान मधुरता, कोमलता अथवा मानव जाति के प्रति अकपट प्रेम रूपी सद्गुणो की प्रसविनी है। ये सब बातें अभी भी भारत में विद्यमान है। मुझे इस सम्बन्ध में जो जानकारी है उसके बल पर दृढ़तापूर्वक कह सकता हूं कि भारत इन सब बातों में पृथ्वी के अन्य प्रदेशो की अपेक्षा श्रेष्ठ है।[3]

स्वामी विवेकानन्द भारतभूमि का मेरुदण्ड मूलभित्ति अथवा जीवन केन्द्र एकमात्र धर्म ही को मानते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि भारत की अध्यात्मविद्या और धर्म की बाढ़ समस्त जगत को डुबोकर राजनीतिक महत्वाकांक्षा एव प्रतिदिन नये रूप से समाज सगठित करने की चेष्टा में प्राय अधमृत तथा हीन दशापन्न पाश्चात्य एव दूसरी जातियो में नव जीवन का सचार करेगी।[4] उनका ज्ञापन था कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है भारत में वह धर्म है।[5] उनकी समझ में प्रकृति के मुह का घूघट हटाकर कम से-कम एक बार उस देशकालातीत सत्ता के दर्शन का यत्न करना ही हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण था।[6] उनके अनुसार हिन्दू-जाति के जीवन का प्रधान उद्देश्य धर्म और वैराग्य है जिसका एकमात्र मूलमन्त्र यह है कि जगत क्षण-स्थायी भ्रममात्र और मिथ्या है और धर्म के अतिरिक्त ज्ञान विज्ञान भोग ऐश्वर्य नाम यश धन दौलत जो कुछ भी है सभी को धर्म के अधीन रखना होगा। एक सच्चे हिन्दू के चरित्र का रहस्य यह है कि वह अपनी पाश्चात्य विद्या धन मान पद मर्यादा सभी को धर्म के सहायक

---

1 Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India , p 292
2 Ibid p 291
३ विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० ५।
४ „ „ „ ७।
५ „ „ „ ३३ ३९।
„ „ ८।

रूप म देखें।[1] उन्होंने भारतीयों को यह बताया कि भारत विश्व का धर्मगुरु है। यथार्थ ईश्वर ज्ञान केवल भारत म ही हुआ था।[2] अन्याय जातियों के एक-एक जातीय ईश्वर या देवता थे जैसे यहूदियों के ईश्वर अरबवासों के ईश्वर आदि और ये ईश्वर दूसरी जातियों के ईश्वर के साथ लड़ाई झगड़ा किया करते थे। किन्तु यह तत्व कि ईश्वर परम दयालु है वह अपने माता पिता मित्र प्राणों के प्राण और आत्मा की अन्तरात्मा है केवल भारत ही जानता था।[3] वे शैवों के शिव वैष्णवों के विष्णु यहूदियों के जिहोवा, मुसलमानों के अल्लाह और वेदान्तियों के ब्रह्म को एक ही प्रभु के भिन्न भिन्न नाम बताते थे।[4] दूसरे शब्दों में वे सब धर्मों की मौलिक एकता के प्रति विश्वासी थे।

स्वामी विवेकानन्द के सामने एक ओर प्राचीन हिन्दू-समाज और दूसरी ओर अर्वाचीन यूरोपीय सभ्यता थी। इन दोनों म से उन्होंने प्राचीन हिन्दू-समाज को ही चुना इसलिए कि अज्ञ और कुसंस्कार से घिरे होने पर भी परम्परा प्रेमी हिन्दुओं के हृदय में एक विश्वास था जिसके बल पर वे अपने पैरों पर खड़े हो सकते थे। किन्तु विलायती रंग में रँगे सर्वथा मेरुदण्डविहीन बाबू लोग अपरिपक्व भावशून्य विभिन्न चमल भावों से भरे होते थे। अतः उन्होंने बड़े दुःख से कहा है कि आजकल हम पाश्चात्य शिक्षा म शिक्षित जितने लोगों को देखते हैं उनमें से एक का भी जीवन आशाप्रद नहीं है। अपने पैरों पर वे खड़े नहीं हो सकते--उनका सिर हमेशा चक्कर काटा करता है। अंग्रेजों से थोड़ा शाबाशी पा जाना ही उनके सब कार्यों का मूल कारण है। वे लोग जो समाज संस्कार करने के लिए अग्रसर होते हैं हमारी सामाजिक प्रथाओं पर तीव्र आघात करते हैं उसका कारण केवल यह है कि हमारे ये सब आचार साहबों की प्रथा के विरुद्ध है। हमारी कितनी ही प्रथाएं केवल इसलिए दोषपूर्ण हैं कि साहब लोग उन्हें दोषपूर्ण कहते हैं।[5] हिन्दुओं के बीच उक्त साहबीपन का आचरण उन्हें अत्यन्त आपत्तिजनक लगा। अतः उन्होंने हिन्दुओं को यह सामयिक सूझ दी कि जो कुछ तुम्हारा अपना है उसी लेकर अपने बल पर खड़े रहो। यदि जगत म कोई पाप है तो

१ विवेकानन्द--स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १३ १४
२ ३ ,, १६
४ १६ १७
५ ,, ११

वह दुर्बलता है। दुर्बलता मृत्यु है दुर्बलता ही पाप है इसलिए सब प्रकार से दुर्बलता का त्याग करो।[1] वे सर्वसाधारण की शिक्षा के पक्षपाती थे क्योंकि शिक्षा से आत्मविश्वास आता है और आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग उठता है।[2] जिससे इच्छा शक्ति का प्रवाह एवं उसकी अभिव्यक्ति संयत होकर दोनों सार्थक हो जायँ[3] वही सच्ची शिक्षा है ऐसी उनकी धारणा थी।

स्वामी विवेकानन्द देश के अतीत के प्रति श्रद्धावान थे किन्तु भारतीय जीवन की समस्याओं का हल ढूँढने के लिए वे नवीन दिशाओं और प्रवृत्तियों के प्रति भी जागरूक थे। अन्तर्राष्ट्रीय आदान प्रदान में उनका विश्वास था। उन्होंने लिखा है— लेन देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहता तो यह परमावश्यक है कि वह अपने खजाने को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दे और इसके बदले में वे जो कुछ दें उसे ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहे। विस्तार ही जीवन है और संकीर्णता मृत्यु। प्रेम ही जीवन है और घृणा मृत्यु। हमारा नाश उसी दिन से आरम्भ हो गया जबसे हम अन्यान्य जातियों से घृणा करने लगे और जब तक हम पुनः इस जीवन-स्वरूप विस्तार को नहीं अपनाते हम किसी भी तरह अपनी इस मृत्यु को रोक नहीं सकते।[4] उनकी यह इच्छा थी कि भारतीय आध्यात्मिक भूमिका के साथ पाश्चात्य भौतिक उन्नति को अपनाया जाय। अतः अपने देशवासियों से उन्होंने कहा भारत के धर्म को साथ लेते हुए एक यूरोपीय समाज का निर्माण करो।[5] स्वामी जी की व्यावहारिकता यह थी कि भौतिकवाद में आकण्ठमग्न यूरोप और अमरिका को उन्होंने अध्यात्म का संदेश दिया और भौतिकता की उपेक्षा करने वाले भारतवासियों का ध्यान भारतीय समाज की दुरवस्था की ओर आकृष्ट किया एवं धर्म को उनके समक्ष इस रूप में प्रस्तुत किया कि वह मनुष्य की आधिभौतिक उन्नति में बाधा न डाल सके।

१—विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १२
२—वही पृ० ६३
३—वही पृ० ८०
४—वही पृ० ...

स्वामी विवेकानन्द सन्यासी थे, अतः जीवन में अनुभव को सिद्धान्तों से अधिक महत्व देते थे। उनका कहना था कि सन्यासी का कोई मत या सम्प्रदाय नहीं हो सकता क्योंकि उसका जीवन स्वतन्त्र विचार का होता है और वह सभी मत मतान्तरों से उनकी अच्छाइयाँ ग्रहण करता है। उसका जीवन अनुभव का होता है न कि केवल सिद्धान्तों अथवा रूढ़ियों का।[1] सन्यासी होने के नाते वे निवृत्तिमार्गी भी थे। इसलिए उन्होंने कहा कि मन इन्द्रियों की ओर मानो चक्रवत अग्रसर हो रहा है, उसे फिर उलटकर पीछे लौटना होगा। प्रवृत्ति मार्ग का त्याग कर उसे निवृत्ति मार्ग का आश्रय ग्रहण करना होगा यही हिन्दुओं का आदर्श है।[2] किन्तु वे प्रवृत्ति मार्ग अथवा सकाम कर्म के विरोधी नहीं थे। उनके शब्दों में सकाम कर्म ही निष्काम कर्म की ओर ले जाता है। यदि पहले कामना ही न रहे तो उसका त्याग सम्भव कैसे होगा और उस त्याग का अर्थ भी क्या होगा? यदि अन्धकार हो न हो तो प्रकाश का अर्थ ही क्या[4]? इस प्रकार वे प्रवृत्ति को जीवन का प्रथम और निवृत्ति को उसका अन्तिम सोपान मानते थे। वे उपदेश करते थे कि कामना और आसक्तियुक्त भक्ति पहली सीढ़ी है। अल्प की पूजा से आरम्भ कीजिए भूमा या महान स्वयं ही आ जायेगा।[5]

स्वामी विवेकानन्द संसार को दुःख का आगार मानते थे। किन्तु उनका दुःखवाद निराशामूलक न था। दुःख को वे आत्म शुद्धि एवं आत्म विकास का साधन मानते थे। अतः उन्होंने समझाया कि यह संसार दुःख का आगार तो है पर यही महापुरुषों के लिए शिक्षालय-स्वरूप है। इस दुःख में ही सहानुभूति, सहिष्णुता और सबसे ऊपर उस अदम्य दृढ़ इच्छा शक्ति का विकास होता है जिसके बल से मनुष्य सारे जगत के चूर चूर हो जाने पर भी रत्ती भर भी नहीं हिलता।

एक वेदान्ती होने के नाते वे सभी विषयों का निर्णय आध्यात्मिक दृष्टि से करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि वेदान्त ही प्रबुद्ध भावी मानव जाति

१—विवेकानन्द—विविध प्रसंग पृ० ४३
२—विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १०
३—वही पृ० ८२
४—वही पृ० ८३
५—वही पृ० ११६

का धम हो सकता है। धम धम के बीच जो क्षुद्र मतभेद है उसका वे शान्ति और अथहीन बताते थे। अद्वत दशन को ही वे नीति शास्त्र का जन्मदाता मानते थे। क्योंकि अद्वत कहता है कि अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं की समष्टि ही का नाम ईश्वर है। जिसे हम व्यष्टि कहते हैं वह समष्टि ही की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रकट रूप म हम भले ही अलग अलग प्रतीत होते हों पर यथाथ म हैं एक ही। हम जितना ही अपने को इस समष्टि से अलग समझते हैं उतना ही अधिक दु खी होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अद्वत ही नीति शास्त्र का आधार है।[1] व्यापक और सारग्राहिणी दृष्टि रखने के कारण ही वे हबट स्पेंसर के प्रमी थे शेली के सर्वात्मवाद के कायल थ और हीगल के वस्तुनिष्ठ प्रत्ययवाद पर अनुरक्त थे।

दाशनिक स्तर पर उन्होंने यह प्रचार किया कि आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है अन्य सब स्तरों का जीवन मत्यु स्वरूप है।[2] जड पदाथ मन और आत्मा म सचमुच कोई अन्तर नहीं। व उस एक की अनुभूति के विभिन्न पहलू है।[3] विश्व म पाये जाने वाले समस्त चतन्यो की समष्टि ही वह अव्यक्त विश्व चतन्य है जो उन विभिन्न रूपों म प्रकाशित हो रहा है और जिसे शास्त्रों ने ईश्वर की सज्ञा दी है।[4]

अपने गुरु के नाम पर स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा दाशनिक और धार्मिक भित्ति पर प्राणिमात्र की सवा का सूत्रपात किया। रामकृष्ण मिशन का मुख्य उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार है वह प्राचीन भारतीय सस्कृति स प्रेरणा ग्रहण करता है वदान्त क सिद्धान्तो को आन्तरिक स्वरूप स्वीकार करता है और मनुष्य म निहित ईश्वरत्व को जगाना चाहता है। किन्तु वह वन्नियर्मेतर हिन्दुत्व के विकास की अव हेलना नहीं करता। यथा—प्रतिमापूजन को भी वह मान्यता देता है।

इस प्रकार हम देखत हैं कि स्वामी विवेकानन्द की दाशनिक खोजों और उपदेशों द्वारा भारतीय जनता को सवप्रथम यह ज्ञात हुआ कि अद्वत वेदान्त अत्यन्त व्यावहारिक और प्राणप्रद है। उनकी भारतीय धम-साधना क सबल समथन से पाश्चात्य वज्ञानिक उन्नति की चकाचौंध म सम्भ्रान्त हिंदू

१—विवेकानन्द—विविध प्रसग पृ० ।

२—वही पृ० ५५

३,४—वही पृ० ६५ तथा ३०

जाति को यह विश्वास होगया कि व्यावहारिक वेदान्त और रहस्यवाद की तुलना मे निरा भौतिकवाद अति तुच्छ तथा एकागी है। हिन्दुओ के मन म यह बात अच्छी तरह बठ गई कि भारत का अतीत सद्गुन सम्पन्न सस्कृत एव समस्त विभूतियो का छविधाम है। विवेकानन्द के विदेश भ्रमण स पाश्चात्य जगत म भारत की ख्याति के साथ-साथ उसकी प्राचीन सस्कृति की श्रेष्ठता भी प्रतिष्ठित हुई तथा भारत को एक राष्ट्र मान लिये जाने की माग को मान्यता मिली।[1] विदेशो म भारतीय सस्कृति और सभ्यता के इस सम्मान से भारतीय रहन-सहन का उपहास करने वाला मेरुदण्ड विहीन शिक्षित वग सदा के लिए पराजित हो गया। विवेकानन्द के धर्मोपदेशो से भारतीयो को यह भलीभाँति ज्ञात हो गया कि भारतीय चिन्तन प्रणाली सस्कृति और सभ्यता बडी ही भावपूण शाश्वत एव सावभौम है। एतदथ विश्व कल्याण अथवा लोक-मगल के लिए उस अपनाना अनिवाय है। स्वामी जी द्वारा भारतीयो को अपने आधिभौतिक विनाश आध्यात्मिक ह्रास नियति विमुखता अनुभव हीनता तथा राजनीतिक पराभव के कारणो का ठीक ठीक पता लगा जिसे दूर करने के लिए भारतीय राजनीतिक जीवन म उदार सास्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। तत्कालीन भारतीय साहित्य म जो अध्यात्म चिंतन रहस्य भावना सूक्ष्म राष्ट्रीयता एव कमठ गाहस्थ्य जीवन की लहर दौड पडी उसे बहुत कुछ विवेकानन्द को विचार एव भावधारा का ही प्रतिफल समझना चाहिए।

प्रवत्तिमाग—बाल गगाधर तिलक

वदिक काल म प्रवत्ति माग का प्राधान्य था। किन्तु उपनिषदो के युग मे ज्ञानी पुरुषो का झुकाव सयास माग की ओर अधिक होने लगा और वह प्रवत्ति माग से श्रेष्ठतर माना जाने लगा। परन्तु प्रवत्ति माग सवथा निषिद्ध नही घोषित किया गया यह बात तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा माग्ध कस्यस्विद्धनम स्वत सिद्ध है।

---

1 He was the quote the word of Sir E Valentire Chirol 'the first Hindu whose personality won demonstrative recognition a broad for India s ancient civilisation and for her new born claim to nationhood

A C Majumdar—An Advanced History of India P 886

२—ईशावास्योपनिषद् १

आगे चलकर बौद्ध धर्माचार्यों ने वैदिक धर्म के आत्मवाद का खण्डन करके उसके केवल मन को निर्विषय करने वाले निवृत्ति मार्ग का अनुसरण किया। बौद्ध और जैन धर्मों ने संन्यास का इतना गुणगान किया कि एक दीर्घकाल तक के लिए हिन्दू-समाज निवृत्ति की भावना से ग्रसित हो गया जिससे हिन्दुओं के बीच प्रवृत्ति मार्ग का पक्ष दुर्बल पड़ गया। भक्ति काल में परवशता से अभिभूत भारतीय समाज ने प्रवृत्ति मार्ग अथवा कर्मयोग की महत्ता का कुछ अनुभव किया। यहाँ तक कि कबीर, नानक और वल्लभाचार्य आदि संत और भक्त कवियों ने गृहस्थी जोड़कर संसार को महत्व दिया जिससे यतिधर्म का प्रभाव कुछ घटा। किन्तु उक्त सन्तों अथवा भक्तों के सदुपदेश प्रकारांतर से निवृत्ति को ही बढ़ावा देने वाले थे। सहस्रों वर्षों से क्षणभंगुरवाद अथवा क्षणिकवाद के निरन्तर प्रचार से भारतीयों में ऐहिकता का अभाव बढ़ता ही गया और लोग दार्शनिक स्तर पर संसार को अनित्य कहते कहते सचमुच ही व्यावहारिक जीवन में भी सर्वत्र असत् का अनुभव करने और कर्म का त्याग कर सुख दुःख को समभाव से अपनाने का प्रयत्न करने लगे जिससे आधिभौतिक जीवन में उनकी रुचि घटने लगी। वे कर्म को दुःख का हेतु, गार्हस्थ्य को मोक्ष मार्ग में बाधक और संन्यास को सर्वसिद्धि का साधन समझने लगे। जैन और बौद्ध विचारधारा के प्रभाव से प्रस्थानत्रयी की टीका टिप्पणी यतिमार्ग की पुष्टि के लिए होने लगी। इस प्रकार हिन्दू समाज का वातावरण संन्यास की भावना से आच्छन्न हो उठा और भारत के कर्मनिष्ठ गृहस्थ भी कम-से कम विचारों में तो संन्यासी हो ही गए।

उन्नीसवीं शताब्दी के नवोत्थान के प्रकाश में जब भारतीयों की आँखें खुली तब उन्हें प्रवृत्ति मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अतः प्रवृत्ति-मार्ग वैदिक वाङ्मय का आधार लेकर ब्राह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज, राम कृष्ण मिशन आदि के रूप में समाज में प्रकट हो गया। इस दिशा में दार्शनिक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण कार्य लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के द्वारा हुआ। राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक जो भारतीय दर्शन में मन्थन हुआ था उसी के परिणाम स्वरूप लोकमान्य तिलक द्वारा प्रणीत 'कर्मयोगशास्त्र' नामक अमूल्य रत्न हिन्दू समाज को उपलब्ध हुआ। इसी से दार्शनिक स्तर पर कर्मयोगशास्त्र में प्रवृत्ति मार्ग का अभूतपूर्व प्रतिपादन हमें देखने को मिलता है।

स्वामी विवेकानन्द एक कर्मठ संन्यासी और विश्वमानवतावाद के प्रेमी थे। परन्तु बाल गंगाधर तिलक प्रधानतः समाजशास्त्री और राजनीति के पण्डित थे अतः अपने गीता रहस्य द्वारा उन्होंने हिन्दुओं में वह प्रेरणा भर दी जिससे दार्शनिक सूक्ष्मताएं कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में गतिरोध उपस्थित न कर सकें। यग युगान्तर से चली आती हुई निर्जीव परम्पराओं के विरुद्ध लोकमान्य तिलक ने अपने गीतारहस्य में अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति पर यह घोषित किया कि प्रवृत्ति धर्म ही का ज्ञान गीता का प्रधान विषय है अतएव गीताधर्म का रहस्य भी प्रवृत्ति विषयक अर्थात् कर्मविषयक ही होना चाहिए।[1] संसार को छुड़ा देने की तैयारी के लिए गीता नहीं कही गई है। गीताशास्त्र की प्रवृत्ति तो इसलिए हुई है कि वह इसकी विधि बतावे कि मोक्ष दृष्टि से संसार के कर्म किस प्रकार किये जावें और तात्विक दृष्टि से इस बात का उपदेश करें कि संसार में मनुष्य मात्र का सच्चा कर्तव्य क्या है।[2] गीता में अर्जुन को जो उपदेश किया गया है वह विशेष करके मनु इक्ष्वाकु इत्यादि परम्परा से चले हुए प्रवृत्ति विषयक भागवत धर्म ही का है और उसमें निवृत्ति विषयक यतिधर्म का जो निरूपण पाया जाता है वह केवल आनुषंगिक है।[3]

इस प्रकार लोकमान्य ने सम्पूर्ण भारतीय दर्शन का मन्थन करके गीता रहस्य की रचना इस उद्देश्य से की कि चढ़ती हुई उम्र में ही प्रत्येक मनुष्य गृहस्थाश्रम के अथवा संसार के उस प्राचीन शास्त्र को जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी समझे बिना न रहे।[4]

बाल गंगाधर तिलक के विशाल व्यक्तित्व एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य के कारण तत्कालीन समाज के ऊपर गीता रहस्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और लोकमान्य की कामना पूरी हुई। देश के सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक राजनीतिक सभी क्षेत्रों में कर्मवाद की महिमा गाई जाने लगी जिससे लोगों में सांसारिक वैभव के उपभोग की प्रवृत्ति और स्वतन्त्रता की भावना जागृत हो उठी और कर्मवाद अथवा गार्हस्थ्य जीवन पारलौकिक जीवन का पूरक माना जाने लगा। इस प्रकार जीवन के सभी पार्श्वों में चहल पहल दिखाई देने लगी।

१—तिलक—गीता रहस्य विषय प्रवेश पृ० २७
२—वही प्रस्तावना प० २४
३—वही विषय प्रवेश पृ १०
४—वही प्रस्तावना पृ० २४

किन्तु भौतिक और राजनीतिक परिस्थितियां हर प्रकार से लोगों के अनुकूल न थीं। अत अनेक देशी विदेशी विरोधी शक्तियां उनके विकास के प्रयत्नों को विफल करने में जुट गईं जिससे लोकमान्य तिलक द्वारा प्रतिपादित प्रवृत्ति मार्ग से प्रभावित हिन्दू समाज में जहां एक ओर आशावाद का संचार हुआ वहाँ दूसरी ओर पार्थिव पराभव जनित निराशावाद भी झलक मारने लगा।

गांधी, टगोर और अरविन्द

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शती के पूर्वार्ध के प्रायः सभी विचारक शास्त्रीय अथवा व्यावहारिक रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य एवं भारतीय दर्शन की व्याख्या करते पाये जाते हैं। दर्शन की नवीन व्याख्या में ही उनकी मौलिकता निहित है। उस काल में वेद उपनिषद् गीता और षटदर्शनों की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नवीन व्याख्याएं प्रस्तुत की गईं। इसके अतिरिक्त पुराणों तन्त्रों और अन्य धार्मिक मतवादों का भी नये ढंग से निरूपण किया गया। उस समय के दार्शनिकों में राममोहन राय देवेन्द्रनाथ और विवेकानन्द के अतिरिक्त गांधी रवीन्द्र और अरविन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त विशाल और प्रभावपूर्ण है। गांधी रवीन्द्र और अरविन्द धर्मोपदेशक नहीं हैं किन्तु उनके उपदेशों की आत्मा धर्म ही है। तीनों युग पुरुष प्राचीन भारतीय ज्ञान राशि अथवा धर्मशास्त्रों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

महात्मा गांधी अन्तत उसी सन्त-परम्परा की एक कड़ी थे जिसमें महावीर और गौतम आदि थे। वे दैनिक जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में मनुष्य मात्र की एकता को स्वीकार करते थे जो हिन्दू-संस्कृति का उत्कृष्ट पहलू है। उन्होंने अपने त्यागमय एवं वासनारहित जीवन में उपवास तप तथा ब्रह्मचर्य के नियमों को लोकमंगल की साधना का अंग बनाया। सांसारिक कष्टों और यातनाओं से त्रस्त मानव को उन्होंने अपना भगवान माना और दरिद्रनारायण की सेवा को इष्टदेव की पूजा समझी। वे अपने हृदय में करुणा का अपार पारावार लेकर आये थे और उसके हर एक कण से दुखी जनों का कष्टमोचन करना चाहते थे। सत्यमेव जयते और अहिंसा परमोधर्म को उन्होंने अपनी जीवन-साधना एवं भारतीय राजनीति का महामन्त्र बनाया चरित्र निर्माण को राष्ट्रनिर्माण का मूल माना और एकात्मवाद के आधार पर जीवन के दोनों धारों—पार्थिव और पारमार्थिक—पर समदर्शिता समता अथवा समरसता के सिद्धान्त का अनुसरण किया सर्वोदय की भावना द्वारा संसार में

त्याग के आदश को सस्थापित करना चाहा और सबको इस बात की सीख दी कि सवसाधारण की सवा ही जीवन का महान लक्ष्य है। उच्च मानवीय आदर्शों स ही प्रेरित होकर उन्होंने अपन अध्यवसाय और सविनय अवज्ञा आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की स्वेच्छाचारिणी सत्ता अथवा नीति का अन्त कर देने का उपक्रम किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि गांधीजी की दिव्य वाणी भारत क वायुमण्डल म व्याप्त हो गई और दिग्मण्डल म सत्य और अहिंसा का मन्त्रोच्चार होने लगा।

टगोर के पूवजा म आध्यात्मिक भावना का प्राधान्य था। उनके कुल म अच्छे नेतक और कलाकार होते आये थे। किन्तु टगोर उनम सबसे अधिक प्रतिभाशाली और व्युत्पन्नमति निकले। बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक म स्वदेशी आन्दोलन म उन्होंने सक्रिय भाग लिया और अमृतसर हत्याकाण्ड स क्षुब्ध हो कर सरकारी नाइटहुड (सर की उपाधि) को उतार फेंका। रवीन्द्रनाथ ठाकुर कला के क्षेत्र म उतने ही महान है जितने कि महात्मा गांधी राजनीति के क्षेत्र म। व एक दूसरे के पूरक होते हुए भी एक दूसरे स सवथा भिन्न थ।

गांधी और टगोर ने भारतवर्ष की दो भिन्न स्तरों पर सेवाएं की हैं। टगोर सामन्तवादी कलाकार थे किन्तु दलितवग स सहानुभूति रखने के कारण जनवादी थ। वे भारत की उस प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिनिधि थ जो जीवन की सर्वांगीणता स पुष्ट है और जिसम आमोद प्रमोद का महत्वपूर्ण स्थान है। गांधी जो भारतीय किसान के प्रतीक थ भारत की दूसरी प्राचीन परम्परा अर्थात त्याग और तपस्या का प्रतिनिधित्व करते है। परन्तु दोनों का लक्ष्य एक था। दोनो विश्वमानवतावादी और सात्विक जीवन के पुजारी थ। वे भारतीय जीवन के उभय पक्षों (प्रवृत्ति निवृत्ति) के प्रतिनिधि थे जो एक दूसरे के पूरक है। दोनो ही जीवन म शारीरिक बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों के सम्यक उपयोग क पक्षपाती थ।

उस समय की तीसरी महान शक्ति अथवा विभूति योगिराज अरविन्द घोष है। गांधी और टगोर जहां मुख्यत मानवतावादी थ वहां अरविन्द मुख्यतया अध्यात्मवादी थ। गांधी और टगोर मानव को ईश्वर तक पहुंचाना चाहते थे योगिराज अरविन्द ईश्वर को अवनी पर उतार कर उसे मानव मात्र म निहित कर देने के अभिलाषी थ। गांधी और टगोर आचार शास्त्र की भित्ति पर स्वग का सोपान तयार करते है परन्तु अरविन्द आध्यात्मिक अथवा

परा शक्ति के स्तर पर मुक्ति की खोज करते है। उनके अतिमानव म आध्यात्मिक शक्ति निहित है। अतिमानव आचार के स्तर से ऊपर उठकर यौगिक क्रिया द्वारा अपनी प्रकृति म आध्यात्मिक शक्ति अथवा भागवत स्थिति का समावेश कर लेता है। अरविन्द दशन अतिचेतना की ज्योति स अन्तमन को प्रकाशित करने का आदेश करता है। वह अतिमानस की उपलब्धि के साथ अन्तमन की सन्धि करना चाहता है। आनन्द अरविन्द-दशन का मूलाधार है।

इन महान प्रतिभाओ स उस काल का साहित्य प्रभावित है। टगोर के विषय म पण्डित नेहरू ने लिखा है—

भारत के मस्तिष्क विशेषकर आगे आने वाली पीढी पर उनका बडा ही प्रबल प्रभाव पडा। केवल बगला ही नही जिसम वे स्वय लिखते थ प्रत्युत भारतवष की समस्त भाषाए किसी न किसी रूप म उनसे प्रभावित हुई है।[1]

गाँधी दशन का भी साहित्य पर प्रत्यक्ष रूप से ही प्रभाव पडा है किन्तु अरविन्द दशन का प्रभाव परोक्ष रूप म ही स्वीकार किया जा सकता है। आगे चलकर छायावाद के उत्तरकाल म अरविन्द-दशन का गम्भीर प्रभाव कविवर सुमित्रानन्दन पन्त पर पडा जिससे उनके काव्य म नवचेतनावाद का जन्म हुआ।

इतिहास, साहित्य और दशन

अतीत की ओर जानने की प्रवत्ति को प्राचीन साहित्य इतिहास और दशन के अध्ययन स विशेष स्फूर्ति मिली। भारतीय विश्वविद्यालयो म भारतीय इतिहास और सस्कृति-विभाग खुल जाने पर प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध म खोजपूर्ण ग्रन्थ और लेख लिखे जाने लगे। ऐसे विद्वानो म स्वर्गीय डा० आर० के० भण्डारकर डा० रमेशचन्द्र डा० आर० सी० दत्त और डा० अनन्त सदाशिव अलतेकर आदि के नाम विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं। इनके प्रयत्नो से लोगो की अभिरुचि प्राचीन इतिहास के अध्ययन म हुई और जिज्ञासु एव उत्साही युवको का ध्यान अतीत की ओर विशेष रूप म खिंच गया।

ऐतिहासिक शोधो म पहला कदम बगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी ने उठाया। इस सोसायटी के तत्वावधान म भारत के प्राचीन ग्रन्थो के

---

1 Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 294

अगरेजी अनुवाद प्रस्तुत किय गय जिसस लोगा म प्राचीन भारत क प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हुई। आर० एन० मित्रा सर आर जी भण्डारकर तथा काशी प्रसाद जायसवाल न इस दिशा म महत्वपूण काय किय है। इस क्षत्र म पाश्चात्य विद्वानो जस विलियम जोस मक्समूलर तिलवान लबी विल्सन ओल्डनबग आदि की सेवाय चिरस्मरणीय हैं। बीसवा शती म जब इस प्रवृत्ति म विशष वेग आया तब प्राचीन भारत की सास्कृतिक एव दाश निक विचारधाराओ आदि क विभिन्न पक्षो पर मौलिक एव खोजपूण ग्रन्थ लिखे गये।

अतीत की ओर सन्तोषपूण और आशाभरी दष्टि स देखन म परातत्व विभाग का योगदान अत्यन्त श्लाघ्य है। परातत्व विभाग क तत्वावधान म वज्ञानिक ढग पर उत्खनन-काय प्रारम्भ हुआ। सिंध म मोहनजोदडो पजाब म तक्षशिला और हरप्पा बिहार म नालन्दा तथा वाराणसी क निकट सारनाथ म महत्वपूण उत्खनन काय हुआ जिसस भारत की प्राचीन सस्कृति की महत्ता और अधिक बढ गई।

उन्हीं दिनो भारतीय विश्वविद्यालयो म पाश्चात्य दशन के साथ साथ भारतीय दशन के पठन पाठन की समुचित व्यवस्था की गई जिससे भारतीय दशन की बड पमाने पर छान-बीन प्रारम्भ हुई और उस पर बड-बड और गवषणापूण ग्रन्थ और इतिहास लिख गये। डा० दास गुप्ता डा० भगवान दास और सवपल्ली डा राधाकृष्णन के काय इस दिशा म अत्यन्त सराहनीय ह। उन्होने पाश्चात्य और पौर्वात्य दशन प्रणालियो की तुलनात्मक समीक्षाओ द्वारा लोगो को भारत के धार्मिक ज्ञान की समद्ध परम्परा स अवगत कराया। बीसवी शताब्दी के दाशनिक क्षत्र म सबस मौलिक प्रयास योगिराज श्री अरविन्द द्वारा हुआ। अरविन्द ने अभिनव दाशनिक सिद्धान्ता का प्रतिपादन किया गीताधम की व्याख्या नये ढग स की और वेदो म निहित दाशनिक विचारो का अपूव विश्लेषण किया। योगी अरविन्द को वतमान युग का महत्तम दाशनिक कहा जा सकता है। इस प्रवत्ति के परिणाम स्वरूप भारतीय साहित्य म नया मोड आया और उसम प्राचीन सास्कृतिक मा यताओ गाभीय चिन्तन अनुभूति एव तत्वदशन का उन्मुक्त अभिनन्दन हुआ।

राजनीतिक आदोलन

उन्नीसवी शताब्दी म जो विभिन्न आन्दोलन देश के विभिन्न भागो म चले थे उनका मुख्य उद्देश्य हिंदू धम और सस्कृति की त्रुटियो को दूर करके

इसे सशक्त बनाना था, किन्तु प्रभाव की दृष्टि से इन आन्दोलनों का कार्य क्षेत्र केवल धार्मिक सांस्कृतिक और सामाजिक सुधारों तक ही सीमित नहीं रहा प्रत्युत उनके द्वारा भारतीयों को राजनीतिक जागरण की प्रेरणा भी मिली। छायावाद-काव्य पर इन राजनीतिक आन्दोलनों के उतार चढ़ाव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है अतः यहाँ पर उनका थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में अंग्रेजी शासन के भ्रष्टाचार से जनता त्रस्त थी और धीरे धीरे उसमें विद्रोह की भावना जड़ पकड़ रही थी। निदान अंग्रेजी सरकार को जनता की इस बढ़ती हुई अशान्ति को रोकने की चिन्ता हुई। इसी के परिणाम स्वरूप मि० ह्यूम ने ब्रिटिश साम्राज्य को भारतीय विद्रोह के संकट से बचाने के लिए, कुछ भारतीयों के सहयोग से १८८४ ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना की। प्रारम्भ में यह कांग्रेस मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्था रही। किन्तु धीरे धीरे उसमें उग्र दल का उदय हुआ। बाल गंगाधर तिलक लाला लाजपतराय तथा विपिन चन्द्र पाल उस दल के प्रमुख नेता हुए। लोकमान्य ने यह सिंह गर्जना की कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे। उक्त राष्ट्रीय जागृति ने भारतीय साहित्य भूमि में भी राष्ट्रीय भावना तथा स्वाभिमान के बीज डाले। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर बंगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम् गान लिखा जो १९०५ ई० में बंग भंग के अवसर पर भारत का राष्ट्रीय गान बना। किन्तु राष्ट्रीय भावना के इस विकास के साथ साथ सरकार का दमन चक्र भी चलता गया। सरकार की इस निर्मम नीति ने ही क्रान्तिकारी दल को जन्म दिया जिसने विदेशी सरकार को उलट देने के लिए हिंसात्मक उपायों का सहारा लिया। यह आन्दोलन सन् १९०५ ई० आरम्भ हुआ और सन् १९१७ ई० तक किसी न किसी रूप में चलता रहा। इस आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन में कम्पन तो आया किन्तु सरकार के आतंक के कारण उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में न हो सकी उसका क्षीण स्वर केवल लोक गीतों में प्रस्फुटित होकर रह गया।

सरकार की ओर से राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा, किन्तु धीरे धीरे सरकार ने यह भी अनुभव किया कि केवल दमन चक्र से ही राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाया नहीं जा सकता। अतः उसने भारतीयों

का कुछ राजनीतिक अधिकार देकर सन्तुष्ट करने का निश्चय किया। मिन्टो मार्ले रिफार्म (१९०९) सरकार की इसी नीति का परिणाम था। कांग्रेस के नरम दल ने इसका स्वागत किया और ब्रिटिश सरकार का यह मन्तव्य कि भारतीय राष्ट्रीयता का उठता हुआ ज्वार मन्द पड़ जाय कम से कम कुछ समय के लिए पूर्ण होता हुआ दिखाई पड़ा। सन् १९०९ और १९१४ के बीच कांग्रेस की कार्य पद्धति प्रायः वही रही जो १९०५ से पहले थी। किसी प्रमुख नगर में प्रति वर्ष बड़े दिनों की छुट्टियों में कांग्रेस-अधिवेशन होता था और उसमें सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर सामान्य प्रस्तावों का पारण किया जाता था। यही कारण है कि जिस समय १९१४ ई० में यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा उस समय देश में कोई सक्रिय राजनीतिक जीवन नहीं था। किन्तु विश्वयुद्ध (१९१४) के छिड़ जाने पर भारतवासियों में एक नई चेतना का आविर्भाव हुआ। इस युद्ध में भारत ने सरकार को धन जन की प्रचुर सहायता प्रदान की जिससे लोगों में यह जानकर कि शक्तिशाली साम्राज्य को भी भारत की सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है आत्माभिमान और आत्म निर्भरता के भाव जाग उठे। कांग्रेस के गरम तथा नरम दोनों दलों ने जो १९०७ में सूरत के अधिवेशन में अलग अलग हो गए थे एक समान राजनीतिक कार्यक्रम अपनाने के उद्देश्य से अपने पारस्परिक मतभेदों को मिटा दिया। मुसलमानों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। फलतः १९१६ ई० में कांग्रेस और लीग ने मिलकर लखनऊ में शासन सुधार की माँग रखी। इससे भारत में राजनीतिक वातावरण में सर्वत्र उत्साह तथा उमंग की लहर दिखाई पड़ने लगी। अतः तत्कालीन भारतीय साहित्य में भी आशावाद एवं सजग चेतना का समावेश हुआ। सन् १९१८ ई० में युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध में भारत के सहयोग तथा सहायता के उपहार स्वरूप अंगरेजी सरकार ने १९१९ ई० का शासन सुधार उपस्थित किया किन्तु उससे जनता को सन्तोष न हुआ। उसी वर्ष सरकार ने रौलेट ऐक्ट लागू किया जिससे भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं और अधिकारों पर कठाराघात होता था। जब रौलेट एक्ट का सारे देश में तीव्र विरोध हुआ। लोगों ने सरकार से रौलट ऐक्ट को अविलम्ब वापस ले लेने की अपील की। किन्तु सरकार पर उसका किंचित प्रभाव नहीं पड़ा। भारत में तब तक जागरण अथवा स्वातंत्र्य की लहर काफी फल चुकी थी। जर्मनी आस्ट्रिया तथा रूस की जन क्रान्तियों के विवरण को पढ़ कर देश का मनोबल जाग उठा था, अतः चारों ओर सरकार के विरोध में

हत्याला और प्रदर्शनों का ताता लग गया। सामान्यत आंदोलन सफल रहा। किन्तु अमृतसर में सरकार की ज्यादती से जनता खिन्न तथा रुष्ट हो गई जिससे उसने कुछ उपद्रव भी किये। इस पर पंजाब सरकार ने सम्पूर्ण नगर में सैनिक शासन (Martial Law) स्थापित कर दिया। जनरल डायर ने जलियानवाला बाग में शान्तिपूर्ण ढंग से सभा करते हुए निहत्थे लोगों को सशस्त्र सैनिकों के साथ चारों ओर से घेर लिया और उन पर उन्हें किसी प्रकार की पूर्व चेतना दिये बिना ही गोली की वर्षा प्रारम्भ करदी। अत्याचार का यहीं अन्त नहीं हुआ। अमृतसर की सड़कों पर यदि कोई मिल जाता तो उसे ज़मीन पर रेंगने के लिए बाध्य किया जाता। देश भर में जलियानवाला बाग की दुखद घटना से शोक और क्षोभ की लहर दौड़ गई। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इस निर्मम हत्याकाण्ड के प्रति अपना तीव्र रोष प्रकट किया और सम्मान में सरकार द्वारा प्राप्त 'सर' की खिताब को उतार फेंका। ब्रिटिश सरकार के उक्त पाशविक व्यवहारों के उपरान्त भी राष्ट्रीय आन्दोलन दबाया न जा सका। किन्तु क्षुब्ध परिस्थिति में देश की राजनीतिक और सामाजिक भूमिका को निराशा से अभिभूत होने से बिलकुल बचाया न जा सका। यह काल छायावाद का शैशवकाल था। अतः छायावादी काव्य में निराशा का स्वर प्रारम्भ से ही मुखर हो उठा।

सन् १९२० ई० में गांधी जी के भारतीय राजनीति में प्रवेश करते ही उसकी धारा एक दूसरी दिशा की ओर मुड़ गई। महात्मा गांधी दरिद्रनारायण के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में आए। अतः उन्होंने स्पष्ट कहा कि जो असहाय निर्धन किसानों तथा मजदूरों का ऊपर उठाने का प्रयत्न नहीं करता वह उनके शोषण का पक्षपाती है। इस प्रकार गांधी जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन में अभिनव स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। शताब्दियों से सोई हुई भारतीय जनता को उन्होंने निर्भीकता और सत्यनिष्ठा का पाठ पढ़ाया। शस्त्रहीन भारत को उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह का अमोघ शस्त्र प्रदान किया। उनके सत्याग्रह, असहयोग तथा व्यक्तिगत एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलनों ने भारत के स्वाधीनता-संग्राम में अभूतपूर्व दृढ़ता और शक्ति पैदा कर दी।

अपने विचारों के अनुसार महात्मा गांधी ने देश में व्यापक रूप से असहयोग आन्दोलन चलाने का निश्चय किया। १९२० ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी की अहिंसात्मक असहयोग

आदोलन की नीति को स्वीकार भी कर लिया। गाधी जी की अपील पर १९२० ई म कौंसिल के चुनावा म दो तिहाई मतदाताओं ने भाग नहीं लिया। अनेक विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों से अपने नाम कटा लिये। बहुत से वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी जिनमे देशबन्धु चितरंजन दास तथा मोती लाल नेहरू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लोगो ने बढ़ ही उत्साह स विदेशी वस्त्रा की होली जलाई। देश के कोने-कोने म स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का प्रचार किया जाने लगा और विदेशी सरकार के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विद्रोह की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। इस असहयोग आन्दोलन म देश के कोने कोने म आशा और आत्म-बल का सचार तो हुआ ही साहित्य के विकास को भी उससे बड़ी प्रेरणा मिली। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय भावना स ओत प्रोत जुझाऊ साहित्य का भी प्रचुर मात्रा म निर्माण हुआ।

दिसम्बर १९२१ ई म कांग्रेस ने अपने अहमदाबाद अधिवेशन म न केवल पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह और शक्ति के साथ आन्दोलन को जारी रखने का निश्चय किया बल्कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन को सगठित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम भी उठाया। लोगो का उत्साह बहुत बढ़ गया। किन्तु उसी समय गोरखपुर म चौरीचौरा नामक स्थान के पुलिस थाने म कुछ उत्तेजित लोगों की भीड़ ने आग लगा दी जिससे १२ सिपाही जलकर मर गये। इस हिंसात्मक काण्ड का समाचार सुनकर गांधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसका परिणाम प्रत्येक दृष्टि से अच्छा नहीं हुआ। सत्याग्रहियों का उत्साह भग हो गया और वे शोक और नैराश्य का अनुभव करने लगे। पण्डित मोतीलाल नेहरू लाला लाजपतराय और देशबन्धु चितरंजन दास को भी आन्दोलन स्थगित कर दिये जाने से बड़ा असन्ताप हुआ और उन्होंने जेल से गाँधी जी के पास एक पत्र लिखकर उनके निर्णय के विरुद्ध अपना असतोष व्यक्त किया। इस राष्ट्रीय निराशा असन्तोष और अवसाद की अनुगूंज तत्कालीन छायावादी काव्य म भी सुनाई पड़ती है।

असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर देने से कांग्रेस के तरुण सदस्यों म विशेष असन्तोष उत्पन्न हो गया। कांग्रेस के भीतर समाजवादी तथा साम्यवादी वर्गों का प्रभाव बढ़ने लगा। रूस म समाजवादी क्रान्ति की सफलता तथा वहा पर एक समाजवादी राज्य की स्थापना से भारत के उग्र राष्ट्रवादियों म समाजवाद के प्रति विशेष उत्साह उत्पन्न हो गया। ऐसी परिस्थिति म लोगों को यह अनुभव होने लगा कि महात्मा गाधी के रचनात्मक कार्य क्रम अथवा

स्वराज्य पार्टी के वैधानिक आन्दोलन से स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है अतः अधिक सशक्त प्रयत्न की आवश्यकता है। फलतः युवकों के बीच समाजवादी विचारधारा का द्रुतगति से प्रचार होने लगा और मजदूर किसानों को संघटित करने के उपाय किये जाने लगे। १९२७ में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में राजनीतिक असन्तोष ने उग्र रूप धारण कर लिया। कांग्रेस में वामपक्षी दल का उदय हो चुका था और वह औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग से असन्तुष्ट होकर पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग कर रहा था। १९२८ में कलकत्ता में तरुण सभ्यों ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। १ दिसम्बर सन् १९२९ ई० में कांग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की राष्ट्रीय पताका फहराते हुए अपने भाषण में कहा कि स्वतन्त्रता से तात्पर्य हमारे लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद से पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाने से है। १९३० की २६ जनवरी को कांग्रेस ने अपना प्रथम स्वतन्त्रता दिवस मनाया। देश के कोने-कोने में विशाल सार्वजनिक सभाएं हुई और जनता ने सामूहिक रूप से अपने उत्साह का प्रदर्शन किया। इस प्रकार सन् १९२० और १९३० के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण किया, जिससे देश के प्रत्येक वर्ग—पूंजीपति व्यापारी अध्यापक वकील जमींदार किसान आदि में उत्साह और चेतना की एक अपूर्व लहर दौड़ गयी। अनेक प्रकार के राष्ट्रीय गान झण्डा गान तथा प्रयाण-गान लिखे गये जो उन दिनों जुलूसों के निकलते समय तथा पर्वों उत्सवों अथवा जलसों के अवसर पर गाये जाते थे। उन गानों में चित्रित भारतीय स्वातन्त्र्य की आग और कल्पना ने लोगों में कष्ट सहिष्णुता साहस त्याग तथा बलिदान की अद्भुत शक्ति भर दी। अनेक हिन्दू-मुसलमान राष्ट्रभक्तों द्वारा निर्मित ये गान थे जिनका आज कोई लेखा नहीं और जिनमें से अधिकांश के रचयिताओं का आज पता नहीं है।

फरवरी सन् १९ ० ई० में कांग्रेस की कार्य-समिति ने महात्मा गांधी को इस बात का अधिकार प्रदान किया कि वे अपनी इच्छानुसार जब चाहें सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर सकते हैं। अतः गांधी जी ने सद्य नमक सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। किन्तु मार्च १९३१ में गांधी इरविन समझौता हो गया और सरकार के द्वारा दमनात्मक प्रतिबन्धों को हटाने के फलस्वरूप कांग्रेस ने अपने आन्दोलन को समाप्त कर दिया। पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रयत्न चल ही रहा था कि इसी बीच सरकार ने १९३५ के वैधानिक एक्ट की घोषणा की। इस एक्ट से सन्तुष्ट न होते हुए भी १९३७ के प्रान्तीय निर्वाचनों में कांग्रेस ने

भाग लिया। मद्रास संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) बिहार उड़ीसा बम्बई और मध्यप्रान्त में कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल बने। कांग्रेसी सरकारों ने अभी शासन भार उठाया ही था कि योरोप में द्वितीय महासमर छिड़ गया और अंग्रेजी सरकार ने बिना कांग्रेस के सहयोग के भारत से धन जन की सहायता भेजना प्रारम्भ कर दिया। अतः कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। प्रान्तों का शासन १९३५ के ऐक्ट के अनुसार गवर्नरों के अधिकार में आ गया। १९४० में कांग्रेस कार्य समिति ने यह प्रस्ताव पास किया कि यदि सरकार उसकी राजनीतिक मांग स्वीकार कर ले तो वह उसे युद्ध में सहयोग प्रदान करेगी। अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस की इस मांग को कि भारत सरकार को केन्द्रीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाय ठुकरा दिया। अतः महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन का सूत्रपात सन्त विनोबा भावे ने किया। सरकार ने देश के नेताओं को जेल में बन्द कर दिया। स्वतन्त्रता संघर्ष निरन्तर चलता रहा। अन्त में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन आया। देश की यह सबसे बड़ी परीक्षा थी। इस परीक्षा में वह सफल रहा। परिणामस्वरूप १५ अगस्त १९४७ में भारतीय राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया।

तत्कालीन हिन्दी काव्य ने इस नव जागरण और राष्ट्रीय चेतना का अनुसरण तो किया ही साथ ही उसे प्रेरित और उसका पथ प्रदर्शन भी किया।

छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियां

छायावाद काव्य की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक सामाजिक और राजनीतिक जागरण का अवलोकन करने के उपरान्त अब हमें यह जान लेना चाहिए कि उक्त आन्दोलनों के कौन कौन से तत्व छायावाद युग में जीवन के विविध क्षेत्रों में युगान्तर उपस्थित कर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में छायावाद काव्य की दार्शनिक प्रवृत्तियों के लिए प्रेरणा स्रोत बने।

आध्यात्मिक प्रवृत्ति

१९वीं शताब्दी के मध्य में योरोप की भौतिकवादी संस्कृति के सम्पर्क से वैदिक वाङ्मय का आधार लेकर भारत में जो सांस्कृतिक जागरण का स्रोत फूटा उसका वेग बीसवीं शताब्दी तक आते-आते अत्यन्त प्रबल हो गया। अतः लोगों का ध्यान अपनी संस्कृति के मूल स्रोतों की ओर विशेष रूपसे खिंच गया।

प्राय समस्त सांस्कृतिक आन्दोलनों का ध्येय पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की भूमिका में प्राचीन भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का पुनर्जीवन करने अथवा आध्यात्मिकता की भौतिकता के साथ संगति बैठाने का था। सांस्कृतिक जागरण के कर्णधारों में स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त ओजस्वी और प्रभावपूर्ण था। उनके विशाल व्यक्तित्व में प्राय समस्त आन्दोलनों के स्वर तत्व समाहित हो गये थे। विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म और दर्शन की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल नवीन व्याख्या कर भारतीय संस्कृति और सभ्यता को शाश्वत एवं सार्वभौम सिद्ध कर दिखाया जिससे लोगों में कर्मयोग ज्ञानयोग और भक्तियोग के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई। उनकी अद्वैतवाद की भूमि पर भारतीय धर्म-नीति समाज-नीति राष्ट्र-नीति सर्वधर्म समन्वय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भावना की स्थापना का प्रबुद्ध भारतीयों पर उत्कृष्ट प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य मानवतावाद भारतीय अद्वैतवाद का ही प्रतिरूप था अतः उसके विशिष्ट गुणों—बुद्धिवाद समन्वयवाद उदारता स्वाधीनता समानता आदि—को भी उन्होंने भारत के लिये मानवतावाद में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार भारतीय समाज में एक नवीन अध्यात्मवादी मानवता का जन्म हुआ जिसकी नवप्रतिष्ठा का सक्रिय प्रयत्न छायावादी काव्य में भी किया गया। अध्यात्मवादी मानवतावाद के अपनाने से ही छायावाद-युग में मानवीय अनुभूति की परिधि अत्यन्त विस्तृत हो गई जिसकी अभिव्यंजना छायावाद में सर्वात्मवाद के रूप में की गई।

[छायावाद-युग के सामाजिक और राजनीतिक नेता लोकमान्य तिलक योगी अरविन्द महात्मा गांधी और कवीन्द्र रवीन्द्र किसी-न-किसी रूप में सांस्कृतिक आन्दोलनों से प्रभावित रहे। उक्त महापुरुषों पर वेदों उपनिषदों गीता सन्तमत तथा वैष्णव सम्प्रदायों का प्रभाव था। अतएव उन्होंने देश को जो नवीन चेतना नवीन दृष्टि तथा नवीन भाव दिये उनका आधार भारत का परम्परागत अध्यात्मवाद ही रहा। यहाँ तक कि महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन भी आध्यात्मिकता का महान आदर्श लेकर ही सामने आया। जिसमें भारतीय राजनीति में सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त सर्वमान्य हुआ। इस प्रकार भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अध्यात्मवाद का प्रवेश हुआ जिसकी प्रतिध्वनि साहित्य में भी सुनाई पड़ी।

सांस्कृतिक आन्दोलनों की सुधारवादी विदग्धताओं के साथ पाश्चात्य सांस्कृतिक मान्यताओं को भी महात्मा गांधी ने महत्व दिया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर

न भी भारतीय अध्यात्म के प्रभाव को यन्त्रयुग के सौन्दर्य में वर्णित कर उसे पूर्व तथा पश्चिम दोनों के लिए समान रूप में आकर्षक बना दिया था। इस प्रकार नवीन युग की आत्मा के अनुकूल स्वर झंकृति प्रस्तुत कर कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक सौन्दर्य बोध का झरोखा कल्पनाशील युवक कवियों के हृदय में खोल दिया था।[1] अतः महात्मा गाँधी और टैगोर के प्रभाव से द्विवेदी-युग की पौराणिक भावना राष्ट्रीय एवं सुधारवादी प्रवृत्ति छायावाद-युग में आध्यात्मिक चेतना व्यापक विश्ववाद तथा समन्वयवाद की भावना के रूप में परिणत हो गई।

छायावाद की आध्यात्मिक प्रवृत्ति का एक कारण प्रथम विश्व युद्ध (१९१४–१८) भी बना। महायुद्ध के प्रभाव से देश की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा और विकट हो गई और युद्ध समाप्त होने के बाद तो अंगरेजों द्वारा भारतीयों को राजनीतिक सुविधाएं प्राप्त होने का स्वप्न भी टूट गया जिसमें देश में सर्वत्र निराशा का साम्राज्य छा गया। अतः आर्थिक विपन्नता एवं राजनीतिक निराशा के कारण छायावाद-युग के आध्यात्मिक वातावरण में छायावाद के कवि का आत्मानन्द की खोज में उलझ जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। किन्तु जैसा कि स्पष्ट है महायुद्ध संकुचित राष्ट्रवाद का कुपरिणाम था अतः उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप लीग आफ नेशन्स का जन्म हुआ। परिणाम स्वरूप योरोपीय साहित्य के समानान्तर छायावाद में भी प्रेम विश्वास सत्य-न्याय सहयोग समत्व आदि आध्यात्मिक गुणों के अभ्युदय की आकांक्षा प्रकट की गई। इस प्रकार सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलनों के कारण छायावाद-युग में जो आध्यात्मिक प्रवृत्ति उत्पन्न हुई उससे प्रभावित होकर छायावाद में अद्वैतवाद समन्वयवाद मानवतावाद विश्वबन्धुत्व एवं प्रवृत्ति निवृत्ति की भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

रहस्यवाद

वेदों उपनिषदों गीता और पुराणों में रहस्योद्घाटन की प्रवृत्ति विद्यमान है। आत्मा परमात्मा जीव और जगत के सम्बन्ध में उनमें रहस्यात्मक संकेत मौजूद हैं। प्राकृतिक शक्ति पुञ्जों में किसी एक सर्वव्यापी चेतन सत्ता से अनुप्राणित होने का भाव वेदों और उपनिषदों की विशिष्टता है। अतः उनसे सीधे प्रेरणा ग्रहण करने के कारण छायावाद अपरिमेय सूक्ष्मदर्शिता

---

[1] पन्त—गद्य पद्य, पृ० १५२

एक दिव्य रहस्यानुभूतियों का ज्योति-पुञ्ज बन गया। उपनिषदों की छत्रछाया में ही छायावाद के कवि ने विश्व सुन्दरी प्रकृति में विराट के दर्शन की शिक्षा ग्रहण की।

स्वामी विवेकानन्द का वेदान्तवाद मानो रहस्यवाद की पृष्ठभूमि बनने के लिए ही उपस्थित हुआ था। विवेकानन्द का मुख्य ध्येय मनुष्य में अन्तर्निहित ब्रह्मभाव को जगाना था।[1] उनके प्रभाव से छायावाद-युग का दिग्मण्डल 'अयमस्मि सर्व', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'अहम् ब्रह्मास्मि', 'सोऽहम्', 'तत्त्वमसि', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'ईशावास्यमिदं सर्वं' की भावना से गूँज उठा था। इन्हीं उपनिषद् वाक्यों के आधारभूत छायावाद में रहस्यवाद अथवा ब्रह्मवाद का स्वर निनादित हुआ। सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी उपनिषद् और दर्शन के सत्यों को अपने रहस्य गीतों में बड़ी ही भावुकता के साथ प्रकट किया था। इसका भी प्रभाव छायावाद की रहस्यात्मक धारा पर पड़ा।

नवचेतना से युक्त आध्यात्मिक साधना की अत्यन्त उच्चभूमि में जाने वाले तथा रहस्यभावना को दार्शनिक रूप में स्पष्ट करने वाले महायोगी परम चेतन महर्षि अरविन्द थे। वे कवि थे और उनके महाकाव्यों, गीतों और प्रबन्धों में उच्च रहस्यात्मक अनुभूति प्रकट हुई थी। उनके महान् व्यक्तित्व और कृतियों द्वारा भी छायावाद की रहस्यात्मक वृत्ति को उत्तेजन मिला। किन्तु रहस्यात्मक प्रेम संवेदना तथा भंगिमा हिन्दी कविता के लिए नई वस्तु नहीं थी। उसकी परम्परा हिन्दी साहित्य में बहुत दिनों से चली आ रही थी। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ही विद्यापति की 'जनम अवधि हम रूप निहारल' जैसी पंक्तियों में रहस्यात्मक प्रेम-संवेदना की धुँधली झाँकी हमें मिल जाती है। मध्यकाल में कबीर, जायसी तथा मीरा की रचनाएँ रहस्यात्मक प्रेम-संवेदना से भरी पड़ी हैं। रहस्यात्मक प्रेम संवेदना यहाँ पूर्वराग की साधना के साथ कहीं रूप-लावण्य की छाया में और कहीं विरहिणियों के उद्गारों में निरन्तर प्रकट होती आई है। छायावाद की रहस्यात्मक प्रेम संवेदना इसी परम्परा की एक सुन्दर कड़ी है। इसलिए छायावादी कवि के रागात्मिका वृत्ति द्वारा चरम भाव लोक तक पहुँचने के प्रयत्न में प्रेममार्गी सूफी कवियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। छायावाद का रहस्य-लोक कबीर, जायसी, कुतबन आदि ज्ञानमार्गी तथा प्रेम

---

१ स्वामी विवेकानन्द—शक्तिदायी विचार पृ० ३१

मार्गी कवियों के उस रहस्य-लोक से मिलता जुलता है जहाँ प्रेम सौन्दर्य और रूप का चिरन्तन राज्य है और जिसमें निरन्तर अनहद नाद होता रहता है। आत्मा परमात्मा का मधुर मिलन संयोग की मादकता और विरह का ताप ससीम का असीम के प्रति कुतूहल तादात्म्य-अनुभव विस्मय की भावना तथा जिज्ञासा आदि जो रहस्यवाद की विशेषताएं हैं छायावाद में पर्याप्त मात्रा में ढूढ़ी जा सकती है। यहाँ पर यह टांक लेना आवश्यक है कि ऋषियों और साम्प्रदायिक रहस्यवादियों की रहस्य भावना जहाँ साधन प्रसूत है वहाँ छायावादी रहस्य भावना मूलतः भावना अथवा कल्पना की सृष्टि है।

छायावाद का कवि अछूते सौन्दर्य स्वच्छन्द प्रेम तथा नित नवीनता का उपासक था। इस दृष्टि से यदि हिन्दी का कोई एक कवि छायावादी कवियों का आत्मीय बन्धु हो सकता है तो वह रीति काल के नेही महा व्रजभाषा प्रवीण तथा सुन्दरतानि के भेद को जानने वाले कवि घनानन्द हैं। घनानन्द वह सेतु है जिस पर चढ़ कर पुरानी हिन्दी कविता ने नवयुग में पदार्पण किया। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप कल्पनाओं और स्वप्नों की रंगीन कुहेलिका लिए हुए जो नई काव्य शैली हिन्दी में आई उसके अग्रदूत घनानन्द ही थे। घनानन्द का एक चरण रीति काल में है तो दूसरा बिनकन छायावाद के समीप पहुँचता है। घनानन्द के काव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हिन्दी कविता की भाषा व्रजभाषा से बदल कर खड़ी बोली न हो गई होती तो छायावाद के समान कोई रोमांटिक आन्दोलन व्रज भाषा में ही आया होता और हिन्दी कविता उस भंगिमा को प्रचुर मात्रा में उपस्थित करती जो बोधा घनानन्द और भारतेन्दु में संकेतित हुई थी।[1] तात्पर्य यह कि काव्य भाषा का रूप बदल जाने के उपरान्त भी कुछ समय बाद हिन्दी के छायावादी कवियों ने रीतिकाल के स्वच्छन्द कवियों की भांति ही जगत के प्रेम की चर्चा परम भाव या महाभाव के रूप में लाक्षणिक शैली में की। इस प्रकार छायावाद रीतिकालीन कविता की स्वच्छन्द धारा का विकास माना जा सकता है।

किन्तु रहस्यात्मक प्रेम संवेदना के इस परम्परागत विकास के उपरान्त छायावाद में प्रेमपरक रहस्यवाद का एक और महान कारण है। प्रेम मानव हृदय की एक चिर निगूढ़ वृत्ति है। प्रत्येक साहित्य में देश काल के अनुरूप

---

१ दिनकर काव्य की भूमिका पृ० ३०

उसकी अभिव्यक्ति हुई है। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में कवियों की दृष्टि सामन्तों के शौर्य के अतिरिक्त उनकी रूप लिप्सा तथा विलास-वासना की ओर भी लगी रहती थी। अतः उनकी भोग वृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने कहानी का आधार लेकर नायक नायिका के रूप में मांसल प्रेम तथा सौन्दर्य की सृष्टि की। इस प्रकार नायक नायिका के आवरण में उन्होंने अपनी प्रेम वासना को भी बिना पकड़ में आये ही व्यक्त कर लिया। इस काल में विद्यापति की कविता अत्यन्त शृङ्गारिक है। उनकी शृङ्गारिकता में वह वासनात्मक प्रेम उपस्थित है जो पुरुष में नारी के प्रति और नारी में पुरुष के प्रति स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। किन्तु विद्यापति ने भी अपने उक्त वासनात्मक प्रेम को राधा कृष्ण के परिवेश में ही व्यक्त किया है। उनके काव्य में भी शारीरिक सौन्दर्य और लौकिक प्रेम का खुलकर वर्णन हुआ है। भक्ति-काल में प्रेम सूफी साधकों के लिए साधना का अंग बनकर आया। अतः परम सत्ता के प्रति व्यक्त होने वाले प्रेम में उन्हें घुमाव फिराव की आवश्यकता नहीं पड़ी। रीतिकाल का साहित्य प्रेम की नाना भंगिमाओं और चेष्टाओं से भरा पड़ा है। रूप सौन्दर्य हाव भाव अथवा सज्जा-रचना का विशद चित्रण उसमें हुआ है। किन्तु रीति युगीन कवियों ने अपनी शृङ्गारिक भावनाओं की तुष्टि के लिए कृष्ण और राधा को नायक और नायिका की भूमि पर ला बिठाया जिससे उन्हें अपनी लौकिक प्रणयानुभूतियों को चित्रित करने के लिए एक अलौकिक पर्दा मिल गया।

हिन्दी साहित्य में यह पहला अवसर था जबकि छायावादी कवि ने अपनी व्यक्तिगत लौकिक प्रेमानुभूति को खुलकर व्यक्त करने का साहस किया। वैयक्तिक प्रणयानुभूति को जैसा हम उपर्युक्त पंक्तियों में दिखा आये हैं अपना कह कर व्यक्त करने की परम्परा हिन्दी के पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं मिलती। और यदि है। मिलती भी है तो केवल भक्ति अथवा दैन्य करुण आदि भावों के प्रकाशन के रूप में। रीति युग के स्वच्छन्द कवियों—घनानन्द बोधा ठाकुर आलम आदि को भी अपनी लौकिक प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए अपने प्रेमपात्र में परम भाव अथवा ईश्वरीयता का आरोप या मिश्रण करना पड़ा था। ठीक इसी ही दशा छायावादी के कवि की थी। अपनी वैयक्तिक भावनाओं को अपने निजी लौकिक रूप में व्यक्त करने के प्रयास में उसे अस्पष्टता का वातावरण तैयार करना पड़ा।[1] राजनीतिक सामाजिक तथा साहित्यिक

१ हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास डा० भगीरथ मिश्र, पृ० २०० १०

परिस्थितियों ने भी उसे अपनी प्रेमाभिव्यक्ति में अस्पष्ट रहने के लिए बाध्य किया। तिलक तथा महात्मा गाँधी जैसे राजनीतिक नेताओं के आचार विचार सांस्कृतिक आन्दोलनों के पवित्रतावादी प्रचार तथा पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और रामचन्द्र शुक्ल जैसे साहित्यिक आलोचकों के मर्यादावादी दृष्टिकोण के कारण छायावाद का आदर्शवादी कवि अपने व्यक्तिगत प्रेम-पथ पर शीघ्र ही ठिठक गया जिससे वह खुलकर अपनी मधुचर्या अथवा प्रणयानुभूति को व्यक्त करने का साहस न कर सका। अतएव उसने उसे प्रकृति और आध्यात्मिकता के सुनहरे आवरण में लुका छिपा कर रख दिया। इसी से छायावाद में ऐसी कविताएँ अनेक हैं जिनका आधार लौकिक प्रेम भी हो सकता है और व्यंजना से उसका एक अर्थ आध्यात्मिक प्रेम भी किया जा सकता है। इस प्रकार जब छायावाद में कुछ प्रेम प्रतीकों में अलौकिकता का स्वांग भरा जाने लगा तो इनमें रहस्यवाद का आभास मिलने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि की रहस्यानुभूति का मुख्य प्रेरणा स्रोत उपनिषद् ज्ञान ही रहा जिसकी ओर वह सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रभाव से उन्मुख हुआ था और उसकी रहस्यात्मक वृत्ति के मूल में उसका वह स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण था जिसके कारण वह प्रत्येक वस्तु को आदर्श रूप में देखना चाहता था।

सर्वात्मवाद

सर्वात्मवाद रहस्यवाद अथवा व्यावहारिक वेदान्त का ही एक रूप है। युग प्रवृत्ति का उपनिषदों की ओर मुड़ जाने के कारण सर्व खल्विदं ब्रह्म[1] ब्रह्म वेद विश्वमिदं वरिष्ठम्[2] आदि उपनिषद वाक्यों के आधार पर छायावाद में प्रकृति में चेतना के आरोप की जो प्रवृत्ति जगी उसकी अभिव्यक्ति सर्वात्मवाद की कविताओं में हुई। उपनिषदों से प्रेरणा प्राप्त कर ही छायावाद का कवि आत्मा और सचेतन प्रकृति के बीच तादात्म्य स्थापित करने में दत्तचित्त हुआ। शैवागमों का उपनिषदों से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। भारतीय दर्शन की वह धारा जो वेदों में समस्त दृश्य जगत को ब्रह्म से अभिन्न मान कर चली है क्रमशः शैवागम ग्रन्थों में प्रतिष्ठित हुई।[3] अतः छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद का शैवागम ग्रन्थों पर आधारित सर्ववाद मूलक

१ छा० उ० ।१४।१

२ मु० उ० २।२।११

३ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी— आधुनिक साहित्य पृ० ६४

आनन्दवाद भी औपनिषदिक सर्वात्मवाद की ही परम्परा में है।

छायावाद के कवियों पर कबीर आदि निर्गुण सन्त कवियों का भी प्रभाव पड़ा है। किन्तु निर्गुण सन्तों के सिद्धान्तों के आधार भी उपनिषद ही हैं। बीजक की एक रमनी में कबीर ने स्वयं उपनिषद उनके सम्वादों और सिद्धान्तों का तथा योग वाशिष्ठ आदि का श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है।[1] गुलाल ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि निर्गुण मत वेदान्त ही है। सन्त लोग इसी ब्रह्मरूप अध्यात्म का ग्रहण करते है जहाँ दुविधा का भाव न रहे वही अध्यात्म या वेदान्त मत है। जो निर्गुण मत को इसके अतिरिक्त कुछ और बतावे उसे सदगुरु का मत आता ही नहीं।[2] इस प्रकार निर्गुण मत से प्रभावित छायावाद की सर्वात्मवादी भावना का औपनिषदिक सर्वात्मवाद की ही छाया माना जा सकता है।

आधुनिक युग में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टगोर का काव्य भी वेदान्त के सर्ववाद का ही वर्णित करके उपस्थित हुआ। असीम के प्रति अभूतपूर्व जिज्ञासा का भाव उनके काव्य का मौलिक स्वर है। अत उनके काव्य से भी छायावाद की औपनिषदिक सर्वात्मवादी धारा का विशद बल मिला। इसके अतिरिक्त योरोपीय सम्पर्क और अंगरेजी शिक्षा द्वारा काण्ट हीगल स्पिनोजा

---

१ तत्वमसी इनके उपदेसा। ई उपनिषद कहै सँदेसा ॥
ई निसचय इनके बड भारी। बाहिक बरणकर अधिकारी ॥
परम तत्त का निज परमाना। सनकादिक नारद सुख माना ॥
जागबलिक और जनक सँबादा। दत्तात्रेय वहै रस-स्वादा ॥
वहै राम बसिष्ट मिलि गाई। वहै कृष्ण ऊधो समझाई ॥
वहै बातक जो जनक दढाई। देह धरे बीदेह कहाई ॥—बीजक रमैनी ८
डा० बड़थ्वाल द्वारा लिखित 'हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय' में उद्धृत पृ० १५९

२ निरगुन मत सोई वेद को अन्ता। ब्रह्म सरूप अध्यातम सन्ता।
जहँवा दुविधा भाव न कोई। अध्यातम वेदान्त मत सोई ॥
यहि सिवाय कोई और बतावै। ताको सतगुरु मत नहि आवै ॥
—म० बा० पृ० २१४।
डा० बड़थ्वाल द्वारा लिखित हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय में उद्धृत पृ० १५९

बकले आदि दार्शनिकों तथा वर्डसवर्थ शली कीटस आदि रोमाण्टिक कवियों के आध्यात्मिक एवं भावना प्रधान सर्ववाद से प्रभावित होकर भी छायावाद में सर्वात्मवाद का राग अलापा गया। इस प्रकार छायावाद सर्वात्मवाद की भारतीय और पाश्चात्य दोनों धाराओं का अपूर्व संगम बन गया। किन्तु अपने मूल में यह औपनिषदिक किंवा भारतीय सर्वात्मवाद का ही पोषक रहा। अतः उसे पाश्चात्य रहस्यवाद अथवा सर्ववाद की अनुकृति मात्र नहीं माना जा सकता जैसा हिन्दी के कतिपय समीक्षकों की धारणा सी बन गई है।[1]

व्यक्तिवाद

दर्शन के अहंब्रह्मास्मि अयमात्मा ब्रह्म तथा सोऽहम् के सिद्धान्त ने छायावाद के भावुक कवि को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण भी दिया। हीगल का दर्शन भारतीय अद्वैत तथा व्यक्तिवाद के मेल में था अतः उसके प्रभाव ने कवि की व्यक्तिवादिता को और घनीभूत कर दिया। पराधीन जाति अथवा राष्ट्र के लिए अपने उत्कर्ष के हेतु अपनी सत्ता तथा उज्ज्वल अतीत के प्रति जागरूक होना अति आवश्यक होता है अतः हिन्दू-नवजागरण के कर्णधारों ने जहाँ तक बन पड़ा व्यक्ति में निहित अहं को जगाने का प्रयत्न किया। इसी प्रयत्न के परिणाम स्वरूप युग के साथ साथ छायावाद के कवि का भी अहं जग उठा जिससे वह स्वयं को विराट-रूप में चित्रित करने तथा इस पंचभूत की रचना में एक तत्त्व बनकर रमण करने का प्रयत्न करने लगा। छायावाद की अतिशय वैयक्तिकता अथवा अहं भाव का यही दार्शनिक आधार अथवा रहस्य है। छायावाद में आत्मरति आत्म प्रकाशन अथवा रुचि स्वातन्त्र्य की वत्सलता का मूल उसकी अतिशय वैयक्तिकता में सन्निहित है। वैयक्तिकता के इसी अतिरेक ने छायावाद के कवि को बहिर्जगत् से मुक्त कर दिया जिससे वह निर्भ्रान्त होकर अन्तर्जगत के निर्मल और निगूढ़ कोने झाँकने लगा। इस प्रकार छायावाद के अन्तर्गत अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की प्रधानता का एक प्रमुख

---

१ (क) हिन्दी रहस्यवाद का वर्तमान स्वरूप पश्चिमीय प्रतिकृति है यह अब सभी मानते हैं। शुक्ल जी का भी यही मत है।

सद्गुरुशरण अवस्थी साहित्य-तरंग (१९४६) पृ० २५

(ख) वस्तुतः वह (छायावाद) पश्चिम से आने वाली रोमांटिक काव्य धारा का भारतीय स्वरूप है।

केसरीकुमार पन्त और उनका गुञ्जन (१९५) पृ० ११२

कारण उसका विशद व्यक्तिवाद बना। इस ओर व्यक्तिवाद में ही स्वच्छन्दता की स्वर्णिम आभा फूट निकली। स्वच्छन्द भावना के कारण ही छायावाद के विद्रोही कवि ने व्यक्तिवादी टमरखय्याम और अगरेज रूमानी कवियो—वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि का समादर किया।

शौर्य–भावना

अतिशय वैयक्तिकता अथवा स्वच्छन्दता भावना और रूढ़ियो की विरोधिनी सिद्ध होती है। अत स्वच्छन्दता प्रेमी छायावाद के उत्साही कवि ने गतिरोधक रूढ़ियो की शृङ्खला को छिन्न करने का उपक्रम किया। छायावाद युग में सास्कृतिक और सामाजिक जीवन में प्राचीन जर्जरित परम्पराओ के तोडने का आन्दोलन उठ खडा हुआ था। पाश्चात्य यात्रिक सभ्यता के सघात से शिक्षित वर्ग में पतनशील रूढ़ियो के प्रति अश्रद्धा अथवा वैर भाव उत्पन्न हो गया था। समाज की यह स्थिति छायावाद के कवि की विद्रोही अथवा स्वच्छन्दतावादी भावना को उत्तेजित करने में और सहायक हुई। यही कारण है कि सामाजिक स्तर पर छायावाद के कवि ने नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। उसने उसे सामन्ती और पौराणिक संस्कृति की दासता से मुक्त कर प्रबुद्ध मानवी के आसन पर अधिष्ठित किया। इसी से छायावाद की नारी पगु नही प्रगतिशील है। पतित नही पावन है और है वह मुक्त हृदय के सिंहासन पर समासीन। छायावाद के कवि ने युग प्रवर्तक राष्ट्रीय नेता की भाँति ललकार कर कहा है कि नारी जगत की मान है वह श्रद्धामय अभिमान दया माया ममता मधुरिमा और अगाध विश्वास की खान तथा देवि, माँ सहचरि प्राण है कुछ ताडन की अधिकारी नहीं। इसी आदर्श नारी के पीयूष-स्रोत अथवा पावन गगाधार में छायावादी कवि ने अवगाहन किया और अपने मन का मल धोया। नारी उसके समग्र सकल ऐश्वर्यों की सन्तान बनकर आई कुछ अर्थ की खान बनकर नहीं। छायावाद की नारी वीरगाथाकाल अथवा रीतिकाल की नारी की भाँति भोग अथवा क्रीडा की सामग्री भर नहीं है—वह अपने नैसर्गिक सत्ता अथवा गुणो के प्रति जागरूक है। नारी के इस पावन पक्ष में छायावाद के स्वच्छन्दतावादी कवि की शौर्य अथवा वीर भावना जो रोमान्टिक कविता का एक विशेष गुण है सहसा निखर पडी है। वीर भावना (Chivalry) में उदात्त तत्त्वो का जोश तथा उत्साह का मद होता है। वीरभावना के इन्हा दो महान गुणो के परिणाम स्वरूप छायावाद का कवि एक ओर (शक्ति प्रदर्शन में) साहित्य की प्राचीन

मर्यादाओं का भंजक नवीन मर्यादाओं का पथगामी बना और दूसरी ओर (उत्सर्ग की भूमि में) कायिक सुखों को त्याग कर लोकोत्तर अथवा अलौकिक आनन्द का खोजी बना। शक्ति प्रदर्शन के लिए ही छायावादी कवि ने वीणा वादिनि से नव भाव नव रस नव लय नव स्वर रव तान आदि प्रदान करने की प्रार्थना की और मुक्ति के नाम पर मुक्त छन्द का आविष्कार कर उसने अपना वीर भाव प्रकट किया। विद्रोह या वीर भाव की उमंग में ही इसने नष्ट भ्रष्ट व जीर्ण पुरातन' और करालजाल जग में फल का नारा लगाया। और प्राणों की भमर में पन मांसल जीवन की हरियाली में फूलने की आकांक्षा प्रकट की। इस प्रकार छायावाद का रोमांटिक कवि ध्वंस और सृजन दोनों का अधिष्ठाता बना।

शौर्य भावना के इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत देश की राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में जैसे-जैसे परिवर्तन आता गया है वैसे वैसे हिन्दी साहित्य की परम्परागत शौर्य भावना का स्वरूप भी विकसित होता चला गया है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में जातीयता तथा राष्ट्रीयता के परिवेश में व्यक्त होने वाली शौर्य भावना को परम्परागत जातीय अथवा राष्ट्रीय शौर्य भावना का स्वाभाविक विकास माना जा सकता है।

वीरगाथा काल में भारत का पश्चिमी भूभाग जहाँ हिन्दुओं के बड़े बड़े राज्य अधिष्ठित थे भारतीय सभ्यता बल वैभव तथा हिन्दी भाषा का केन्द्र था मुसलमान आक्रमणों से आक्रांत होने के कारण वहाँ के राजाओं को मुसलमानों से युद्ध करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त वे अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए भी आपस में लड़ा करते थे। कभी कभी तो मात्र शौर्य प्रदर्शन के लिए ही उनमें युद्ध ठन जाता था। अतः युद्धों का उक्त शौर्य ही उस समय के काव्य का उपजीव्य बना। फलतः राजाश्रित कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के पराक्रम प्रताप विजय आदि का अपनी वीरगाथाओं में अनूठी उक्तियों के साथ अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया तथा रणभूमि में जाकर अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं द्वारा वीरों के हृदयों में उत्साह का भाव भरा। इस प्रकार वीरगाथा काल में युग प्रवृत्ति के अनुरूप सामन्तवादी शौर्य की उत्कृष्ट व्यंजना हुई।

वीरगाथा काल के उपरान्त भक्तिकाल में भारत में मुस्लिम शासन के स्थिर हो जाने से हिन्दू राजाओं में न तो आपस में और न मुसलमानों से लड़ने

का उत्साह रहा। अतः युद्धों द्वारा अपने धर्म तथा देश की रक्षा के बाह्य प्रयत्न समाप्त होते ही युग के मनस्वी चिन्तकों का ध्यान अपने धर्म के उस व्यापक और हृदयग्राह्य रूप के प्रचार की ओर गया जो धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता की रक्षा करने में समर्थ था। धर्म तथा राष्ट्रीय एकता की रक्षा के इस आध्यात्मिक प्रयत्न में मध्ययुग में वीर-काव्य का स्रोत धीमा पड़ गया। परन्तु मुगल शासकों विशेषकर औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता की नीति से रीति-युग में हिन्दुत्व की रक्षा का प्रश्न नये सिरे से उपस्थित हो गया। अतः धार्मिक अत्याचार और अनौचित्य के विरोध में रीतिकाल की अति शृंगारिक भूमि में भी वीर भावना का स्फुरण हुआ। भूषण, लाल, सूदन आदि कवियों ने शिवाजी, छत्रसाल आदि जातीय महावीरों के प्रशस्ति-गान द्वारा हिन्दू राष्ट्रीयता का शंखनाद किया। यह राष्ट्रीयता हिन्दू मुस्लिम विग्रह की भूमि में अंकुरित हुई थी जब भूषण ने 'आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुआन टूटे' जैसी पंक्तियों द्वारा हिन्दू राष्ट्र की एकता स्थिर रखने की सामयिक चेतावनी दी। आज के 'व्यापक राष्ट्रवाद' की तुलना में भूषण की शौर्य भावना अथवा भाव चेतना जातीय अथवा साम्प्रदायिक भले ही लगे किन्तु उस समय के मुसलमान शासकों का हिन्दुओं के साथ किये गये निर्मम व्यवहार देखते हुए वह सर्वांशतः राष्ट्रीय प्रतीत होती है।

आधुनिक काल में अंगरेजों के भारत में सत्तारूढ़ हो जाने पर जब हिन्दू और मुसलमान दोनों भारतीय राष्ट्र अभिन्न अंग हो गये तब अंगरेजी सत्ता के विरोध में शौर्य भावना का स्वरूप जातीय से विशुद्ध राष्ट्रीय हो गया। भारतेन्दु-युग में जनता के हृदय में देश भक्ति की भावना पल्लवित हो चुकी थी। अतः उस समय की कविता में राष्ट्रीय शौर्य देश भक्ति के प्रसंग में प्रकट हुआ। द्विवेदी-युग में जब राष्ट्रीय-जीवन में स्वतन्त्रता की तीव्र आकांक्षा प्रकट हुई तब राष्ट्रीय चेतना के आरोह प्रवाह के अनुरूप राष्ट्रीय काव्य-वीणा में भी वीर भाव विषयक कर्कश मधुर स्वरों की झंकार उठी। द्विवेदी-युग में महावीरों के प्रशस्ति गान द्वारा वीर भावना उत्पन्न करने की परम्परा चलती रही। रत्नाकर, नाथूराम शंकर, भगवानदीन, रामचरित उपाध्याय, बदरीनाथ भट्ट, कामताप्रसाद गुरु, सियाराम शरण गुप्त आदि कवियों ने शिवाजी, महाराणा प्रताप, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि राष्ट्र-वीरों की प्रशस्तियाँ लिखकर लोगों में आत्म-बल, आत्म विश्वास, दृढ़-संकल्प, त्याग तथा प्राणोत्सर्ग की भावना उत्पन्न की। लाला लाजपतराय, तिलक तथा महामना मालवीय जैसे कर्मवीर

इस युग के राष्ट्रीय एव सास्कृतिक नेता थे। अत उनकी चिन्ताधारा से प्रभावित होकर द्विवेदी-युग के कवियो ने दासता तथा विदेशी सत्ता के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट किया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का ओज उत्साह और दर्प इस युग की राष्ट्रीय कविताओ मे खुलकर व्यक्त हुआ। हिन्दी की पत्र पत्रिकाओ मे विशेषकर कानपुर से निकलने वाले गणेशशकर विद्यार्थी के राष्ट्रीय पत्र प्रताप मे उस समय वीर भावना से पूर्ण शत शत राष्ट्रीय कवितायें प्रकाशित हुइ। छायावाद-युग मे भी महावीरो के प्रशस्ति-गान द्वारा शौर्य भावना उत्पन्न करने की परम्परा जयशकर प्रसाद सुभद्रा कुमारी चौहान श्याम नारायण पाण्डेय आदि कवियो की महाराणा प्रताप झासी की रानी हल्दीघाटी से सम्बन्धित रचनाओ मे देखी जा सकती है। छायावाद-युग मे कमयोग तथा अहिंसा की दीक्षा देने वाले लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाधी जसे राष्ट्र नायक थे। उनकी प्रेरणा से उस समय के सामाजिक धार्मिक सास्कृतिक राजनीतिक आदि सभी पार्श्वों मे कम-योग एव अहिंसा का प्रादुर्भाव हुआ। गीता का कमयोग ही उस समय राष्ट्र वीरो के लिए मुक्ति का साधन बन गया। अत छायावाद युग की कविता मे भी कमयोग की प्रतिष्ठा हुई। महात्मा गाधी ने निष्क्रिय प्रतिरोध अथवा अहिसात्मक सत्याग्रह को स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए अमोघ अस्त्र के रूप मे अपनाया। अत छायावाद-युग की शौय भावना ने अहिंसात्मक क्रान्ति का रूप धारण किया। भारतीय राष्ट्र की शौय भावना का यह अदभुत विकास था। पूववर्ती युगो मे शौय भावना का स्वरूप मुख्यतया व्यक्तिवादी अथवा हिंसात्मक था। जिन इतिहास प्रसिद्ध महावीरो की प्रशस्ति पूववर्ती काव्य मे गाई गई थी उनके प्राणोत्सग का हेतु व्यक्तिगत मान प्रतिष्ठा अथवा जातीय गौरव था। परन्तु गाधी-युग के कमवीर विशद्ध राष्ट्रवाद तथा कमयोग की भावना से ही प्रेरित होकर अपने प्राणो की बाजी लगाने के लिए कटिबद्ध हुए। ये राष्ट्रीय कमवीर रण कौशल मे तलवार लेकर मदान मे उतरने वाले महावीरो से बिलकुल भिन्न थे। वे मानसिक योद्धा थे और उनकी आत्मा फौलादी थी अत उन्हे तलवार की चिन्ता अथवा आवश्यकता न थी। अहिंसा आत्म-बल तथा निष्क्रिय प्रतिरोध उनके अस्त्र थे। उन्ही अस्त्रो द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करना उनका लक्ष्य था। इस प्रकार छायावाद युग मे अभिनव अहिंसात्मक क्षात्र धम की प्रतिष्ठा हुई। इसी से प्रभावित होकर छायावाद-युग मे अहिंसात्मक क्रान्ति की पूण मुद्रा लिए हुए अनेक राष्ट्र गान लिखे गए। मथिली शरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी, गया

प्रसाद शुक्ल सनेही बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामनरेश त्रिपाठी सोहनलाल द्विवेदी आदि अनेक कवियों ने इस अहिंसाव्रती सत्याग्रही वीरों पर सुन्दर कवितायें लिखीं। साहस तथा शौर्य की दृष्टि से ये सत्याग्रही वीर रण-क्षेत्र में जूझने वाले वीरों से कहीं अधिक महान तथा भावना की दृष्टि से मध्यकालीन भक्तों के समान अथवा सन्निकट थे। कर्म योग तथा सत्य अहिंसा से अनुप्राणित होने के कारण इस युग की राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप दार्शनिकता लिए हुए था।। अतः छायावाद काव्य का कर्म प्रधान अहिंसात्मक शौर्य भावना का स्वरूप भी बहुत कुछ दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक हो उठा।

पलायन वृत्ति

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भारतीय जनता का ध्यान स्वतन्त्रता एवं अतीत के वैभव की ओर तो खींचा किन्तु वर्तमान और अतीत की विषमता के कारण स्वतन्त्रता विह्वल युवक पराधीन सुख सपनेहु नाहीं का कटु अनुभव करने लगा। वर्तमान के पराभव और अतीत के वैभव के वैषम्य से चोट खाकर उसका हृदय तड़प उठा। अतः आशा के स्वप्नों के टूट जाने से छायावाद अपनी निकट वास्तविकता की उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगा। इस प्रकार बाह्य जीवन में पराजित होकर छायावाद का कवि अन्तर्जगत का द्रष्टा बन गया। छायावाद की यही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पलायनवाद के नाम से प्रसिद्ध हुई।

निराशावाद

युग चेतना के कारण छायावाद में उत्साह स्फूर्ति और उमंग की कमी नहीं रहा। किन्तु छायावाद-युग के सामने अँगरेजी राज्य की दमन-नीति थी। उधर ब्रिटिश राज्य के अत्याचारों से पीड़ित भारत अपनी स्वतन्त्रता के लिए कृतसंकल्प था। किन्तु १९१९ तथा १९३० के असफल आन्दोलनों के कारण उसकी राष्ट्रीय अथवा स्वातन्त्र्य भावना को गहरी चोट पहुँची थी। विदेशी सरकार की शोषण-नीति ने उनकी पराजय की भावना को और घनीभूत कर दिया। इसके अतिरिक्त युद्धोत्तर काल में जनता विशेषकर शिक्षितों की बेकारी और बेरोजगारी उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। जिससे लोगों को पार्थिव जगत से विरक्ति-सी होने लगी थी। मध्यवर्ग का शिक्षित युवक अपने प्रतियोगी उच्च वर्ग को समझता था अतः मनोवाञ्छित सुविधाओं के अभाव में उनका निराशा से अभिभूत होना स्वाभाविक था। तत्कालीन पूँजी

वादी विचारधारा ने उनमे विद्रोह की भावना जगाई अवश्य किन्तु अपनी जटिल परिस्थितियो के कारण वह नव निर्माण का कोई प्रशस्य मार्ग न निकाल सका। अगरेजी शिक्षा से उसमे क्रान्तिकारी भावना का जन्म तो हुआ जिससे वह अपनी सास्कृतिक रूढियो को छिन्न भिन्न करने के लिए अत्यन्त आतुर हुआ। किन्तु देश की सुधारवादी प्रवृत्ति एव नैतिकता के आतक से उसे अपने विचारो को स्वतन्त्र रूप मे व्यक्त करने का साहस न हो सका। इस प्रकार एक ही साथ राजनीतिक पराधीनता पारिवारिक सकट जर्जर स्वास्थ्य व्यक्तिगत प्रेम की असफलता आदि ने छायावाद के कवि को अत्यन्त क्षुब्ध कर दिया। निदान उसकी मर्दित अभिलाषाए बदिनी होकर एक साथ चीत्कार कर उठी। दार्शनिक स्तर पर वेदान्त के प्रभाव ने उसे घोर अहवादी बना दिया था अत जैसे जैसे उसका अह पराजित होता गया उसमे अवसाद का रग और गहरा होता गया इन सबके उपरान्त छायावाद का कवि स्वप्नो का प्रेमी अथवा स्वच्छदतावादी था और स्वच्छदतावादी कवि मन्तव्य की स्थिति मे प्राय कम रहता है। छायावाद के स्वच्छदतावादी कवि ने यथार्थ जीवन मे ऐहिक आशा आकांक्षाओ की पूर्ति का अवसर न मिलने पर समाज के प्रत्येक बन्धन पर अपने मानसिक स्वातन्त्र्य का काल्पनिक आवरण डालकर निराशा को ही मनोरम[1] और साध्य तथा विसर्जन[3] को अपना उद्धारक मान लिया।

भोगवाद

छायावाद युग के कवि मे वैयक्तिक अनुभूति की तीव्रता थी। अत कालान्तर मे उसमे निराशा के प्रति भी घोर प्रतिक्रिया हुई। निदान निराशा अथवा आत्मग्लानि को दूर करने के लिए उसने भोगवाद अथवा हालावाद का समर्थन किया। इस प्रकार छायावादी कवि की आध्यात्मिक-क्लान्ति जनित

---

१ एक करुण अभाव मे चिर-तृप्ति का ससार सचित
पा लिया मैने किस इस वेदना के मधुर क्रय मे
—महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्करण पृ० १३५

२ विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।
—महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ ८३

३ विसर्जन ही है कर्णाधार वही पहुचा देगा उस पार।
—वही पृ० १

अभावात्मकता को भावात्मकता का एक आधार मिल गया। आध्यात्मिक विद्रोह पर अवलम्बित छायावादी की इस भोगवादी प्रवृत्ति को उमर-खय्याम के जीवन-दर्शन से विशेष उत्तेजन मिला।

काल्पनिकता

छायावाद के कवि को व्यक्तिगत जीवन में निराश होना पड़ा था। अतः उसने निराशा और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भोगवाद के गीत गाये। किन्तु छायावाद के कवि में आदर्श प्रियता कूट-कूट कर भरी हुई थी अतः अपने काव्य में चारों ओर निराशा और भोगवाद का ताना बाना बुनना उसे अभीष्ट नहीं हो सकता था। अतएव अपनी आदर्श प्रियता के प्रदर्शन के लिए उसने कल्पना का सहारा लिया। कल्पना की सहायता से उसने एक ऐसा अनोखा नया संसार निर्मित किया जिसमें किसी प्रकार की त्रुटि अथवा कमी न थी। उस काल्पनिक लोक में उसने नित नवीनता नित्य सुख नित्य जीवन और अपरिमित ऋद्धि सिद्धि का अनुभव किया। अतः कल्पना को उसने सुखदान और जीवन प्राण[1] की संज्ञा दी और आत्म विभोर होकर गाया—

> आह! कल्पना का सुन्दर यह
> जगत मधुर कितना होता।
> सुख स्वप्नों का दल छाया में
> पुलकित हो जगता-सोता।[2]

कल्पना के उक्त दृष्टिकोण के कारण छायावादी काव्य में निजस्वप्न की बहुलता है। छायावाद का कवि कल्पना द्वारा साधना द्वारा जहाँ आध्यात्मिक लोक में पहुँचा था, अतः उसने कल्पना को भी आध्यात्मिक गुणों से मंडित कर दिया। जस ब्रह्म का वर्णन ही कल्पना को भी उसने अगम अगोचर के नाम से सम्बोधित किया।[3] कल्पना वस्तु के बाह्य रूप अथवा यथार्थ का अति

---

१ है कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन प्राण।
तुम विशद व्योम समान
तव अन्त नर नहिं जान ॥१॥
(इन्दु कला १ किरण ८)

२ प्रसाद—कामायानी पृ० ४५

भ्रमण कर उसके अनस म सचरण करती है। इसी म छायावाद म बाह्य अगो म प्रतिबिम्बित और तरगित सुषमा का प्राधाय है। कल्पना क योगदान स छायावादी कवि प्रत्यक वस्तु म अपनी आतरिक अनुभति की छाया दखता है। प्रकृति के बाह्य रूपा अथवा यथाथ पर अपन अन्तर की यवनिका डाल कर उस कल्पना के बेल-बूटा स जगमगा दना छायावादी के कवि कम की विशिष्टता ह। कल्पना और अनुभूति रोमाटिक कविता के दो मूल तत्व है। अत छाया वाद का य म जहा अनुभूति और कल्पना दोनो का सुदर समन्वय हुआ है वही उसम मासल चित्रा का बडी ही सुष्ठु सष्टि हुई है। छायावाद म सत्य की साधना शिवत्व की स्थापना तथा सौदय की उपासना का बहुत कुछ श्रय उसकी कलात्मक कल्पना को है। अधिकाश छायावादी का य सौन्दय परक कल्पना का ही उपजीवी है।

सौदयवाद

सौन्दय परक कल्पना के कारण छायावाद की अन्तश्चेतना सौदय के शुभ्र प्रकाश स उद्दीप्त है। वस्तुत छायावाद का मूल दशन सौदय दशन म निहित है अत उसका मुख्य ध्यय है— सौदय साधना। अन्तजगत के सौदय को रागारुण हृदय की भूमिका म व्यक्त करना छायावाद की मूल प्रवत्ति है। अस्तु हम उस व्यष्टिनिष्ठ सौन्दय काव्य कह सकते है। व्यक्तिवाद और कल्पनावाद के कारण छायावाद सूक्ष्म अत सौदय की ओर प्रवत्त होता है।

छायावाद की कल्पना अरूप और कुरूप म भी सरूप का आरोप करती चलती है। छायावाद का कवि शाश्वत सौदय की खोज करता है। अत वह सौदय की व्याख्या इस प्रकार करता है—

> रूप नही है नश्वर !
> सत्ता का वह पण प्रकृत स्वर
> सुन्दर है वह   अमर।[1]

सौन्दय की इसी व्याख्या के आधारभूत वह अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक सौन्दय की टोह म रहता है कायिक सुख की उपक्षा करता है और कल्पना के मदिर म लौकिक सौन्दय की प्रतिमा स्थापित कर अलौकिक सौन्दय की झाकी दखता है। फिर सुन्दर की तलाश म वह पल पल परिवर्तित होन वाल रूप जगत को त्याग कर उसम निहित अपरिवर्तनशील अव्यक्त सौन्दय क उद्गीथ गाता है।

१—पत-युगवाणी (१९४९) पृ ६२

इसी से छायावाद की सौंदर्य भावना अशरीरी और अस्पष्ट है। अन्तमुखता के कारण छायावादी के कलाकार की दृष्टि बाह्य रूपों पर बहुत देर तक नहीं टिकती अतः वह उन्हीं रूपों के बीच अपने अन्तर की एक अभिनव मूर्ति खड़ी कर देता है। ऐसी मूर्तियों में नारी के रूप, गुण और व्यापार की प्रधानता है। छायावाद का कवि प्रकृति के दिव्य रूपों के प्रति घनी आसक्ति तो रखता है किन्तु उनकी तस्वीर वह अक्सर अपने मन के मधु में लपेट कर उतारता है। प्रसन्न प्रकृति के रूप और आभा के स्वतन्त्र और मनमान्य चित्र उसमें विरल हैं। अन्य शब्दों में निरपेक्ष अथवा तन्मय गोचर प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण छायावाद में बहुत कम हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद का भवन मुख्यतः दो भूमियों यथार्थवाद और आदर्शवाद पर निर्मित हुआ। यथार्थ की भूमि पर उसमें जीवन के हर्ष विषाद, आशा निराशा तथा आवर्तन विवर्तन की अभिव्यक्ति हुई और आदर्श की भूमि पर उसमें निरपेक्ष शाश्वत एवं चिरनवीन का पार्थिव उपादानों द्वारा अवतारणा हुई। इन्हीं दो भूमियों को अपनाने से छायावाद के निराश किन्तु अहवादी एवं स्वप्नदर्शी कवि की वाणी विभिन्न वादों-अद्वैतवाद, रहस्यवाद, सर्वात्मवाद, निराशावाद, भोगवाद आदि का भार सभाल सकी।

छायावाद की पृष्ठभूमि में पनपने वाली उक्त दार्शनिक प्रवृत्तियों तथा उन्हें प्रभावित करने वाले दर्शनों का सम्यक विवेचन हम आगे आने वाले अध्यायों में करेंगे।

३

छायावादी काव्य को प्रभावित करने वाले दर्शन

पिछले अध्याय म छायावाद की प्रवत्तिया की स्थापना म हम यह आए हैं कि सास्कृतिक आन्दोलना के प्रभाव स छायावाद प्राचीन भारत के नाना नान विनान की ओर विशेष रूप मे प्रवत्त हुआ। भारत का प्राचीन नान वेदो और उपनिषदो म सचित है। वेद और उपनिषद ही समस्त भारतीय दाशनिक मनवादा के आदि स्रोत हैं। भारत का साहित्य और शिल्प विधान और दशन धम जाति धम राष्ट्र नीति स्वास्थ्य नीति तथा व्यवहार नीति इन सबका निर्माण विकास और प्रसार वेदा और उपनिषदो म निहित नान को मानव जीवन के परम आदश रूप म मानकर हुआ है। आदिकाल से अब तक वदिक साहित्य ही सम्पूण भारतीय साहित्य का उपजीव्य रहा है। छायावाद काव्य की दाशनिक अभिव्यक्तियां बहुत कुछ वदिक विचारधारा से सम्बद्ध है। अत यहां हम वदिक साहित्य के दाशनिक पक्ष का सक्षप म परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

वेदो मे दाशनिकविचार

भारतीय चिन्ता म अद्वत की अनुभूति अत्यन्त प्राचीन है। वदिक का म ही ऋषियो की अतीन्द्रिय और अतिमानस चेतना ने यह नात कर लिया था कि इस ब्रह्माण्ड के मूल म एक ही शक्ति जिसे ईश्वर कहा जाता है विद्यमान है। उसी मूल शक्ति को ऋषियो ने अभय ज्योति[1] परम पद[2] परम

१—ऋग्वेद २ २७ ११ २ २७ १४

२—ऋग्वेद १ २२ २० २१

व्योम[1] तथा अग्नि आदित्य वायु चन्द्रमा, शुक्र ब्रह्म अप प्रजापति आदि नामों से पुकारा है।[2] वन्दिक कवि ने देवताओं का वर्णन सर्वशक्तिमान के रूप में किया है। ऋग्वेद म इन्द्र को सबसे ऊँचा महान,[3] अजेय[4] जगत का विशिष्ट द्रष्टा[5] आकाश पृथ्वी जल और पर्वत आदि शक्तियों का स्वामी[6] यहाँ तक कि सृष्टिकर्ताओं का भी कर्ता[7] तथा अपने तेज से सारे संसार को पूर्ण कर देने वाला[8] कहा गया है। इसी तरह वरुण की स्तुति समस्त सृष्टि के निर्माता तथा व्यक्त संसार के शासक रूप में की गई है।[9] किन्तु वन्दिक देवताओं म सर्वशक्तिमत्ता का आरोप पृथक पृथक शक्तियों के रूप में नहीं हुआ है। वास्तव में वे एक ही सर्वव्यापक सर्वशक्त ईश्वर के रूप हैं जैसा कि ऋग्वेद के—

इन्द्र मित्र वरुणमग्नि माहु—
रथो दिव्य स सुपर्णो गरुत्मान।
एकसद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्नि यम मातरिश्वान माहु[10]—मन्त्र से स्पष्ट है।

१—ऋग्वेद १ १४ ३ २

२—तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म ता आप स प्रजापति॥ (यजुर्वेद ३२।१)

३—विश्वमादिन्द्र उत्तर—इन्द्र ही सबसे ऊँचा और महान है।
(ऋग्वेद १० ८६ १५)

४—अहमिन्द्रो न पराजिग्ये—मैं इन्द्र हूँ मेरा पराजय नहीं हो सकता।
(ऋग्वेद १० ४८ ५)

५—स इद् विश्व भुवन विचष्टे—वही इस समस्त जगत को विशेष रूप से देखता है। (ऋग्वेद १० ११४ ४)

६—इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वताम।
(ऋग्वेद १० ८९ १०)

७—धाता धातृणा भुवनस्य यस्पतिर्देव त्रातारमभिमातिषाहम्। जो इन्द्र सृष्टिकर्ताओं के भी कर्ता हैं भुवनों के भी अधिपति हैं रक्षक और शत्रु विजेता हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ। (ऋग्वेद १० १२ ८७)

८—आ य पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभि प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा।
(ऋ० १० ८९ १)

९—सत्ता भस्य राजा—ऋ० ७ ८७ ६

१०—ऋ० म० अष्ट० २ अ०३ व० २३ म० ४६

इसस यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय एकेश्वरवाद एक पर मश्वर म विश्वास रखने के लिए अनेक देवताओ का अस्वीकार करन की अपेक्षा नही रखता। छायावाद म मेघ मरुत सविता आदि प्राकृत शक्तिया म विश्वत्व अथवा दिव्य शक्ति के आरोप की प्रवत्ति म वदिक एकेश्वरवाद अथवा आत्मवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है।

पुरुष सूक्त

ऋग्वेद का यह विचार कि सभी देवता एक ही ईश्वर के रूप हैं इस व्यापक सिद्धान्त पर आश्रित है कि मूल सत्ता एक ही है। इस सिद्धान्त का स्पष्ट उदाहरण ऋग्वद के पुरुष सूक्त म मिलता है। इस सूक्त म वदिक ऋषि ने सम्पूर्ण जगत का एक ही रूप म देखा है। विद्वानो के अनुसार मानवीय इतिहास म अद्वत की यही प्रथम अनुभूति है।[1] इस सूक्त म पृथ्वी स्वर्गलोक ग्रह-नक्षत्र देवता जडचेतन सभी पदाथ एक ऐसे पुरुष के अश माने गये हैं जो सम्पूर्ण विश्व म व्याप्त है।[2] इसके अनुसार जो कुछ है था और होगा सब उसम सनिहित है।[3] इसम केवल विश्व की एकता का ही कवित्वपूर्ण वणन नही मिलता प्रत्युत उस परम पुरुष की झलक भी मिलती है जो विश्व के अणु अणु म व्याप्त होते हुए उससे परे भी है।[4] वेदो से प्रेरणा ग्रहण करने वाला छायावादी कवि वदिक पुरुष स अवश्य प्रभावित हुआ होगा ऐसा कहा जा सकता है। अत उसका आध्यात्मिक प्रणय अथवा विरह निवेदन इस परम पुरुष के प्रति भी माना जा सकता है। कम-से कम महादेवी वर्मा के प्रणय व्यापार का सम्बन्ध इस परम पुरुष के साथ अत्यन्त स्वाभाविक रूप से जोडा जा सकता है। इसके अतिरिक्त छायावाद मे प्राकृत शक्तियो को ईश्वर के अश रूप मे चित्रित करने की भावना को भी इस सूक्त से यथेष्ट प्रेरणा मिली होगी इसम सन्देह नही।

---

१ चटर्जी एण्ड दत्त—एन इण्ट्रोडक्सन टु इण्डियन फिलासोफी प्रथम सस्करण पृष्ठ ३५९

२ सभूमि सवत वत्वा। ऋग्वेद १०।९०।१

३ पुरुष एवेद सर्व यद्भूत यच्च भाव्यम। ऋग्वेद १०।९ ।२

४ त्रिपादूर्ध्व उदत्पुरुष पादोऽस्येहा भवत्पुन।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ ऋग्वेद १०।९०।४

सृष्टि-विचार

वेदों में जगत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई तरह के विचार मिलते हैं। उनमें कभी इन्द्र, कभी वरुण, कभी विश्वकर्मा आदि को सृष्टि का कर्ता कहा गया है।[१] किन्तु नासदीय सूक्त का विशद वर्णन दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसमें हम उस निर्गुण ब्रह्म का वर्णन मिलता है जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उद्भूत होते हैं और जो विश्व के कण-कण में व्याप्त है। इस सूक्त से यह ज्ञात होता है कि इस जगत की उत्पत्ति से पहले न असत था और न सत। उस समय रजस भी नहीं था।[२] उस समय प्रथमावस्था में मृत्यु नहीं थी, रात और दिन का भी भेद नहीं था। वायु शून्य तथा आत्मबल से शून्य श्वास-प्रश्वास-युक्त केवल एक ब्रह्म था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।[३] सृष्टि-काल में जगत के बीज रूप मन में उत्पन्न होने वाली इच्छा के समान सर्वत्र एक कामना विद्यमान थी, इसलिए परमात्मा के मन में प्रथम सिसृक्षा (लीला विस्तार की कामना) उत्पन्न हुई।[४] इससे स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आरम्भ में एक अव्यक्त चेतन था, जिसमें कालान्तर में सृष्टि-प्रपञ्च उत्पन्न हुआ। छायावाद में नासदीय सूक्त के इस तथ्य की कि ब्रह्म ने अपने एकाकीपन का अनुभव कर शून्य में विश्व की रचना कर डाली, जिज्ञासापूर्ण अभिव्यक्ति मिल जाती है।[५]

---

१ डॉ० उमेश मिश्र : भारतीय दर्शन (देखिए) पृ० ३४

२ नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।

ऋग्वेद १०।१२९।१

३ न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥

ऋग्वेद १०।१२९।२

४ कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। ऋग्वेद १०।१२९।४

५ न थे जब परिवर्तन दिन रात, नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात
व्याप्त क्या सूने में सब ओर एक कम्पन थी एक हिलोर।
न जिसमें स्पन्दन था न विकार, न जिसका आदि न उपसंहार।

× × × ×

हुआ क्यों सूनेपन का भान प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण

महादेवी वर्मा : रश्मि, १९३८, पृ० ६५।

आरण्यक मे ब्रह्म की भावना

आरण्यकों म ब्रह्म के तीन स्वरूप कहे गये है। पृथ्वी अग्नि के रूप म स्थूल मनस आदि के रूप म सूक्ष्म तथा प्रणव के रूप म शब्द ।[1] ज्ञानियो के लिए यह ब्रह्म सत और अज्ञानियो के लिए असत है।[2] प्रणव स्वरूप ब्रह्म म समस्त जगत लय हो जाता है और उसी स पुन स्थावर और जगम रूप म समस्त जगत उत्पन्न होता है।[3] यह सत्य ज्ञान और अनन्त है।[4] परम आकाश म यह अभिव्यक्त होता है और इसी के दशन स मुक्ति मिलती है।[5] छायावाद क कवि न जिस ब्रह्म के प्रति आसक्ति दिखाई है वह आरण्यको क ब्रह्म म नितान्त अभिन्न है।

ब्रह्म और आत्मा का भेद

आरण्यक म आत्मा को विज्ञानमय तथा आनन्दमय कहा गया है।[6] इसके अनन्तर अन्त म आत्मा को आनन्द ही कहकर आरण्यक न आत्मा के परम स्वरूप का परिचय दिया है। ऐतरेय ब्राह्मण म द्यावा पृथ्वी के बीच क आकाश के साथ आत्मा का अभिन्न कहा गया है।[8] ऐतरेय आरण्यक म आत्मा के स्वरूप का पूण परिचय दिया गया है। आत्मा स ही लोको की सृष्टि बताई गई है और उसके निरुपाधि तथा उपाधि सहित स्वरूप का भी वणन किया गया है।[9] बाद म विद रूप पुरुष या ब्रह्म के साथ इस आत्मा का अभिन्न भी ऐतरेय आरण्यक म कहा गया है।[10] इस आरण्यक म स्पष्ट कहा गया है कि शुद्ध चैतन्य को छोडकर अन्य कोई भी पदाथ जगत म नही है। यही आत्मा सभी दवता हैं तथा स्थावर और जगम जो कुछ भी इस जगत म है सभी आत्मा ही है। इसी आत्मा स सृष्टि होती है इसी म सभी पदाथ स्थित है तथा इसी म अन्त म लीन भी हो जाते हैं।[11] आरण्यक ग्रथो म वर्णित आत्मा और ब्रह्म के अभेद का इस

१ तत्तिरीय आरण्यक ७–६–८
२ तत्तिरीय आरण्यक ७–८।
३ तत्तिरीय आरण्यक ८–६।
४ तत्तिरीय आरण्यक ९–१।
५ तत्तिरीय आरण्यक ८–२।
६ तत्तिरीय आरण्यक ९–१।
७ तत्तिरीय आरण्यक ९–१।
८ वही १–३–८
९ डा उमेश मिश्र भारतीय दशन पृ० ४५
१० वही २–४१ ३।
११ एतरेय आरण्यक २–६–१

सिद्धान्त को छायावाद का कवि भी अपनी कृतियों में वाणी देता हुआ पाया जाता है।

उपनिषदों में दार्शनिक विचार

उपनिषत्काल में आकर ब्रह्म चिन्तन की शैली में अत्यधिक विकास हो जाता है। सूक्ष्म ब्रह्म की मीमांसा उपनिषदों में ही मिलती है। ब्रह्म विचार आत्म-साक्षात्कार अथवा ब्रह्म और आत्मा में अभेद की साक्षात अनुभूति ही उपनिषदों का चरम लक्ष्य है।

ब्रह्म

उपनिषद का ब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि उसका लक्षण बताना एक प्रकार से असम्भव है। फिर भी ऋषियों ने उपनिषदों में अनेक प्रकार से उसके स्वरूप का वर्णन किया है। उन्होंने उसे एक ओर अगोचर अग्राह्य अगोत्र अवर्ण अचक्षु अश्रोत्र[1] अशब्द अस्पर्श अरूप अरस अगन्ध[2] आदि कहकर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म घोषित किया है और दूसरी ओर उसे विश्वरूप सर्वत्र पूर्ण व्यापक[3] अव्यय नित्य अनादि अनन्त परम महत[4] आकाश के सदृश व्यापक[5] आदि बताकर विराटरूप चित्रित किया है। कहीं पर उसे सत्य सकल्प वाणीरहित सम्भ्रमशून्य[6] सब का साक्षी चेता गुणातीत[7] आदि कहकर निर्गुण घोषित किया है और कहीं पर मनोमय प्राण-रूप सर्वरस सर्वगन्ध[8] आदि कहकर उसमें गुणों का आरोप कर दिया गया है। कहीं पर उसे ज्ञानरूप बताकर इस अनेकरूपात्मक जगत का कर्ता कहा गया है[10] और कहीं पर अकर्ता।[11] इस प्रकार उपनिषदों का ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् का कर्ता होते हुए भी अकर्ता[12] है सर्वशक्तिमान एवं सब रूप में समय होकर भी सबसे सर्वथा अतीत और असंग है सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी निर्गुण है तथा समस्त विशेषणों से युक्त होते हुए भी निर्विशेष है। वैदिक कवि एस

---

१ मु० उ० १।१।६ २ कठोपनिषद १।३।१५

३ श्वेताश्वतर उपनिषद १।९ ४ मु० उ० १।१।६

५ कठोपनिषद १।३।१५ ६ छा० उ० ३।१४।२

७ छा० उ० ३।१४।२ ८ श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।११

९ छा० उ०, ३।१४। १० मु० उ० १।१।९

११ श्वेताश्वतर उपनिषद १।९ १२ गीता ४।१३

शब्द और अशब्द अगध और सवगध यक्त और अव्यक्त[1] ब्रह्म का लक्षण बताने म कठिनाइयो का अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है। इसीम उसकी वणन शली स्थान स्थान पर रहस्यमय हो गई है। यथा ईशोपनिषद के इस मत्र म—

तदेजति तन्नजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सवस्य तदु सवस्यास्य बाह्यत ॥[2]

इसी प्रकार ब्रह्म के निर्विशेष रूप का वणन करने म भी वदिक कवि रहस्यपूण शैली का अवलम्बन करता हुआ पाया जाता है। यथा—

'वह न भीतर की ओर प्रज्ञावाला है न बाहर की ओर प्रज्ञावाला है न दोनो ओर प्रज्ञावाला है न प्रज्ञानघन है न जानने वाला है न नही जानने वाला आदि।[3] वदिक कवि इसी अद्वितीय रहस्यपूण ब्रह्म को जानने का आदेश करता है क्योकि उसका जानकर मनुष्य समस्त सासारिक बन्धनो से मुक्त हो जाता है।[4] किन्तु वह मन वाणी आदि समस्त इन्द्रियो की पहुँच से बाहर है।[5] वह प्रवचन और बुद्धि से भी प्राप्त नही हो सकता।[6] वह जानने योग्य ब्रह्म मनुष्य के हृदय म ही अन्तर्यामी रूप म स्थित है।[7] जो साधक उसे सत्य के द्वारा सयमरूप तप से देखता रहता है–चिन्तन करता रहता है वह उसका साक्षात्कार कर लेता है।[8]

उपनिषदो का उक्त अनिवचनीय सगुण निगुण सूक्ष्म विराट ब्रह्म छायावादी कवि के भी चिन्तन का विषय रहा है। छायावाद के कवि ने बार बार अपनी कृतियो म अदृश्य अस्पृश्य अचिन्त्य अव्यक्त अरूप तथा मन वचन-अगोचर ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट किया है। निगुण और निर्विशेष ब्रह्म को चित्रित करने के इस प्रयास म उसकी भावाभिव्यक्ति भी स्थान स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म हो गई है। उपनिषदो म भयमूलक अपार्थिव

---

१ श्वेताश्वतरोपनिषद् १।८
२ ईशोपनिषद ५
३ मा० उ० ७
४ श्वेताश्वतरोपनिषद ५।१३
५ तत्तिरीयोपनिषद नवम अनुवाक
६ कठोपनिषद १।२।२३
७ श्वेताश्वतरोपनिषद् १।१२
कठोपनिषद २।१।११
८ श्वेताश्वतर उपनिषद १।१५

नान की प्रचुरता है, अत उसके प्रभाव स छायावाद म पार्थिवता के प्रति उपेक्षा का भाव भी जागरित हो उठा है। एकमात्र ब्रह्म ही जानन योग्य है उपनिषद के इस आदेश की छाया छायावाद म अव्यक्त सत्ता के प्रति किए गए आग्रह अनुग्रह अथवा किसी असीम प्रियतम के निमित्त अभूतपूव प्रणय निवेदन के मूल म देखा जा सकता है। इस प्रकार स उनिपदो का ब्रह्म ही छायावाद की निरपेक्ष साधना का आधार रहा है। इसीसे छायावाद का कवि निरपेक्ष सत्य किंवा परम सुन्दर का उदगीथ गाता है और कविता को ब्रह्म की सन्देश वाहिका के रूप मे चित्रित करता है।[1]

उपनिषद्-मन्त्रो म प्रभावित होकर छायावाद के कवि न प्रकृति के रम्य रूपो मे विराट की भी कल्पना की है। छोटी स छोटी वस्तु को भी विराट रूप म चित्रित करने का उत्साह उसने दिखाया है। इस सम्बन्ध म उसका स्वय मापन है —

छायावादियो म भागवत या विराट चेतना के प्रति एक क्षीण दुबल आग्रह आकुलता या बौद्धिक जिज्ञासा की भावना रही है।[2] इसीसे अपनी काव्य-साधना के सम्बन्ध मे उसने उदात्त स्वर मे कहा है—

काव्य मे साहित्य के हृदय को निगत-व्याप्त करन के लिए विराट रूपो की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। रूप की साथक लघु विराट कल्पनाए ससार के सुन्दरतम रगो से जिस तरह अंकित हो उसी तरह रूप तथा भावनाओ का अरूप म साथक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कष। इस तरह काव्य के भीतर स अपने जीवन के सख दुखमय चित्रो को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूणता म होगी।[3] इसी उदात्त प्रवृत्ति के आधारभूत छायावाद के कवि ने

---

१ भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका
उस कविता का
वह थी निश्छल अविकार
अग अग से उठी तरगें उसके
वे पहुची कवि के पास कहा—
तुम चलो बुलाया है उसने जल्दी तुमको उस पार।

निराला—परिमल पृ० ११३ १४

२ पन्त गद्य-पद्य प्रथम सस्करण पृ० १३५ ३६

३ निराला प्रबन्ध पद्म द्वितीयावृत्ति २०१९ वि०, पृ० १५४ ५५

न्त और अशब्द, अगध और सवगध "यक्त और अव्यक्त[1] ब्रह्म का लक्षण बताने मे कठिनाइयो का अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है। इसीसे उसकी वर्णन शैली स्थान स्थान पर रहस्यमय हो गई है। यथा ईशोपनिषद के इस मन्त्र मे—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत ॥[2]

इसी प्रकार ब्रह्म के निर्विशेष रूप का वर्णन करने मे भी वैदिक कवि रहस्यपूर्ण शैली का अवलम्बन करता हुआ पाया जाता है। यथा—

वह न भीतर की ओर प्रज्ञावाला है न बाहर की ओर प्रज्ञावाला है न दोनो ओर प्रज्ञावाला है न प्रज्ञानघन है न जानने वाला है न नहीं जानने वाला आदि।[3] वैदिक कवि इसी अद्वितीय रहस्यपूर्ण ब्रह्म को जानने का आदेश करता है क्योकि उसको जानकर मनुष्य समस्त सासारिक बन्धनो से मुक्त हो जाता है।[4] किन्तु वह मन वाणी आदि समस्त इन्द्रियो की पहुँच से बाहर है।[5] वह प्रवचन और बुद्धि से भी प्राप्त नही हो सकता।[6] वह जानने योग्य ब्रह्म मनुष्य के हृदय मे ही अन्तर्यामी रूप मे स्थित है।[7] जो साधक उसे सत्य के द्वारा सयमरूप तप से देखता रहता है–चिन्तन करता रहता है वह उसका साक्षात्कार कर लेता है।[8]

उपनिषदो का उक्त अनिर्वचनीय सगुण निर्गुण सूक्ष्म विराट ब्रह्म छायावादी कवि के भी चिन्तन का विषय रहा है। छायावाद के कवि ने बार बार अपनी कृतियो मे अदृश्य अस्पृश्य अचिन्त्य अव्यक्त अरूप तथा मन वचन अगोचर ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट किया है। निर्गुण और निर्विशेष ब्रह्म को चित्रित करने के इस प्रयास मे उसकी भावाभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म हो गई है। उपनिषदो मे त्रयमूलक अपार्थिव

---

१ श्वेताश्वतरोपनिषद १।८
२ ईशोपनिषद ५
३ मा उ ७
४ श्वेताश्वतरोपनिषद ५।१३
५ तैत्तिरीयोपनिषद नवम अनुवाक
६ कठोपनिषद १।२।२३
७ श्वेताश्वतरोपनिषद ३।१२
   कठोपनिषद २।१।११
८ श्वेताश्वतर उपनिषद १।१५

ज्ञान की प्रचुरता है अतः उसके प्रभाव से छायावाद में पार्थिवता के प्रति उपेक्षा का भाव भी जागरित हो उठा है। एकमात्र ब्रह्म ही जानने योग्य है उपनिषद के इस आदेश की छाया छायावाद में अव्यक्त सत्ता के प्रति किए गए आग्रह अनाग्रह अथवा किसी असीम प्रियतम के निमित्त अभूतपूर्व प्रणय निवेदन के मूल में देखा जा सकता है। इस प्रकार से उपनिषदों का ब्रह्म ही छायावाद की निरपेक्ष साधना का आधार रहा है। इसीसे छायावाद का कवि निरपेक्ष सत्य किंवा परम सुन्दर का उद्गीथ गाता है और कविता को ब्रह्म की सन्देश वाहिका के रूप में चित्रित करता है।[1]

उपनिषद मन्त्रों से प्रभावित होकर छायावाद के कवि ने प्रकृति के रम्य रूपों में विराट की भी कल्पना की है। छोटी से छोटी वस्तु को भी विराट रूप में चित्रित करने का उत्साह उसने दिखाया है। इस सम्बन्ध में उसका स्वयं कथन है —

छायावादियों में भागवत या विराट चेतना के प्रति एक क्षीण दुर्बल आग्रह आकुलता या बौद्धिक जिज्ञासा की भावना रही है।[2] इसीसे अपनी काव्य साधना के सम्बन्ध में उसने उदात्त स्वर में कहा है—

काव्य में साहित्य के हृदय को दिगत-व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। रूप की साधक लघु विराट कल्पनाएं संसार के सुन्दरतम रंगों से जिस तरह अंकित हों उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में साधक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष। इस तरह काव्य के भीतर से अपने जीवन के सुख दुखमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूर्णता में होगी।[3] इसी उदात्त प्रवृत्ति के आधारभूत छायावाद के कवि ने

---

१ भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका
उस कविता का
वह थी निश्छल अविकार
अंग अंग से उठी तरंगें उसके
वे पहुंची कवि के पास कहा—
तुम चलो बुलाया है उसने जल्दी तुमको उस पार।
निराला—परिमल पृ० ११३ १४

२ पन्त गद्य-पथ प्रथम संस्करण पृ० १३५ ३६

३ निराला प्रबन्ध पद्म द्वितीयावृत्ति २०१९ वि०, पृ० १४४ ४५

रूप म अरूप सीम म असीम मय म अभय सान्ति म अनादि सान्त म अनन्त दुःख म सुख तथा अपूर्ण म पूर्ण की खोज की।

आनन्दमय ब्रह्म

उपनिषदो का ब्रह्म सच्चिदानन्द है। उसी रस रूप अथवा आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त कर जीव आनन्दित होता है।[1] बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार सभी प्राणी ब्रह्मानन्द के किसी अश को ही लेकर जीते है।[2] तैत्तिरियोपनिषद कहती है कि यदि वह आकाश की भाति परिपूर्ण आनन्दस्वरूप ब्रह्म नही होता तो कौन जीवित रह सकता कौन प्राणो की क्रिया कर सकता। सचमुच यह ब्रह्म ही सबको आनन्द प्रदान करता है।[3] इस प्रकार उपनिषद का ब्रह्म समस्त आनन्द का उत्स है। उपनिषद का स्पष्ट मत है कि आनन्द ही ब्रह्म है उसी से समस्त प्राणी उत्पन्न होते है उत्पन्न होकर आनन्द मे ही जीते है और इस लोक से प्रयाण करते हुए आनन्द म ही प्रविष्ट हो जाते है।[4] जो ब्रह्म के इस आनन्दमय रूप को जानता है वह किसी से भयभीत नही होता।[5] यह आनन्द भोगो म कामना रहित वेदन को स्वभावत प्राप्त है।[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदो के अनुसार मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है।

छायावाद के आनन्दवाद का एक सुदृढ आधार उपनिषदो का यह आनन्दमय ब्रह्म भी बना। ब्रह्मानन्द के लोभ से ही छायावाद का कवि अतीन्द्रिय आनन्द अथवा आत्मानन्द की ओर प्रवृत्त हुआ।

भूमा

वेदान्त दर्शन का मत है कि जो भूमा के धर्म बतलाये गये है वे भी ब्रह्म म ही सुसगत हो सकते है अत भूमा भी ब्रह्म ही है।[7] छान्दोग्य

---

१ रसो वै स । रस ह्येवाय लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति ।
—तैत्तिरीयोपनिषद—२।७

२ बृहदारण्यक उपनिषद ४।३।३२

३ तैत्तिरीयोपनिषद २।७

४ तैत्तिरीयोपनिषद भृगुवल्ली षष्ठ अनुवाक

५ आनन्द ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कुतश्चनेति ।
तैत्तिरीय उपनिषद २।९

६ वही २।८

७ धर्मोपपत्तेश्च (ब्रह्मसूत्र १।३।९)

उपनिषद में भूमा प्रकरण में सनत्कुमार ने नारद से कहा है कि जहां पहुंचकर न अन्य किसी को देखता है न अन्य को सुनता है न अन्य को जानता है वह भूमा है। जहाँ अन्य को देखता सुनता और जानता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह नाशवान है। इस पर (जब) नारद ने पूछा— भगवन! वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है। (तब) उत्तर में सनत्कुमार ने कहा— अपनी महिमा में। और आगे फिर कहा कि धन सम्पत्ति मकान आदि जो महिमा के नाम से प्रसिद्ध है ऐसी महिमा में वह भूमा प्रतिष्ठित नहीं है।[1] किन्तु वही नीचे ऊपर आगे पीछे दायें और बायें है तथा वही यह सब कुछ है।[2] इसके बाद उस भूमा को ही आत्मा के नाम से कहा गया है और यह भी बताया है कि आत्मा ही नीचे ऊपर आगे पीछे दायें और बायें है तथा वही सब कुछ है। जो इस प्रकार देखने मानने तथा विशेष रूप से जानने वाला है आत्मा में ही क्रीडा करने वाला आत्मा में ही रति वाला आत्मा में ही जुड़ा हुआ तथा आत्मा में ही आनन्द वाला है।[3] इन सब धर्मों की संगति परब्रह्म परमात्मा में ही लग सकती है अतः वह इस प्रकरण में भूमा के नाम से कहा गया है। ब्रह्म ही भूमा है अतः उपनिषद आदेश करती है कि निश्चय जो भूमा है वही सुख है अल्प में सुख नहीं है। सुख भूमा ही है। भूमा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए।[4] कामायनीकार जयशंकर प्रसाद ने विषमता की पीड़ा (अल्पता) को उपनिषद के उक्त विराट रूप भूमा (ईश) का ही मधुमय दान कहा है।[5]

आत्मा का स्वरूप

उपनिषदों में ब्रह्म को कभी सत और कभी आत्मा कहकर आत्मा और ब्रह्म में अभिन्नता स्थापित की गई है। ऐतरेय[6] और बृहदारण्यक[7] में कहा

---

१ छा० उ० ७।२४

२ वही ७।२५

३ वही ७।२५

४ वही ७।२३

५ विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान
यही सुख दुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान।
कामायनी पृ० ६२

६ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत। ऐतरेय उपनिषद १।१

७ बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१

गया है कि पहले आदि में यह केवल आत्मा मात्र था। छान्दोग्य में कहा गया है कि यह सब कुछ आत्मा ही है।[1] इसी को जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।[2] इसी तरह ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है।[3] इन सब स्थलों में ब्रह्म और आत्मा एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं कहीं तो स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है।[4] मैं ब्रह्म हूं।[5] उपनिषद के अनुसार आत्मा का ज्ञान अन्तःकरण की परिशुद्धि ही के द्वारा प्राप्त होता है।[6]

उपनिषदों में आत्मा और ब्रह्म के अभेद के सिद्धान्त से प्रेरणा प्राप्त कर छायावाद के अद्वैतवादी कवि का ब्रह्मभाव जाग उठा जिससे वह ब्रह्म की भांति ही इस पञ्चभूत की रचना में एक तत्व बनकर रमण करने का अभिलाषी बन बैठा।[7] किन्तु इस अहंभाव के साथ साथ आत्म ज्ञान प्राप्त करने की लालसा के कारण उसमें आत्म शुद्धि की पवित्र भावना का भी उदय हुआ।

जीव

जीव के सम्बन्ध में उपनिषदों का मत है कि जैसे जलती हुई आग से उसी के समान रूपवाली सहस्रों चिनगारियां निकलती रहती हैं उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव (जीव) उत्पन्न होते और उन्हीं में लीन होते रहते हैं।[8] इस प्रकार जीव ब्रह्म का अंश है। एक दूसरे मन्त्र में कहा गया है कि यह सारी प्रजा सत रूपी कारण से उत्पन्न हुई है और सत में ही निवास करती है और अन्त में भी सत में ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब कुछ ब्रह्मरूप है। वह ब्रह्म ही सत्य है वही आत्मा है। वह ब्रह्म तू है।[9]

---

१ आत्मा एव इदं सर्वम्। छा० उ० ७।२५।२

२ आत्मनि खलु अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम्।
बृहदारण्यक उपनिषद ४।५।६

३ सर्वं खलु इदं ब्रह्म। छां० उ० ३।१४।१९

४ अयमात्मा ब्रह्म। बृहदारण्यक उ० २।५।१९

५ अहं ब्रह्मास्मि। बृहदारण्यक उ० १।४।१

६ बृहदारण्यक उपनिषद ४।४।१९

७ इस पञ्चभूत की रचना में मैं रमण करूं बन एक तत्व।
—प्रसाद कामायनी पृ० १६१

८ मु० उ० २।१।१

९ छां० उ० ६।८।७

यहाँ पर जीव और ब्रह्म में अभेद स्थापित किया गया है। छायावाद के कवि ने जीव को ब्रह्म के अंश रूप में भी अपनाया है और ब्रह्म के साथ उसका (जीव का) अभेद भी स्थापित किया है।

उपनिषद में सृष्टि प्रक्रिया

सृष्टि की प्रक्रिया भी उपनिषद में वर्णित है। उसके अनुसार सृष्टि के आदि में कुछ भी नहीं था। केवल मृत्यु था। बाद को मन, जल, तेजस, पृथ्वी और अन्त में प्रजापति की सृष्टि हुई। इसके पश्चात सुर और असुर हुए।[1] एक दूसरे स्थान पर यह भी कहा गया है कि सबसे पहले पुरुष का और बाद में स्त्री का स्वरूप उत्पन्न हुआ और इन दोनों में विश्व की सृष्टि हुई।[2] आकाश से सृष्टि होती है और उसी में जगत का लय भी होता है।[3] इस प्रकार के अनेक रूपों में सृष्टि का वर्णन है। किन्तु उन समस्त रूपों के सम्यक अध्ययन से यही ज्ञात होता है कि सबसे पहले एक अव्यक्त रूप था और उसीसे व्यक्त रूप में जगत की सृष्टि हुई है। यह अव्यक्त रूप ही परब्रह्म है और समस्त जगत इसी से उत्पन्न होता है तथा अन्त में इसी लय को प्राप्त करता है, यही उपनिषद में कहा गया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।[4]

अतएव ब्रह्म ही जगत का निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है।

आत्मसाक्षात्कार के उपाय

उपनिषदों के अनुसार आत्मा के साक्षात्कार तथा ब्रह्म ज्ञान के लिए जीव को कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयम रखना आवश्यक है। सत्य का पालन करना, किसी वस्तु का अपहरण न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, इन्द्रियों का निग्रह करना, हिंसा से विरत रहना, माता, पिता तथा अतिथियों का देवता के समान आदर करना, निन्दनीय कर्मों को न करना, संसार के विषयों को ब्रह्म ज्ञान का शत्रु समझना, इत्यादि कर्मों के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार के लिए अपने अन्तःकरण को हर तरह से पवित्र रखना अथवा

---

१ बृहदारण्यक, १।३।१ छान्दोग्य ५।१।१९
२ बृहदारण्यक १।४।१
३ छान्दोग्य, १।९।१
४ तैत्तिरीय उपनिषद ३।१

श्यक है ।[1] छायावाद काय म भी आत्मसाक्षात्कार के लिए अपेक्षित उपनिषदो के उक्त उपायो अर्थात कायिक, वाचिक तथा मानसिक सयम द्वारा अन्त करण की शुद्धि के प्रति विशेष आग्रह पाया जाता है ।

आत्मज्ञान की अनुभूति प्रतिक्रिया

अन्त करण शुद्ध होने के कारण जहत और अजहत लक्षणो के द्वारा साधक को तत (आत्मा) और त्वम (जीवात्मा) के ऐक्य का ज्ञान हो जाता है । इसके पश्चात साधक अपने ही शरीर मे अहम ब्रह्म अस्मि[2] या स अहम आदि उपनिषद महावाक्य के उपदेश को गुरु मुख स सुनकर स्वय अपने ही आत्मा म ब्रह्म का अनुभव करने लगता है । इस वाक्य के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर जीव अयम आत्मा ब्रह्म[3] इस महावाक्य का अनुभव करन का अभ्यास करता है । इस अवस्था मे पहुचकर साधक को क्रमश तत त्व अहम और अयम इन सभी भावनाओ का अपनी आत्मा के साथ अपने ही शरीर के भीतर ऐक्य का अनुभव हो जाता है । इस प्रकार जीव अपने स्वरूप का साक्षात्कार आत्मा के रूप म करने के अनन्तर एकेन विज्ञा नेन सव विज्ञात भवति[4] इस उपनिषद महावाक्य के अनुसार वह साधक सभी वस्तुओ का ज्ञान प्राप्त कर सव खल्विद ब्रह्म[5] की अनुभूति स्वय कर लेता है। यही उपनिषदो का रहस्य है उपदेश है तथा चरम लक्ष्य है । इसी की अपरोक्षा नुभूति स साधक दुख की आत्यन्तिक निवत्ति को प्राप्त करता है । वह बाद म ससार ब धन स मुक्ति पाकर जन्म मरण के पाश स सब दिन के लिए छुटकारा पाकर उस अनामय सच्चिदानन्द परम पद को प्राप्त कर इस ससार म पुन नही आता ।[6] इसी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तत्व एक ही है और उसी स समस्त ससार की वस्तुएँ उत्पन्न होती है और पुन अन्त म उसी म लीन हो जाती है । इसीलिए श्रुति मे कहा है— वाचारम्भण विकारो नामधेय मृत्तिकेत्येव सत्यम ।[7]

१ डा उमेश मिश्र भारतीय दशन पृ० ६१
२ बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१०
३ वही २।५।१९
४ पचब्रह्मोपनिषद २९ ३
५ छान्दोग्य उपनिषद ३।१४।१
६ गीता ८ २१ १५ ६
७ छान्दोग्य उपनिषद ६ १ ४ ६

छायावाद का कवि भी वैदिक कवि की भाँति ही आत्मा परमात्मा तथा ब्रह्म और जगत की एकता स्थापित करता है जगत का ब्रह्मरूप चित्रित करता है तथा ब्रह्म को इस जगत का निमित्त और उपादान दोनो कारण मानता है। किन्तु उसकी उक्त अभिव्यक्तियाँ वैदिक कवि की भाँति साधना प्रसूत नही है। उपनिषद ज्ञान का अनुभव उसने तपस द्वारा प्राप्त नही किया है। अभिप्राय यह कि छायावाद का कवि साधक योगी अथवा तपस्वी नही है। किन्तु उपनिषद् ज्ञान के प्रति वह अत्यन्त श्रद्धावान तथा आस्थावान है। अत उसने उपनिषदो के दार्शनिक विचारो को अपनी भावना अथवा अनुभूति का अंग बनाने का सवश प्रयास किया है और उसे अपने इस प्रयास म--उपनिषद ज्ञान की भावात्मक अभिव्यक्ति देने म--अपूर्व सफलता भी मिली है।

अद्वैत दर्शन

शांकर वेदान्त

अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का विचार उपनिषदो म विशेष रूप से किया गया है। बाद म दर्शन शास्त्रो के जितने रूप हुए उन सबका मूल तत्व उपनिषदो म निहित है। किसी शास्त्र विशेष के समान तत्व निर्धारण अथवा विचारो का वर्गीकरण उपनिषदो म नहीं मिलता। इस प्रकार उपनिषद ज्ञान के आदि स्रोत है। उनम चार्वाक दर्शन का भी मत उसी प्रकार कहा गया है जिस प्रकार वेदान्त या शून्यवादी बौद्धो का। जडवाद अथवा अनात्मवाद से लेकर आत्मवाद अथवा अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाले सभी विचारक अपने मत के समर्थन म उपनिषद ज्ञान का सहारा लेते हैं। सभी उसे प्रमाण मानते है।

वेदान्त-दर्शन के अपूर्व ग्रंथ बादरायण के ब्रह्मसूत्र पर अनेक भाष्य लिखे गये है, जिनम भाष्यकारो ने अपने-अपने दृष्टिकोण एव धारणाओ के अनुरूप वेदान्त का प्रतिपादन किया है। प्रत्येक भाष्यकार ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि उसी का भाष्य श्रुति-सम्मत है, इस प्रकार शंकर रामानुज मध्वाचार्य वल्लभाचार्य निम्बार्क आदि के नाम पर वेदान्त के विभिन्न सम्प्रदाय खडे किये गये है जिनम शांकर वेदान्त और रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शकर और रामानुज दोनो उपनिषद् के सर्व खल्विदं ब्रह्म के आधार पर यह प्रमाणित करते है कि जड और चेतन दो अलग अलग सत्ताएँ नहीं हैं अपितु वे एक ही मूल सत्ता म आश्रित हैं इस प्रकार शंकर और रामानुज दोनो अद्वैतवादी है। अर्थात दोनो एक मूल सत्ता अथवा ब्रह्म को, जो इस चराचर जगत म व्याप्त है स्वीकार करते

है। परन्तु जीव और ब्रह्म में क्या सम्बन्ध है इस विषय को लेकर दोनों में मतभेद है।

शंकराचार्य ने अपनी अकाट्य तर्क शैली प्रतिपादन पद्धति और प्रगाढ़ पाण्डित्य द्वारा अपने समय की विद्वान मण्डली को अपने अद्वैतवाद तथा मायावाद की ओर आकृष्ट किया। अद्वैतवाद और मायावाद के प्रचार के हेतु उन्होंने केवल ब्रह्मसूत्र उपनिषदों और गीता का अद्वैत प्रतिपादक भाष्य ही नहीं किया वरन सम्पूर्ण भारत में पर्यटन कर तत्कालीन समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों के अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थ में परास्त भी किया। इसके उपरान्त उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को सम्प्रदाय का रूप देकर भारत के चारों कोनों में मठ स्थापित किये। इस प्रकार उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं अद्भुत अध्यवसाय से उनके अद्वैतवाद और मायावाद के सिद्धान्तों का भारत भूमि में इतना प्रबल प्रचार हुआ कि सामान्यतः लोग शांकर अद्वैत को ही वेदान्त-दर्शन मान लेते हैं।[1] शंकराचार्य के उक्त अद्वैत एवं मायावाद मूलक दार्शनिक क्रान्ति का प्रभाव भारत के विशाल जन समूह पर निरन्तर पड़ता चला आया है। अनेक व्यक्तियों ने अपने जीवन को शांकर वेदान्त के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया है। भारतीय साहित्य पर भी शांकर वेदान्त का प्रभाव किसी न किसी मात्रा तथा किसी न किसी रूप में आज तक पड़ता चला आया है। छायावाद के कवियों ने भी अपनी भूमिकाओं और भावाभिव्यक्तियों में उक्त अद्वैतवाद एवं मायावाद की ओर बारबार संकेत किया है। अतः छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि के प्रसंग में शांकर वेदान्त का यहाँ पर संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी सिद्ध होगा।

ब्रह्म

न्याय और वैशेषिक ने ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों को मानकर ईश्वर को जगत का कर्ता ठहराया था। सांख्य ने दो ही नित्य तत्व—पुरुष और प्रकृति—को मान्यता दी। वेदान्त ने और आगे बढ़कर अद्वैतवाद विशुद्ध ब्रह्म की स्थापना की। शांकर वेदान्त में पारमार्थिक दृष्टि से सच्चिदानन्द ब्रह्म ही एक मात्र मूल तत्व है। वह निर्विशेष और सर्वव्यापी है। उसकी सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयंसिद्ध और स्वयं प्रकाश है। उसमें किसी प्रकार का विकार उपस्थित नहीं होता। वह सजातीय

१　चटर्जी तथा दत्ता—एन इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन फिलासाफी पाँचवाँ संस्करण पृ ४६८

विजातीय तथा स्वगत सभी भेदों से रहित और समस्त विशेषणों तथा नानात्व से परे है। जगत कर्तृत्व ब्रह्म का स्वरूप लक्षण नहीं केवल तटस्थ लक्षण है। अर्थात ब्रह्म का सृष्टि कर्ता होना वास्तविक स्वरूप नहीं औपाधिक गुण है। जगत में जो विविध दृश्य दिखाई पड़ते हैं वे परिणामी अतः असत्य और अनित्य हैं। समस्त नाम रूपात्मक पदार्थ ब्रह्म के ही सगुण सोपाधि या मायात्मक रूप हैं। इस प्रकार शांकर वेदान्त का ब्रह्म आरोप का अधिष्ठान है। माया की विक्षेप शक्ति के कारण जो सृष्टि होती है वह मिथ्या अथवा भ्रान्ति है। यह आरोप तत्त्व ज्ञान के द्वारा बाधित हो जाता है। इस प्रकार समस्त जगत ब्रह्म का विवर्त है।

ईश्वर

शांकर वेदान्त में ब्रह्म से माया शक्ति के द्वारा जगत का क्रमिक विकास माना गया है। अर्थात माया द्वारा ही सूक्ष्म से स्थूल की परिणति का आभास होता है। ब्रह्म अपरिणामी है अतः उसमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हो सकता। इस प्रकार मायावच्छिन्न ब्रह्म ही जगत का कारण है। वास्तव में क्रिया ब्रह्म में नहीं रजोगुण से युक्त माया में होती है। इस अव्यक्त माया का आश्रय होने के कारण ब्रह्म को सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ ईश्वर का नाम दिया जाता है। यह ब्रह्म का वह रूप है जो वास्तविक सृष्टि से पहले अव्यक्त माया के साथ रहता है। जगत की अपेक्षा में वह ईश्वर है निरपेक्ष रूप में वह परब्रह्म है।

जगत का कारण होते हुए भी ईश्वर केवल लीला के लिये, बिना किसी प्रयोजन के सृष्टि करता है जैसे समस्त कामनाओं से पूर्ण कोई राजा केवल लीला के लिए क्रीडा विहार में प्रवृत्त होता है अथवा जिस प्रकार किसी बाह्य प्रयोजन के न रहने पर भी स्वभाव से ही शरीर में श्वास प्रश्वास चलता रहता है।

माया

ब्रह्म का आच्छादन करने वाली शक्ति का नाम माया है। वह ईश्वर की शक्ति है। इस रूप में वह ब्रह्म से भिन्न पदार्थ नहीं है। माया ब्रह्म से उसी प्रकार अभिन्न और अविच्छेद्य है जिस प्रकार अग्नि से दाहकता अथवा मन से संकल्प। वह ईश्वर के लिए इच्छा मात्र है। इसी के द्वारा मायावी ईश्वर वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि की अद्भुत लीला दिखाता है। परन्तु वह स्वयं इस माया से प्रभावित नहीं होता—ठगा नहीं जाता। जब जीव अज्ञान-वश ईश्वर की

इस मायावत लीला का सत्य समझ लेता है तब समस्त दृश्यवर्ग उसे विभिन्न सा प्रतीत होने लगता है। परन्तु जो तत्वदर्शी हैं उन्हें इस मायामय संसार में एकमात्र ब्रह्म ही सत्य प्रतीत होता है। शंकराचार्य ने इस माया को सत अथवा असत न कह कर अनिर्वचनीय कहा है।

अविद्या

शंकराचार्य ने अविद्या और माया में कोई भेद नहीं किया है। माया की भांति अविद्या भी त्रिगुणात्मिका है। अर्थात वह सत्व रजस तथा तमस इन तीनों गुणों से युक्त है। प्रत्येक जीव अविद्या ग्रस्त होने के कारण ही एक ब्रह्म के स्थान पर नाना विषय और जीव देखता है। अविद्या के कारण ही निर्विशेष ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो पाता। इस प्रकार अविद्या ज्ञान विरोधी है। तत्वज्ञान हो जाने पर उसका नाश हो जाता है। और शुद्ध चैतन्य सर्वत्र एक ही रूप में दिखाई पड़ने लगता है।

जगत

शांकर वेदान्त में जगत माया अथवा अविद्या का खेल है। अतः जगत किंवा सृष्टि के पदार्थों की अनेकता सत्य नहीं है। समस्त भूत समुदाय में एक ही शुद्ध और नित्य परब्रह्म व्याप्त है और उसी की माया से मनुष्य की इन्द्रियों को भिन्नता का भान हुआ करता है। इस प्रकार शंकराचार्य ने आभासमान स्वल्पत्व और अनेकत्व की व्याख्या माया की सहायता से की है। अतः उनके अनुसार शुद्ध अनन्त सत चित आनन्द ब्रह्म ही सर्वशक्तिमती माया के प्रभाव से अपने को उपाधि-युक्त कर नाना विषयों वाले इस जगत के रूप में प्रकट करता है। यह माया पहले अव्यक्त रहती है फिर स्थूल विषयों में तत्पश्चात सूक्ष्म विषयों में व्यक्त होती है। जब माया सूक्ष्म रूप में व्यक्त होती है तब उसका आधार हिरण्यगर्भ कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है—समस्त सूक्ष्म विषयों की समष्टि। जब माया स्थूल रूप में अर्थात दृश्यमान विषयों में अभिव्यक्त होती है तब उसका आधार वैश्वानर (विराट) कहलाता है। इस रूप में ब्रह्म का अर्थ है सभी स्थूल विषयों की समष्टि। अर्थात व्यक्त जगत जिसमें समस्त भूतवर्ग स्थित हैं।

शांकर वेदान्त में जगत के क्रमिक विकास की उपमा मनुष्य की तीन अवस्थाओं से दी जाती है। (१) सुषुप्तावस्था (२) स्वप्नावस्था (३) जाग्रतावस्था। सुषुप्तावस्था का ब्रह्म ईश्वर है स्वप्नावस्था का ब्रह्म हिरण्यगर्भ है और जाग्रतावस्था का ब्रह्म वैश्वानर विराट है।

जीव

शंकराचार्य के अनुसार जीव मूलतः परब्रह्म ही है। किन्तु वह क्षुद्र और क्षणिक विषयों में अपने को सीमित कर लेने के कारण संकुचित हो जाता है। अविद्या के कारण उसमें अहंभाव भी बना रहता है। किन्तु जब ज्ञान द्वारा जीव को अपना यथार्थ-स्वरूप ज्ञात होता है तब वह ब्रह्म रूप हो जाता है। 'तत्त्वमसि' आदि उपनिषद्-वाक्यों के आधार पर शंकराचार्य ब्रह्म और जीव में एकता अथवा अभेद का पूर्णतः समर्थन करते हैं। जीव और ब्रह्म के एक हो जाने अथवा जीव के लिए माया के विलीन हो जाने से 'एकमेवाद्वितीयं नेह नानास्ति किंचन'[1] यह श्रुति वाक्य प्रमाणित हो जाता है। इसी अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार कर साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और दुःख से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है।

मुक्ति

शांकर वेदान्त में ब्रह्मसाक्षात्कार के साथ-साथ समस्त अज्ञान तथा उसके कार्यों का भी नाश हो जाता है। ब्रह्म को छोड़कर और कुछ शेष नहीं रह जाता। जीव और ब्रह्म का ऐक्य हो जाता है। यही शांकर वेदान्त की मुक्ति है।

जीवन्मुक्ति

शंकर के अनुसार प्रारब्ध कर्म के क्षय के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती अतः संचित और क्रियमाण कर्मों के नाश हो जाने पर भी तत्त्वज्ञानी शरीर धारण किये रहता है। किन्तु संसार का मिथ्या प्रपंच उसके सामने नहीं रहता। वह फिर ठगा नहीं जाता। सांसारिक विषयों के हेतु उसे तृष्णा नहीं होती। अतः उसे कोई दुःख व्याप्त नहीं होता। वह संसार में रहते हुए भी उससे परे रहता है। प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर शरीर का पतन हो जाता है और तत्त्वज्ञानी सर्वथा मुक्त हो जाता है। शंकर का यह विचार परवर्ती वेदान्त साहित्य में 'जीवन्मुक्ति' के नाम से विख्यात है।

साधन

शंकर के अनुसार वेदान्त की शिक्षा के लिए जिज्ञासु को काम्य और निषिद्ध कर्मों का परित्याग कर नित्य और नैमित्तिक कर्म तथा प्रायश्चित्त

---

१ अध्यात्म उपनिषद् ६

उपासना आदि का अनुष्ठान करते हुए अन्त करण के मलो को दूर करना भी आवश्यक है जिससे अन्त करण शुद्ध और स्वच्छ हो जाय। इसके पश्चात नित्य और अनित्य वस्तुओ मे विवेक ज्ञान इहलोक तथा परलोक म प्राप्त फलो से विरक्ति शम दम उपरति तितिक्षा समाधान तथा श्रद्धा इन अष्टाग-योगो स युक्त होना आवश्यक है।

वैष्णव वेदान्तवाद

विशिष्टाद्वैतवाद

शकराचार्य का अद्वैतवाद जिसम ज्ञानियो और तार्किक पण्डितो की ब्रह्म विषयक जिज्ञासा का सम्यक तुष्टि तथा सामान्य जनता म ब्रह्म का सान्निध्य प्राप्त करने की लालसा उत्पन्न हुई कुछ समय तक वेदान्त सम्प्रदाय के नाम स चलता रहा। उसम किसी ने हस्तक्षेप नही किया। किन्तु शकर न बौद्धधर्म के निरीश्वरवाद का खण्डन करके जिस निर्विशेष अथवा तटस्थ ब्रह्म की स्थापना की थी वह उपासना के क्षेत्र म किसी काम का न था। साथ ही बौद्ध दार्शनिको के शून्यवाद का आधार लेकर उन्होने जिस मायावाद की कल्पना की थी उसमे ससार की कोई स्थिति नही थी अत गृहस्थ के लिए उसम कोई आकर्षण न था। इसके अतिरिक्त बौद्ध भिक्षु सघ के अनुकरण पर उन्होने जिस मठ-नियम की नीव डाली वह भी व्यावहारिक जीवन म विशेष महत्व का न था। इस प्रकार हम देखते है कि बौद्धमत के निरीश्वरवाद अथवा शून्यवाद से जन मानस म जो रिक्तता अथवा निराशा का भाव उत्पन्न हो गया था उसकी पूर्ति शकराचार्य का अद्वैतवाद अथवा मायावाद भी न कर सका। अत लोग पुन प्राचीन ऐकान्तिक धर्म की ओर जिसम ज्ञान तथा गृहत्याग का विशेष आग्रह न था धीरे धीरे प्रवृत्त होने लगे। फिर तो कालान्तर म शाकर मत के प्रतिकूल ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया हुई जिसम वैष्णव धर्माचार्यों न शकर को प्रच्छन्न बौद्ध[1] तक कहने म सकोच नही किया। शाकर अद्वैत की ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप रामानुज ने अपने

---

१ वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृत

यूय च बौद्धाश्च समानससद् ।
रामानुज के वेदान्त भाष्य की टीका श्रुतप्रकाशिका

गुरु यामुनाचार्य के आदेश से नाथ मुनि द्वारा निर्मित वैष्णव धर्म की आधार शिला पर शंकर अद्वैत के स्थान पर विशिष्टाद्वैत तथा यतिधर्म के स्थान पर भक्तिमार्ग की अनुपम समष्टि की। रामानुज ने उपनिषद गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर शंकर के मायावाद को मिथ्या प्रमाणित किया और ब्रह्म में गुणों का आरोप किया। आचार दृष्टि से उन्होंने भक्ति को ही अन्तिम प्रतिपाद्य माना और वासुदेव भक्ति को ही मुक्ति का सच्चा साधन बताया। इस प्रकार अपने क्रान्तिकारी विचारों द्वारा रामानुज ने शंकर के शुद्ध बुद्ध निराकार तथा तटस्थ ब्रह्म में जो भक्तों की प्रार्थना सुनने में असमर्थ था और जिसे विश्व के प्रपञ्च से कोई प्रयोजन न था ईश्वरत्व का आरोप करके उसे भक्तों की प्रार्थना सुनने योग्य एवं विश्व प्रपञ्च का कर्ता तथा उसका प्रहरी बना दिया। शंकर के शुष्क अद्वैतवाद से ऊबे हुए लोगों को प्रेम रस से पूर्ण रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद अत्यन्त प्रिय लगा और उनके भीतर यह भावना बद्धमूल हो गई कि करुणाधाम विष्णु की आराधना द्वारा उनकी समस्त कामनाओं की पूर्ति हो सकती है।

हिन्दुओं के विशाल जन समूह तथा परवर्ती वैष्णव सम्प्रदायों पर रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद का बड़ा प्रभाव पड़ा है। सन्त तथा भक्त कवियों विशेषकर गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समन्वयवादी दृष्टिकोण के कारण वेद उपनिषद गीता स्मृति तथा शंकर और रामानुज के सिद्धान्तों को अपनी अनुभूति का अंग बनाया है। इस प्रकार ज्ञान भक्ति अद्वैत विशिष्टाद्वैत आदि अनेक सिद्धांतों का उनके काव्य में समावेश हो गया है। छायावाद युग को प्रभावित करने वाली दो महान विभूतियाँ—गांधी और टैगोर—सन्त और भक्ति परम्परा की कायल थीं। छायावाद के अधिकांश कवि वैष्णव-कुल में उत्पन्न हुए थे। अतः वे वैष्णव विचारधारा से पूर्णतया परिचित थे। सन्त और भक्त कवियों से भी उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की थी इसका भी उल्लेख उनके लेखों और भूमिकाओं में मिलता है।[1] अतः सन्तों तथा भक्तों के इस प्रभाव में

१ (क) अपनी काव्य साधना में मैंने सन्त कवियों तथा डा० टैगोर से अनुप्राणित छायावाद की आध्यात्मिकता तथा आदर्शवादिता को अन्तश्चेतना या नवीन वास्तविकता का स्वरूप देने का प्रयत्न कर उसकी निष्क्रियता को सक्रियता प्रदान करने की उसकी वैयक्तिकता को लोकप्रियता में परिणत करने की चेष्टा की है।

पन्त गद्य पथ पृ० १२९

स्थान स्थान पर उनके काव्य में सन्तों तथा भक्तों की वाणी गूंज उठी है और करुणा कष्टसहिष्णुता आत्मसमर्पण आत्म निवेदन तथा एकान्तनिष्ठा आदि के भाव उभर आये हैं। छायावाद काव्य पर वैष्णव भक्ति के इस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर वैष्णव धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय विशिष्टाद्वैत का थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

मत

रामानुजाचार्य के मत में चित (जीव) अचित (जड़ समूह) और ईश्वर या पुरुषोत्तम ये तीन मूल तत्व हैं। इनमें ईश्वर तो प्रधान अंगी है और चित तथा अचित उसके दो विशेषण या अंग हैं। इसीलिए यह मत विशिष्टाद्वैत कहलाता है। संक्षेप में रामानुज के विचार इस प्रकार हैं —

आचार्य रामानुज के मत में स्थूल सूक्ष्म चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म पुरुषोत्तम सगुण और सविशेष है। निर्विशेष वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता।

ब्रह्म और शास्त्र का सम्बन्ध

ब्रह्म या पुरुषोत्तम प्रतिपाद्य और शास्त्र प्रतिपादक है। शास्त्र सगुण और सविशेष ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। निर्विशेष वस्तु का प्रतिपादन असम्भव है।

प्रयोजन

अविद्या की निवृत्ति प्रयोजन है। जीव को अज्ञान है। उपासना द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर अज्ञान दूर हो जाता है। मुक्त जीव ईश्वर के दास के रूप में स्थित रहता है। वह ईश्वर की नित्य लीला में अपार आनन्द का उपभोग करता है।

ब्रह्म ईश्वर

रामानुज के मत में उपनिषदों का ब्रह्म निर्गुण और निर्विशेष होकर सगुण और सविशेष है। ब्रह्म की शक्ति माया है। ब्रह्म अशेष कल्याणकारी गुणों का आलय है। उसमें निकृष्ट कुछ भी नहीं है। सर्वेश्वरत्व सर्वनियन्त्रत्व सर्वकर्माराध्यत्व सर्वफलप्रदत्व सर्वाधारत्व सर्वकार्योत्पादकत्व आदि उसके

(ख) भक्ति भावना मेरी पैतृक सम्पत्ति है और उसको मैंने अपनी कविताओं में सुरक्षित रक्खा है। वही मेरी प्रेमाराधना का आधार है।
डा० गोपालशरण सिंह आधुनिक कवि (४) आत्म कथा पृ ४

लक्षण है। वह सूक्ष्म चिदचिद्विशेष रूप म जगत का उपादान कारण है। सकल्पविशिष्ट रूप म निमित्त कारण है। जीव और जगत उसका शरीर है। ईश्वर ही आत्मा है। उसके गुण असख्य हं। वह गुणो म अद्वितीय है। ईश्वर सृष्टिकर्ता कमफलदाता नियन्ता तथा सवान्तर्यामी है। नारायण विष्णु ही सबके अधीश्वर है। वही सृष्टि स्थिति सहारकर्ता है। वह शख-चक्र-गदा आदि दिव्य आयुधा स युक्त चमकते हुए किरीट मकराकृत कुण्डल गले म हार केयूर श्रीवत्स कौस्तुभमणि मुक्ता पीताम्बर नूपुर आदि दिव्याभूषणा स अलकृत हं।

ईश्वर का स्वरूप पाँच प्रकार है —

(१) पर—यही वासुदेव स्वरूप है। यह स्वरूप काल की गति स परे है। इसका कभी परिणाम नहीं होता। निरवधि आनन्द से यह सदा विभूषित रहता है। दवतागण इसी स्वरूप को वकुण्ठ म नित्यो एव ज्ञानी देखते रहते हं।

(२) व्यूह—यह स्वरूप विश्व की लीला के निमित्त है। यह सकषण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के स्वरूप म वतमान है। यह स्वरूप ससारियो की रक्षा तथा मुमुक्षु एव भक्तो के प्रति अनुग्रह दिखाने के लिए है। पर स्वरूप म तो ज्ञान बल ऐश्वय वीय शक्ति तथा तेज य छ गुण सदव वतमान रहते ह किन्तु व्यूह म केवल दो दो गुण प्रकट रूप म वतमान रहत है अर्थात ज्ञान तथा बल सकषण क स्वरूप म प्रकट है। प्रद्युम्न म ऐश्वय तथा वीय गुण तथा अनिरुद्ध म शक्ति और तेज रहत है।

(३) विभव—यह अनन्त होने पर भी गौण और मुख्य भद स दो प्रकार का होता है। मुख्य विभव भगवान का अश तथा अप्राकृत दहयुक्त है यही स्वरूप मुमुक्षुओ के लिए उपास्य ह। भगवान क साक्षात अवतार को मुख्य तथा स्वरूपावश एव शक्त्यावश अवतार को गौण कहत है।

(४) अन्तर्यामी—इस स्वरूप स भगवान जीवो क अन्त करण म प्रवश कर जीवो की सकल प्रवत्तियो का नियमन करते है। इसी रूप स भगवान स्वग नरक आदि स्थानो म सभी अवस्थाओ म सभी जीवो की सहायता करते हैं।

(५) अर्चावतार—यह भक्त की रुचि क अनुसार मूर्ति म रहने वाली भगवान की उपास्य मूर्ति ह।

भगवान की देह के स्वरूप का वर्णन करते हुए लोकाचार्य ने कहा है—

यह उसके अपने स्वरूप तथा गुण के अनुरूप नित्य एक रूप शुद्ध सत्वमय अत्यन्त तेजोमय सुकुमार लावण्ययुक्त सुगन्धियुक्त यौवनावस्था को धारण करने वाला दिव्य रूपवान तथा योगियों का एकमात्र ध्येय है। भगवान का शरीर उसके असली स्वरूप को जीव की देह के समान कभी भी नहीं छिपा सकता है। भगवान का शरीर सकल जगत को मोहने वाला है। इस रूप के दर्शन से सांसारिक समस्त भोग्य पदार्थों के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। भगवान के रूप का दर्शन तीनों तापों को नाश करने वाला है। नित्यमुक्तों के द्वारा सतत ध्यान करने योग्य यह भगवान का स्वरूप है। दिव्य भूषणों से तथा दिव्य अस्त्रों से सदैव यह शरीर युक्त रहता है।[1]

छायावादी कवियों की ईश्वर के विराट रूप को जगत के दिव्य उपकरणों से अलंकृत करके देखने की प्रवृत्ति में रामानुज के उक्त ब्रह्म अथवा ईश्वर का प्रभाव परिलक्षित होता है।

जीव

विशिष्टाद्वैत मत में चित्-तत्व ही जीवात्मा है जो देह इन्द्रिय मन प्राण तथा बुद्धि से भिन्न है। वह स्वप्रकाश आनन्दरूप या सुखरूप नित्य अणु अचिन्त्य निरवयव निर्विकार है तथा ज्ञान का आश्रय है। ईश्वर इसका नियामक है अर्थात ईश्वर की बुद्धि के अधीन इसका सब व्यापार होता है। ईश्वर ही इसका धारक है और यह ईश्वर का अंगभूत भी है।[2] ईश्वर और जीव में सजातीय और विजातीय भेद नहीं है स्वगत भेद है। जीव में जो स्वातन्त्र्य है वह ईश्वर प्रदत्त है। इन दोनों में सेव्य सेवक भाव है। जीव जो कुछ करता है सब ईश्वर प्रेरित होकर ही करता है।[3]

जीवात्मा के तीन भेद हैं— बद्ध मुक्त तथा नित्य।

छायावाद का कवि भी जीव को नित्य स्वप्रकाश तथा आनन्दमय मानता हुआ ईश्वर और जीव में स्वगत भेद को ही मान्यता देता है किन्तु भक्ति के क्षेत्र में वह दास्य की अपेक्षा प्रेमाभक्ति का ही प्रबल पोषक है।

---

१ तत्वत्रय पृ० ११८ ११९ तत्वत्रयभाष्य पृ ११९ १२१

२ तत्वत्रय पृ ८ २४

३ तत्वत्रय पृ० २ २१

जगत

रामानुज के मत में ब्रह्म ही जगत के रूप में परिणत हुआ है। जगत अचित अथवा जड है। वह ब्रह्म का शरीर तथा ब्रह्म उसकी आत्मा है। ब्रह्म और जगत अभिन्न है, अत जगत ब्रह्म रूप है। ब्रह्म का ही स्वगत भेद होने के कारण जगत अनादि और सत्य है। शंकर वेदान्त की भाँति वह मायाकृत प्रपंच या इन्द्रजाल में उत्पन्न मिथ्या पदार्थ नहीं है।

छायावाद का कवि जगत के सम्बन्ध में शंकर और रामानुज दोनों के मतों को अपनाता हुआ पाया जाता है। अर्थात कहीं पर उसने जगत को माया रूप और कहीं पर सत रूप चित्रित किया है। उसकी जगत की सत्यता की भावना पर शैव दर्शन का भी प्रभाव है जिसके अनुसार जगत मिथ्या न होकर सत्य है।

मुक्ति

भगवान के दासत्व की प्राप्ति ही मुक्ति है। वैकुण्ठ में श्री भू लीला देवियों के साथ नारायण की सेवा करना ही परम पुरुषार्थ है। प्राकृत देह विच्युत हो जाने पर अप्राकृत देह में नारायण के समान भोग प्राप्त करना मुक्ति है। भगवान के साथ अभिन्नता प्राप्त करना कभी सम्भव नहीं क्योंकि जीव स्वरूपत नित्य है। मुक्त जीव वैकुण्ठ में भगवान के किंकर के रूप में रहकर आनन्द का अनुभव करता है। वह ईश्वर के इच्छाधीन होने पर भी सर्वत्र सचरण करता है। मुक्ति उपासना द्वारा प्राप्त होती है। उपासनात्मक भक्ति ही मुक्ति का श्रेष्ठ साधन है।

छायावाद का भक्तिपरायण कवि ईश्वरोपासना में विश्वास करता है, किन्तु रामानुज के समान वह इस बात में विश्वास नहीं करता कि जीव के लिये भगवान से अभिन्नता प्राप्त करना असम्भव है। उपनिषदों तथा शंकर के प्रभाव में वह जीव और ब्रह्म आत्मा परमात्मा में अभिन्नता अथवा ऐक्य भी स्थापित करता है।

साधन

विशिष्टाद्वैत मत में भक्ति का स्थान बहुत ऊँचा है। कर्मयोग और ज्ञानयोग आदि भी भक्ति ही के द्वारा मोक्ष साधक हैं अन्यथा नहीं।[1] भक्ति

---

१ यतीन्द्रमतदीपिका, पृ० ७९।

से भगवान प्रसन्न होकर मुक्ति प्रदान करते हैं। वन्दन ध्यान उपासना आदि से भक्ति सूचित होती है। छायावाद का कवि ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करने के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का ही समर्थन करता है। वन्दन ध्यान उपासना आदि के प्रति भी वह दृढ आस्थावान है।

प्रपत्ति

ज्ञान कर्म तथा भक्ति में भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए भी रामानुज ने भक्ति से सरल सुगम मार्ग प्रपत्ति को कहा है। सब प्रकार से भगवान की शरण हो जाना प्रपत्ति है। इसके लिए न तो ज्ञान की आवश्यकता है न विद्या ध्यान की और न योग साधना की। जो मनुष्य सर्वतोभावेन भगवान की शरण में आ जाता है उसे भगवान सदा अपना लेते हैं। प्रपत्ति के सहारे ही श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया था जैसा गीता में कहा गया है—

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे ।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥[1]

छायावाद की कविता में भगवान के चरणों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा शान्ति प्राप्त करने का प्रयास मिलता है। उसमें समस्त विषयों का त्याग कर भगवान की शरण लेने का बार बार उपदेश दिया गया है। छायावाद का कवि हर प्रकार—वन्दन अनुनय विनय आदि—से अपने आराध्य को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है।

भेदाभेद दर्शन

वैष्णव सम्प्रदायों में एक त्रिदण्डी[2] सम्प्रदाय भी था। उसी सम्प्रदाय के आचार्य भास्कर थे।[3] उन्हीं के नाम पर भेदाभेद दर्शन को भास्कर वेदान्त भी कहते हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र पर भाष्य है।

भास्कर का सिद्धान्त

भास्कर ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी थे। इनका कहना है कि केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं होता। कर्म की भी आवश्यकता है। जिस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए शम दम आदि योगों का अनुष्ठान जीवन भर करना आवश्यक है

१ गीता अध्याय २ श्लोक ७
२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ४ ८
३ वही

उसी प्रकार आश्रम कर्मों का अनुष्ठान करना भी आवश्यक है तभी मोक्ष मिलता है अन्यथा नहीं। कर्म का त्याग किसी भी अवस्था में नहीं हो सकता। भास्कर का कहना है कि ब्रह्म सूत्रकार का भी यही अभिप्राय है।[1]

इनका दूसरा सिद्धान्त है कि संसारावस्था में जीव परमात्मा से भिन्न है किन्तु मोक्षावस्था में वह परमात्मा में मिल जाता है। इसलिए जीव और परमात्मा में भेद और अभेद दोनों हैं। वस्तुतः जीव तथा परमात्मा में स्वभाव ही से अभेद है किन्तु संसाररूपी उपाधि के कारण भेद भी है। यही भेदाभेदवाद भास्कर का सिद्धान्त है।

ये दो बातें भास्कर वेदान्त के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। इन्हीं को ध्यान में रखकर इन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है।

तत्व-विचार

ब्रह्मतत्व

भास्कर मत में एक मात्र तत्व ब्रह्म है। उसी को परमात्मा तथा ईश्वर भी कहते हैं।[2] आगम के द्वारा ही इस तत्व का ज्ञान हो सकता है। यह सत और अद्वितीय है। जगत का उपादान कारण भी ब्रह्म है। यह 'सत्कार्य वादी' है। अतएव कारण-ब्रह्म में ही 'कार्य-ब्रह्म' विद्यमान रहता है यह इनका कथन है।

चिन्मय जगत

चेतन ब्रह्म से तो चेतन ही पदार्थों का परिणाम उचित है फिर यह जगत जड़ क्यों है? इसके उत्तर में भास्कर कहते हैं कि चेतन ब्रह्म का समस्त परिणाम भी चेतन ही है। परन्तु वह चैतन्य सभी वस्तुओं में एक सा देख नहीं पड़ता। इसीलिए किसी में उसकी अभिव्यक्ति प्रत्यक्षगोचर है जैसे जीव किसी में सर्वथा अगोचर है जैसे पत्थर। यही कारण है कि पत्थर आदि में स्वातन्त्र्य नहीं है।

छायावाद का कवि भी प्रकृति के समस्त पदार्थों में चेतना का आरोप करता है।

---

१ अत्र हि ज्ञानकर्मसमुच्चयान्मोक्षप्राप्तिः सूत्रकारस्याभिप्रेता।
भास्कर भाष्य पृ० २ (काशी संस्करण)

२ ब्रह्मसूत्र भाष्य पृ० ६-७

कार्य कारण-भाव

कार्यकारण भाव के सम्बन्ध मे भास्कर का कहना है कि कार्य सत है। कारण ही भिन्न भिन्न अवस्था को प्राप्त कर कार्य का रूप धारण कर लेता है। एकमात्र तत्व ब्रह्म है। वही परिणाम के द्वारा जगत के रूप म परिणमित हो जाता है। प्रपच ब्रह्म का धर्म या एक अवस्था है। इसलिए ब्रह्म और जगत की सत्ता म कोई भेद नही है।[1]

छायावाद का कवि भी ब्रह्म तथा जगत की सत्ता म अभेद स्थापित करता हुआ पाया जाता है।

जगत मिथ्या नहीं है

प्रपच ज्ञानी के लिए भी सत्य है क्योकि वह उसे ब्रह्म की शक्तिरूप म देखता है और अज्ञानी के लिए तो सत्य है ही। भास्कर का कहना है कि जगत को मिथ्या तो किसी ने कहा नही है।[2]

छायावाद का कवि यदि शाकर वदान्त क प्रभाव से निराशा के क्षणो म जगत को मिथ्या अथवा मायारूप देखता है तो आशा के क्षणो म वह वष्णव वदान्त द्वारा प्रतिपादित जगत को सत्यरूप भी चित्रित करता है।

जीव

जीव ब्रह्म की भावतशक्ति है। अज्ञान और कर्म के कारण जीव बन्धन म पडा है। ससारावस्था ही म यह जीव रहता है मुक्ति म तो परमात्मा म लीन हो जाता है। यह नित्य और अणु रूप है। अणु परिमाण के होने ही के कारण मरने पर एक शरीर को छोडकर दूसरे मे प्रवेश कर सकता है।[3] परन्तु यह अणुत्व भी औपाधिक और अस्वाभाविक है। जब तक द्वैतभाव रहता है तभी तक यह रहता है बाद को परमात्मा के स्वरूप का हो जाता है। इसी प्रकार कर्तृत्व भी जीव का स्वाभाविक धर्म नही है अन्यथा जीव को मुक्ति ही नही मिलती। मुक्ति म परमात्मा म लीन हो जाने से इसका कर्तृत्व भी जाता रहता है।[4]

---

१ भाष्य २–१–१४।
२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ४०
३ भाष्य १ २ १ १ ३ १३ ३ २ २२।
४ डा० उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन पृ० ४०३

छायावाद का कवि भी अज्ञान को ही जीव (आत्मा) का बन्धन मानता है तथा ज्ञानदशा अथवा मुक्तावस्था में वह जीव को परमात्मरूप घोषित करता है।[1]

मुक्ति

उपाधियों से मुक्त होकर जीव के अपने स्वाभाविक स्वरूप को धारण करने को मुक्ति कहते हैं। इसके दो भेद हैं—सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति। जो साक्षात् कारण स्वरूप ब्रह्म की उपासना करने पर मुक्ति पाते हैं उनकी मुक्ति सद्योमुक्ति है क्योंकि वह तत्काल प्राप्त होती है और जो कार्य स्वरूप ब्रह्म के द्वारा मुक्ति पाते हैं उनकी मुक्ति क्रममुक्ति है। भास्कर मत में शरीर के पतन होने ही से मुक्ति होती है। अतएव उनके मत में जीवन्मुक्ति की अवस्था नहीं है।[2] छायावाद का कवि उपनिषद् शैव आदि दर्शनों के प्रभाव से जीवन्मुक्ति में भी विश्वास करता है।

कर्म की आवश्यकता

जिस प्रकार अपवर्ग के लिए यथार्थ ज्ञान अपेक्षित है उसी प्रकार जीवन भर आश्रमकर्म करने की अपेक्षा रहती है।[3] विद्या के द्वारा श्रवण आदि के निरन्तर अभ्यास से अज्ञान का नाश होता है। आजीवन कर्म के अभ्यास ही से ज्ञान को पाकर साधक के शरीर का पतन हो जाता है तभी भेद ज्ञान का नाश होता है। संसारी तथा पारलौकिक कर्म का भी क्षय हो जाता है और जीव सर्वज्ञत्व आदि को प्राप्त कर लेता है और उसका क्लेश एवं ज्ञान नष्ट हो जाता है।[4] इस प्रकार भास्कर-मत में आजीवन कर्म करने की आवश्यकता है। कर्म के अभाव में दुःख-बीज का नाश नहीं हो सकता।

छायावाद का कवि भी यथाशक्ति कर्म-योग का समर्थन करता है।

---

१ रे निर्निमिष मौनिक लोचन
प्रभु प्रभु नत गए अमिश्र वन
मात सच्चिदानन्द चिरंतन।
जय अमरत्व का मर्त्य प्रयत्न।
पन्त—स्वर्णकिरण पृ० १४६

२ भाष्य ३-४-२६।

३ भाष्य १-१-४।

४ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ४०४

अचिन्त्य भेदाभेद

रामानुज और भास्कर के अतिरिक्त वैष्णव भक्ति का विकास मध्व निम्बार्क वल्लभ चैतन्य आदि आचार्यों द्वारा द्वैत द्वैताद्वैत शुद्धाद्वैत अचिन्त्य भेदाभेद आदि विभिन्न दार्शनिक रूपों में हुआ। किंतु अचिन्त्य भेदाभेद के प्रवर्तक चैतन्यदेव ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति स्वयं अपने मत के दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं किया। एक प्रकार से उनका मत अपने पूर्ववर्ती समस्त भक्ति सम्प्रदायों का विकसित रूप है। चैतन्य महाप्रभु श्रीमद्भागवत को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानते थे। श्री मध्व भाष्य श्रीमद् भागवत के अनुरूप था अतः उसे भी वह आदर की दृष्टि से देखते थे। इसी से चैतन्यमत में अधिकांश दार्शनिक तत्वों का निरूपण मध्वभाष्य के आधार पर किया गया है। चैतन्यमत में भी मध्वमत की भाँति ही जगत को सत्य तथा ब्रह्म का परिणाम माना गया है। दोनों मतों में जीव और ब्रह्म चिरभिन्न हैं— मुक्तावस्था में भी पृथक पृथक रहते हैं। किंतु चैतन्यमत में गुण और गुणी भाव से जीव और ब्रह्म को अभिन्न भी कहा गया है। उसका यह विचार निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत के अनुरूप है। इसी प्रकार उसकी प्रेमाभक्ति पर वल्लभाचार्य के मधुर भाव का प्रभाव परिलक्षित होता है। किंतु प्रेमाभक्ति को जितना महत्व चैतन्यमत में प्राप्त है उतना उसे किसी अन्य वैष्णव मत में प्राप्त नहीं हुआ। प्रेमाभक्ति ही चैतन्यमत की रीढ़ अथवा मौलिक तत्व है। चैतन्यदेव को भावावेश में वृन्दावन की गोपियों की आनन्दमयी भाव विह्वलता एवं राधा की गम्भीर विरह वेदना की पूर्ण अनुभूति हुआ करती थी। ऐसी अवस्था में वे बाह्य ज्ञान शून्य हो जाते थे उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु निकलने लगते थे और उनके शरीर में रोमांच हो जाता था। इस प्रकार चैतन्य द्वारा जनसमाज में रागमयी भक्ति का प्रचार हुआ और उनके सम्प्रदाय में इस सिद्धान्त की स्थापना की गई कि युगल-तत्व श्री राधा-कृष्ण की साधना से ही परम पुरुषार्थरूप प्रेम की प्राप्ति हो सकती है। रूप, सनातन जीव आदि गोस्वामियों ने प्रेमाभक्ति के सिद्धान्तों का बड़ा ही सूक्ष्म और मार्मिक विवेचन किया तथा गोपियों के भाव का अनुसरण करने वाले श्रीकृष्ण प्रेम ही को धार्मिक जीवन का परम साध्य बताया। इस प्रकार चैतन्य सम्प्रदाय द्वारा जिस प्रेमाभक्ति अथवा कान्ताभाव का बंगाल आसाम और बिहार में प्रचार हुआ उसका व्यापक प्रभाव परवर्ती सन्तों एवं माधुर्य भावपरक भक्ति-सम्प्रदायों पर भी पड़ा।

आधुनिक युग की सांस्कृतिक धारा को प्रभावित करने वाले समन्वय एवं सामंजस्य के संदेशवाहक एवं प्रेम तथा भक्ति के अवतार रामकृष्ण परमहंस ने अपने जीवन में विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के साधना पक्षों का अनुसरण किया था। उन्होंने वैष्णव भक्ति में पाँचों भावों—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य की सिद्धि प्राप्त की थी। कहा जाता है कि कान्ताभाव की साधना करते समय उनकी मानसिक स्थिति तथा शारीरिक मुद्रा में कल्पनातीत परिवर्तन हो जाता था और वे राधारूप हो जाते थे। रामकृष्ण परमहंस की उक्त प्रेमा भक्ति का प्रभाव विवेकानन्द पर और पुनः उनके द्वारा रामकृष्णमिशन पर पड़ा। कहा जाता है कि ब्राह्मो के सामी नेता केशवचन्द्र सेन के समय ब्रह्म-समाज में भक्ति और साधना का जो प्रचलन हुआ वह ब्रह्म समाजियों की रामकृष्ण से संगति का परिणाम था।[1] केशवचन्द्र ने अपनी प्रार्थना में वैष्णव कीर्तन के गीत भी सम्मिलित कर लिए थे और कभी कभी ढोलक मांझ के साथ संकीर्तन करते हुए सड़कों पर भी निकल जाते थे।[2] भक्ति विह्वल होकर वे माँ माँ कहकर रुदन करते थे और उपासना-वेदी पर सिर रखकर व्याकुल चित्त होकर सबसे पूछा करते थे कि सच-सच बोलो क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?[3] इस प्रकार रामकृष्ण के सम्पर्क से जिस माधुर्य भाव का अनुसरण ब्राह्म-समाज में हुआ उसका प्रभाव ब्राह्म-समाजी रवीन्द्रनाथ की भक्ति-भावमूलक रचनाओं पर भी पड़ा। स्पष्ट है कि छायावाद के कवि विवेकानन्द के व्यक्तित्व एवं दर्शन से प्रभावित थे। निराला जी तो रामकृष्ण मिशन से भी बहुत दिनों तक निकट का सम्बन्ध रहा। छायावाद के प्रेम गीतों पर रवीन्द्रनाथ की प्रेम व्यंजना की भी छाप है। किन्तु रामकृष्ण मिशन या विवेकानन्द, ब्राह्म-समाज या रवीन्द्रनाथ की प्रेम-साधना वैष्णव सम्प्रदाय की प्रेमा भक्ति का ही एक रूप था। अतः दार्शनिक दृष्टि से छायावाद की प्रेम-साधना को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर प्रेमा भक्ति का प्रबल प्रचार करने वाले चैतन्य मत अथवा अचिन्त्यभेदाभेद का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना अनावश्यक न होगा।

मत

चैतन्य मत में व्रजेश नन्दन श्रीकृष्ण आराध्य हैं। वृन्दावन उनका धाम है। व्रजांगना वर्ग द्वारा की गई उपासना ही सच्ची उपासना है। श्रीमद्

---

१ निकर मस्तूनि के चार अध्याय पृ० ४ १

२ वही पृ० ४[illegible]४

३ कल्याण भक्ति अंक (१९५८) पृ ६५९

भागवत विशुद्ध प्रमाण ग्र थ है तथा प्रमा भक्ति ही परम पुरुषार्थ है। यही चैतन्य महाप्रभु का सिद्धान्त है।

विषय

विशुद्ध अनन्तगुणशाली अचिन्त्य अनन्त शक्ति सच्चिदानंद पुरुषोत्तम ही विषय है।

प्रयोजन

भक्ति अभिधेय है और श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति ही प्रयोजन है।

ब्रह्म या ईश्वर

चैतन्य मत में ब्रह्म स्वतन्त्र कर्ता सर्वज्ञ और विज्ञान स्वरूप माना गया है। ब्रह्म ही सबका आदि कारण और नियामक है। ब्रह्म विभु है और जीव अणु है। वह पूर्ण चैतन्य नित्य ज्ञानादि गुणों से युक्त तथा सर्वशक्तिमान है। ब्रह्म व्यापक है किन्तु व्यापक होते हुए भी भक्तिग्राह्य है। वह एक है किन्तु एक होने पर भी गुण गुणी भाव से नानीत्मी प्रतीति का विषय होता है। ब्रह्म अचिन्त्य शक्ति द्वारा नाना रूप धारण करता है अर्थात ब्रह्म ही जगत रूप में परिणत होता है।

शंकर के समीप निर्गुण ब्रह्म ही सत्य था किन्तु चैतन्य मत में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप सत्य माने गये हैं। उसके अनुसार सविशेष श्रीकृष्ण ही ब्रह्म-तत्व है। वे अद्वय ज्ञान तत्व चिदानन्दमूर्ति सबके आश्रय और सर्वेश्वर हैं स्वतन्त्र और सर्वज्ञ है तथा जीव को भोग एवं मोक्ष के देने वाले है। निर्गुण भी है क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नही है। संवित संधिनी और ह्लादिनी भगवान की तीन शक्तियाँ है। ह्लादिनी शक्ति द्वारा ही वे एक रस होने पर भी स्वरूपभूत आनन्द का वितरण करते हैं। उनकी चितशक्ति जीव शक्ति और मायाशक्ति के परिणाम स्वरूप चिदचिद्रूप जीव जगत का आविर्भाव होता है।

जगत

चैतन्यमत में श्रीकृष्ण अचिन्त्य शक्तिमान हैं। इसी शक्ति द्वारा वे जगत रूप में परिणत होते हैं। शांकर वेदान्त की भाँति चैतन्यमत में जगत मिथ्या नही अपितु सत्य किन्तु अनित्य माना गया है। जो लोग जगत को

श्री कृष्ण का शरीर मानकर उसमें उनकी नित्य 'छवि' का दर्शन करते हैं व परमानन्द के भागी होते हैं।

गोलोक

गोकुल मथुरा और द्वारिका को गोलोक कहते हैं। इन तीन धामों में श्रीकृष्ण नित्य अवस्थान करते हैं। ये तीनों धाम उनके स्वरूपैश्वर्य द्वारा पूर्ण हैं। अर्थात श्रीकृष्ण के शरीर के समान सर्वव्यापी अनन्त और विभु हैं। श्री कृष्ण की इच्छा से व ब्रह्माण्ड में प्रकाशित हो रहे हैं। वहाँ की भूमि चिन्तामणि के समान तथा वन कल्पवृक्षमय है। चर्मचक्षुओं से देखने पर वह वृन्दावन धाम प्रपंच के समान दीखता है। प्रेमनेत्र से देखने पर उसके स्वरूप का प्रकाश होता है और गोप गोपांगनाओं के साथ श्रीकृष्ण की विलास लीला प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है। श्रीमदभागवत में श्रीकृष्ण की रूप महिमा के विषय में मथुरा नगरी की रमणियाँ कहती हैं कि जो लावण्य का सार है जिसकी तुलना में भी कोई दूसरा रूप नहीं रखा जा सकता। फिर उससे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है जिसकी रमणीयता स्वयं सिद्ध है तथा जो क्षण-क्षण नूतन बना रहता है जो महान ऐश्वर्य शोभा और यश का एकान्त आश्रय है तथा जो औरों के लिए दुर्लभ है श्रीकृष्ण के उस रूप को गोपिकाएँ निरन्तर नयनों के द्वारा पान करती रहती हैं।[1]

छायावादी का कवि भी अपने अज्ञात प्रियतम में ऐसे ही अलौकिक गुणों का आरोप कर गोप गोपांगनाओं की भाँति अलौकिक रस के पान करने का अभिलाषी प्रतीत होता है।

जीव

चैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार जीव असंख्य हैं अनन्त हैं। श्रीकृष्ण विभुचित हैं। जीव अणुचित है। स्वरूपतः जीव श्रीकृष्ण का नित्यदास है

---

१ गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं
   लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्।
   दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुराप-
   मेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य॥

   श्रीमदभागवत १०।४४।१४

वह श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति ह भ और अभरूप म प्रकाशित होता ह।[1] श्री कृष्ण की तीन शक्तिया है—अनरगा वहिरगा तथा तटस्था। चिनशक्ति ही अतरगा शक्ति है। माया शक्ति वहिरगा तथा जीव शक्ति तटस्था शक्ति है। श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति उनकी अतरगा तथा वहिरगा शक्तिया के मध्य म स्थित है। भाभद प्रकाश के द्वारा उनकी तटस्था शक्ति ही जीव है। अन्तरगा शक्ति के आकषण का प्राप्त कर जीव श्रीकृष्ण की ओर उमख होना है तथा नियानन्द नित्य सख का भोग करता है। किन्तु वहिरगा शक्ति के आकषण म बन्द मायामग्न होकर सासारिक दशा का भोगता है। चतय के शब्दो म अनादि जाव श्रीकृष्ण को भूलकर जब वहिमुख होना है तब माया उसको सासारिक दुख प्रदान करती है कभी ऊपर उठाकर स्वग म ले जाती है तो कभी नरक म डबा देती है। यह अविद्या या माया भगवान की परिचारिका है। यह भगवन्मिख जीवो का अपने प्रभ के प्रति अवणा का सहन नहा कर सकती। इसीलिए दण्ड विधान करती है। इस प्रकार भगवद्विमुखता ही दुख का हतु है। इस माया से निस्तार पाने के लिए एकमात्र उपाय है—भगवान के सम्मख होना।

नाम सकीर्तन

चतयमत मे भगवत्प्रम ही जीव का नि श्रेयस मगल है। भक्ति के अभाव म अय साधनो द्वारा भगवत्प्रम की प्राप्ति नही हो सकती। अनुकूल भाव से श्रीकृष्ण की सेवा ही भक्ति है।[3] भक्ति ही श्रीकृष्ण प्रम की साधिका है। भगवत्प्रम मे श्रीनाम-कीर्तन की बडी महिमा है। कलि मे नाम सकीनन ही युगधम है। श्रीनाम कीतन के प्रभाव से भगवत्प्रेम की प्राप्ति सुलभ हो

---

१ जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश॥
श्री चतयचरितामृत—

२ कृष्ण भलि सेइ जीव अनादि वहिमुख।
अतएव माया तारे देय ससार दुख॥
कभू स्वर्गे उठाय कभू नरके डुबाय।
—श्री चतयचरितामत—

३ आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरुत्तमा
भक्तिरसामृतसिधु (पूव विभाग, प्रथम लहरी)

जाती है क्योंकि नाम नामी से अर्थात श्रीकृष्ण से अभिन्न है। ऋग्वेद में कहा गया है— हे विष्णो! तुम्हारा नाम चित्स्वरूप है अतएव यह स्व प्रकाशरूप है। इसलिए उसके विषय में अल्पज्ञान रखते हुए भी उसका उच्चारण मात्र करते हुए सुमति अर्थात तद्विषयक ज्ञान हम प्राप्त करते हैं।[1] इसी प्रकार श्रीमदभागवत में कहा गया है कि कलियुगी जीवों की ध्यान-यज्ञ अर्चना योग्यता के अभाव से निष्फल हो जाती हैं। नाम-संकीर्तन से ही उनमें निःश्रेयस प्राप्ति की योग्यता आती है अन्य कोई उपाय नहीं है। श्री चैतन्यचरितामृत में महाप्रभु ने कहा है—

कलिकाल नामरूपे कृष्ण-अवतार।
नाम हैते हय सब जगत निस्तार॥
× ×
अन्यथा ये माने तार नाहिक निस्तार।[3]

अर्थात कलि में नाम के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार है। नाम में सम्पूर्ण चराचर का निस्तार होता है। जिसकी ऐसी मान्यता नहीं है उसका निस्तार नहीं है।

इसके अतिरिक्त श्री चैतन्य चरितामृत में चैतन्य महाप्रभु का यह भी उपदेश है कि कुबुद्धि को छोड़कर श्रवण कीर्तन करो। इनके द्वारा शीघ्र ही कृष्ण प्रेम धन प्राप्त हो जायगा। नीच वर्ण में पैदा होने से ही कोई भजन के अयोग्य नहीं होता। इसके विपरीत सत्कुल में उत्पन्न ब्राह्मण ही भजन के योग्य हो ऐसी बात भी नहीं है। जो भजन में लगा रहता है वही श्रेष्ठ है और जो अभक्त है वही हीन कुल के समान है। भगवान दीनों पर अधिक दया करते हैं। भजन में नवधा भक्ति श्रेष्ठ है। वह कृष्ण प्रेम तथा स्वयं श्रीकृष्ण को प्रदान करने में शक्तिशालिनी होती है। उनमें भी नाम-संकीर्तन सर्वश्रेष्ठ है।[4]

---

१ ॐ आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते।
विष्णो सुमतिं भजामहे ॐ तत्सत। —ऋग्वेद १।१५६।३

२ कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत॥ —श्रीमदभागवत १२।३।५१

३ श्री चैतन्य चरितामृत, आदि लीला परिच्छेद १७

४ कुबुद्धि छाड़िया कर श्रवण-कीर्तन।
अचिरात पाबे तबे कृष्ण प्रेम धन॥

श्री भगवान अकिंचन को ही प्राप्त होते हैं अभिमानी को नहीं। इस सम्बन्ध में चतन्यदेव का उपदेश है कि जो तृण से भी अधिक नम्र है वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु है तथा स्वयं मान की अभिलाषा से रहित होकर दूसरों को मान देता है वही सदा श्रीहरि-कीर्तन का अधिकारी है।[1]

छायावाद के कवियों ने भक्ति अथवा भगवत्प्रेम के सम्बन्ध में नाम के माहात्म्य का मुक्तकण्ठ से बखान किया है।

मुक्ति

चतन्यमत में मुक्ति भगवान की कृपा से प्राप्त होती है। मुक्तावस्था में भी जीव ब्रह्म से पृथक रहता है किन्तु उसे श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होता है। जो जीव भगवान की उपासना तथा उनके तत्व ज्ञान के द्वारा भगवद्धाम को प्राप्त होता है उसका पुनरागमन नहीं होता।

चतन्यमत में ज्ञान का सार भक्ति है। भक्तिमार्ग की तीन अवस्थाएं हैं—साधन भाव और प्रेम। इन्द्रियों की प्रेरणा द्वारा की जाने वाली सामान्य भक्ति का नाम साधन भक्ति है। यह जीव के हृदयस्थ प्रेम को जागृत करती है इसी से इसे साधन भक्ति कहते हैं। शुद्ध सत्वरूपा प्रेमसूर्य की किरण सदृश चित्त में स्निग्धता उत्पन्न करने वाली भक्ति विशेष का नाम भाव है। भाव प्रेम की प्रथमावस्था है। यही भाव जब घनीभूत हो जाता है तब उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम ही प्रयत्न का चरम फल है प्रेम ही जीव का नित्यधर्म है।

नीच जाति नहे कृष्ण भजने अयोग्य।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य॥
येई भजे सेइ बड़, अभक्त हीन छार।
दीनेर अधिक दया करे भगवान।
भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति।
कृष्ण प्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नाम संकीर्तन।
—श्री चतन्य चरितामृत अन्त्य लीला परिच्छेद ४

१ तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥
श्री शिक्षाष्टकम् श्लोक ३

यही परम पुरुषार्थ है।[1] प्रेम के द्वारा श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है।[2]

छायावाद काव्य में प्रेम का बड़ा माहात्म्य है। छायावाद का कवि प्रेमाराधन के द्वारा अपने आराध्य को पाने का उपक्रम करता है। उसके निकट प्रेम मुक्ति का साधन ही नहीं प्रत्युत मूर्तिमान मुक्ति भी है।[3]

व्यावहारिक वेदान्तवाद

बौद्ध धर्म के पराभव के उपरान्त शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, चैतन्यदेव, गुरु नानक, कबीर, दादू आदि दार्शनिकों, भक्तों एवं सन्तों द्वारा जिस वेदान्त दर्शन का भारत भूमि में विकास, प्रचार तथा प्रसार कई शताब्दियों से निरन्तर होता चला आ रहा था उसी का विकास, प्रचार तथा प्रसार स्वामी विवेकानन्द का भी लक्ष्य था। अपनी समर-नीति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—

मेरी नीति है—प्राचीन महान आचार्यों के उपदेशों का अनुसरण करना। मैंने उनके कार्यों का अध्ययन किया है और जिस प्रणाली से उन्होंने कार्य किया है उसके आविष्कार करने का मुझे सौभाग्य मिला है। वे महान समाज संस्थापक तथा बल, पवित्रता और जीवन शक्ति के अद्भुत आधार थे। उनका सबसे अद्भुत कार्य था—समाज में बल, पवित्रता और जीवन शक्ति का संचार करना। हम भी वही कार्य करना है। किन्तु आज परिस्थिति कुछ बदली हुई है अतः कार्य प्रणाली में थोड़ा परिवर्तन करना होगा। बस इतना ही इससे अधिक कुछ नहीं।[4] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक सेवा के लिए स्वामी विवेकानन्द ने जिस सार्वभौम धर्म की स्थापना का निश्चय किया था वह कोई नवीन धर्म नहीं था। वह था उपनिषदों पर आधारित भारत का परम्परागत वेदान्तवाद। एक स्थान पर उन्होंने कहा भी है— मेरे उपदेश वेदान्त की समता और आत्मा की विश्व-व्यापकता इन्हीं सत्यों पर प्रतिष्ठित है।[5] उनकी दृष्टि में वेदान्त वह विशाल सागर है

१ रामदास गौड हिन्दुत्व पृ० ६८३ ८४
२ कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, अचिन्त्यभेदाभेदवाद पृ० ७८६
३ प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सृजन
—पन्त स्वर्णधूलि पृ० १६४
४ विवेकानन्द मेरी समर-नीति पृ० ४४
५ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ० २०

जिसके वक्ष पर युद्ध पोत और साधारण बेडा दोनो साथ साथ रह सकते हैं। वेदात म योगी मूर्तिपूजक नास्तिक इन सभी के लिए पास पास रहने का स्थान है। इतना ही नही वेदान्त-सागर म हिन्दू मुसलमान ईसाई या पारसी सभी एक हैं—सभी उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की सन्तान है।[1] वेदान्त का यही समन्वयवादी दृष्टिकोण विवेकानन्द के सर्वत्र समन्वय का आधार है।

एक वेदान्ती होने के नाते विवेकानन्द ने समस्त जीवनोपयोगी तत्त्वा का चयन आध्यात्मिक दृष्टि से ही किया है। उनका विश्वास था कि भारत वर्ष म किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म प्रचार आवश्यक है।[2] अत उन्होंने यह आदेश किया कि भारत को सामाजिक अथवा राजनीतिक विचारो से प्लावित करने के पहले आवश्यक है कि उसम आध्यात्मिक विचारो की बाढ़ ला दी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदो पुराणो और अन्य सब शास्त्रो म जो अपूर्व सत्य छिपे हुए हैं उन्हें इन सब ग्रथो से बाहर निकालकर मठो की चहारदीवारिया भेदकर वनो की निर्जनता से दूर लाकर देश म सर्वत्र बिखेर दिया जाय ताकि ये सत्य दावानल के समान सारे देश को चारो ओर से लपेट ले—उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सब जगह फैल जाय।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए विवेकानन्द ने अध्यात्म मार्ग का ही अवलम्बन किया। उपनिषद ही अध्यात्म दर्शन के आदि स्रोत हैं अत स्वामी विवेकानन्द ने भारत निवासियो के बीच यह प्रचारित किया कि उपनिषदो के सत्यो का अवलम्बन करने म ही भारत का उद्धार हो सकता है।[4] उपनिषद ज्ञान के आलोक म ही उन्होंने ससार का निर्भयता त्याग पवित्रता प्रेम दृढ़ता एकता आत्म विश्वास कर्मण्यता देशभक्ति आदि का सन्देश दिया। देश भक्ति के प्रसग म उन्होंने कहा है—

उपनिषदों की शिक्षा ग्रहण किए बिना कोई देश भक्त नही हो सकता क्योंकि त्याग ही देश भक्त होने की पहली सीढ़ी है।

---

१ विवेकानन्द विविध प्रसग पृ० ९२
२ विवेकानन्द मेरा समर नीति पृ० ४९
३ वही
४ वही पृ ६१ ६२
५ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ ५५

स्वामी विवेकानन्द ने इस बात का अनुभव किया कि 'जो आत्म विश्वास वेदान्त की नीव है वह अब भी कार्यरूप म परिणत नही हुआ है।[1] अत उन्होने इस बात का प्रबल प्रचार किया कि महान विश्वास के बल पर ही जगत की उन्नति सम्भव है। उनके व्यावहारिक वेदान्त म नास्तिक वही है जो अपने आप पर विश्वास नही करता[2] क्योकि ब्रह्म भाव जगाने के लिए आत्म विश्वास आवश्यक है। आत्म विश्वास ही समस्त आध्यात्मिक शक्तिया का मूल है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द न अपन देशवासिया को जिस कर्मठ किंवा व्यावहारिक वेदान्तवाद का पाठ पढाया उसके प्रभाव स वे अपनी दीनता और पराधीनता को भूलकर आत्मगौरव का अनुभव करने लगे। साथ ही अपन बहिरन्तर विकास के लिए कमरत तथा विरोधी अशुभ शक्तिया से सघष करन के लिए उद्यत हो गय।

स्वामी विवेकानन्द क उक्त व्यावहारिक वेदान्तवाद का छायावादी कविया पर प्रचुर प्रभाव पडा है। अत यहा पर उसके स्वरूप का सक्षेप म परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी सिद्ध होगा।

ध्येय

प्रत्यक आत्मा ही अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एव अन्त प्रकृति दोनो का नियमन कर इस अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को अभिव्यक्त करना ही जीवन का ध्येय है।[3]

ब्रह्म

विवेकानन्द के मत म ब्रह्म ही प्रकृत सत्ता है। वह अव्यक्त है अत उसकी धारणा नही की जा सकती। वह अग्राह्य है—अवाड मनसागोचर है यही उसकी महिमा है।[4] ब्रह्म निर्विकार है और एक एसी इकाई ह जो अन्य इकाइयो की समष्टि नही ह। वह अखण्ड है तथा क्षुद्र जीवाणु स लेकर ईश्वर तक समस्त भूतो म व्याप्त है। उसके बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नही और जो कुछ भी सत्य ह वह ब्रह्म ही है।[5]

---

१ विवेकानन्द स्वाधीन भारत ! जय हो। पृ० ६६
२ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन म वेदान्त पृ० ७
विवेकानन्द शक्तिदायी विचार प० ३१
४ विवेकानन्द विविध प्रसग प० ६८
५ वही प० ६०

छायावाद के कवि ने स्वामी विवेकानन्द के उक्त सूक्ष्म अव्यक्त अवाङ् मनसागोचर तथा अखण्ड ब्रह्म को बार बार स्मरण किया है और उसकी महिमा का वर्णन किया है।

ईश्वर

स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषद् के सत्यों का अवलम्बन करने तथा उन्हें कार्यरूप में परिणत करने का आदेश किया है।[1] अतएव एक प्रकार से उनका ईश्वर उपनिषदों का ही ईश्वर है। अत वह समस्त सुखों का स्रोत है सत चित आनन्द है।[2] वह अकाम है इसीलिए अभय और ओजस्वरूप है क्योंकि कामना तथा स्वार्थ से ही भय की उत्पत्ति होती है।[3] वह प्रेम स्वरूप है और जो कुछ बन्धनकारक है वह ईश्वर नहीं है।[4] ईश्वर मुक्ति स्वरूप है प्रकृति का नियन्ता है।[5] वह अतीन्द्रिय और निरपेक्ष है अत उसे विचार और वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।[6] किन्तु अनिर्वचनीय होते हुए भी वह समस्त वस्तुओं की अपेक्षा अधिक ज्ञात एवं सत्य है वह कभी कल्पना प्रसूत नहीं है। वह हमारी इन्द्रियों से भी अधिक सत्य है। वही समस्त भूतों में अन्तर्निहित है।[7] वह समष्टिरूप है और समष्टिरूप होने के कारण सर्व शक्तिमत्ता तथा सर्वज्ञता ईश्वर के प्रत्यक्ष गुण हैं। इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रकार के तर्क की आवश्यकता नहीं है।[8]

विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर एक ऐसा वृत्त है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है और जिसका केन्द्र सर्वत्र है। इस वृत्त का प्रत्येक बिन्दु सजीव चैतन्य और समान रूप से क्रियाशील है।[9] जीवन और मृत्यु में सुख और

१ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ ४१५

२ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ ८८

३ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ १ ०

४ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ ९७

५ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ० ४

६ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ ८५

७ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ २४

८ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ ९६

९ वही पृ ६२

दुख में ईश्वर समान रूप म विद्यमान है। समस्त विश्व ईश्वर से पूर्ण है।[1] ईश्वर प्रत्येक हृदय म साक्षी क रूप म विद्यमान है।[2] हम उसे सवत्र देख और अनुभव कर सकते है।[3] अत स्वामी विवेकानन्द का आदेश है—

एकमात्र ईश्वर आत्मा और आध्यात्मिकता ही सत्य है। केवल उन्ही का आश्रय लो।[4] अपने लिए कुछ मत चाहो दूसरो के लिए ही सब कुछ करो—यही है ईश्वर म तुम्हारे जीवन की स्थिति गति तथा प्राप्ति।[5]

छायावाद की कविता म विवेकानन्द के अनिर्वचनीय अकाम प्रेम त्याग तथा मुक्ति-स्वरूप ईश्वर की झांकी विशेष रूप म पाई जाती है। छायावाद की मानवतावादी प्रवृत्ति पर भी जिसम नीत दलिता के प्रति सहानुभूति अथवा संवेदना प्रकट की गई है विवेकानन्द के प्रेम तथा त्याग रूप ईश्वर की स्पष्ट छाप है।

मानव ईश्वर

विवेकानन्द के मत म प्रत्येक नर-नारी ही वही प्रत्यक्ष जीवन्त आनन्द मय एकमात्र ईश्वर है।[6] उनका यह भी कहना है कि मनुष्य सन्द ईश्वर की पूजा मनुष्यो के द्वारा ही करता आया है और जब तक वह मनुष्य बना रहेगा तब तक इसी तरह ईश्वर की पूजा करता रहेगा।[7] विवेकानन्द के समीप केवल दो वर्ग के मनुष्य एमे हैं जो ईश्वर की उपासना मनुष्य के रूप म नही करते। एक तो मानवरूपधारी पशु जिनका कोई धर्म नही होता और दूसरे परमहंस (पहुचे हुये योगी) जो मनुष्यता से पर पहुच गये हैं मन और शरीर से अलग हो चुके हैं और प्रकृति की मर्यादा म मुक्त हो गए हैं। समस्त प्रकृति उनकी आत्मा बन गई है। उनके न मन है न शरीर। वे ईसा या बुद्ध क समान ईश्वर की उपासना ईश्वर क रूप म ही कर सकते हैं। ये दोनो छोर वाले व्यक्ति जसे एक समान दिखाई पडते हैं,

---

१ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार, पृ० ३५ ३६
२ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० १०४
३ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ ४
४ विवेकानन्द वही पृ० ४०
५ विवेकानन्द वही पृ० २८
६ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन म प० ४६
७ विवेकानन्द प्रेमयोग ततीय संस्करण नागपुर पृ० ४९

वस ही अ यन्त अज्ञानी और अति उच्च ज्ञानी म भी समता ह । य दोनो ही किसी की उपासना नही करते । अत्यन्त अज्ञानी मनुष्य को पर्याप्त विकास न होने के कारण ईश्वरोपासना की आवश्यकता नहा जान पडती । अत वह ईश्वर की पूजा नही करता । जो मनुष्य उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं व भी ईश्वर की पूजा नही करते क्योकि वे परमात्मा का साक्षात्कार कर चुके है और उनका ईश्वर के साथ तदाकार हो चुका है। ईश्वर कभी ईश्वर की पूजा नही करता । इन दो सीमान्त अवस्थाओ के मध्यवर्ती कोई मनुष्य यदि यह कह कि मैं मनुष्य रूप म ईश्वर की पूजा नही करता तो विवेकानन्द के मत म उससे सावधान रहने की आवश्यकता है ।[1] अस्तु विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर की मनुष्य रूप म उपासना करना नितान्त आवश्यक है। जिन जातियो न एस उपास्य मानव ईश्वर है व धन्य है । मनुष्य म ईश्वर का दर्शन करना यही ईश्वर दर्शन का स्वाभाविक माग है ।[2] इसी प्रसग म प्रतिमा पूजन पर विचार करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि यदि ईश्वरोपासना के लिए प्रतिमा आवश्यक है तो सजीव मानव प्रतिमा मौजूद है । यदि तुम ईश्वरोपासना के लिए मन्दिर निर्माण करना चाहते हो तो करो किन्तु सोच लो कि उससे भी उच्चतर उससे भी महान मानव देह रूपी मन्दिर पहले से मौजूद है ।[3] इस प्रकार विवेकानन्द का वेदान्त यह शिक्षा देता है कि मनुष्य के सिवा दूसरा ईश्वर नही है । मानवात्मा अथवा मनुष्य देह ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है ।[4] सूत्ररूप म उनके व्यावहारिक वेदान्त का आदश है— जगत म मनुष्य की उपासना [5]। अत उनका उद्घोष है कि यदि तुम व्यक्त ईश्वर रूप अपने भाई की उपासना नही करते तो वेदान्त तुम्हारी उपासना म विश्वास नही करता ।[6] अतएव परमात्मा को खोजना है तो मनुष्य की सेवा करो ।[7] स्वामी विवेकानन्द के इसी मानव ईश्वर से

१ विवेकानन्द प्रमयोग पृ० ४९ ५०
२ वही प्र मयोग पृ ५०
३ वही व्यावहारिक जीवन म वदान्त पृ ३६
४ वही पृ० ४८
५ वही पृ० ५५
६ वही
७ वही मेरा जीवन तथा ध्येय, पृ० ३०

प्रभावित होकर छायावादी कवि ने मानव में ईश्वरत्व का आरोप किया और उसे सूक्ष्म रूप में चित्रित किया।

ईश्वर और प्रेम

स्वामी विवेकानन्द के मत में प्रेम प्रेमी और प्रेमपात्र अर्थात भक्ति, भक्त और भगवान तीनों एक ही हैं।[1] इसी से उन्होंने कहा है कि प्रेम केवल प्रेम का ही मैं प्रचार करता हूं।[2] हम प्रेम से बढ़ कर किसी अन्य सुख अथवा आनन्द की कल्पना नहीं कर सकते।[3] प्रेम ही विकास और स्वार्थ संकोच है। इसलिए प्रेम ही जीवन का मूलमन्त्र है। प्रेम करने वाला ही जीता है और स्वार्थी मरता है।[4] विवेकानन्द का यह प्रेम सर्वसाक्षी सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है।[5] संसार में यही एकमात्र प्रेरक शक्ति है।[6] चेतन और अचेतन में व्यष्टि और समष्टि में यही भगवत्प्रेम आकर्षक की तरह प्रकट होता है। इसी प्रेम की प्रेरणा से ईसा ने मानव जाति के लिए अपने प्राणों का त्याग किया, इसी प्रेम की प्रेरणा से मनुष्य अपने देश के लिए प्राण त्यागने को उद्यत रहते हैं।[7] संसार के समस्त पदार्थों को एक ही केन्द्र की ओर खींचने वाली वस्तु यही प्रेम है।[8] इसके अभाव में यह संसार क्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकता।[9] यह प्रेम ही परमेश्वर है।[10] अतः ईश्वर पर प्रेम करना और उसी ईश्वर की सेवा करना इसे छोड़ और सब मिथ्या है व्यर्थ है महान ढोंग है।[11] किन्तु इस प्रेम को पाना बड़ी कठिन बात है। इसका अर्थ संसार का साधारण स्वार्थमय प्रेम नहीं है। विवेकानन्द

१ प्रेमयोग, पृ० १२६
२ विवेकानन्द, शक्तिदायी विचार, पृ० २०
३ वही प्रेम योग पृ० २२
४ वही शक्तिदायी विचार पृ० ७६
५ वही प्रेम योग पृ० १२०
६ वही, पृ० १२१
७ वही, पृ० १२१
८ वही पृ० १२०
९ वही, पृ० १२१
१० वही, पृ० १२१
११ वही, पृ० ९९

के मत म सासारिक प्र म का प्र म कहना अधम होगा, क्योंकि ससार क समस्त प्रेम प्रदशन म निरा दम्भ है निस्सारता है खोखलापन ह ।[1] अपन बच्चो और अपनी स्त्री के प्रति जा मनुष्य का प्र म ह वह भी पाशविक प्र म ह ।[2] किन्तु विवेकानन्द न इस तथ्य को स्वीकार किया ह कि इस सासारिक प्रेम के पीछे भी एक ऐसी शक्ति ह जो हम निरन्तर यथाथ प्रम की ओर प्रेरित कर रही ह । यदि मनुष्य अपने को सासारिक बन्धन से मुक्त करने मे समथ हो तो सासारिक प्र म ईश्वरीय प्र म का एक सुदर सोपान सिद्ध होगा ।[3] प्रम के प्रथम लक्षण के विषय म विवेकानन्द का अभिमत ह कि उसम व्यापार या सौदागरी न हो । जहाँ प्रश्न क्रय विक्रय का ह वहाँ कोई प्र म नही रह जाता ।[4] इस प्रकार उनके अनुसार ससार को उनकी आवश्यकता ह जिनका जीवन उत्कट प्र म तथा नि स्वाथता स पूण ह । वह प्र म प्रत्येक शब्द को वज्रवत शक्ति प्रदान करेगा । अत विवेकानन्द का आदेश ह—प्रेम की सवशक्तिमत्ता पर विश्वास करो[5] और प्रेम प्रम ही के लिए करो क्योंकि एकमात्र प्रम ही जीवन का ठीक वसा ही आधार ह जसा जीवन के लिए श्वास लेना । नि स्वाथ प्रम नि स्वाथ काय आदि का यही रहस्य ह ।[7] इसी से उन्होंने कहा ह कि ससार को प्रकाश देन के लिए अनन्त प्रम और अपार दयालुता सम्पन्न सकडो बुद्धो की आवश्यकता ह ।[8] प्रम द्वारा ईश्वर प्राप्ति के विषय म विवेकानन्द का मत ह कि जिस प्रकार की व्याकुलता स प्रमिका स्त्री अपन मत पति का चिन्तन करती ह उसी प्रकार के प्रेम से यदि हम ईश्वर प्राप्ति के लिए व्याकुल हो तो हम ईश्वर की प्राप्ति अवश्य होगी ।[9]

विवेकानन्द के उक्त आध्यात्मिक प्रम को छायावादी कवि ने सर्वांशत अपनाने का प्रयास किया है । विवेकानन्द के प्रभाव से छायावाद का लौकिक

१ विवेकानन्द प्र म योग पृ २२, २३
२ वही पृ० १२०
३ वही पृ० २२ २३
४ वही प्रेम योग पृ ११५
५ वही शक्तिदायी विचार पृ० २८
वही पृ० २४
७ वही, पृ० २६
८ वही पृ० २६
वही प्रमयोग पृ० ९१

प्रेम भी अलौकिक प्रेम की आभा से उद्दीप्त हो उठा है। छायावाद के प्रेम-गीतों पर विवेकानन्द के प्रेम सिद्धान्त का प्रचुर प्रभाव देखा जा सकता है।

ईश्वर और दुःख

विवेकानन्द ने कहा है कि जिस प्रकार अग्नि का काँचन में वह और भी प्रज्वलित हो उठती है, सर्प के सिर पर आघात होने से ही वह अपना फन उठाता है, उसी प्रकार जब हृदय में वेदना की टीस उठती है, जब दुःख का तूफान चारों दिशाओं में घहराता है, जब जान पड़ता है कि प्रकाश अब और दिखाई न देगा, जब आशा और साहस नष्टप्राय हो जाते हैं, तभी इस भयानक आध्यात्मिक झंझावात के बीच अन्तर्निहित ब्रह्मज्योति प्रकाशित होती है। ऐश्वर्य की गोद में पलते हुए, पुष्प शय्या पर शयन करते हुए तथा कभी भी आँसू बहाये बिना कोई महान नहीं हुआ है—किसी का ब्रह्मभाव जाग्रत नहीं हुआ है।[1] अतः उन्होंने आँसू बहाते हुए भी निडर रहने का आदेश दिया है। क्योंकि उनके मत में ऐसा करने से मनुष्य के सामने से अनेकता का दृश्य अन्तर्हित हो जायगा और सर्वत्र अनन्त ईश्वर की अनुभूति का मार्ग उन्मुक्त हो जायगा।[2] इसी से उन्होंने यह आकांक्षा प्रकट की है कि 'मैं बार-बार जन्मूँ, सहस्रों मुसीबतें पड़ें जिससे मैं उस परमेश्वर की पूजा कर सकूँ, एकमात्र जिस परमेश्वर में मैं विश्वास करता हूँ और जो विश्व की समस्त आत्माओं की समष्टि है।'[3] कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी कवि ने दुःख को प्रायः आध्यात्मिक स्तर पर ही अपनाया है, इसी से वह उसे मानवात्मा का नित का मधुमय भोजन मानता है।[4]

आत्मा

स्वामी विवेकानन्द के मत में आत्मा ही परमात्मा है। अतः आत्म साक्षात्कार ही जीवन का चरम लक्ष्य है। परमात्मा की भाँति आत्मा अज

---

१ विवेकानन्द : स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृ० ८

२ वही, पृ० ८२

३ विवेकानन्द : मेरा जीवन तथा ध्येय, पृ० २१

४ दुःख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन
दुःख के तम को खा-खाकर भरता प्रकाश से वह मन।
—पन्त, गुञ्जन, पृ०

५ विवेकानन्द : व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० [illegible]

अविनाशी आनन्दमय, सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान, नित्य और ज्योतिमय है। आत्मा के उक्त गुणों का चिन्तन करते रहने से ही मनुष्य प्रकृत कर्म करने में समर्थ हो सकता है।[1] आत्मा के सम्बन्ध में जन्म अथवा मृत्यु की बात करना कोरी विडम्बना मात्र है। आत्मा का न कभी जन्म होता है न मृत्यु। मैं मरूंगा अथवा मरने में डर लगता है यह सब केवल कुसंस्कार मात्र है।[2] आत्मा ही मन तथा प्रत्येक वस्तु में प्रतिबिम्बित हो रहा है। आत्मा का प्रकाश ही मन को चैतन्य करता है। प्रत्येक वस्तु आत्मा का ही प्रकाश है। प्रेम घृणा सद्गुण तथा दुर्गुण सभी आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं। जब मन रूपी दर्पण मलिन रहता है तब प्रतिबिम्ब भी धुंधला आता है।[3] मनुष्य की आत्मा कार्य-कारण नियम से परे होने के कारण सम्मिश्रण नहीं है किसी कारण का परिणाम नहीं है अतएव वह नित्य मुक्त है और नियम के भीतर जो कुछ सीमित है उसका शासन कर्त्ता है।[4] अपनी आत्मा के भीतर से ही हम विश्व की धारणा होती है और यह बहिर्जगत उसी अन्तर्जगत का प्रकाश मात्र है।[5] इस प्रकार व्यक्त अथवा अव्यक्त दोनों दशाओं में यह आत्म शक्ति प्रत्येक में ब्रह्मा से लेकर तृण तक में मौजूद है।[6] जैसे किसान खेतों की मेड़ तोड़ देता है और एक खेत का पानी दूसरे खेत में बहने लगता है वैसे ही आत्मा भी आवरण हटते ही प्रकट हो जाती है।[7] यही आत्म लाभ जीवन का लक्ष्य है। आत्म लाभ अथवा आत्म प्रीति का अर्थ है सब प्राणियों से प्रीति समस्त पशु पक्षियों से प्रीति सब वस्तुओं में प्रीति क्योंकि ये आत्मा से भिन्न नहीं है।[8] विवेकानन्द के अनुसार यह जगत आत्मा का ही खेल है।[9] आत्मा के अतिरिक्त जगत की कोई सत्ता नहीं है। इसी के बल पर मनुष्य सब कुछ करने में समर्थ है। क्योंकि मनुष्य की आत्मा के भीतर अनन्त शक्ति भरी पड़ी है। उसे केवल जानना ही अपेक्षित है।[10] अत

---

१ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृष्ठ १९

२ वही पृष्ठ ७

३ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृष्ठ ६७–६८

४ वही पृष्ठ २४

५ वही पृष्ठ ३५

६ विवेकानन्द स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृष्ठ ७०

७ वही

८ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृष्ठ १८

९ वही पृष्ठ ५६

१० वही पृष्ठ ६७

विवेकानन्द का उपदेश है कि 'आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है अन्य सब स्तरों का जीवन मृत्युस्वरूप है।'[1] आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना तद्रूप हो जाना—उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है।[2] 'ईश्वर की पूजा करना अन्तर्निहित आत्मा की ही उपासना है।'[3] स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से छायावादी का कवि आत्मा को ब्रह्मरूप चित्रित करता है तथा उसके साक्षात्कार पर बल देता है। आत्मतत्व सुना कर ही वह सामान्य जनों में शक्ति का विकास अथवा संचार करता है।

जगत्

विवेकानन्द के मत में 'जगत का विस्तार ईश्वर से हुआ है। ईश्वर ही जगत बन जाता है और फिर यह जगत उसी में समा जाता है। पुनः उसी से निःसृत और पुनः उसी में विलीन हो जाता है। निरन्तर यही क्रम चलता रहता है।'[4] इस प्रकार जड़ पदार्थ मन और आत्मा में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। ये सब एक ही ईश्वर की अनुभूति के विभिन्न पहलू मात्र हैं।[5] दूसरे शब्दों में यह समष्टि-जगत एक निरपेक्ष अखण्ड सत्ता है जिसमें न परिवर्तन हो सकता है और न हुआ है। यह सदा एकरस रहता है।[6] तात्पर्य यह कि 'यथार्थ में जगत वही निर्गुण पुरुष मात्र है और हम लोगों की बुद्धि द्वारा उसके नाम रूप दिये गये हैं।'[7] किन्तु उसके भीतर का प्रत्येक अणु निरन्तर गतिशील है वह अपरिणामी और साथ ही साथ परिणामी भी है, सगुण है और निर्गुण भी है।[8] अर्थात् अपरिणामी जगत पारमार्थिक सत्ता और परिणामी जगत व्यावहारिक सत्ता है। इसी से यह जगत पंचेन्द्रियों को पंचभूतमय, दुष्टों को नरक, पुण्यात्माओं को स्वर्ग और पूर्णत्व प्राप्त ज्ञानियों को ब्रह्ममय प्रतीत होता है।[9]

---

१ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृष्ठ ५५
२ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृष्ठ ३४
३ वही, पृष्ठ ३६
४ विवेकानन्द प्रेमयोग पृ० ७८
५ विवेकानन्द विविध प्रसंग, पृ० ६५
६ वही, प्रेमयोग पृ० ८८
७ वही व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ७४
८ वही, पृ० ७५
९ वही, विविध प्रसंग, पृ० ६६

और वह मुक्ति है परमात्मा । वह वही आनन्द है जो हर वस्तु मे निहित है किन्तु जब मनुष्य उसे किसी ससीम वस्तु म ढूढता है तब उसका कण मात्र पाता है ।[1] इस प्रकार हमारे दार्शनिको के अनुसार मुक्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है । ज्ञान लक्ष्य नही हो सकता क्योकि ज्ञान एक मिश्रण या यौगिक पदार्थ है । वह शक्ति और स्वतन्त्रता—इन दोनो का योग है पर अभीष्ट केवल स्वतन्त्रता ही है । एक मात्र स्वतन्त्रता ही—मुक्ति ही—चेतन जीव का सार है ।[2] हम जिन देवता ईश्वर आदि का अनुसन्धान करते हैं बाह्य जगत म स्वाधीनता पाने के लिए हम जो प्राणप्रण मे चेष्टा करते है वह सब और कुछ नही हम लोगो की मुक्त प्रकृति ही माना किसी-न किसी रूप म अपने को प्रकाशित करने का यत्न कर रही है ।[3] विवेकानन्द के इस मुक्ति सिद्धान्त के प्रभाव से छायावाद के कवि म स्वतन्त्रता की भावना का उद्रेक हुआ जिससे वह समस्त अनिच्छित बन्धनो को तोड देने के लिए कृतसकल्प हुआ । विवेकानन्द के मुक्ति सिद्धान्त का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी के काव्य पर पडा । सच तो यह है कि उनके दार्शनिक काव्य का ताना बाना मुख्यत विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के तारो द्वारा ही निर्मित है । निराला जी के यश प्रार्थी कवि ने व्यक्ति और समाज की मुक्ति के साथ-साथ छन्द के बन्धनो को भी काटने का सफल प्रयत्न किया है ।[4]

श्री अरविन्द दर्शन

जिस प्रकार वेदान्त दर्शन के समस्त सम्प्रदायो का मूलाधार उपनिषद् ज्ञान रहा है उसी प्रकार प्रातिभज्ञान द्वारा अनुभूत वैदिक ऋषियो का

---

१ विविध प्रसग पृ० ९६
२ विविध प्रसग पृ० ९७ ९८
३ व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त पृ० ५५
४ जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बन्धन नही रहते । न मनुष्यो म, न कविता मे । मुक्ति का अर्थ ही है बन्धनो से छुटकारा पाना । यदि किसी प्रकार का शृखलाबद्ध नियम कविता म मिलता गया तो वह कविता उस शृखला मे जकडी हुई होती है, अतएव उसे हम मुक्ति के लक्षणो म नही ला सकते न उस काव्य को मुक्तकाव्य कह सकते हैं । मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि म रहकर भी मुक्त है ।
निराला परिमल भूमिका अष्टमावृत्ति, १९६० पृ० १९

आध्यात्मिक सत्य ही श्री अरविन्द की योग साधना का प्रेरणा स्रोत रहा है। किन्तु ऋषियों और श्री अरविन्द की साधना में मौलिक भेद यह है कि ऋषियों की साधना जहा वैयक्तिक मुक्ति को लक्ष्य बना कर चलती है वहा श्री अरविन्द की साधना वैयक्तिक मुक्ति के साथ साथ समाज अथवा समूह की मुक्ति को भी सम्मिलित करके आगे बढी है।

वैदिक ऋषियों की भाँति अरविन्द ने भी परम सत्ता का अद्वैत रूप निरूपित किया है। उनके मत में एक ही बहु के रूप में परिवर्तित हो गया है।[1] यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही परम सत्ता की रूपात्मक और गत्यात्मक अभिव्यक्ति है।[2] अत एक और बहु का समन्वय ही वास्तविक अद्वैत है। इसी से श्री अरविन्द ने जड और चेतन ज्ञान और अज्ञान कर्म भक्ति ज्ञान ईश्वर मनुष्य और प्रकृति भौतिकता और आध्यात्मिकता आदि में समन्वय स्थापित करने का सतत प्रयत्न किया है। समन्वय ही श्री अरविन्द दर्शन की सबसे बडी विशेषता है। अत उनके मत में जड और चेतन में आकाश पाताल का अन्तर होते हुए भी स्वर्णिम परिणय सम्भव है।[3] उनके अनुसार जिस निश्चेतना से हमारी विकास-यात्रा आरम्भ होती है वह केवल आपाउत निश्चेतन है। जड के भीतर भी परम चेतन निहित है।[4] अत जड का बहिष्कार करना परम

1 We see that the Absolute the Self the Divine the Spirit, the Being is One the Transcendental is One The Cosmic is One but we see also that beings are many and each has a self a spirit alike yet different in nature And since the spirit and essence of things is one, we are obliged to admit that all these many must be that One and it follows that One is or has become many
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 49

2 We speak of creation only in the sense of the Being becoming in form and movement
Ibid P 47

3 We have found already in the cosmic consciousness a meeting place where matter becomes real to spirit, spirit becomes real to matter
Sri Aurobindo, The Life Divine, Vol I P 32

4 Matter also is Brahman and it is nothing other then or different from Brahman
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 292

आत्मा का ही बहिष्कार करना है। अगणित विकारो के उपरान्त भी जड सत्य है—आत्मा का एक रूप है।[1] अत श्री अरविन्द के क्रम विवर्तन का प्रयोजन है जड में दिव्य आत्मा को विकसित करना। इसी सिद्धान्त के आधारभूत उनका विश्वास है कि दिव्य जीवन प्राप्त करना केवल सम्भव ही नही प्रत्युत वही विश्व प्रकृति के युग युगान्तर व्यापी क्रम विवर्तन का निगूढ उद्देश्य है—विश्व सृष्टि का गुप्त रहस्य है।[2] अरविन्द के इस दिव्य जीवन का अभिप्राय है अतिमानववाद जिसका लक्ष्य है पृथ्वी को देवभूमि में परिणत कर देना।[3] अरविन्द के क्रम चेतनामूलक अतिमानववाद से छायावादी कवि पन्त विशेष रूप से प्रभावित हुए है। उन्होने श्री अरविन्द दर्शन के कतिपय तत्वो की काव्यमयी अभिव्यक्ति भी की है। अत यहाँ पर श्री अरविन्द दर्शन के विशिष्ट तत्वो का सक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना समीचीन होगा।

परम सत्ता (ब्रह्म)

उपनिषद-सत्य ही श्री अरविन्द की परमसत्ता अथवा ब्रह्म विषयक स्थापना के आधार है। उपनिषद[4] और गीता[5] के मन्त्रो को उद्धृत करते हुए उन्होने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ दिव्य जीवन (दि लाइफ डिवाइन) मे लिखा है—

परम सत्ता शाश्वत निरपेक्ष और असीम है। निरपेक्ष और असीम होने के कारण वह बुद्धिगम्य नही है। तर्क द्वारा उसका वर्णन तथा बोध नही हो सकता। नेति नेति अथवा इति इति कह कर भी उसका स्वरूप निर्धारण

1 Substance or matter then is only a form of Spirit
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 284

2 This earthly life need not be necessarily and for ever a wheel of half joyous half anguished effort attainment may also be intended and the glory and joy of God made manifest upon earth
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 195

3 The body of man also may some day come by its transfiguration the Earth Mother too may reveal in us her godhead
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 307

4 Taittriya Upanishad II I
Swetaswatara IV, 10 VI 1 7 8 11

5 Gita XII, 16, XIII 19

नहीं किया जा सकता।"[1] किन्तु परम सत्ता बुद्धि अथवा तर्क द्वारा अग्राह्य होते हुए भी हर प्रकार अग्राह्य नहीं है। प्रातिभज्ञान (इण्टयुशन) द्वारा उसका अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिभावान के समीप परम सत्ता ही जगत के रूप में अभिव्यक्त हो रही है। अतः जगत भी सच्चिदानन्दरूप है।[3] इस प्रकार ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है। वैदिक ऋषि की भाँति अरविन्द के मत में भी ब्रह्म विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत और निरपेक्ष है अपने में पूर्ण स्वतन्त्र है देश-काल तथा सीम-असीम से परे है।[4] इसी ब्रह्मभाव को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का ध्येय है। छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त की स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा आदि की रचनाओं पर श्री अरविन्द के उक्त ब्रह्म विचार का अत्यन्त व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

जड और चेतन

श्री अरविन्द के मत में जड और चेतन में कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। दोनों एक ही परम सत्ता के दो छोर हैं। अतः दोनों एक ही है। जिसे हम जड के रूप में देखते हैं वह चेतन और मन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जड

---

1 There is then a Supreme Reality eternal, absolute and infinite Because it is absolute and infinite, it is in its essence indeterminable it is indefinable and inconceivable by finite and defining mind, it is describable neither by our negations, Neti Neti nor by our affirmations iti iti
Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 34

2 Intuition brings to man those brilliant messages from the Unknown which are the beginning of his higher knowledge
Sri Aurobindo The Life Divine, Vol I P 81

3 Matter is Sachchidanand represented to His own mental experience
Ibid, P 289

4 The Transcendent, the supracosmic is absolute and free in Itself beyond Time and Space and beyond the conceptual opposites of finite and infinite
Sri Aurobindo The Life Divine, Vol I P 48

चेतन का ही रूपाकार है ।[1] इस प्रकार श्री अरविन्द-दर्शन में जड और चेतन, मन और अतिमानस सत चित-आनन्द रूप ब्रह्म के ही रूप हैं ब्रह्म उनमें केवल निहित ही नहीं है बल्कि समष्टि रूप में वे ब्रह्म ही हैं हां अपने पृथक रूप में उनमें से कोई ब्रह्म अथवा पूर्ण सत्ता नहीं है ।[2] पन्त जी को श्री अरविन्द दर्शन का उक्त जड चेतन सम्बन्धी सिद्धान्त पूर्णत मान्य है ।

क्रम–विकास

संसार के अन्य अध्यात्मवादियों के विपरीत श्री अरविन्द ने भूत (मटर) की सत्ता को खुलकर स्वीकार किया है । अत उन्होंने सत्ता के दो सीमान्त माने हैं । एक सीमान्त पर आत्मा अथवा ब्रह्म है और दूसरे पर जड पदार्थ (मटर) । विकास की क्रिया जड पदार्थ से प्रारम्भ होती है कारण वह आत्मा का निम्नतर स्तर है ।[3] आत्मा जड में ही निहित है और उसे जड में ही विकसित होना है ।[4] श्री अरविन्द के मत में जड पदार्थ में जो विकास होता है वह प्रारम्भिक है अज्ञान में जो विकास होता है वह मध्य है किन्तु विकास का अन्त होता है आत्मा की मुक्ति में जो चेतना का वास्तविक रूप है ।[5]

---

1 Substance is the form of itself and of that substance if Matter is one end Spirit is the other The two are one Spirit is the soul and reality of that which we sense as Matter Matter is a form and body of that which we realise as Spirit.
Ibid P 291

2 Ibid P 292 293

3 Here the evolution takes place in the material universe, the foundation the original substance the first established all conditioning status of things is Matter
Sri Aurobindo, The Life Divine Vol II (2) P 625

4 Supermind or gnosis must have entered into Matter and it must evolve in Matter
Ibid p 627

5 An evolution in the Inconscience is the beginning an evolution in the Ignorance is the middle but the end is the liberation of the spirit into its true consciousness and an evolution in the knowledge
—Ibid 624

श्री अरविन्द का कहना है कि इस विकास क्रम में पूर्व विकसित स्थितियों का बिलकुल लोप नहीं होता। प्रत्येक नवीन विकसित रूप अपने पूर्व विकसित रूपों को आत्मसात करता चलता है। पशु में प्राणशक्ति और जड़ पदार्थ विद्यमान रहते हैं, मनुष्य में पशु के साथ ये दोनों भी विद्यमान रहते हैं। विकास की क्रिया मनुष्य तक पहुँच चुकी है किन्तु मनुष्य का विकास सत्ता का अन्तिम शिखर नहीं है। वह स्वयं संक्रमणशील प्राणी है जो चरम विकास के मोड़ पर खड़ा है।[1]

आरोहण-अवरोहण

श्री अरविन्द ने भूत और आत्मा के बीच आठ सोपान या धरातल माने हैं। सबसे नीचे का धरातल भूत द्रव्य मैटर या जड़ का धरातल है उसके ऊपर प्राण फिर उपचेतन और फिर मन है मन के ऊपर क्रमशः अतिमन आनन्द चेतन शक्ति तथा सबसे ऊपर आत्मा अथवा दिव्य चेतना अथवा अस्तित्व का स्थान है।[2] उक्त क्रम आरोहण की दिशा में है। अवरोहण की दिशा में सर्वप्रथम दिव्य अस्तित्व (ब्रह्म या आत्मा) आयेगा, जो क्रमशः निम्न स्तर पर अवतरित होते-होते भूत (प्रकृति) में सोता हुआ मिलेगा। इस प्रकार श्री अरविन्द के शब्दों में जिस प्रकार भूत अवरोहण की अन्तिम साक्षी है उसी प्रकार वह आरोहण की प्रथम साक्षी भी है।[3]

श्री अरविन्द का कथन है कि प्रकृति का दिव्य जीवन की ओर संक्रमण अवश्यम्भावी है।[4] कारण, ईश्वर के पूर्णतः प्रकृतिरूप बन जाने पर प्रकृति उत्तरोत्तर ईश्वर बनने के हेतु प्रयत्नशील है।[5]

---

1 Ibid, p 629 30

2 Inverted order of a scent and descent—

Existence	Matter
Consciousness Force	Life
Bliss	Psyche
Supermind	Mind

Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition Vol I P 319

3 And as Matter is the last word of the descent so it is also the first word of the ascent Ibid P 311

4 Ibid P 348

5 God having entirely become Nature Nature seeks to become progressively God

Sri Aurobindo The Life Divine II Edition Vol I, P 55

श्री अरविन्द के मत में भूत में अन्तर्भूत चेतना का संवर्द्धन प्राण तथा मन तक हो चुका है। अब मन का अतिमन की ओर संक्रमण करना है। कारण मन अतिमन के ही निचले स्तर की शक्ति है चित शक्ति का ही एक रूप है।[1] अत श्री अरविन्द का कहना है कि जिस प्रकार प्राण का विकास मन की दिशा में हुआ है उसी प्रकार मन का भी विकास अतिमन और आत्मा की दिशा में होगा।[2] कारण अतिमन ही आत्मा की वास्तविक सर्जनात्मक शक्ति है।[3] इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में दिव्य जीवन की दिशा में संचरण अथवा यात्रा करना मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य है मानव जीवन की एकमात्र सार्थकता है जिसके अभाव में वह क्षणस्थायी कीटों के मध्य रेंगने वाला एक लघु कीट ही बना रहेगा।[4] संक्षेप में श्री अरविन्द दर्शन में मनुष्य के आरोहण का अर्थ है मानव चैतन्य का भागवत चैतन्य में संवर्द्धन और यह आरोहण जब अपनी चरम अवस्था को प्राप्त होता है तब पृथक्भूत आत्मा का भागवत चैतन्य के अन्दर लय हो जाता है। तब मनुष्य का अन्तरात्मा अपने व्यष्टिभाव को उस एक अनन्त और विश्वव्यापक सत्ता में मिला देता या परात्पर सत्ता की परा स्थिति में खो देता है वह आत्मा के साथ ब्रह्म के साथ भगवान के साथ एक हो जाता है अथवा जैसा कि प्राय और भी अधिक निश्चित रूप से कहा जाता है—वह स्वयं ही एकमेवाद्वितीय आत्मा ब्रह्म भगवान बन जाता है।[5]

---

1 Mind is an inferior power of the original conscious knowledge or Supermind Consciousness or Chit represents itself as Mind
Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition Vol 1 P 284

2 As Life evolves upward towards Mind, so Mind evolves upward towards supermind and Spirit
—Ibid P 241

3 Supermind or the Truth consciousness is the real creative agency of the universal Existence Ibid P 210

4 See Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition Vol I P 52

५ श्री अरविन्द गीता प्रबन्ध प्रथम भाग द्वि० सं० १९४८, पृ २३४

दिव्य जीवन

श्री अरविन्द के मत में यदि मानव प्राणी अपनी प्रकृति का इतना उन्नत कर ले कि उसे भागवत सत्ता के साथ एकत्व अनुभव हो और वह भगवान के चैतन्य, प्रकाश, शक्ति और प्रेम का एक ज्ञात भाग-सा बन जाय उसका अपना स्वरूप और अस्तित्व भगवान के ही स्वरूप और भाव में घुल मिल कर अपना पृथक्त्व खो दे—क्योंकि यह भी एक मानी हुई आध्यात्मिक अवस्था है—तो मानव जीव के अन्दर उसके सम्पूर्ण अस्तित्व को अधिकृत करके भगवान का ही स्वरूप भगवान की ही सत्ता और शक्ति उन्हीं के प्रेम प्रकाश और चैतन्य प्रतिबिम्बित हो सकते हैं और यह जरा भी असम्भव नहीं है। और इस प्रकार की अवस्था मनुष्य का केवल आरोहण कर दिव्य जन्म और दिव्य स्वभाव को प्राप्त होना ही नहीं है बल्कि उसमें दिव्य पुरुष का उतर आना भी है।[1] इस प्रकार श्री अरविन्द दर्शन में मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने वास्तविक सार्वभौम सच्चिदानन्द स्वरूप में विकसित होना है।[2]

श्री अरविन्द का कथन है कि प्रकृति में चेतना का विकास मन तक हो चुका है।[3] किन्तु वास्तविक सत्ता मन से भी परे है और वह है आत्मा।[4] इस प्रकार बुद्धि प्रधान मनुष्य प्रकृति का अन्तिम प्रयत्न अथवा अन्यतम पहुंच नहीं है।[5] अतः वह मनुष्य को आध्यात्मिक जीवनाशा की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित कर रही है। वह इस प्रयत्न में है कि ऊपर से दिव्य सत्ता का अवतरण हो, जिसके प्रकाश में आध्यात्मिक सन्तों दार्शनिकों ईश्वर भक्तों योगियों सूफियों तथा रहस्यवादियों आदि का जगतीतल पर उदय हो।[6]

---

१ श्री अरविन्द, गीता प्रबन्ध, प्रथम भाग द्वि० सं० पृ० २३५ ३७

2 our aim must be to grow into our true being our being of Spirit, the being of the supreme and universal Existence, Consciousness Delight, Sachchidananda Sri Aurobindo The Life Divine Vol II 1940, P 595

3 Ibid P 630

4 For what is involved and emergent is not a mind but a Spirit Supermind is its native dynamism Ibid, P 1106

5 Mental man has not been Nature's last effort or highest reach,—Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 621

6 Sri Aurobindo, The Life Divine, Vol II, P 652

उक्त आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धि में मनुष्य का अहकार बाधक है। अत मनुष्य को उस पर विजय पाना है। आधुनिक मन अभी जिस अवस्था में है उसमें वह अहकार के फन्दो को ही काटने का प्रयास कर रहा है इसमें सन्देह नहीं परन्तु उसकी दृष्टि अभी भी लौकिक है और उसका भाव आध्यात्मिक नहीं प्रत्युत बौद्धिक और नैतिक है। देश प्रेम विश्वबन्धुत्व समाज-सेवा समष्टिसेवा मानव सेवा मानव जाति का आदर्श या धर्म ये सब सराहनीय साधन हैं व्यष्टिगत पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय अहकार रूपी हमारी जो पहली अवस्था है उससे निकल कर एक दूसरी ही अवस्था में हमारे चल जाने के जिस अवस्था में पहुंच कर व्यष्टि जहाँ तक की बौद्धिक नैतिक और भावावेगमय भूमिकाओ पर सम्भव है यह अनुभव करता है कि मेरा अस्तित्व दूसरे सब प्राणियो के अस्तित्व के साथ है।[1] इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में सबके साथ ऐक्य भाव रखते हुए अहकार का शमन कर आत्म साक्षात्कार एव आत्मानन्द का अनुभव करना हमारे इस जीवन का एक मात्र उद्देश्य है यही हमारे वैयक्तिक एव इहलौकिक जीवन का गुह्य अर्थ है।[2]

श्री अरविन्द का कथन है कि सिद्धान्तत समस्त आध्यात्मिक जीवन भागवत जीवन में विकास है[3] और यदि हमें ससार और प्रकृति में दिव्य जीवन का अनुभव करना है तो हमें अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना होगा[4] क्योकि दिव्य कर्म आत्मा से उद्भूत होते हैं और केवल आत्मा के

१ श्री अरविन्द गीता प्रबन्ध प्रथम भाग द्वितीय सस्करण पृ० १९६ ९७

2 To exceed ego and be our true self to be aware of our real being to pos ess it to possess a real delight of being is therefore the ultimate meaning of our life here it is the concealed sense of our individual and terrestrial existence

Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 596

3 All Spiritual life is in its priciple a growth into divine living (Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 1106)

4 There must be the true self realised within if there is to be the true life realised in world and nature Ibid P 1111

प्रकाश में ही पहचाने जा सकते हैं।[1] दिव्यकर्मी का लक्षण बताते हुए श्री अरविन्द ने कहा कि दिव्यकर्मी का लक्षण वह है जो स्वयं भागवत चेतना का ही केन्द्रिक लक्षण है, अर्थात् पूर्ण आंतर आनन्द और शान्ति। ये निर्विषय होते हैं इनकी उत्पत्ति या स्थिति जगत के किसी पदार्थ पर निर्भर नहीं करती ये सहज ही रहते हैं अन्तरात्मा के ये धर्म हैं ये ही दिव्य सत्ता के स्वरूप हैं। सामान्य मनुष्य अपने सुख के लिए बाह्य पदार्थों पर निर्भर करता है इसी से उसके वासना-कामना होती है इसी से उसमें मान शोक सुख दुःख हुए शोर होते हैं, इसीलिए वह सब वस्तुओं को शुभाशुभ के कांटे से तौलता है। परन्तु दिव्य आत्मा पर इनमें से किसी का कोई असर नहीं पड़ सकता, वह किसी प्रकार की निर्भरता के बिना सदा तृप्त रहता है (नित्यतृप्तो निराश्रय) क्योंकि उसका आनन्द, उसकी दिव्य तृप्ति उसका सुख, उसकी सुप्रसन्न ज्योति सदा उसके अन्दर वर्तमान है उसके रोम रोम में व्याप्त है आत्मरति अन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव च। बाह्य पदार्थों में वह जो सुख लेता है वह बाह्य पदार्थों के कारण नहीं होता उस रस के लिए नहीं होता जिसको वह उनमें ढूंढ भी न पाये बल्कि उन पदार्थों में जो आत्मतत्त्व है उसके लिए होता है ये जो भगवान के अभिव्यक्त रूप हैं उनके लिए होता है और उसके लिए होता है जो उनमें सत्य है और सदा रहेगा और जिसको वह ढूंढ कर पा ही लेगा। इन पदार्थों के बाह्य स्पर्शों में उसकी आसक्ति नहीं होती बल्कि जो आनन्द उसे अपने अन्दर मिलता है वही आनन्द उसे सर्वत्र मिलता है क्योंकि उसका जो आत्मा है वही उन पदार्थों का आत्मा है और सब चराचर प्राणियों के आत्मा के साथ वह एक हो गया है—उनके विभिन्न नामरूपों के होते हुए भी उनके अन्दर जो एक परब्रह्म है उसके साथ वह एक हो गया है (ब्रह्मयोगयुक्तात्मा) (सर्वभूतात्मभूतात्मा)। प्रिय पदार्थ के स्पर्श से उसे हर्ष नहीं होता, अप्रिय से उसे शोक नहीं होता, पदार्थों के घाव, मित्रों के घाव, या शत्रुओं के घाव उसकी दृष्टि की स्थिरता भंग नहीं कर सकते न उसके हृदय की शान्ति हर सकते हैं, वह आत्मा अपने स्वरूप में, उपनिषद कहते हैं कि 'अव्रणम्' होता है उस पर कोई घाव, कोई क्षत नहीं होता। सब पदार्थों में वह वही अक्षय आनन्द भोग करता है (सुखमक्षयमश्नुते)।'[2]

---

१ श्री अरविन्द, गीता प्रबन्ध प्रथम भाग द्वितीय संस्करण पृ० २५६

२ श्री अरविन्द गीता प्रबन्ध द्वितीय संस्करण, पृ० २६६ ६७

श्री अरविन्द के अनुसार 'प्रत्येक कोटि या कक्षा में जो सर्वोत्तम है, प्रत्येक समूह में जो सबसे महान है, जिन जिन गुणों और कर्मों के द्वारा उस समूह की विशिष्ट आत्मशक्ति प्रकट हुआ करती है उन उन गुणों और कर्मों का प्रकाश जिसके द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्रकट होता है वह ईश्वर की विभूति है। जीव की शक्तियों का यह उत्कर्ष भागवत प्राकट्य के क्रम में एक अत्यन्त आवश्यक कार्य है। कोई भी महान पुरुष जो हमारी औसत कक्षा के ऊपर उठ जाता है वह अपने उस कर्म से साधारण मानव जाति को ऊपर उठा देता है वह हमारी भागवत सम्भावनाओं का एक सजीव आश्वासन होता है परमेश्वर की एक प्रतिश्रुति होता है भागवत प्रकाश की एक प्रभा होता है भागवत शक्ति का एक उच्छवास होता है।'[1]

श्री अरविन्द के उक्त दिव्य अथवा भागवत जीवन सम्बन्धी तत्वों को छायावादी कवि पन्त ने अपनी भावना और साधना का अभिन्न अंग बना लिया है अतः उनकी छायावादोत्तर काल की अधिकांश कला कृतियां श्री अरविन्द के दिव्य जीवन से विशेष रूप से अनुप्राणित हैं।

पन्त जी का स्वयं कथन है 'श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान तथा अतुलनीय विभूति मानता हूं। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनमें अधिक व्यापक ऊर्ध्व तथा अतल स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म बुद्धि अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मण्डित हो उठा है मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूं। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है।'[2] और अपनी कला-कृतियों पर श्री अरविन्द दर्शन के प्रभाव के सम्बन्ध में यह लिखा है कि 'वीणा पल्लव काल में मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है युगान्त और बाद की रचनाओं में महात्मा जी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स के दर्शन का ... किन्तु इन सबमें जो एक परिपूर्ण एवं सन्तुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था उसकी पूर्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन दर्शन में मिली और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व-संक्रान्ति-काल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूं। मैंने

---

१ श्री अरविन्द 'गीताप्रबन्ध' द्वितीय संस्करण पृष्ठ २३२

२ पन्त 'उत्तरा', प्रथम संस्करण, प्रस्तावना पृ० १९ २०

अपने समकालीन लेखकों में तथा विशिष्ट व्यक्तियों पर समय-समय पर स्तुति गान लिखने में सुख का अनुभव किया है। श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएं भेंट रूप में 'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णधूलि' तथा 'युगपथ' में पाठकों को मिलेंगी।[1]

पन्त जी के अतिरिक्त छायावाद के अन्य प्रमुख कवि श्री अरविन्द दर्शन से स्पष्टतः प्रभावित नहीं जान पड़ते।

शैव दर्शन

शैव दर्शन भी अद्वैतवाद का ही एक रूप है। छायावाद के प्रवर्तक कवि प्रसाद जी ने अपने अनेक गीतों तथा कामायनी के रूप में प्राचीन पौराणिक कथानक में शैव दर्शन की आत्मा प्रतिष्ठित कर युग के अनुरूप अद्भुत काव्य की सृष्टि की है। अतः छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि के प्रसंग में शैव दर्शन का संक्षेप में यहाँ पर परिचय प्राप्त कर लेना नितान्त आवश्यक है।

शैव मत किसी समय जगद्व्यापी था। भारतवर्ष के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। महाभारत-काल में या पूर्व में ही 'शिवभागवत' शब्द का प्रयोग भी होता था क्योंकि अथर्वशीर्ष उपनिषद् में भगवन् शब्द भगवान शंकर के लिए और पातंजल महाभाष्य में उपासक के लिए 'शिवभागवत' शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] शिवपूजा किसी समय जगद्व्यापिनी अवश्य थी और हिन्दू भारत में तो शिवपूजा और लिंगपूजा अनादि काल से परम्परागत रही है।[3]

शैव मत का आरम्भ और सम्प्रदाय विभाग

हिन्दू-साहित्य में वेदों में रुद्रादि नामों से शिव की उपासना देख पड़ती है। उपांगों में पशुपति, महेश्वर, परमेश्वर, शिवशंकर आदि नाम से वही उपासना विशेष रूप से देख पड़ती है। आगमों या तन्त्रों में उसी का अधिक विकास देख पड़ता है। सभी तंत्र उमा-महेश्वर-संवाद हैं। इनमें शैवतन्त्र शैव मत का प्रतिपादन करते हैं। अतः शैव मत के प्रतिपादक स्वयं शिव भगवान ही हैं ऐसा माना जाता है।[4]

---

१ पन्त : उत्तरा, प्रथम संस्करण, प्रस्तावना, पृ० १९-२०

२ देखिए पाणिनि ५।२।७६ के अन्तर्गत भाष्य

३ रामदास गौड़ : हिन्दुत्व, पृ० [illegible]

४ वही, पृ० [illegible]

इतिहास ग्रंथों के बाद पुराणों में शैवमत का व्यापक रूप में वर्णन मिलता है। वामनपुराण के अनुसार शैव पाशुपत कालमुख और कापाली ये चार जातियाँ शिवोपासक के लिए ब्रह्मा ने बनाई थीं। किन्तु पुराणों में इन सम्प्रदायों का सूत्ररूप से ही कहीं कहीं वर्णन है इनके विस्तार की पूर्ति आगमों में ही है। आजकल जितने सम्प्रदाय हैं प्रायः सभी आगम ग्रंथों पर अवलम्बित हैं।

वामन पुराण में जिन चार सम्प्रदायों की चर्चा है वे आजकल उस रूप में नहीं पाए जाते। शैव पाशुपत कालास्य और कपाली इन चारों के बदले सायण ने सर्वदर्शन संग्रह में माहेश्वर सम्प्रदाय के चार सिद्धान्त बतलाये हैं (१) शैव दर्शन (२) प्रत्यभिज्ञादर्शन (३) रसेश्वर दर्शन और (४) नकुलीश पाशुपत दर्शन।[1] इन चारों सिद्धान्तों में प्रसाद जी प्रत्यभिज्ञा दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित थे अतः उसकी थोड़ी विस्तार के साथ जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा।

नामकरण

प्रत्यभिज्ञा दर्शन को काश्मीरीय शैव दर्शन भी कहते हैं। इसकी व्यापकता काश्मीर प्रांत में थी। अतएव उसी नाम से यह प्रसिद्ध भी है। इसे त्रिकदर्शन तथा माहेश्वर दर्शन भी प्राचीनों ने कहा है। यह शैवागम है। यह भी एक अद्वैतवाद है जो ईश्वराद्वयवाद के नाम से प्रसिद्ध है। आगमाचार्य अभिनवगुप्त इसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक हैं।

साहित्य

इस शैवदर्शन का साहित्य विस्तीर्ण है। इसके साठ-सत्तर ग्रंथ जम्मू काश्मीर संस्कृत सीरीज में प्रकाशित हुए हैं जिनमें शिवसूत्र तथा उस पर वृत्ति भास्कर का वार्तिक क्षेमराज की विमर्शिनी प्रत्यभिज्ञा हृदय तन्त्रालोक तन्त्रसार प्रत्यभिज्ञाकारिका ईश्वर प्रत्यभिज्ञा आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

वसुगुप्त कल्लट सोमानन्द उत्पलाचार्य, अभिनवगुप्त भास्कर, क्षेमराज जयरथ आदि विद्वान इस मत के प्रचारक हुए हैं।

अद्वैत–भूमि

शांकर वेदान्त की माया के रहस्य को शांकरवेदान्त भूमि में साधक नहीं समझ सका। माया कहाँ से आई किस प्रकार चैतन्य को अज्ञान ने घेर

---

१ रामदास गौड़ हिन्दुत्व, पृ० ६९१

लिया क्यों धरा इत्यादि प्रश्न जिज्ञासु के मन में उदित होते हैं। माया अनादि है। अनादि काल से ब्रह्म उससे आच्छन्न है जीव और ईश्वर भी अनादि है। यह सब समाधान होने पर भी मन में सन्तोष नहीं होता। वेदान्त का ब्रह्म चैतन्य और आनन्द स्वरूप है। सांख्य पुरुष चैतन्य-स्वरूप है परन्तु इस चैतन्य या आनन्द से क्या लाभ ? इनमें यदि कर्तृत्व ही न हो तो आकर्षण ही क्या है ? यदि ब्रह्म सर्वशक्तिमान है परन्तु उस शक्ति का कुछ भी उपयोग न किया गया या ब्रह्म स्वयं न कर सका तो उस शक्ति से क्या प्रयोजन ? परन्तु कर्तृत्व तो जड़ में मानते हैं इसलिए साधक की जिज्ञासा की वेदान्त भूमि में निवृत्ति न हो सकी। अतएव वह सांख्य के पुरुष तथा वेदान्त की माया या ब्रह्म का विशेष रूप से जानने के लिए अग्रसर होता है। दूसरी भूमि पर पहुँचते ही इन तत्वों को साधक बहुत विभिन्न रूप में पाता है। वहाँ तो सभी वस्तु चिन्मय देख पड़ती है। उस चिन्मय जगत में किसी से कोई भिन्न नहीं है। उस भूमि में एक मात्र तत्व है—परमशिव। वह चित है उससे ही सभी चिन्मय पदार्थ आविर्भूत होते हैं और फिर उसी में लीन हो जाते हैं। इस भूमि को शैवदर्शन की भूमि या प्रत्यभिज्ञाभूमि कहते हैं।[1]

ब्रह्माद्वैत तथा ईश्वराद्वयवाद में भेद

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में भी अज्ञान है माया है किन्तु वह स्वतन्त्र नहीं है। वह परमतत्व के अधीन है। उनकी लीला से इस अज्ञान का उदय और लय दोनों होते हैं। अज्ञान के उदय होने पर भी परमतत्व के स्वरूप में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। माया का खेल तथा उससे सृष्टि सभी उसी परमशिव की लीला है। परमशिव तो आप्तकाम है आत्माराम है उनमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं। जगत तो प्रयोजन रहित उनका क्रीडामात्र है।

शांकरवेदान्त में माया या अज्ञान किसी के अधीन नहीं है। इसी में कर्तृत्व है। ब्रह्म शुद्ध साक्षी अधिष्ठानरूप चैतन्य स्वरूप अकर्ता है किन्तु शैवदर्शन में माया या अज्ञान शिव के अधीन है। परम शिव स्वतन्त्र चिन्मय ज्ञानस्वरूप तथा कर्तृत्व स्वरूप है। शैवदर्शन में विमर्श ही शिव का स्वभाव है। ज्ञान और क्रिया दोनों ही उसके लिए एक समान है। उसकी क्रिया ही ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञाता का धर्म है तथा उसके कर्तृस्वभाव होने के कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इस ज्ञान और क्रिया की उन्मुखता का

---

१ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३७९ ८०

नाम 'इच्छा' है। इसी कारण आत्मा इच्छामय है अथवा इच्छा ज्ञान तथा क्रिया इन तीनों शक्तियों से युक्त स्वातंत्र्यमय है।[1]

शैवदर्शन की आत्मा स्वभाव से ही सृष्टि स्थिति संहार अनुग्रह एवं विलयन करने वाली है परन्तु शांकरमत के ब्रह्म में ये बात नहीं है। यही एक बहुत बड़ा भेद ब्रह्माद्वैतवाद और ईश्वराद्वयवाद में है।[2] यही कारण है कि ब्रह्मवाद में आत्मा का स्वस्फुरण उक्त प्रकार का न होने के कारण वह सत्य होते हुए भी असत के समान है। महार्थमंजरी टीका में महेश्वरानन्द ने कहा है—

यद्यपि ब्रह्माद्वैतवाद अद्वैत है किन्तु वस्तुतः वह द्वैत ही समझा जाना चाहिए। यही बात संविदुल्लास में भी लिखी है।[3]

शिव

श्वेताश्वतर में शिव का जो दार्शनिक स्वरूप है वही अपरकालीन समस्त शैवदर्शन का बीज है।[4] आगम ग्रन्थों में शिव को सर्वश्रेष्ठ सत्य माना गया है। वह अनादि है अकारण है और स्वतः सम्पूर्ण है। वह सर्वज्ञ है और सर्वकर्त्ता है। शिव ही चित् रूप है और अपनी इच्छा से ही वह अपने भीतर व्याप्त विश्व को प्रकाशित करता है।[5] यही संसार का कारण है उसके समान अन्य कौन बलवान हो सकता है यही समस्त मंत्रों का आलय है और सर्वसिद्धिदायक है।[6] शिव-तत्त्व के अतिरिक्त वस्तुतः और कुछ भी ग्राह्य या ग्राहक रूप में नहीं है। वही परमशिव भट्टारक नाना वैचित्र्यों के रूप में स्वयं स्फुरण होते हैं।[7] यह इच्छा ज्ञान तथा क्रियात्मक है एवं पूर्णानन्द स्वभाव का है।

---

१ महामहोपाध्याय डा० गोपीनाथ कविराज कल्याण (शिवांक) पृ० ८५
२ प्रत्यभिज्ञा हृदय पृ० २५ २
३ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८० ३८१
४ डा० यदुवंशी शैव मत प्रथम संस्करण १९५५ ई० पृ० १६५
  (क) एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाँल्लोकानीशत ईशनीभिः।—श्वेता० ३।२
  (ख) मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।—श्वेता० ४।१०
  (ग) विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः। श्वे० ४।१६
५ तन्त्रालोक भाग ६ पृ० ८–११।
  तन्त्रसार भाग ६ पृ० ५४–५५।
७ प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ८ शिवदृष्टि १–२।

शक्ति

शैव सिद्धान्त में शक्ति को लगभग उसी प्रकार शिव की समवर्तिनी माना जाता था जिस प्रकार सांख्य में प्रकृति को। परन्तु काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा दर्शन में उसको परमशिव अथवा पुरुष की अभिव्यक्ति मात्र माना गया है। उसका निवास भी परमशिव में और केवल उन्हीं में है और उसको हम परम शिव की सृजन शक्ति कह सकते हैं। इसी कारण वह परमशिव से अभिन्न है। इस प्रकार शैव सिद्धान्त में जो द्वैत का भास होता था उसको प्रत्यभिज्ञादर्शन के अन्त में परिणत कर दिया गया।[1] इस शक्ति के पाँच मूल रूप हैं— (१) चित् शक्ति अर्थात् परमशिव की आत्मानुभूति की शक्ति (२) आनन्द शक्ति अर्थात् परमशिव की परमानन्द शक्ति (३) इच्छा शक्ति अर्थात् परम शिव की वह शक्ति जिसके द्वारा वह अपने आपको सृष्टि का निर्माण करने के हेतु एक परम इच्छा से युक्त पाते हैं (४) ज्ञान शक्ति अर्थात् परमशिव की सर्वज्ञता की शक्ति और (५) क्रिया शक्ति अर्थात् परमशिव की वह शक्ति जिसके द्वारा वह इस अनेकरूप विश्व को व्यक्त करते हैं।[2] शक्ति जब अपना यह अन्तिम रूप धारण करती है तब सृष्टि का कार्य वास्तव में प्रारम्भ होता है जिसे आभास कहते हैं। इस आभास की कल्पना लगभग वैसी ही है जैसी वेदान्त में विवर्त की। भेद केवल इतना ही है कि वेदान्त में इस व्यक्त विश्व की अनेकता को माया माना गया है वह सत् है न असत्— सदसदनिर्वचनीय। परन्तु प्रत्यभिज्ञादर्शन में इस अनेकरूपता को सत् माना गया है क्योंकि जिस किसी वस्तु का परमशिव से सम्बन्ध है वह असत् नहीं हो सकती।[3] इस प्रकार शिव तथा शक्ति दोनों तत्व शाश्वत हैं और सदैव एक रूप होकर साथ रहते हैं न शिव शक्ति रहित है और न शक्ति शिव से पृथक् है। केवल व्यवहार के लिए पृथक् पृथक् वर्णन किया जाता है।[4] दूसरे शब्दों में इन दोनों

---

१ डा० यदुवंशी शैव मत प्रथम संस्करण १९५८ ई० पृ० १७२।

२ डा० यदुवंशी शैवमत प्रथम संस्करण पृ० १७२
श्री अभिनवगुप्ताचार्य ने तन्त्रसार में लिखा है—
चित् प्राधान्ये शिवतत्वम् आनन्द प्राधान्ये शक्तितत्वम्
इच्छा प्राधान्ये सदाशिवतत्वम् ज्ञानशक्ति प्राधान्ये ईश्वरतत्वम्
क्रियाशक्ति प्राधान्ये विद्यातत्वम् इति। तन्त्रसार पृ० ७३–७४

३ डा० यदुवंशी शैवमत प्रथम संस्करण पृ० १७२

४ शिवदृष्टि पृ० ९६

म अभेद है तादात्म्य है सामरस्य है। तभी तो परमशिव पूर्ण है। शक्ति के सहारे शिव अपने म अहं का बोध प्राप्त करते हैं। इसीलिए शंकराचार्य ने भी कहा है—

शिव शक्तया युक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितुम।
न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि[1]॥

सदाशिव

शिव शक्ति का आन्तरिक रूप सदाशिव तथा बाहरी रूप ईश्वर कहलाता है।[2] सदाशिव की दशा अव्यक्तावस्था है ईश्वर की अवस्था व्यक्तावस्था है। सदाशिव के रूप म शिव अंश शक्ति अंश का छिपाव रखता है अत जगत की स्थिति अव्यक्त रूप म होती है। सदाशिव नाद रूप है क्योंकि अदृष्ट शिव की मूर्ति से जो विस्फोट ध्वनि संसार म व्याप्त होकर फल रही है उसे नाद कहते हैं और वह नाद ही सदाशिव है।[3] संसार के निर्माण या प्रलय को भी सदाशिव-तत्व कहा गया है।[4] इस तत्व का अनुभव अहम् इदम् द्वारा होता है। इसम अहं शिव का द्योतक है और इदं विश्व का परिचायक है। इस तत्व को इच्छा प्रधान बतलाया गया है। इसे सादाख्य तत्व भी कहते हैं।

ईश्वर

ईश्वर-तत्व म ज्ञान शक्ति की प्रधानता रहती है। इस तत्व का अनुभव इदं द्वारा होता है। सदाशिव-तत्व म अहं प्रधान और इदं गौण रहता है और ईश्वर-तत्व म इदं प्रधान और अहं गौण रहता है।[5]

शुद्धविद्या या सदविद्या

इस भूमि म अहम् और इदम् इन दोनों रूपों म ऐक्य की प्रतीति रहती है। मैं यह हूं यही भावना इस भूमि म जाग्रत रहती है। इसम क्रियाशक्ति प्रधान है।

माया

इस भूमि म पूर्व भूमि की ऐक्य प्रतीति पृथक पृथक हो जाती है।

---

१ आनन्दलहरी १।
२ ईश्वरो बहिरुन्मेषो निमेषोऽन्त सदाशिव ।
ईश्वरप्रत्यभिज्ञा ३–१–३
३ तन्त्रतत्व भाग २ पृ २८७–८८
४ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २ प १९४–९५
५ डा० उमेशमिश्र भारतीय दर्शन, पृ ३८४

'अहम् अंश पुरुष रूप में तथा इदम् अंश प्रकृति' रूप में यहाँ अभिव्यक्त होते हैं। यहाँ अचित् अर्थात जड़ में प्रमातृत्व का आभास होता है। यह कला आदि पंच' भावों का उपादान कारण है। तन्त्रालोक में इसे भेद उत्पन्न करने वाली बताया गया है।[1] यही समस्त विश्व को उत्पन्न करती है।[2] इसे विमोहिनी शक्ति भी कहा गया है जिससे पूर्ण प्रकाशित चित्शक्ति का प्रकाश आच्छादित हो जाता है और जीवात्मा उसे हृदयंगम नहीं कर पाता।[3] प्रत्यभिज्ञा दर्शन में माया अथवा तत्प्रसूत जगत का त्याग नहीं किया जाता प्रत्युत उसे साक्षात् ब्रह्मशक्ति समझ कर उसका आलिंगन करने में ही जीवन की सार्थकता स्वीकार की गई है।

कला

इसकी उत्पत्ति माया से होती है और यह माया की प्रथम सृष्टि है। यह तत्त्व जीवात्मा का ऊर्ध्व स्थिति में ले जाने वाला माना गया है।[4] जिस प्रकार घन अंधकार में दीपक से किंचित प्रकाश मिलता है उसी प्रकार माया द्वारा प्रसारित घन अंधकार में कला द्वारा क्रिया तथा ज्ञान के लिए किंचित प्रकाश की प्राप्ति होती है।

विद्या

इसकी उत्पत्ति कला से होती है।[5] यह तत्त्व पाशों से आबद्ध परतन्त्र जीवात्मा के अन्तर्गत ऐश्वर्य स्वभाव को प्रकाशित करता है।[7] यह बुद्धिरूपी दर्पण में नाना पदार्थों, दुख सुख, मोह आदि के प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करके जीवात्मा का सुखादि प्रत्ययों से परिचित कराता है।[8]

---

१ स्वात्माभिन्नमपि भावमंडलं शिवो यया भिन्नात् भिदा व्यवस्थापयति इति च माया।—तन्त्रालोक, भाग ६ पृ० ११९

२ तन्त्रालोक, पृष्ठ १२८

३ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग १ पृष्ठ ३७

४ तन्त्रालोक, भाग ६, पृष्ठ १३५–१३७

५ मृगेन्द्रतन्त्र, ११।०।४–५

६ तन्त्रालोक, भाग ६, पृष्ठ १६१

७ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २, पृष्ठ २०२–२०३

८ तन्त्रालोक, भाग ६ पृष्ठ १५०

राग

उसकी उत्पत्ति भी माया जनित कला से मानी गई है।[1] मृगेन्द्रतन्त्र म, इस सभी प्रकार के भोग्य पदार्थों एव चितशक्ति आदि के लिए अभिलाषा उत्पन्न करने वाला तत्व कहा गया है।[2]

काल

यह जीवात्मा या प्रमाता को परिमित बनाने वाला है। इसके द्वारा मैं कृश हो गया था मैं स्थूल हो गया हू मैं स्थूलतर हो जाऊगा आदि क्रमो का विभाजन होता है।[3]

नियति

इसकी उत्पत्ति भी कला से ही होती है। तन्त्रालोक म नियति योजना धत्ते विशिष्टे कार्यमण्डले कह कर इसे विशिष्ट विशिष्ट कार्य-कारणो का योजना करने वाली कहा गया है।[4] इसे शिव की नियमन करने वाली शक्ति भी बतलाया गया है।[5] मगेन्द्र तन्त्र म भी इसे नियामक या कार्य निष्पादक माना गया है।[6]

पुरुष

उपयु क्त पाच कचुको से आवृत चैतन्य पुरुषत्व है।

प्रकृति

महत तत्व से लेकर पृथ्वीतत्व पर्यन्त सभी तत्वो का मूल कारण प्रकृति-तत्व है। यह सत्व रजस् और तमस की साम्यावस्था है। इस अवस्था म गुणो म प्रधानगौणभाव नही होता।

अन्त करण

बुद्धितत्व—

यह ऐसा है इस प्रकार निश्चय करने वाली बुद्धि तत्व है। यह

---

१ तन्त्रालोक भाग ६ पृ० १६१
२ मगेन्द्रतन्त्र १।१०।११
३ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २ पृ० २०८
४ तन्त्रालोक, भाग ६ पृ० १६० १६१
५ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २, पृ० २ ९
६ मगेन्द्रतन्त्र १। ।१७

सत्वप्रधान होने के कारण 'स्वच्छ' है। इस तत्व में ही चैतन्य के प्रतिबिम्ब का ग्रहण करने की योग्यता है।

अहंकार तत्व—

यह मेरा है यह मेरा नहीं है इस प्रकार अभिमान का साधन अहंकार तत्व है।

मनस्तत्व—

करूं या न करूं इस प्रकार का संकल्प और विकल्प का कारण 'मन' है। ये तीनों अन्तःकरण—रूपतत्व हैं।

आत्मा

शिवसूत्रों में 'चैतन्यमात्मा'[1] कह कर आत्मा को चैतन्यस्वरूप माना गया है। इसके अतिरिक्त शैवागमों में आत्मा को विमर्शरूपा पराशक्ति, चिति स्वतन्त्ररूपा विश्वोत्तीर्ण, विश्वात्मक परमानन्दमय आदि भी कहा गया है।[2] यह आत्मा अपनी इच्छा से ही शिव से लेकर धरणिपर्यन्त छत्तीस तत्वों में अभेद के साथ स्फुरित होती है।[3]

जीव

शैव सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा असंख्य और शाश्वत है। वे सब परमशिव के ही अंश हैं परन्तु उससे सर्वथा अभिन्न नहीं हैं, जैसा विशुद्ध अद्वैतवादी मानते हैं। परन्तु वे शिव से भिन्न नहीं हैं और जीवात्मा तथा शिवरूप परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध को हम एक ही प्रकार से निर्दिष्ट कर सकते हैं और वह है भेदाभेद सम्बन्ध। वास्तव में परमात्मा और जीवात्मा के इस सम्बन्ध में हम श्वेताश्वतर उपनिषद की इस कल्पना का विकास देख सकते हैं जिसमें परमात्मा और जीवात्मा की दो पक्षियों से उपमा दी गई है तथा जिसमें सांख्यवादियों में जीव और पुरुष के परस्पर सम्बन्ध के अपने विशिष्ट सिद्धान्त का विकास किया है।[4] शक्ति सत्य है सुतरां जीव और जगत भी सत्य है—मिथ्या नहीं है इसलिए सभी वस्तुतः शिवमय हैं।

---

१ चैतन्यात्मा शिवसूत्र १,१।

२ प्रत्यभिज्ञाहृदयम पृ० २, ८

३ आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन् निर्वृत चिद् विभु ।
अनिरुद्धेच्छाप्रसर प्रसरद् दृक्क्रियः शिवः ॥ शिवदृष्टि, १।२

४ डा० चतुर्वेदी, शैवमत प्रथम संस्करण पृ० १६८

सृष्टि

प्रत्यभिज्ञादर्शन में सृष्टि या जगत को चिति का ही स्वरूप माना गया है जो अपनी इच्छा से इसका उदय या उन्मेष करती है।[1] अभिनवगुप्ताचार्य का मत है कि जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में भूमि जल आदि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं उसी प्रकार पूर्ण संविद्रूप परमेश्वर में यह जगत भी अभिन्न रूप से अवभासित होता है जैसा कि ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी में कहा भी है—

चैतन्यो हि स्वात्मदर्पण भावान् प्रतिबिम्बवत् आभासयति इति सिद्धान्त ।[2]

चिन्मय सामरस्य की अवस्था

शिवसूत्रविमर्शिनी के अनुसार शिव शक्ति मथ्य मथ्यक भाव से परस्पर सघटित होकर इच्छा कर्म ज्ञान इन तीनों में सामरस्य पाकर उल्लास या आनन्द का नवनीत उत्पन्न करते हैं।[3] यही शिवशक्ति के सामरस्य की अवस्था है। अतएव यथार्थ में अद्वैत तत्त्व का ज्ञान यही होता है।

जीव मुक्ति

जीवितावस्था में स्थूल शरीर को धारण किए हुए यदि यह सामरस्य ज्ञान होता है तो उसे जीवन्मुक्ति कहते हैं। इस अवस्था में भी अविचल रूप में एक चित ही रहता है। संविद्रूपाशक्ति इस अवस्था में भी रहती है अतएव चिदानन्द का लाभ जीवन्मुक्त को भी होता है। शरीर के पतन के पश्चात वह परमशिव ही में प्रविष्ट और उसी में लीन हो जाता है।[4]

अपने काव्य विशेषकर कामायनी में प्रसाद जी ने शैवमत और उसमें भी प्रत्यभिज्ञादर्शन का यथास्थान उपयोग किया है। उनके प्रिय आनन्दवाद नियतिवाद तथा समरसता सिद्धान्त का आधार भी शैव मत ही है। अत उनके काव्य पर शैवदर्शन के प्रभाव को हमने अलग ईश्वराद्वयवाद के भीतर दिखाया है।

---

१ प्रत्यभिज्ञाहृदयम पृ ५ ६

२ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २ पृ १५३

३ परव सूक्ष्मया अमाकलारूपा कुण्डलिनी शक्ति शिवेन सह परस्पर सामरस्यरूप मथ्यमथ्यकभावात्मक सघट्टमासाद्य उत्थिता सति इच्छा ज्ञानक्रियामाश्रित्य रौद्रित्वम उन्मुद्रयन्ती वर्णशरीरमुल्लासयति। शिवसूत्रविमर्शिनी उन्मेष २ सूत्र ३

४ डा उमेशमिश्र भारतीय दर्शन पृ० ८७

बौद्ध दर्शन

बुद्ध के समय में आस्तिक का अर्थ ईश्वर में प्रतिपन्न नहीं था और न वेद निन्दक को ही नास्तिक कहते थे। पाणिनि के निर्वचन के अनुसार नास्तिक वह है जो परलोक में विश्वास नहीं करता (नास्ति परलोको यस्य सः)। इस निर्वचन के अनुसार बौद्ध और जैन नास्तिक नहीं हैं। बुद्ध ने अपने सुत्तान्तों में (सुत्तवादों में) नास्तिकवाद को मिथ्यादृष्टि कह कर गर्हित किया है।[1] वस्तुतः जैन धर्म के समान बौद्धधर्म भी अपने वैदिक धर्म रूप पिता का ही पुत्र है पहले यहाँ पर जो ब्राह्मणधर्म था, उसी की यहीं उपजी हुई यह एक शाखा है। ब्राह्मणधर्म के कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड अथवा गार्हस्थ्यधर्म और संन्यासधर्म अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों शाखाओं के पूर्णतया रूढ़ हो जाने पर उनमें सुधार करने के लिए बौद्धधर्म उत्पन्न हुआ।[2] इस प्रकार बुद्ध के उपदेश उपनिषदों के ही आधार पर थे। (अतः) श्रोताओं को कुछ भी भेद नहीं मालूम पड़ा और वे बड़े प्रेम से श्रद्धापूर्वक उनके अनुगामी हुए।[3]

शंकर के 'अद्वैतवाद' तथा नागार्जुन के 'शून्यवाद' में तो केवल शब्दों ही में भेद मालूम होता है। व्यवहार से लेकर परमार्थ तक दोनों का विचार एक ही सा है। दोनों ही के लिए संसार तुच्छ है अविद्या का व्यामोह है तथापि इसी के सहारे परमतत्व की अनुभूति हो सकती है। दोनों मतों में परमतत्व अवाङ्मनसगोचर है। दोनों ही परम पद की प्राप्ति के साथ-साथ परमानन्द तत्व में लीन हो जाते हैं। इसीलिए नागार्जुन ने कहा था है—प्रपंचोपशमं शिवम्।[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदान्त-दर्शन तथा बौद्ध दर्शन में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है अतः वेदान्त-दर्शन से प्रभावित छायावादी कवि का बौद्ध-दर्शन से प्रभावित होना अत्यन्त स्वाभाविक था। इसके उपरान्त युग पुरुष महात्मा गान्धी ने बौद्धधर्म के मौलिक सिद्धान्तों मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि का अपने जीवन में सक्रिय प्रयोग किया था। भगवान् बुद्ध की अभ्यर्थना करते हुए महात्मा जी ने कहा था— बौद्धधर्म के

---

१ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन, प्रथम संस्करण प्र० अध्याय पृ० २

२ बाल गंगाधर तिलक गीतारहस्य, बारहवाँ संस्करण, पृ० ५७६ ५७७

३ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन, प्रथम संस्करण, पृ० १८७

४ वही पृ० १७१ ७२

नाम वाली चीज भले ही हिन्दुस्तान से दूर हो गयी होवे मगर बुद्ध भगवान का जीवन और उनकी शिक्षाएं तो हिन्दुस्तान से दूर नहीं हुई हैं।[1] अतः महात्मा गाधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भी छायावाद का कवि बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति आस्थावान बना।[2] इसके अतिरिक्त छायावाद के कवि ने बौद्धदर्शन के प्रभाव का सम्बन्ध अपने व्यक्तिगत जीवन से भी जोड़ा है। महादेवी ने स्पष्ट कहा है कि बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहिचानने में भूल नहीं कर पाती।[3] छायावाद की कविता पर बौद्ध दर्शन के प्रभाव का एक महान कारण छायावादी कवियों द्वारा बौद्धसाहित्य एवं दर्शन का गहन अध्ययन भी माना जाता है।[4] अतः छायावाद-काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए यहां पर बौद्ध दर्शन का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

बौद्ध-दर्शन के सामान्य सिद्धान्त

मध्यम मार्ग

भगवान बुद्ध का बताया मार्ग मध्यम मार्ग कहलाता है क्योंकि यह दोनों अन्तों का परिहार करता है। जो कहता है कि आत्मा है वह शाश्वत

---

१ त्रिपथगा बुद्ध जयन्ती अंक अक्तूबर १९५६ पृ० २७
२ हमारी गौतम और गांधी की ऐतिहासिक भूमि है। भारत का दान विश्व को राजनीतिक तंत्र या वैज्ञानिक यंत्र का दान नहीं हो सकता वह संस्कृति तथा विकसित मनोयंत्र की ही भेंट होगी। इस युग के महापुरुष गांधी जी भी अहिंसा को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक के ही रूप में दे गये हैं ... सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त को मैं अन्तःसंगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूं। —पन्त उत्तरा म स प्रस्तावना पृ १३
३ महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ अपनी बात पृ० ६ ७
४ अपनी साहित्य-साधना में उन्होंने बौद्ध साहित्य एवं दर्शन से करुणा का बौद्धिक दृष्टिकोण ग्रहण किया।
रामनाथ सुमन कवि प्रसाद की काव्य-साधना, प्र मुद्रण पृ० ३२

दृष्टि के पूर्वान्त में अनुपतित होता है जो कहता है कि आत्मा नहीं है, वह उच्छेद दृष्टि के दूसरे अन्त में अनुपतित होता है। उच्छेद और शाश्वत दोनों अन्तों का परिहार कर भगवान मध्यमा प्रतिपत्ति (मार्ग) का उपदेश करते हैं।[1] बुद्ध का पहला उपदेश था—

भिक्षुओ ! इन दो अतियों को नहीं सेवन करना चाहिए।— (१) काम सुख में लिप्त होना (२) शरीर पीड़ा में लगाना।—इन दोनों अतियों को छोड़ (मैं) ने मध्यम मार्ग खोज निकाला है जो आँख देने वाला ज्ञान कराने वाला शान्ति (देने) वाला है। वह (मध्यम मार्ग) यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है।[2]

चार आर्य–सत्य

बुद्ध को विश्वास था और उन्हें साक्षात् अनुभव भी प्राप्त हो गया था कि (१) संसार दुःखमय है (सब दुःखम्) (२) दुःखों का कारण है (दुःख समुदय) दुःख से पीड़ित होकर उसके नाश करने के उपायों की खोज बूढ़ा करते हैं, अर्थात् उन्हें विश्वास है कि दुःख का नाश होता है (दुःख निरोध) तथा (४) दुःखों के नाश के लिए उपाय भी हैं (दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपद)। इन्हीं चार बातों को लोगों को समझाने के लिए सरवशार होने पर भी बुद्ध ने अपने शरीर की रक्षा की। ये ही चार 'आर्य-सत्य' हैं।

दुःख की कारण–परम्परा

सबसे पहले भगवान बुद्ध ने सबको यह समझाया कि संसार दुःखमय है। कोई भी जीव दुःख से मुक्त नहीं है तथा दुःख किसी का प्रिय नहीं है। उससे छुटकारा पाने के लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए दुःख के कारण को जानना आवश्यक है बिना कारण के कार्य नहीं होता और कारण के नाश के बिना कार्य का नाश भी नहीं हो सकता। इसलिए सभी को दुःख के कारणों को जानना चाहिए और उनके नाश के लिए उपाय ढूँढना चाहिए।

प्रतीत्य–समुत्पाद

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे दुःख का मूल कारण 'अविद्या' है जिसकी अदभुत शक्ति से कारणों की एक परम्परा हो जाती है। इस कारण

---

१ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन प्र०सं०, द्वितीय अध्याय पृ० १६
२ राहुल सांकृत्यायन बौद्धदर्शन द्वितीय संस्करण पृ० २३
धम्मचक्कप्पवत्तन–सुत्त–संयुत्त–निकाय ५५।२।१

रूप (भौतिक पदार्थ) की क्षणिकता को तो आसानी से समझा जा सकता है। विज्ञान (मन) उससे भी क्षणभंगुर है इसे दर्शाते हुए बुद्ध कहते हैं–

भिक्षुओ ! यह बल्कि बेहतर है कि अजान (पुरुष) इस चार महाभूतों की काया को ही आत्मा (नित्य तत्व) मान ले, किन्तु चित्त का (वैसा मानना ठीक) नहीं। सो क्यों ? चारों महाभूतों की यह काया एक दो तीन चार पाँच छ सात वर्ष तक भी मौजूद देखी जाती है किन्तु जिसे चित्त मन या विज्ञान कहा जाता है वह रात और दिन में भी (प्रतिक्षण से) दूसरा ही उत्पन्न होता है दूसरा ही नष्ट होता है।[1]

बुद्ध के दर्शन में अनित्यता एक ऐसा नियम है जिसका कोई अपवाद नहीं है।

बुद्ध का अनित्यवाद भी दूसरा ही उत्पन्न होता है दूसरा ही नष्ट होता है के कहे अनुसार किसी एक मौलिक तत्व का बाहरी परिवर्तन मात्र नहीं बल्कि एक का बिलकुल नाश और दूसरे का बिलकुल नया उत्पाद है। बुद्ध कार्य कारण की निरन्तर या अविच्छिन्न सन्तति को नहीं मानते।[2]

अनात्मवाद

अनात्मवाद को पुद्गल प्रतिषेध वाद भी कहते हैं। बौद्ध आत्मा या पुद्गल को वस्तुसत नहीं मानते। आत्मा नाम का कोई पदार्थ स्वभावतः नहीं है।[3]

सत्काय (=आत्मा) की धारणा को बुद्ध दर्शन सम्बन्धी एक भारी बन्धन (=दृष्टि संयोजन) मानते थे और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए उसके नष्ट होने की सबसे ज्यादा जरूरत समझते थे।[4] उपनिषद के इतने परिश्रम से स्थापित किए गए आत्मा के महान सिद्धान्त को प्रतीत्यसमुत्पादवादी बुद्ध कितनी तुच्छ दृष्टि से देखते थे इसका अनुमान उनके निम्न कथन से लगाया जा सकता है–

जो यह मेरा आत्मा अनुभव कर्ता अनुभव का विषय है और तहाँ-तहाँ (अपने) भले बुरे कर्मों के विपाक को अनुभव करता हूँ वह मेरा आत्मा नित्य=

---

१ संयुक्त-नि० १२।७

२ राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन द्वितीय सं० पृ ३३

३ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन पृ २४३

४ राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन पृ ३८

ध्रुव=शाश्वत=अपरिवर्तनशील है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा यह भिक्षुओ! केवल भरपूर वाला धर्म (=मूल विश्वास) है।[1]

अनीश्वरवाद

बुद्ध के दर्शन का जो रूप-अनित्य, अनात्म, प्रतीत्य समुत्पाद हम देख चुके हैं, उसमें ईश्वर या ब्रह्म की भी उसी तरह गुंजाइश नहीं है जैसे कि आत्मा की। 'बौद्ध सिद्धान्त में किसी मूल कारण की व्यवस्था नहीं है। वह नहीं मानते कि ईश्वर, महादेव या वासुदेव, पुरुष, प्रधानादिक किसी एक कारण से सब जगत की प्रवृत्ति होती है।'[2]

निर्वाण

बुद्ध की शिक्षा का एकमात्र रस निर्वाण है। सब बौद्ध-दर्शनों का लक्ष्य निर्वाण है, किन्तु निर्वाण के स्वरूप के सम्बन्ध में अवश्य मतभेद है। निर्वाण का स्वरूप चाहे जो हो, सब बौद्धों को यह समान रूप से इष्ट है कि निर्वाण संसार-दुःख का अत्यन्त निरोध है, संसार से निःसरण है और अतएव उपादेय है। विद्वानों का कहना है कि आत्म प्रतिषेध, ईश्वर प्रतिषेध, सहेतुक और क्षणिक सत्ता के सिद्धान्तों के होते हुए निर्वाण निरोधमात्र अभावमात्र ही हो सकता है।[3]

निर्वाण का अर्थ है बुझना—दीप या आग का जलते जलते बुझ जाना। प्रतीत्य समुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूप से उत्पन्न) नाम रूप (=विज्ञान और भौतिकतत्त्व) तृष्णा के गारे से मिलकर जो एक जीवन प्रवाह का रूप धारण कर प्रवाहित हो रहे हैं, इस प्रवाह का अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है।[4] बुद्ध का उक्त निर्वाण 'मृत्यु की मृत्यु' अथवा उपनिषदों के वर्णनानुसार 'मृत्यु को पार कर जाने का मार्ग' है—निरा मौत नहीं है।[5]

करुणा

बौद्धधर्म की सुन्दरतम व्याख्या भगवान बुद्ध के जीवन में विद्यमान है। बुद्ध के जीवन में दो महान आदर्शों—प्रज्ञा और करुणा—की अभिव्यक्ति हुई थी।

---

१ वही पृ० २९ मज्झिम निकाय १।१।५—अथ भिक्खव! केवलो परिपूरो यान धम्मो।'

२ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन पृ० ३२३

३ आचार्य नरेन्द्रदेव बौद्ध धर्म दर्शन चतुर्थ अध्याय, पृ० ३७८

४ राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन पृ० २३ ५४

५ बाल गंगाधर तिलक गीता रहस्य बारहवाँ संस्करण पृ० ५८०

अपने केन्द्र म सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान के आधार पर समस्त द खो से निवृत्त होकर आनन्द की प्राप्ति का नाम प्रज्ञा है। किन्तु अपने ही केन्द्र म सीमित प्रज्ञा द्वारा दूसरो का कल्याण नही हो सकता। अतएव बुद्ध की करुणा मानवमात्र के लिए महादान के रूप म प्रस्फुरित हुई।

योग-दर्शन म चित्त के परिष्कार के रूप म मत्री करुणा मुदिता तथा उपेक्षा के नियमित परिशीलन की उपयोगिता दिखाई गई है। प्राचीन पालि साहित्य म भी ब्रह्म विहार नाम से इन्हा वृत्तियो का निर्देश है। योग दर्शन म करुणा का जो परिचय दिया गया है उससे सर्वांशत भिन्न एक अन्य रूप भी है। इसी के अवलम्ब से अर्थात उसे ही जीवन का साध्य बनाने से महायानी अध्यात्म-साधन का मार्ग प्रवर्तित हुआ है। इस प्रकार की करुणा का अन्तराय व्यक्तिगत मुक्ति है।[1] श्रावक तथा प्रत्येक बुद्धयान म सत्व सत्वो का दु ख दर्शन ही करुणा का मूल उत्स है। इसका नाम सत्वावलम्बन करुणा है। मृदु तथा मध्य कोटि के महायान मत म अर्थात सौत्रान्तिक तथा योगाचार सम्प्रदाय म जगत का नश्वरत्व या क्षणिकत्व ही करुणा का मूल उत्स है। इसका नाम धर्मावलम्बन करुणा है। उत्तम महायान अर्थात माध्यमिक मत मे करुणा का मूल कुछ नही है अर्थात उसका पृथक सत्ता नही है। इस मत म शून्यता स अभिन्न करुणा ही बोधि का अग है। एक दृष्टि से देखने पर प्रतीत होगा कि शून्यता जस लोकोत्तर है वसे ही करुणा भी लोकोत्तर है। यह अहेतुक करुणा है। भगवज्ञ कहते ह कि करुणावान कभी किसी सत्व का निराश (विमुख) नही करते—

सत्वानामस्ति नास्तीति न चव सविकल्पकम।[2]

भागवत मे भक्ति का जो स्थान है बौद्धागम म करुणा का वही स्थान है।[3]

आधुनिक (छायावाद) युग साहित्यकार की चरम शक्ति परीक्षा का काल रहा है। सघर्ष की इस झझा ने विशाल जहाजो को तट पर ही पछाड कर ताड सरीखे ऊचे-ऊचे शाल वृक्षो को झकझोर कर धराशायी कर दिया।[4]

---

१ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित भूमिका पृ० १७
२ वही पृ १९
३ वही पृ० २६
४ महादेवी वर्मा पथ के साथी प्रथम स पृ ८८

निदान, छायावाद की व्यक्तिवादी कविता में दुःखवाद का विषण्ण स्वर भी सुनाई पड़ता है।

छायावाद का कवि स्वभाव से ही करुणाबहुल था अतः बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी उसे अत्यन्त प्रिय रहा है।[1] इस प्रकार बौद्ध विचार धारा की ओर उसके झुक जाने के कारण छायावाद की कविता में बुद्ध के दुःखवाद तथा क्षणिकवाद और करुणा की स्पष्ट अनुगूँज भी सुनाई पड़ती है। किन्तु छायावाद युग के सांस्कृतिक जागरण अथवा पुनरुत्थान में वेदान्त अथवा अद्वैत दर्शन के आत्मवाद का ही बोलबाला था, अतः बौद्ध दर्शन का अनात्मवाद छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि को किंचित प्रभावित नहीं कर सका।



---

१ करुणाबहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि, अपने दृष्टिकोण से पृ० ३१

द्वितीय खण्ड



छायावादी काव्य में औपनिषदिक अद्वैतवाद

जब सांस्कृतिक पुनरुत्थान का समय आता है तब जातियों के कुछ पुराने अथवा सनातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं।[1] उक्त सत्य की छाया में छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों और समकालीन पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि किस प्रकार १९वीं शताब्दी के सांस्कृतिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने युग प्रवृत्ति को वेदों और उपनिषदों के ज्ञान की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया। एक ओर राजा राममोहनराय की प्रेरणा से ब्राह्म-समाज ने उपासना के क्षेत्र में उपनिषदों के ब्रह्म को अपनाया तो दूसरी ओर महादेव गोविन्द रानाडे के प्रगल्भ नेतृत्व में प्रार्थना-समाज ने एक ब्रह्म की ही उपासना का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी दयानन्द के आर्य-समाज ने, जिसका प्रचार काम छायावाद-युग में भी मन्द नहीं पड़ा था, 'वेद की शरण लो' का नारा बुलन्द किया। स्वामी विवेकानन्द के रामकृष्ण मिशन ने भी औपनिषदिक ब्रह्म की उपासना पर ही पूरा-पूरा बल दिया और यह प्रचारित किया कि उपनिषदों के धर्म अथवा सत्य को स्वीकार करने से ही यूरोप और भारत का उद्धार हो सकता है।[2] इसके उपरान्त इसी प्रकरण में हम यह भी देख चुके हैं कि राजा राममोहन राय, दयानन्द और विवेकानन्द की भाँति ही छायावाद-युग की महान विभूतियों—तिलक, गांधी, रवीन्द्र और अरविन्द—ने भी राष्ट्र एवं मानव-जाति के सर्वांगीण विकास के लिए वेदों और उपनिषदों के

---

१ दिनकर: काव्य की भूमिका, पृ० २८, ७४

२ देखिए: शक्तिदायी विचार, पृ० ५१-५२

अमर सत्या को ही अपनाया और उन्ह समष्टि द्वारा समभूमि पर अपना लेने का आग्रह किया। अस्तु उक्त मनीषियो के प्रभाव एव युग की सांस्कृतिक जागरण की मांगो के फलस्वरूप हम छायावाद की कविता मे भी वेदो और उपनिषदो के कुछ सत्यो को पूर्ण रूप से जीवित पाते हैं। श्रीमती महादेवी जी ने ठीक ही कहा है कि जागरण के प्रथम चरण म हमारी राष्ट्रीयता ने अपनी व्यापकता के लिए जिस अध्यात्म का आह्वान किया काव्य ने सौदर्य काया म उसी की प्राणप्रतिष्ठा कर दी। कवि ने धर्म के धरातल पर किसी विकृत रूढ़ि की स्वीकृति नहीं दिया परन्तु सक्रिय विरोध के साधना का अभाव सा रहा।[1]

उपर्युक्त युग के प्रभाव के अतिरिक्त प्रमुख छायावादी कवियो—प्रसाद निराला पन्त और महादेवी—ने वेदो और उपनिषदो का सम्यक अध्ययन और चिंतन भी किया था अत-जब जब उनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हुई तब-तब वेदो और उपनिषदो के शाश्वत सत्य अनायास ही उनकी कविता मे समाविष्ट हो गये।

अद्वैत की अनुभूति म ही वैदिक ऋषियो का हृदय स्पदन एव उनके विचार दर्शन की प्रतिध्वनिया मिलती हैं अत हम इस अध्याय मे देखेंगे कि छायावाद की कविता मे वेदो और उपनिषदो की, अद्वैतभावनामूलक, किन किन तत्वो की अभिव्यक्ति हुई है। इसके अतिरिक्त उपनिषद ज्ञान पर आधारित वेदान्त दर्शन के उन अन्य अद्वैतमूलक सम्प्रदायो, जैसे शाकर अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत व्यावहारिक वेदान्तवाद आदि का जिनका सक्षिप्त परिचय हम छायावाद को प्रभावित करने वाले भारतीय दर्शन शीर्षक अध्याय म प्राप्त कर चुके है छायावाद-काव्य पर जो प्रभाव पडा है, उसका उल्लेख भी हम इसी अध्याय म करेंगे।

वैदिक ऋषि ने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र म ही अग्निदेव की स्तुति परमात्म रूप म की है अत उन्होंने गाया कि मरणशील प्रजा म मैंने अमर अग्नि की महिमा देखी है।[2] पुन इन्द्र देवता मानते हुए भी उन्होंने इन्द्र की सूक्ष्म शक्ति को परमात्म शक्ति से पृथक नही माना है। इसी स इन्होंने कहा

१ महादेवी वर्मा दीप शिखा प्रथमवृत्ति १९४२, चिंतन के कुछ क्षण पृ १३

२ अग्निमन्नी रोदसी आ विवेश– वह अग्नि विशाल आकाश और पृथ्वी म सर्वत्र व्याप्त हो रही है। (ऋग्वेद १०।८०।२)

कि इन्द्र ही सबसे ऊँचा और महान है।'[1] इसी प्रकार उन्होंने वरुण को सृष्टि का निर्माता और शासक के रूप में स्तवन किया है।[2] और फिर—

> इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु
> रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान।
> एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
> अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु ॥[3]

मन्त्र द्वारा यह उद्घोषित किया है कि समस्त देवता एक ही ईश्वर के भिन्न भिन्न नाम हैं। ज्ञानी लोग उसका वर्णन अनेक प्रकार से करते हैं। वैदिक ऋषि के उक्त प्रातिभज्ञान प्रसूत सत्यों के आधारभूत छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने एकेश्वरवाद और आत्मवाद (आनन्दवाद) की स्थापना की है। उनके मत में आरम्भिक वैदिक काल में प्रकृति पूजन अथवा बहुदेव उपासना के युग में ही जब एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति के अनुसार एकेश्वरवाद विकसित हो रहा था तभी आत्मवाद की प्रतिष्ठा भी पल्लवित हुई। इन दोनों धाराओं के दो प्रतीक थे। एकेश्वरवाद के वरुण और आत्मवाद के इन्द्र प्रतिनिधि माने गये। वरुण न्यायपति राजा और विवेक पक्ष के आदर्श थे। महावीर इन्द्र आत्मवाद और आनन्दवाद के प्रचारक थे।[4] डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में भी हिन्दुओं के बहुदेववाद के मूल में एक अखण्ड व्यापक भगवान की सत्ता ही है। ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवता उसी भगवान के गुणावतार हैं।[5] उसी भगवान अथवा ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधक को अनेकानेक साधनाओं में लीन रहना होता है।

---

१ विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः —इन्द्र ही सबसे ऊँचा और महान है। (ऋग्वेद १०।८६।१५)

२ गम्भीरशंसा रजसा विमानः — (ऋग्वेद ७।८७।६)
'सता अस्य राजा (ऋग्वेद ७।८७।६)

३ ऋ० सं० अष्ट २ अ० ३ व०२३ म ४६

४ जयशंकर प्रसाद—काव्य और कला रहस्यवाद शीर्षक निबन्ध पृ० ३८

५ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी साहित्य की भूमिका चौथी बार १९५० पृ० ५५। —बहुत से देवी-देवताओं को मानना और सबके दाता एक बड़े देवता (ईश्वर) को मानना एक ही बात है। एकेश्वरवाद भी देववाद ही है।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—जायसी ग्रन्थावली, पृ० १३० तृतीय संस्करण

कामायनी के आशा सग म विश्वेदेव सविता पूषा सोम मरुत आदि देवता किसी एक ही शासक के अधीन तथा ग्रह नक्षत्र विद्युत्कण आदि उसी एक का सधान तथा उसकी प्राप्ति के हेतु सिर नीचा कर मौन प्रवचन करते हुए दिखाए गए हैं जो कामायनीकार द्वारा मा य वस्कि एकश्वरवाद की ओर ही सकेत करते प्रतीत होते हैं।

विश्वदेव सविता या पूषा
सोम मरुत चचन पवमान
वरुण आदि सब घूम रहे हैं
किसके शासन मे अम्लान ?

* *

महानील इस परम योम मे
अन्तरिक्ष म ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते से सधान !

* *

सिर नीचा कर किसकी सत्ता
सब करते स्वीकार यहा
सदा मौन ही प्रवचन करते
जिसका वह अस्तित्व कहां ?[1]

प्रसाद जी ने जहां 'एक सद्विप्रा वहुधा वदन्ति' के अनुसार एकेश्वरवाद की कल्पना की है वहां पन्त जी ने उसी के आधार पर अद्वैतवाद की महिमा गाई है और एक सत –दीपक से एक पूरी कविता ही रच डाली है जिसका कुछ अश इस प्रकार है—

इन्द्रदेव तुम स्वभू सत्य सवन न्द्रिय मन

* *

तुम्हो अग्नि हो, सप्तजिह्व अति न्दि य तपस पुनि

* *

दिव्य वरुण तुम चिर अकलुष, ज्या विस्तृत सागर
मन की तप पूत स्थिति उ वल अखिल पाप हर !

---

१ जयशकर प्रसाद कामायनी, द्वितीय सस्करण, पृ० ३२ ३४

तुम्ही मित्र हो, ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित,
मम बुद्धि कर्मो म समता करते स्थापित !
गरुत्मान तुम, ज्योतित पखो की उडान भर
आत्मा की आकाक्षा को ले जाते ऊपर !

*　　　　*

काल रूप यम, करते निखिल विश्व का नियमन,
तुम्ही मातरिश्वा त्राता जन करते धारण !

*　　　　*

तुम हो एक स्वरूप तुम्हारे ही सत्र निश्चित
विप्रो से तुम बहुधा बहु नामो से कीर्तित ![1]

इसी प्रकार पल्लव में परिवर्तन म भी उन्होने विश्व के विविध द्रव्यो का 'एक सत' (एक ही मम मधुर झकार) का विविधाभास कहा है—

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व म पाता विविधाभास
तरल जलनिधि म हरित विलास
शान्त अम्बर म नील विकास
वही उर उर म प्रमोच्छवास
काव्य म रस, कुसुमो में वास
अचल तारक पलको म हास,
लोल लहरो में लास !
विविध द्रव्यो में विविध प्रकार
एक ही मम-मधुर झकार ![2]

और इसी मत्र की प्रतिध्वनि महादेवी जी की इस भावना में भी सुनाई पड रही है—

सुन रही हू एक ही
झकार जीवन में प्रलय ।[3]

इन छायावादी कवियो के अतिरिक्त द्विवेदी-युग और छायावाद-युग के सधि-स्थल पर खडे पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने भी उसी एक सत को

१ सुमित्रानन्दन पन्त स्वर्णधूलि प्रथम सस्करण, स० २००४ पृ० १२३ २४
२ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृष्ठ ८७
३ महादेवी वर्मा-आधुनिक कवि पृष्ठ ५२

किरण में रूप, सुमन में सौन्दर्य, पवन में प्राण, और गगन में विस्तार आदि नामों से अंकित किया है।[1]

छायावाद का तथाकथित पलायनवादी कवि वेद ऋचाओं के चिरंतन सत्य की ओर क्यों उन्मुख हुआ उसका कारण वह स्वयं बताता है—

> जिस नात वह सत्य वही रे विन विपश्चिन
> ज्योतित उसका बहिरंतर आनन्द रूप स्थित।[2]

ऋग्वेद का अद्वतप्रतिपाद्य पुरुष सूक्त भी छायावादी कवि के आत्म विश्वास और लोक कल्याण की भावना का प्रेरणा स्रोत रहा है। पुरुष (ईश्वर) के एक अंश में ही हमारा सम्पूर्ण जगत स्थित है शेष तीन अंश इससे परे हैं।[3] यही आप्त वचन पन्त जी के बहिरंग विकास के सिद्धान्त का आधार प्रतीत होता है। इसी के आधारभूत पन्त जी ने मानव (पुरुष) के एक अंश का ही बहिर्मुख स्वीकार किया है और शेष तीन अंशों को वाणी के उर की गुहा में निहित बताते हुए भौतिक वैभव को अन्तर्वैभव से दीपित करने का आदेश कर दिया है—

> एक अंश मानव का मात्र बहिर्मुख जीवन
> शेष अंश प्रच्छन्न मनस में रहते गोपन।
> अन्तर्जीवन से जो मानव हो सयोजित
> पूर्ण बने वह स्वर्ग बने यह वसुधा निश्चित।
>
> तीन अंश वाणी के उर की गुहा में निहित
> अधिमानस से दिव्य ज्ञान हो उनका प्रेरित
> बहिरंतर मानव जीवन हो सत्य समन्वित
> अन्तर्वैभव से भौतिक वैभव हो दीपित।[4]

---

१ तू रूप है किरण में सौन्दर्य है सुमन में
तू प्राण है पवन में विस्तार है गगन में।—मानसी
छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य स० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी पृ० १४८

२ सुमित्रानन्दन पन्त—स्वर्णधूलि प्रथम संस्करण २ ४ पृ० १२५

३ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहाभवत् पुनः —पुरुष का केवल एक चतुर्थांश इस भूत भौतिकमयी समस्त सृष्टि को व्याप्त किये हुए है और तीन अंश इससे बाहर हैं। (ऋग्वेद १०।९०।४)

४ पन्त—स्वर्ण धूलि प्रथम संस्करण पृ० १२८

श्वेताश्वतर उपनिषद् वदिक पुरुष को आत्मा घोषित करते हुए उसे नित्य सवत्रविद्यमान सबकी आत्मा तथा जन्म, मरण आदि विकारों से रहित बताती है। वदिक ऋषि उसे देखता था।[1] पन्त जी में भी उसी दिव्य पुरुष को देखने की पवल आकाक्षा है—

दिव्य पुरुष जो अति समीप अतरतम में स्थित,
नहा देख पाते जन उसको वह अभिन्न नित।
देखो उसके दिव्य काव्य को ससृति विस्तृत
वह न कभी मरता न जीर्ण होता वेदामृत।[2]

वदिक पुरुष से अन्तर और बहिर्जगत दोनो के विकास की शिक्षा ग्रहण कर पन्त जी भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनो के समन्वित विकास में आनन्द की परिणति मानते हैं—

अन्न प्राण मन अन्तमन से हो परिपोषित
सत्य मूल से मुक्त ज्योति आनन्द हो सवित।[3]

निराला जी ने भी अपने देशवासियो को अपना पौरुष पहचानने के लिए वदिक पुरुष की अजेय शक्ति की स्मृति दिला उच्च स्वर से ललकारा है—

पद रज भर भी नहीं पूरा यह विश्व भार—
जागो फिर एक बार।[4]

गीता के 'एकांशेन स्थितो जगत'[5] के आधार पर महादेवी ने लिखा है कि उसी की आभा का एक कण नभ में असख्य दीपक जला देता है दिन को कनकराशि और चद्रमा को चाँदी का परिधान दे जाता है।[6] महादेवी जी की

---

१ वेदाहमेतमजर पुराण सर्वात्मान सर्वगत विभुत्वात।
जन्मनिरोध प्रवदन्तियस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम ॥—'वेद के रहस्य का वणन करने वाले महापुरुष जिसके जन्म का अभाव बताते हैं सवत्र तथा जिसको नित्य बताते हैं इस व्यापक होने के कारण सवत्र विद्यमान सबकी आत्मा जरा, मृत्यु आदि विकारो से रहित पुराण-पुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूँ।' श्वेताश्वतर तृतीय अध्याय, २१

२ पन्त—स्वर्ण धूलि, प्रथम सस्करण पृ० ११८

३ वही, पृष्ठ १२५

४ निराला—परिमल, पृष्ठ १७७

५ गीता—१०।४२

६ तारा आभा का कण नभ को
देता अगणित दीपक दान

प्राय सभी प्रतिनिधि रचनाओ म किसी न किसी अश तक प्रकृति के स्थूल सौदय म व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दय पर चेतना का आरोप भी।[1] प्रकृति को विराट रूप म चित्रित करने की उनकी इस अभिलाषा म वदिक पुरुष का प्रभाव परिलक्षित होता है। महादेवी का स्वय कथन है—

हम वीर पुत्रो और पशुओ की याचना से भरी ऋचाओ म जो इतिवृत पाते है वही उषा मरुत आदि को देवत्व व्यक्तित्व देकर एक सहज और सरल सौन्दर्यानुभूति म बदल गया है। फिर यही व्यक्तिगत सरल सौन्दयबोध उस सववाद का अग्रदूत बन जाता है जिसका अकुर पुरुष सूक्त म विश्व पर एक विराट नरत्व के आरोप द्वारा प्रकट हुआ है।[2]

महादेवी जी न अपनी एक रचना म अनन्त रूपसत्ता विराट को अप्सरा के परिवेश म देखा है। वहाँ प्रकृति के समस्त उपकरण (अप्सरा) के अवयव रूप चित्रित हुए है। आलोक और तिमिर उस विराट सित असित चीर सागर गजन रुनझुन मजीर झझा अलक जाल मेघ किंकिण स्वर इद्र धनुष स्मिति रवि शशि लोल अवतस आदि बन गये हैं। विराट (अप्सरा) का यह अभिनव शृगार और नित्य नतन कितना सुन्दर एव मनहर है।

मेघो म मुखरित किंकिणि स्वर
अप्सरि तेरा नतन सुदर
रवि शशि तेरे अवतस लोल
सीमन्त जटित तारक अमोल
चपला विभ्रम स्मिति इद्र धनुष
हिमकण बन झरते स्वेद निकर
अप्सरि तेरा नतन सुन्दर।[3]

---

[1] ...दिन को कनकराशि पहनाना
विधु को चाँदी का परिधान।
रश्मि १९३८ पृष्ठ ८०

१ आधुनिक कवि (१) अपने दृष्टिकोण से पृष्ठ १०
२ वही पृष्ठ ८
३ यामा, ततीय सस्करण, पृष्ठ १०१

प्रकृति के अस्त-व्यस्त सौन्दर्य म रूपनिष्ठा फिर रूपों म गुण प्रतिष्ठा फिर उनकी समष्टि म एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त म रहस्यानुभूति का जैसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीन काव्य देता है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा।'[1] उसी से प्रेरणा ग्रहण कर निराला जी ने भी अपने बादल को विराट रूप चित्रित किया है। ऋग्वेद म मेघ का उद्दाम निर्बन्ध एव बाधा रहित सम्राट के रूप में स्तवन हुआ है—

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृति सुकर्ष विषित न्यञ्च समा भवन्तूद्वता निपादा॥[2]

मेघ जिस प्रकार गजता है विद्युत चमकाता है जलमय रूप से आकाश म व्यापता है जलपूर्ण भाग को बन्धन रहित सा करके खोल देता है और ऊँचे-नीचे सब प्रदेश जलमय हो जाते हैं, उसी प्रकार हे राजन ! तू स्वयं सब ओर गजन कर, घोर नाद कर।[3] निराला जी का 'बादल राग' भी ऐसे ही गुणों म विभूषित है। उसमें विराट की प्रचण्ड कल्पना एव 'अपार कामनाओं' की भावना कितनी साकार हो उठी है—

हे निर्बन्ध !—
अधतम-अगम-अनगल-बादल !
हे स्वच्छन्द !—
मन्द चचल-समीर रथ पर उच्छृंखल !
हे उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधारहित विराट !
हे विप्लव के प्लावन !
सावन घोर गगन के
ए सम्राट ![3]

वेद म मेघ का रुद्र और शिव रूप म भी वर्णन है—
यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हसि दुष्कृत।
प्रतीद विश्व मोदते यत्कि च पृथि व्यामधि॥

---

१ महादेवी वर्मा—दीपशिखा—चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ग्यारह
२ ऋग्वेद ५।८३।७
३ परिमल, पृष्ठ १५

'शत्रुओं के विजेता और प्रजाओं को समृद्ध करने वाले मेघ ! जब तू गरजता और विद्युत के समान कड़कता हुआ दुष्टों का नाश करता है तब यह विश्व और जो कुछ भी पृथ्वी पर स्थावर जंगम सृष्टि है तुझे देख प्रसन्न होती है।'[१]

आगे भी ऋचा में कहा गया है—
अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्यो विदो मनीषाम्।

जिस प्रकार मेघ बरसता है मरुस्थलों और अन्तरिक्ष प्रदेशों को अति क्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है औषधियों को सब जन्तुओं के भोजन के निमित्त उत्पन्न करता है प्रजाओं से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे सम्राट ! तू भी अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बचने के लिए धनुष ग्रहण कर और शर वृष्टि कर।[२]

ठीक इसी प्रकार निराला जी का विराट रूप बादल एक ओर रुद्र के भैरव घोष से निनादित है और दूसरी ओर शिव की कल्याण भावना से पूरित—

बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलाधार
हृदय थाम लेता संसार
सुन सुन घोर वज्र हुंकार !

* *

अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू बरस-बरस रसधार !
पार ले चल तू मुझको
बहा दिखा मुझको भी निज
गर्जन भैरव-संसार ![३]

प्रकृति के प्रतीकों द्वारा ईश्वर की रहस्यानुभूति वेदों की विशेषता है। दुरूह प्रकृति के प्रांगण में निद्वन्द्व विचरण करने वाले वन्य ऋषि ने प्रकृति

---

१ ऋग्वेद ५।८३।९
२ वही ५।८३।१०
१ परिमल पृ० १८९ १८८

क शक्ति-चिन्हो सविता वरुण मरुत पूषा आदि के बीच विराट का साक्षात्कार कर लिया था। अत देव-वृक्ष-वनी एव सुर सम्सृति के प्रकृष्ट प्रसार कामायनी के मनु की जिज्ञासा प्रलयापरान्त प्रकृति के अचल म सरल वभव समृद्ध विराट को हेम घोलते देख कितनी घनीभूत हो गई है–

वह विराट था हेम घोलता
नया रग भरने को आज
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक
और कुतूहल का था राज।[1]

प्रसाद जी की इस विराट की कल्पना पर महात्मा गाधी की चिन्तन शली का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। कामायनी के प्रणयन काल म महात्मा गाधी राष्ट्रनायक के साथ साथ हिन्दू धम के प्रतीक भी माने जाते थे। ईश्वर के विषय मे उन्होने कहा था कि वह एक अवणनीय रहस्यपूण सत्ता है जो समस्त भूतवग म अनुस्यूत है। मैं उसका अनुभव करता हू, यद्यपि देख नही सकता। यह अदष्ट सत्ता अनुभवगम्य होते हुए भी बुद्धि की परिधि क बाहर है कारण वह उन समस्त वस्तुओ से नितान्त भिन्न है जिन्हे मैं इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करता हू।[2] विराट के विषय म प्रसाद जी का ठीक यही अनुभव है—

हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान
मन्द गम्भीर धीर स्वर सयुत,
यही कर रहा सागर गान।
हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ?
यह मैं कसे कह सकता

१ कामायनी द्वितीय सस्करण, पृ० ३२

2 There is an indefinable mysterious Power that pervades everything I feel it, though I do not see it It is this unseen Power which makes itself felt and yet defies all proof because it is so unlike all that I perceive through my senses

M K Gandhi Hindu Dharma P 64 Young India 11 10 25

कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो
भार विचार न सह सकता ।[१]

वेद में रूपक के रूप में विराट का वर्णन मिलता है।[२] उसी प्रभाव साम्य में प्रसाद जी विश्व रहस्य के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते पाये जाते हैं—

जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है
जिस मन्दिर में रंक नरेश समान रहा है
जिसके हैं आराम प्रकृति कानन ही सारे
जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर औ तारे
उस मन्दिर के नाथ को निरुपम निरमय स्वस्थ को
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व रहस्य को ।[३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के व्यक्त प्रसार में विराट अथवा चिदात्म के आरोप की प्रेरणा छायावादी कवियों को वैदिक ऋचाओं से प्राप्त हुई। किसी भी सहृदय के लिए वैदिक उदगीथों से प्रभावित हो जाना सहज सम्भाव्य है। प्रभाव के लिए ऋषि चेतना के दिव्य स्तर का संस्पर्श अनिवार्य नहीं। असीम स्वानुभूत अन्तर्नाद के प्रति शालीन श्रद्धा ही पर्याप्त है। अतः जब छायावाद का कवि कहता है कि बादलों को दान देने वाले मरुत गण की उपयोगिता जान लेने वाला ऋषि जब उन्हें वीर रूप में उपस्थित करता है तब हम उसके प्रकृति में चेतना के आरोप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। तब हमें उसकी ईमानदारी में शक नहीं होना चाहिए। वास्तव में उसकी अद्वैत भावना और विराट की स्थापना का आधार प्रातिभज्ञान न होकर अनुभूति मात्र है।

इस विराट अथवा व्यक्त जगत का आधार क्या है?[५] इस जिज्ञासा के समाधान स्वरूप वैदिक ऋषि को निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति हुई थी।

---

१ कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० ३४
२ साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हा सुवर्णा अनवद्य रूप ।
बृहस्पति पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा उपे यवमिवस्थिविभ्य ।।
ऋग्वेद १०।६८।३
३ कानन कुसुम पृ० ४
४ महादेवी वर्मा दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण पृ० ११
५ को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टि ।—
यह सृष्टि कहाँ से प्रकट हुई यह विविध प्रकार का सर्ग किस मूल कारण से और क्या हुआ यह ठीक-ठीक कौन जान सकता है और यहाँ इसका कौन प्रवचन कर सकता है? —ऋग्वेद १०।१२९।६

नासदीय सूक्त में अव्यक्त सत्ता को ही व्यक्त जगत का कारण माना गया है।[1] महादेवी वर्मा की रश्मि की कतिपय रचनाओं[2] का आधार नासदीय सूक्त का शून्य में सर्वत्र एवं कामना के रूप में विद्यमान रहने वाला अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म ही है। अन्तर केवल इतना है कि ऋषि ने जहाँ ब्रह्म का वर्णन जिज्ञासा अथवा प्रश्न के समाधान में किया है वहाँ महादेवी जी ने अपने ब्रह्म वर्णन में सूक्त से उपादान ग्रहण करते हुए भी जिज्ञासा को स्थिर रखा है।

ऋग्वेद का हिरण्यगर्भ सूक्त भी ईश्वर है। उसके अनुसार इस जगत प्रपञ्च के उत्पन्न होने के पूर्व (हिरण्यगर्भ) विद्यमान रहा वह एक अद्वितीय था, वही उत्पन्न जगत का पालक रूप से प्रसिद्ध है।[3] उससे ही प्रकृति व्यक्त होती है उससे ही समस्त लोक-समूह तारा और उत्पन्न हैं उससे ही सूर्य और पृथ्वी विस्तार पाते हैं।[4] महादेवी वर्मा की निम्न उद्धृत पंक्तियों पर ऋग्वेद के उक्त मन्त्रों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है—

छिपाये थी कुहरे में नीद
काल की सीमा का विस्तार,
एकता में अपना अज्ञान
समाया था सारा संसार।

* *

उसी का मधु से सिक्त पराग,
और पहला वह सौरभ भार,
तुम्हारे छूने ही चुपचाप,
हो गया था जग में साकार।

* *

उसी में धमियाँ पल अविराम
पुलक से पाने लग विकास

---

१ ऋग्वेद १०।१२९।१ ८

२ देखिए रश्मि की शून्यता में निज की बन तथा रहस्य शीर्षक कविताएँ। पृ० ५, ६५

३ हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत। ऋग्वेद १०।१२

४ यतो सूरत आ उदित रजो-जो द्यावापृथिवी वप्रथनाम। ऋग्वेद १०।१४९।२

दिवस रजनी तम और प्रकाश,
बन गये उसके श्वासोच्छ्वास।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्य दर्शन के जो तत्त्व ऋग्वेद में बीज रूप में निहित हैं उनका उपयोग छायावाद में यथास्थान किया गया है, किन्तु वेदों में जिस तत्त्वज्ञान का अन्वेषण आरम्भ हुआ उसका पूर्ण विकास उपनिषदों में ही पाया जाता है। चिरकाल से भारतीय उपनिषदों के श्रेय और प्रेय[2] को अपने जीवन दर्शन अथवा इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का आधार मानते आये हैं। सांस्कृतिक नवोत्थान के कारण जब छायावाद का कवि उपनिषदों की ओर उन्मुख हुआ तब ऋषियों ने अपने सूक्ष्म चिन्तन से जिन शाश्वत सत्यों की खोज की थी सामान्यतया उन सब पर छायावाद के कवि की दृष्टि पड़ी और उसने उन्हें कहीं पर सिद्धान्त रूप में (उच्चादर्शों की स्थापना में) और कहीं पर अपनी अनुभूति का अंग बना कर अपनी कला कृतियों में व्यक्त किया। छायावाद के तात्त्विक सिद्धान्तों और उपनिषदों की विचारधारा में इतना साम्य है कि उपनिषदों और तत्सम्बन्धी साहित्य से कुछ भी परिचय रखने वाला व्यक्ति यह सद्य जान सकता है कि छायावाद का काव्य उपनिषदों के सत्यों से विशेष रूप से अनुप्राणित है। उपनिषदों के ब्रह्म आत्मा, जीव जगत आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचारों को छायावाद में कहाँ तक और किस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है इसे यहाँ पर देख लेना चाहिए।

ब्रह्म

उपनिषदों में परब्रह्म की वास्तविकता की बात जोर देकर कही गई है। यह परब्रह्म अद्वितीय है। उसमें कोई गुण या विशेषताएं नहीं हैं। यह मनुष्य की गूढतम आत्मा के साथ तद्रूप है। ब्रह्म स्वतंत्र सत्ता के रूप में विद्यमान निर्विशेषता है। वह अन्तः स्फुरण में जो कि उसका अपना अस्तित्व है अपना विषय स्वयं ही होता है। यह वह विशुद्ध कर्ता है जिसके अस्तित्व को ग्राह्य या वस्तुरूपात्मक जगत में नहीं छोड़ा जा सकता।

---

१ महादेवी वर्मा रश्मि (१९३८) पृ ७६ ७७ ७८

२ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥
कठोपनिषद् द्वितीय वल्ली २।

३ राधाकृष्णन भगवद्गीता प्र स० १९६२ परिचायक निबन्ध पृ० २३

यदि ठीक ठीक कहा जाय तो हम उपनिषदों के ब्रह्म का किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते। वृहदारण्यक उपनिषद का कथन है "जहाँ प्रत्येक वस्तु वस्तुतः स्वयं आत्मा ही बन गई है वहाँ कौन किसका विचार करे और किसके द्वारा विचार करे? सार्वभौम ज्ञाता का ज्ञान हम किस वस्तु के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं।[1] वह शाश्वत (ब्रह्म) इतना असीम रूप से वास्तविक है कि हम उसे एक का नाम देने का भी साहस नहीं कर सकते, क्योंकि एक होना भी एक ऐसी धारणा है जो लौकिक अनुभव (व्यवहार) से ली गई है। उस परमात्मा के सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह अद्वैत है। और उसका ज्ञान तब प्राप्त होता है जब कि सब द्वैत उस सर्वोच्च सत्ता में विलीन हो जाते हैं। उपनिषदों में उसका नकारात्मक वर्णन किया गया है कि ब्रह्म यह नहीं है वह नहीं है (नेति नेति)।[2]

इस प्रकार उपनिषदों के ब्रह्म को अदृश्य अग्राह्य अगोत्र, अवर्ण अरूप अस्पृश्य अरस अगंध अगोचर[3] आदि कहकर उसे अत्यन्त सूक्ष्म घोषित किया गया है। वह इतना सूक्ष्म है कि वह नेत्र वाणी मन बुद्धि आदि द्वारा जाना नहीं जा सकता।[4] अन्य शब्दों में ब्रह्म इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है। उप

---

१ वृहदारण्यक, २ ४ १२ १४

२ राधाकृष्णन्, भगवद्गीता प्र० सं० १९६२ परिचयात्मक निबन्ध, पृ० २३ २४

३ यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षु श्रोत्रं तदपाणिपादम्।—
वह (ब्रह्म) जानने में न आने वाला और पकड़ में न आने वाला है (वह) गोत्र वर्ण, चक्षु कान, हाथ, पैर (आदि से भी) रहित है।
—मु० उ० १।६
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्चयत्।—
'जो शब्दरहित, स्पर्शरहित रसरहित तथा नित्य और अव्यय है।
—कठ० १।३।१५

४ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।—
परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है।—मुण्डक द्वितीय खण्ड ३
न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा।
वह परमात्मा न तो नेत्रों से न वाणी से और न दूसरी इन्द्रियों से ही ग्रहण करने में आता है।—तृतीय मुण्डक खण्ड १ ८
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो।—केनोपनिषद ३

निपन्न का यही इन्द्रियातीत ब्रह्म पन्त जी की चान्दनी शिशु और अप्सरा म प्रकट हुआ है। अनेय स्पृश्य अगोचर अरूप और नित्य ब्रह्म की भाति ही उनकी चान्दनी सब रूप रेख रग से ओझल[1] शिशु अतुल अरूप अनाम और अप्सरा नित्य अदृश्य अस्पृश्य तथा अक्षय अलौकिक अमर अगोचर ह।

ब्रह्म के विषय म श्वेताश्वतर उपनिषद कहती है कि 'तुम्ही स्त्री पुरुष कुमार अथवा कुमारी हो—त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी।[4] इस मन्त्र को पन्त जी द्वारा शिशु और अप्सरा म आरोपित ब्रह्म का आधार माना जा सकता है। एक स्थान पर उन्होने नारी को सृष्टि के उर की सास[5] भी कहा है। इसी से उनकी सुर-नर मुनि इप्सित अप्सरा त्रिभुवन भर म लीन है।[6] यहा कही पर व अज्ञेय इन्द्रियातीत ब्रह्म का स्पष्ट स्तवन करते पाए जाते हैं—

> श्याम विश्वघनश्याम गहन घनश्याम रहस्य अनत चिरतन
> चिर अनादि अनेय पार जा पाते नही चक्षु वाणी मन।[7]

ऋषियो ने ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म को व्यक्त करने की कठिनाई का अनुभव करके नकारात्मक प्रणाली का अनुसरण किया है। उन्होने ब्रह्म यह है न कहकर 'ब्रह्म यह नही है'—'स एप नेति नेति आत्मा' कहा है।[8] पन्त जी भी ऋषियो की प्रणाली का अनुसरण करते हुए अपने ब्रह्म के विषय म कहते हैं—

वह है, वह नहा अनिवच[9]

नव वाचा न मनसा प्राप्तु शक्यो न चक्षुसा। कठ० ततीय वल्ली १२

१ पन्त पल्लविनी सम्वत ९७ प्रथम सस्करण पृ० ११४
२ वही पृ० ५२
३ वही प० १४५ १३७
४ श्वेताश्वतर चतुथ अध्याय ३
५ पल्लविनी पृ ६७
६ वही प० १४४
७ पन्त स्वण किरण प्रथम सस्करण, पृ ४८
८ वृहदारण्यक उपनिषद ४।४।२२
९ पल्लविनी पृ० ११५

किन्तु उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य है ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म साक्षात्कार। और इसके लिए ऋषियों ने बार बार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है।[1] किन्तु अरूप और अनिर्वचनीय ब्रह्म का उपासना के क्षेत्र में कुछ भी महत्व नहीं हो सकता। अरूप और अनिर्वचनीय कहकर हम न तो ब्रह्म का वास्तविक ज्ञान ही प्राप्त कर सकते हैं और न उसका सान्निध्य ही। सगुण निर्गुण से चाहे कितना ही तुच्छ क्यों न हो, हम सगुण अथवा सीम की सहायता से ही निर्गुण अथवा असीम की ओर उन्मुख होते है। अरूप और अनिर्वचनीय जो उपासक का प्राप्तव्य है रूप और सीमा में ही देखा जा सकता है। अतः ऋषियों ने उपासना के लिए निर्गुण ब्रह्म में गुणों का आरोप[2] कर विश्व के निखिल सौन्दर्य में विराट का दर्शन किया। फलतः औपनिषदिक ब्रह्म से प्रभावित छायावाद के अनिर्वचनीय ब्रह्म को भी हम भव्य भयंकर (विराट) रूप धारण करते हुए पाते हैं—

> अहे अनिर्वचनीय! रूप धर भव्य भयंकर
> इन्द्रजाल सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर
> गरज, गरज हँस, हँस, चढ़, गिरि छा छा, भू-अम्बर
> करते जगती को अजस्र-जीवन से उर्वर,[3]

मुण्डकोपनिषद में परब्रह्म परमेश्वर के सर्वलोकमय विराट स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अग्नि इस परमेश्वर का मस्तक है चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र हैं सब दिशाएँ दोनों कान हैं और प्रकट हुए वेद उसकी वाणी हैं। वायु इसका

---

१ आकाशशरीरं ब्रह्म। सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम्। शान्तिसमृद्ध ममृतम्। इति प्राचीनयोग्योपास्स्व।—तैत्तिरीयोपनिषद, षष्ठ अनुवाक

२ मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः।—अर्थात् वह उपास्य देव मनोमय, प्राणरूप शरीर वाला, प्रकाश स्वरूप सत्य संकल्प आकाश के सदृश व्यापक, सम्पूर्ण जगत का कर्ता पूर्णकाम सर्वगन्ध, सर्वरस इस समस्त जगत को सब ओर से व्याप्त करने वाला वाणी रहित तथा सम्भ्रम शून्य है।

—छा० उ० ३।१४।२

३ पन्त, पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० ९१

प्राण और सम्पूण विश्व हृदय है। इसके परो से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। यही समस्त प्राणिया का अन्तरात्मा है।[1] इसी प्रकार स्मति म कहा गया है कि अग्नि जिसका मुख द्युलोक मस्तक आकाश नाभि, पृथिवी दाना चरण सूय नेत्र तथा दिशाए कान हैं उस सवलोकरूप परमात्मा को नमस्कार है।[2] उपनिषदो के अध्ययन से छायावाद के कवि के मस्तिष्क पक्ष म जो दाशनिक उत्कठा जाग्रत हुइ उसके परिणाम स्वरूप वह भी ऋषिया का भाति उन्ही की शली म प्रकृति के उपकरणो का विराट के मसण-अवयव रूप म चित्रित करने को आतुर हुआ। निदान उषा विराट की सुन्दर छवि वसन्त उसका शृ गार तारे हार सूय शशि किरीट, मघ केश तुषार स्नहाश्रु मलयानिल मुखवास जलधि मन और लहरो का ससार उसकी लीला बनकर उसक कल्पना लोक म उपस्थित हो गये।[3]

श्वेताश्वतर उपनिषद बताती है कि परमदेव शिव समस्त जगत को सब ओर म घर कर स्थित हैं। अत नित्य प्रात उठकर नियमत उपनिषद का पाठ करने वाले शिवोपासक प्रसाद जी ने भी प्रकृति के ज्योति पुञ्जो को विराट नटराज के अवयव अथवा अगरूप चित्रित किया है।[4] इस प्रकार वदिक मन्त्रा म प्रभावित होकर छायावादी कविया ने बार बार प्रकृति के रम्य रूपो म सविता[6] ऊषा[7] आदि म विराट का आरोप कर दिया है। महादवी जी क

---

१ मु उ० २।१।४

२ यस्याग्निरास्य द्यामूर्धा ख नाभिश्चरणौ क्षिति ।
सूयश्चक्षु दिश श्रोत्र तस्म लोकात्मने नम ॥
महाभारत शान्तिपव (४७ ७)

३ पत वीणा ग्रथि न्तीयावृत्ति १९४ पृ १०

४ घतात्पर मण्डमिवातिसूक्ष्म ज्ञात्वा शिव सवभूतेषु गूढ्म ।
विश्वस्यक परिवेष्टितार ज्ञात्वा दव मच्यत सवपाश ॥-श्वेताश्वतर ४।१६

५ प्रसाद कामायनी द्वितीय सस्करण पृ० २६ ६१

६ लो सविता आता सम्स्कर
सविता उज्वल व्योम पृष्ठ पर,

व्याप्त सब लोका म वह
फने अपार पखा म निशिपल।
पत स्वणकिरण पृ० ८८

७ वह पवित्रता सी अभिव्यक्ति, मद्य स्फुट शाभा म आवत

निकट उजले चमकते चाँद जैसी चाँदनी में मुस्कराती हुई विभावरी अभिराम है पर अँधेरे के स्तर पर स्तर ओढ़ कर विराट बनी हुई काली रजनी भी कम सुन्दर नहीं है।[1] अतः उन्होंने रजनी को झिलमिल तारों का (विराट) जाली ओढ़ा दी है[2] और उससे अपने उदास शिशु जगत को दुलरान बहलाने की प्रार्थना भी कर दी है—

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंगों में भर विशाल
मुक स्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मदुल भाल
दुलरा दो ना बहला दो ना
यह तेरा शिशु जग है उन्मन।[3]

उपनिषदों में ब्रह्म के विराट रूप का परिज्ञान कराने के लिए उसे आकाश की संज्ञा दी गई है। श्रुति ने आकाश के जो लक्षण बताये हैं वे ब्रह्म के ही हैं। छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि ये समस्त भूत (पंचतत्व और समस्त प्राणी) निस्सन्देह आकाश से ही उत्पन्न होते हैं और आकाश में ही विलीन होते हैं। आकाश ही इन सबसे श्रेष्ठ और बड़ा है। वही इन सब का परम आधार है।[4] आगे की श्रुति कहती है—निश्चयपूर्वक आकाश ही नाम और रूप का निर्वाह करने वाला अर्थात् उसका आधार है। वे दोनों जिसके भीतर हैं, वह ब्रह्म है।[5] यही बात, दूसरे ढंग से अनेक परिवर्तनों के आधारभूत निर्विकार आकाश (ब्रह्म) के सम्बन्ध में महादेवी जी ने कही है—

स्मित चेतना की ऊषा वह अधर पल्लवों में प्रभात स्थित।
पन्त, स्वर्ण किरण पृ० ५१

१ महादेवी वर्मा दीपशिखा चिन्तन के कुछ क्षण पृ० ३
२ रजनी ओढ़े जाती थी झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि पृ० ६४
३ महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि पृ० ५५
४ सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते
आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्।
छा० उ० १।९।१
५ आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म।
छा० उ० ८।१४।१

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,
बुझा देते असख्य जीवन
कनक औ नीलम यानो पर
दौडते जिस पर निशि वासर
पिघल गिरि-से विशाल बादल
न कर सकते जिसको चचल
तडित की ज्वाला घन गर्जन
जगा पाते न एक कम्पन
उसी नभ सा क्या वह अविकार–
और परिवर्तन का आधार
पुनक से उठ जिसमे सुकुमार
लीन होते असख्य ससार।[1]

इसी तरह निराला जी ने ब्रह्म को नभ (आकाश) और आत्मा को नीलिमा कहकर दोनो (आत्मा और परमात्मा) मे अभिन्नता स्थापित की है।[2] इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद मे उपनिषद के आकाशरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति कही पर विश्व के समस्त भूतो का आधार मानकर और कही पर आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर की गई है।

उपनिषद का यह ब्रह्म विराट होते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म है।[3] उसकी कोई छाया या कालिमा नही है। उसके अन्दर या बाहर कोई वस्तु कुछ नही है।[4] अत छायावाद के कवि ने छोटी से छोटी वस्तु को विराट रूप चित्रित करने मे कम उत्साह नही दिखाया है। एक ओर निराला जी का कण[5]

१ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ ६८ ६८

२ तुम नभ हो मैं नीलिमा—निराला परिमल पृ ७७

३ अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहाया निहितोऽस्य जन्तो।—
सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म तथा बडे से भी बहुत बडा परमात्मा इस जीव की हृदय गुफा मे छिपा हुआ है।—श्वेताश्वतर उपनिषद ३।२०

४ बृहदारण्यक उपनिषद ३।८।८

५ तुम हो अखिल विश्व मे
या यह अखिल विश्व है तुम मे
अथवा अखिल विश्व तुम एक।
—निराला, परिमल पृ १४५

जहाँ विराट रूप धारण करता है वहां दूसरी ओर पन्त जी का 'स्याही का बूँद'[1] अपने समस्त कौतुक के साथ संसार-सागर में कूद पड़ता है।

अद्वैत के प्रतिपादन में उपनिषदों में यह बात बार बार कही गई है कि एक ब्रह्म ही समस्त भूत समुदाय में विद्यमान है।[2] वेदान्त के उक्त अद्वैत मत को छायावाद के कवियों ने सर्वांशतः अपनाया है। उपनिषद् कहता है कि एक देव ही सब भूतों में छिपा हुआ सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा है वही सब कार्यों का अधिष्ठाता सम्पूर्ण भूतगण का निवासस्थान चेतन रूप और सबका साक्षी है।[3] उसी ज्ञान के आधार (यः ज्ञानमयं तपः[4]) एवं हृदय में स्थित[5] सब के प्रभु (सर्वस्य प्रभुम्[6]) को ऋषियों की भाँति प्रसाद जी ने भी नमस्कार किया है—

> परा-प्रकृति से परे नहीं जो हिलामिला है
> अन्तःमानस के बीच कमल सा नित्य खिला है
> चेतन की चिन्कला विश्व में जिसकी सत्ता
> जिसकी ओतप्रोत व्योम में पूर्ण महत्ता
> स्वानुभूति का साक्षी है जो जड़ का चेतन
> विश्व शरीरी परमात्मा प्रभुता का केतन
> जो विज्ञानाधार है, ज्ञानों का आधार है
> नमस्कार सदनन्त को एसे बारम्बार है[7]

इसी प्रकार जगत के कर्ता सबके शासक[8] एवं सर्वदा सब मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित परब्रह्म परमेश्वर[9] को पन्त जी ने इस प्रकार स्मरण किया है—

१　देखिए, पन्त, पल्लव पृ० ७६
२　एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा।—कठ० १।३।१२
३　एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
　　कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
　　　　　　　　　　　　　　　　(श्वेता० ६।११)
४　मु० उ० १।१९
५　कठ० तृतीय वल्ली द्वितीय अनुवाक १७
६　श्वेता० ३।१७
७　कानन कुसुम पृ० ९४
८　सर्वस्य ईशानम्—सबका शासक।—श्वेता० ३।१७
९　एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
　　　　　　　　　　　　　　—श्वेता० ४।१७

अहे विश्व अभिनय के नायक !
अखिल सृष्टि के सूत्राधार !
उर उर की कम्पन म व्यापक !
ऐ त्रिभुवन के मनोविकार ![1]

ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र[2] जिसके अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण जगत म व्याप्त है और जिसमे इस ससार को त्याग पूर्वक भोगने का आदेश दिया गया है को पन्त जी ने भारतवर्ष का चिर परिचित स्वर तथा लोक कल्याण का साधन माना है—

ईश्वर जग म व्याप्त त्याग से भोगो भव जन
यह चिर परिचित भारत स्वर फिर इसे जगाओ ![3]

और एकमेवाद्वितीय नेह नानास्ति किंचन[4] के आधारभूत निम्न उदगार प्रकट किये है—

वही निरोहित जड म जो चेतन म विकसित
वही फूल मधु सुरभि वही मधुलिह चिर गु जित !
वस्तु भेद ये चिर अमूर्त ही भव म मूर्तित
वह अज्ञय स्वत सचालित एक, अखण्डित ![5]

किन्तु वास्तविक भगवान विश्व के ऊपर उठा हुआ सनातन स्थानातीत और कालातीत ब्रह्म है जो स्थान और काल म इस दृश्यमान विश्व को सभाले हुए है।[6] जसा कि तदन्तरस्य सवस्य तदु सवस्यास्य बाह्यत[7] श्रुति घोषित करती है। अत पन्त जी पुन कहते हैं—

एक एकता स न बद्ध बहु मुख शिव शोभन
सब सब स परे अनिवचनीय वह परम !

---

१ पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० २८
२ ईशा वास्यमिद सब यत्किंच जगत्या जगत ।
तेन त्यक्तेन भु जीथा मा गृध कस्य स्विद धनम ॥—ईशोपनिषद १
३ स्वण किरण प्रथम स० पृ० १२६
४ छान्दोग्य ६।२।१
५ स्वण किरण प्रथम स० पृ १२५
६ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ २०
७ ब्रह्म समस्त जगत मे भी है और उसके बाहर भी है।—ईशोपनिषद ५
८ स्वण किरण प्र स० पृ० १३६

इसी प्रकार प्रसाद जी की

अखिल विश्व म रमा हुआ है राम हमारा

महादेवी जी की

सभी म है स्वर्गीय विकास
वही कोमल कमनीय प्रकाश [2]

मथिलाशरण गुप्त की

रमा है सबम राम
वही सलोना श्याम ।[3]

तथा गोपालशरण सिंह का

है तुम्हारा वास निश्चित विश्व क निश्वास म [4]—जसी पक्तियाँ उपनिषद के ईशावास्यमिद सव एष सर्वेषु भूतषु गूढोत्मा अथवा विश्वाधिप सव भूतेषु गूढ [5] जस महावाक्यो की अनगूँज मात्र हैं।

अक्षर के सम्बन्ध म कठोपनिषद का उदघोष है—

'यह अक्षर ही तो ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है इसी अक्षर को जान कर जो जिसको चाहता ह उसको वही मिल जाता है।'[6] अक्षर ब्रह्म के इस चमत्कार को निराला जी न बडे ही मनोयोग से प्रकाशित किया है—

वर्ण चमत्कार
एक एक शब्द बँधा ध्वनिमय साकार।

* * *

खुली मुक्ति बन्धन म बधी फिर अपार
वर्ण चमत्कार [1]

---

१ कानन कुसुम पृ० ८६
२ आधुनिक कवि पृ० १३
३ झकार द्वितीयावृत्ति २००७ पृष्ठ १७
४ आधुनिक कवि आत्म-कथन पृष्ठ ९
५ श्वेता० ४।१५
६ एतद्ध्येवाक्षर ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षर परम ।
एतद्ध्येवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत ॥
कठोपनिषद द्वितीय वल्ली १६, प्रथम अध्याय ।

शत शत रंग खिला, मिला प्राण,
गूंजे गगनांगण में ये अगण्य गान
निखी रूप की छवि झंकृत कर स्वर-तार
वर्ण चमत्कार ![1]

उपर्युक्त पंक्तियों में यह दिखाया गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि और उनकी क्रियाशीलता अक्षर ब्रह्म का ही निरुपम चमत्कार है।

पन्त जी ने भी उपनिषद के विश्वातीत एवं कूटस्थ अक्षर[2] ब्रह्म के विषय में यह समीक्षा उपस्थित की है—

चिर अक्षर ही जीवों में क्षर
स्वयं मुक्त वह पूर्ण परात्पर
विश्व विवर्तन क्षर विकास की
है अनन्त शाश्वती प्रतीक्षा।[3]

ऋषियों ने ब्रह्म को अजन्मा अजर अमर अभय[4] नित्य निष्काम अकाम आप्तकाम[5] अदृश्य अस्पृश्य असंग[6] जन में स्थित अग्नि[7] आदि कहा है। ब्रह्म के इन्हीं लक्षणों अथवा विशेषताओं का आरोप पन्त जी ने अपनी अप्सरा में कर दिया है जो संज्ञा में तो अप्सरा है किन्तु तत्त्वतः है ब्रह्म ही—

जग के सुख दुख पाप-ताप
तृष्णा ज्वाला से हीन
जरा जन्म भय मरण शून्य
यौवनमयि नित्य-नवीन
अतल विश्व शोभा-वारिधि में
मज्जित जीवन-मीन

---

१ गीतिका पृ० ९३
२ क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर —स्वर्ण किरण पृ १७४
३ स्वर्ण किरण पृ १७५–७६
४ बृहदारण्यक ४।४।२५
५ योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो।—बृहदारण्यक ४।४।६
६ असंगो न हि सज्यते—। वह आसक्ति में नहीं पड़ता।—बृहदा ४।५।१५
७ स एवाग्नि सन्निविष्ट।—श्वेता० ६।१५

तुम अदृश्य अस्पृश्य अप्सरी
निज सुख में तल्लीन ।[1]

उपनिषद का यह ब्रह्म 'सत्य, ज्ञान और अनन्त'[2]—रूप है और वही सीम-असीम, क्षर-अक्षर जड चेतन रूप में सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है—

है सत्य एक,—जो जड चेतन
क्षर अक्षर, परम अनन्त सान्त ।[3]

श्रुति कहती है कि 'ब्रह्म के अंगभूत कार्य-कारण समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो रहा है'[4] इस तथ्य को पंत जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

ज्ञानी कर्मी शिल्पी सैनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित
अन्तपथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से सपोषित ।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों और उपनिषदों में जो भगवान का वर्णन अविकार्य और अचिन्त्य रूप में हुआ है[6] उसकी सम्यक् अभिव्यक्ति छायावाद की कविता में हुई है। उपनिषदों में भगवान के लिए परस्पर विरोधी विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं जो यह सूचित करते हैं कि उस पर अनुभवगम्य धारणाएँ लागू नहीं की जा सकती। अर्थात् उपनिषद् के 'वह गति नहीं करता है और फिर भी वह गति करता है वह बहुत दूर है फिर भी पास है'—[7] उस विशेषणों से भगवान का दुहरा स्वरूप सामने आता है। एक तो उसका सत (अस्तित्वमय) स्वरूप और एक नाम रूपमय स्वरूप। वह 'परा' अर्थात् लोकातीत है और 'अपरा' अर्थात् अन्तर्व्यापी है संसार के भीतर और बाहर दोनों जगह विद्यमान है।[8] छायावाद का कवि ब्रह्म के 'परा' और 'अपरा'

---

१ पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृष्ठ १००
२ तैत्तिरीयोपनिषद ब्रह्मानन्द वल्ली, प्रथम अनुवाक
३ पन्त, उत्तरा, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८८
४ तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्त सर्वमिदं जगत ।—श्वेता० ४।१०
५ स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२८
६ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबंध पृ० २६
७ ईशोपनिषद् ५
८ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबंध पृ० २५

दाना रुपा को अपने ‍ा‍य म चित्रित ‍रता हैं यह बात हमारे उपय क्त विवेचन से पूणत स्पष्ट है।

आन‍दमय ब्रह्म

उपनिष‍ो ‍ा ब्रह्म स्वभावत असीम सर्वोच्च निष्‍लुप और अपनी एकता और परम आन‍द से ‍स प्रकार युक्त है ‍ि उसम ‍िसी विजातीय तत्व का प्रवेश नही हो सकता ।[1] उपनिषदो ने उसे स‍्चिदान‍‍[2] ‍हा है और सत चित आन‍द रूप म ही वह समस्त वस्तुओ म ‍्याप्त है। तत्तिरीय उपनिषद ‍े श‍‍ो म विश्व की प्रक्रिया भौतिक तत्व (अन्न) जीवन (प्राण), मन (मनस), बुद्धि (विनान) और परम आन‍ (आन‍द) ‍ी पाच अवस्थाओ स गुजरी है ।[3] छायावाद के कवि ने ‍स दाशनि‍ सत्य ‍ी अभि ‍्यक्ति इस प्रकार ‍ी है—

अन्नप्राण मन आत्मा केवल
‍ान भद है सत्य ‍े परम
इन सवम चिर व्याप्त ईश र
मुक्त सच्चि‍ा द चिरतन ।[4]

विनानमान‍द ब्रह्म [5] आन‍ो ब्रह्म ति ‍यजानात [6] आदि श्रतिया भी ब्रह्म ‍ो आन‍दमय घोषित ‍रती हैं। आन‍द से ही ये समस्त प्राणी उत्पन होते हैं उत्पन होकर आन‍द से ही जीते हैं और इस लोक से प्रयाण ‍रते हुए आन‍द म ही प्रविष्ट हो जाते है ।[7] ब्रह्म आन‍दमय है अत रस रूप है (रसो व स) और जीवात्मा रस रूप ब्रह्म को प्राप्त ‍रके ही आनन्दित होता है। वही रसमय ब्रह्म आन‍द स्वरूप आकाश की भाति सवत्र ‍्याप्त है ।[8] उपनिषद के इसी सवव्यापी एव सव ‍ो आन‍द प्रदान ‍रने वा‍े रसमय ब्रह्म स प्रभावित होकर प्रसा‍ जी ने ‍हा है—

---

१ राधाकृष्णन भगवदगीता परिचयात्मक निब‍ध पृ० २५
२ सत्य ज्ञान सच्चि‍ान‍‍रूप शु‍रह्स्योपनिषद ‍ितीय ख‍‍
३ राधाकृष्णन भगवदगीता परिचयात्मक निब‍ध, प० ४७
४ प‍त, स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ० १३३
५ बहदारण्यक ३।९।२८
६ तत्तिरीय उपनिषद षष्ठ अनुवाक
७ वही,
८ वही, सप्तम अनुवाक

सब में घुलमिल कर रसमय
रहता वह भाव परम है।[1]

इसी प्रकार 'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' के आधारभूत पन्त जी ने 'अखिल सृष्टि आनन्द प्रणीता'[2] कह दिया है। और 'ब्रह्म वेदममृतं' 'ब्रह्म अमृत स्वरूप है' (मु० उ० २।२।११) के आधार पर यह घोषित किया है कि 'जीवन में निरन्तर ज्ञानामृत की धार छलकती रहती है।'[3] इसी आनन्दमय ब्रह्म की सेवा में छायावाद के कवि का हृदय लीन है।[4] और उपनिषद के इसी 'चिर अव्यय, चिर नूतन' प्रकाश एवं आनन्द अथवा रस रूप ब्रह्म में वह 'जग के उर्वर आँगन में ज्योतिर्मय जीवन' के वर्षण की कामना करता रहता है।[5]

ब्रह्मानन्द के मोह अथवा ईश्वर में चिर विश्वास[6] के कारण ही छायावाद का कवि उच्चादर्शों तथा संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का प्रेमी बना[7] जिससे सांसारिक जीवन की कटुता के मध्य भी वह नवीन आशा और नवीन अभिलाषा की स्थापना करने में सफलकाम हो सका तथा जीवन के सुख-दुख को अस्थिर मानकर मन के जीवन (ब्रह्मानन्द) का अवलम्ब ले सका।[8] अस्तु विश्व में विश्वातीत निर्गुण ब्रह्म के मधुर संगीत की चिर व्याप्ति का ध्यान

१ कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० २१६
२ स्वर्णकिरण पृ० १३६
३ चूम सुख-दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार। —पल्लव, पृ० ८८
४ तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान —पल्लव पृ०
५ जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर-नूतन!
—पन्त गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० ७९
६ पन्त पल्लविनी पृ० २३२
७ वही पृ० २३१
८ अस्थिर है जग का सुख दुख जीवन ही नित्य चिरन्तन।
सुख दुख के ऊपर, मन का जीवन ही रे अवलम्बन!
पन्त, पल्लविनी, पृ० २०८

करके उसके मन प्राणों ने सुख दुख के पुलिनों को डुबा कर अमरत्व का अनुभव भी किया।[1] किन्तु श्रुतियों में जहाँ ब्रह्म को निर्विशेष और निर्गुण कहा गया है वहाँ उसे दिव्य गुणों से आपूरित भी बताया गया है।[2] जब उसे सृष्टि से पृथक करके देखा जाता है तब वह निर्गुण होता है और जब उसे सब वस्तुओं के रूप में देखा जाता है तब वह सगुण होता है।[3] ठीक उसी तरह छायावाद का कवि भी अपने ब्रह्म को—

निखिल छवि की छवि! तुम छवि हीन'[4]

कहकर उसे उक्त दोनों लक्षणों (सगुण निर्गुण) से युक्त बताता है। अतः यदि वह एक ओर निर्गुण ब्रह्म को आनन्दरूप घोषित करता है तो दूसरी ओर सगुण आनन्दकन्द से अपने हृदय बीच निज धाम बनाने तथा पूर्णकाम करने की प्रार्थना भी करता है—

मिलो अब आके आनन्दकन्द
रहे तव पद में आठो याम
बना लो हृदय बीच निज धाम
करो हमको प्रभु पूरन काम।[5]

आत्मा

हिन्दू विचारधारा में किसी व्यक्ति को परमात्मा के साथ एकरूप मानना साधारण बात है। उपनिषदों में बताया गया है कि पूर्णतया जागरित आत्मा जो परब्रह्म के साथ वास्तविक सम्बन्ध को समझ लेती है इस बात

मनो ब्रह्मेति व्यजानात्—मन ही ब्रह्म है इस प्रकार समझो।
तैत्तिरीयोपनिषद् चतुर्थ अनुवाक

१ दूर बन के ओ राजकुमार!
अखिल उर उर में तेरे गात
मधुर इन गीतों से सुकुमार!
अमर मेरे जीवन औ प्राण!
—पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० ८३

२ देखिए, श्वेता० ३।१९ माण्डूक्य० ६ ७

३ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० २७

४ पन्त गुंजन पृ० ७८

५ प्रसाद, कानन-कुसुम, पंचम संस्करण पृ० ५९

को देख लेती है कि वह मूलतः परब्रह्म के साथ एकरूप है और वह अपने ब्रह्म के साथ एकरूप होने की घोषणा भी कर देती है।[2] कौशीतकि उपनिषद (३) में इन्द्र प्रतर्दन से कहते हैं मैं प्राण हूँ मैं चेतन आत्मा हूँ मुझे जीवन और प्राण मानकर मेरी पूजा करो। जो मुझे जीवन या अमरता मानकर मेरी पूजा करता है वह इस संसार में पूर्ण जीवन प्राप्त करता है वह स्वर्गलोक में जाकर अमरता और अनश्वरता प्राप्त करता है। गीता में भगवान ने कहा है राग भय और क्रोध से मुक्त होकर मुझमें लीन होकर मुझमें शरण लेकर अनेक लोग ज्ञानमय तप द्वारा पवित्र होकर मेरे रूप को प्राप्त कर चुके हैं।[3] कृष्ण ने जिस दिव्यता का दावा किया है वह सब सच्चे आध्यात्मिक अन्वेषकों को प्राप्त होने वाला सामान्य प्रतिफल है। वह कोई ऐसा नायक नहीं है जो कभी पृथ्वी पर चलता फिरता था और अपने प्रिय मित्र और शिष्य को उपदेश देने के बाद इस पृथ्वी को छोड़कर चला गया है अपितु वह तो सब जगह विद्यमान है और हम सबके अन्दर विद्यमान है और वह सदा हमें उपदेश देने को उसी प्रकार तैयार रहता है जैसा कि वह कभी भी किसी को भी उपदेश देने के लिए तैयार था। वह कोई ऐसा व्यक्तित्व नहीं है जो कि अब समाप्त हो चुका हो अपितु वह तो अन्तर्वासी आत्मा है जो हमारी आध्यात्मिक चेतना का लक्ष्य है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपनिषदों और गीता में ब्रह्म और आत्मा एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं तो स्पष्ट शब्दों में कहा

---

१ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० ३४

२ शंकराचार्य ने इस पर टीका करते हुए कहा है इसका अर्थ यह है कि इन्द्र ने जो कि एक देवता हैं शास्त्र के अनुसार ऋषियों की प्राप्त होने वाली दृष्टि से अपने-आपको परब्रह्म के रूप में देखते हुए यह कहा है कि मुझे जानो ठीक उसी प्रकार जैसे कि इसी सत्य को देखते हुए वामदेव को अनुभव हुआ था कि मैं मनु हूँ मैं सूर्य हूँ। श्रुति में (अर्थात् बृहदारण्यक उपनिषद में) यह कहा गया है उपासक उस देवता के साथ जिसे वह सचमुच देखता है एक रूप हो जाता है। वही, पृ० ३८

३ गीता ४।१०

४ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० ३८ ३८

गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है।[1] इस प्रकार आत्मा भी ज्ञानमय आनन्द मय तथा मुक्त है। अत निराला जी कहते हैं—

स्थित म आनन्द म चिरकाल
जाल मुक्त। नानाम्बुधि
वीचिरहित।[2]

आत्मा और ब्रह्म म अभेद के कारण ही वदिक ऋषि न कहा है कि यह ब्राह्मण जाति, यह क्षत्रिय जाति य लोक ये देवगण, ये भूतगण और यह सब जो कुछ भी है सब आत्मा ही है।[3] किन्तु इसका अनुभव सबको नही होता। इसके उत्तर म कठोपनिषद कहती है कि आत्मा सभी वस्तुओ मे निहित (तो) है किन्तु प्रकट रूप म दिखाई नही देती। जो सूक्ष्मदर्शी है वे अपनी प्रखर बुद्धि से उसे देख लेते है।[4] आत्मा की पहचान म छायावाद का कवि इस सूक्ष्म दर्शिता का परिचय देता हुआ पाया जाता है। समस्त भूतसमुदाय को उसने अपनी भावना म आत्मवत ही देखा है—

यह नीला आकाश न केवल
केवल अनिल न चचल
इनम चिर आनन्द भरा
मरी आत्मा का उज्ज्वल !

×   ×   ×

मैं इस जग मे नहा अकेला
मुझको तनिक न सशय
वही चाह है कण कण म
जो मरे उर म निश्चय ![5]

इसी प्रकार प्रसाद जी ने भी कहा है—

आत्मा सब की सत्ता थी, है रहेगी मान लो
नित्य चेतन सूत्र की गुरिया सभी को जान लो।[6]

---

१ अयमात्मा ब्रह्म—बृहदारण्यक, २।५।१९
२ निराला परिमल पृ २३३ ३४
३ इद ब्रह्मद क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमानि भूतानीद सर्व यदयमात्मा। बृहदारण्यक २।४।६
४ एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते। कठोपनिषद १।३।१२
५ पन्त स्वर्ण किरण प्रथम सस्करण, पृ० ६६
६ कानन-कुसुम पृ ११६

गीता में भगवान ने कहा है कि 'सर्वत्र समदृष्टि रहनेवाला योगयुक्त पुरुष सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को देखता है।'[1] इस भाव की सम्यक अभिव्यक्ति पन्त जी की निम्न पंक्तियों में मिल जाती है—

मेरे भीतर परिभ्रमित ग्रह
उदित अस्त शशि दिनकर
मैं हूँ सबमें एक एक रे
मुझ से निखिल चराचर।[2]

इसी प्रकार निराला जी ने भी यह दिखाया है कि योगयुक्त पुरुष मन, बुद्धि और अहंकार से मुक्त होकर अपने ही भीतर 'सूर्य चन्द्र ग्रह तारे और अनगिनत ब्रह्माण्ड भाण्ड' देखता है।[3] अन्तर केवल इतना है कि जहाँ पन्त जी ने अपने को योगी के कक्ष में रखा है वहाँ निराला जी ने गीता के योग मार्ग का आश्चर्य प्रस्थान भर किया है। इसी से जहाँ पन्त जी ने 'मैं हूँ सबमें एक' कह कर एक योगी की भाँति सब भूतों में आत्मा को देखने का दावा किया है वहाँ निराला जी ने समस्त भूतगण की एकता का, व्यष्टि तो समष्टि में अभिन्न है, कह कर प्रतिपादन भर किया है।

ऋषि ने आत्मा को अविनाशी और असंग आसक्ति से रहित बताया है।[4] यह संसार में व्याप्त होते हुए भी निर्लिप्त है। अर्थात वह सांसारिक कर्दम से पंकिल नहीं होता। इसी से पन्त जी ने उसे शुभ्र[5] (परम विशुद्ध तत्व) तथा अनन्त का मुक्त मीन कहा है। आत्मा के निरामय सौन्दर्य एवं निस्संग सुख का बड़ा ही सुन्दर एवं भावपूर्ण चित्रण हम पन्त जी की 'एक तारा' नामक कविता में मिलता है—

तुलना कीजिए— मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥
मेरे अतिरिक्त किंचित मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र में मणियों के सदृश मुझ में गुथा हुआ है। —गीता, ७।७

१ गीता ६।२९
२ स्वर्ण किरण पृ० ६६
३ परिमल, पंचवटी प्रसंग, पृष्ठ २२२-२३
४ स एष नेति नेत्यात्मा, अगृह्योन हि गृह्यते अशीर्यो न हि शीर्यते। असंगो न हि सज्यते।—बृहदा० ४।५।१५
५ तदेव शुभ्रं तद् ब्रह्म। कठोपनिषद् २।२।८

चिर अविकल पर तारक अमन्द !
जानता नहीं वह छन्द बन्ध !
वह रे अनन्त का मुक्त मीन अपने असंग सुख में विलीन
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन !
निष्कंप शिखा सा वह निरुपम भेदता जगत जीवन का तम
वह शुद्ध प्रबुद्ध शुक्र वह सम ।[1]

उपनिषदों के अनुसार संसार के जितने स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ हैं सभी आत्मा के ही रूप हैं। जितनी वस्तुएँ संसार में हैं सभी का सार आत्मा ही है। उपनिषदों में सबसे विशेष महत्त्व आत्मा ही को दिया गया है कारण यह है कि इसके समान प्रिय वस्तु दूसरी नहीं है।[2] इस प्रकार उपनिषदों के मत में आत्म सुख ही परम सुख है जिसकी प्राप्ति कामनानाश से ही सम्भव है।[3] सम्भवतः इसीलिए छायावाद की कविता में कामना के नाश और साधना पर विशेष बल दिया गया है—

तुच्छ है यह भावना इच्छा दिया है नाम जिसको
साधना ही श्रेय अब तक शुभ हुआ है प्रेय किसको
कहाँ पारस छू जिसे लोहा बने कांचन कली ?
अन मन की मुरलिके मत गान गा तू कामना का !
इष्ट है तेरे लिए—साधन बने तू साधना का ?[4]

आत्मा के गुण (सत चित-आनन्द) के सामने सांसारिक सुख दुख को नश्वर[5] छलना अथवा मात्र माया मान कर तिरस्कृत अथवा विस्मृत कर दिया गया है—

आत्मा का गुण सत्य सत्य में
छाया का छल कहाँ समाए ?
सुख दुख धूप छाँह का परदा
जिसके परे सत्य का घर है ![6]

---

१ गुंजन तृतीय संस्करण पृष्ठ ८६
२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृष्ठ ५८ बृहदा० ४।५।६
३ बृहदारण्यक ४।४।६
४ नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल द्वितीय संस्करण पृ० ३
५ सुख भी नश्वर दुख भी नश्वर यद्यपि सुख दुख सबके साथी
कौन घुन फिर सोच फिकर में आज घड़ी क्या है कल क्या थी।
नरेन्द्र शर्मा पलाश वन द्वितीय संस्करण १९४६ पृष्ठ ४३
६ वही पृष्ठ ५५

इस दिव्य अथवा आत्मिक सुख की खोज म ही छायावाद के कवि ने छायावन मे विचरण किया, जिसके कारण उसे पलायनवादी कहा गया।[1] यह अतीन्द्रिय अथवा आत्मानन्द की खोज का ही फल था जो आर्थिक विपन्नता के उपरान्त भी छायावाद के कवि ने भौतिक क्रान्ति का स्वर ऊँचा नहीं किया। अलौकिक आनन्द के लोभ के कारण ही छायावाद का काव्य सहनशीलता और सहिष्णुता की पावन भावना से अनुप्राणित है। और अतीन्द्रिय आनन्द के आग्रह मे ही उसम कमयोग[2] की भावना निरपेक्ष साधना,[3] उत्सग की उत्कण्ठा,[4] सुख दुख म समभाव[5] का सचयन प्रचुर मात्रा म हुआ है। उसम विवेक उपेक्षा कष्टसहिष्णुता आदि का आध्यात्मिक अथवा मानवीय गुणो के प्रादुर्भाव तथा भौतिक मूल्या एव तज्जनित उच्छ खलताओं के अभाव का कारण उसका आत्म अथवा चेतनावादी दृष्टिकोण ही ह।

जीव

उपनिषदो के मत म ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त ये दो रूप हैं। यह मर्त्य और अमृत, स्थिर तथा अस्थिर (यत) सत (स्वलक्षण) तथा त्यत (अवणनीय) है। इस ही परमात्मा भी कहते हैं। यही परमात्मा अविद्या के कारण बन्धन मे पड कर 'जीवात्मा' कहलाता है, पूवजन्म के कम के अनुसार सुख और दुख के भोग के लिए इस ससार म आता है और जन्म मरण से युक्त रहता है। ससार म आने के समय भोग के अनुकूल स्थूल शरीर को धारण करता है। उपनिषद का कहना है कि यह जीव अपने भोग के लिए स्वप्न म स्वय नवीन-नवीन विषयो की सृष्टि कर लेता है। परन्तु वस्तुत स्वप्न का भी

---

१ तुम्हें खोजते छाया-वन म अब भी कवि विख्यात
पन्त, गुजन, तृतीय सस्करण पृष्ठ ९६

२ कमयग से जीवन के सपनों का स्वग मिलेगा,
इसी विपिन म मानस की आशा का कुसुम खिलेगा।
प्रसाद कामायनी, द्वितीय सस्करण, पृष्ठ १२१

३ अलम है इष्ट अत अनमोल साधना ही जीवन का मोल!
पन्त पल्लविनी, पृष्ठ ८८

४ महत है अरे, आत्म बलिदान,—पन्त, पल्लविनी पृष्ठ ८६

५ मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह मिलन का
दुख सुख दोनो नाचेंगे है खेल आँख का मन का।
प्रसाद, आँसू दशम, सस्करण, पृष्ठ ४०

मष्टि ब्रह्म ही की है। जीवात्मा और ब्रह्म तो एक ही है।[1] उपनिषद में जीव के विषय में कहा गया है कि जैसे जलती हुई आग से उसी समान रूपवाले सहस्रों स्फुलिंग निकलते रहते हैं उसी प्रकार हे सोम्य! अविनाशी ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव (जीव) उत्पन्न होते और उन्हीं में विलीन होते हैं[2] इस प्रकार उपनिषद में अंश अंशी भाव से जीव और ब्रह्म की एकता निरूपित की गई है। ब्रह्म और जीव में एकता स्थापित करने वाले आग और उसके स्फुलिंग के उक्त उदाहरण के आधारभूत ही पन्त जी ने मानव (जीव) को स्फुलिंग[3] कहा है। अग्नि रूप ब्रह्म अविनाशी है अतः उसके स्फुलिंग रूप जीव को उन्होंने चिरंतन और नित्य भी कहा है। महादेवी जी ने भी उपर्युक्त उदाहरण को थोड़ा परिवर्तन (आग ज्वाला स्फुलिंग उत्ताप) के साथ अपना कर जीव और ब्रह्म की एकता को अक्षुण्ण रखा है।[4]

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद में ब्रह्म और जीव की एकता को सूर्य और उसकी किरणों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है।[5] इसी मत के आधारभूत महादेवी जी ने जीव और ब्रह्म की एकता को उत्तम पुरुष में इस प्रकार व्यक्त किया है—

---

१ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृष्ठ ५९
तुम जीवों में ही हो ईश्वर।—पन्त युगवाणी, पृष्ठ १ ०

२ यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिंगाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति॥ मु० उ० २।१।१

३ मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन पल्लविनी पृष्ठ २४५

४ कर पाओगे भिन्न कभी क्या
ज्वाला से उत्ताप ?—रश्मि पृष्ठ ६२

५ यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकी भवन्ति। ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति।—हे गार्ग्य! जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की किरणें इस तेजोमंडल में सबकी सब एक हो जाती हैं (और) उदय होने पर वे पुनः पुनः सब ओर फैलती रहती हैं वैसे ही (निद्रा के समय) वे सब इन्द्रियाँ परमदेव में एक हो जाती हैं
—प्रश्न ४।२

मैं तुम में हूँ एक एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश

किन्तु मन्त्र के पूरे भाव अर्थात सृष्टिकाल में सूर्य की किरणों के समान ब्रह्म से जीवों की उत्पत्ति तथा प्रलयकाल में अस्त होते हुए सूर्य में एकाकार होती हुई किरणों की भाँति समस्त जीवों का ब्रह्म में समाहित हो जाने को कवयित्री ने (चाँद को सूर्य का स्थान देकर) इस प्रकार व्यक्त किया है—

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण।

ओस धुले पथ में छिप तेरा
जब आता आह्वान
भूल अधूरा खेल तुम्हीं में
होती अन्तर्धान।[2]

किन्तु महादेवी जी की उपर्युक्त पंक्तियों में आया हुआ चाँद और उसकी रश्मियों का उदाहरण उपनिषद् के मन्त्र में आए हुए सूर्य और उसकी किरणों के उदाहरण की भाँति केवल जीव की उत्पत्ति और उसके विलयन का ही परिज्ञान नहीं कराता, प्रत्युत आधार आधेय सम्बन्ध से माधुर्य की सुन्दर समष्टि भी करता है।

पूर्वोक्त मन्त्र (प्रश्न ४।२) में ब्रह्म की निष्क्रिय स्थिति का निरूपण कहा गया है जिसमें समस्त इन्द्रियाँ ब्रह्म में एक हो जाती हैं। किन्तु महादेवी वर्मा ने जैसा कि उनमें मन्त्रों की शब्दावली अथवा भावों में थोड़ा परिवर्तन करके उन्हें अपनाने की प्रवृत्ति प्रायः मालूम पड़ती है नाद को ही ब्रह्म और उसमें उत्पन्न होने वाले स्वप्नों को जीव का प्रतीक मान कर नाद को ही जीव का उपक्रम और उपसंहार मान लिया है।[3] इसी प्रकार उन्होंने ब्रह्म और जीव

---

१ रश्मि, पृ० ६२
२ रश्मि पृ० ५६ ५७
३ इस उन्नींदी में मधुर स्वप्न की
तुम निद्रा के तार
जिसमें होता इस जीवन का
उपक्रम उपसंहार।—रश्मि पृ० ५९

की एकता को व्यक्त करने के लिए कुछ स्वतन्त्र उदाहरणा, जैसे समुद्र और उसकी लहरें[1] बसन्त और उसकी श्री[2] आलोक और तारे[3] आदि का प्रयोग किया है। उदाहरणो द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता को व्यक्त करने की प्रवृत्ति निराला और पन्त म भी पाई जाती है। निराला जी ने विटप और उसकी शाखा[4] और पन्त जी ने सागर और उसकी बूंद[5] के उदाहरणो द्वारा ब्रह्म और जीव की एकता को स्पष्ट किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद म उपनिषदो के ब्रह्मवक्य प्रतिपादक उदाहरणो को कही पर ज्यो का त्यो और कही पर थोडा परिवर्तन के साथ अपनाया गया है और कही-कही पर उन्ही के आधारभूत स्वतन्त्र अथवा नवीन उदाहरणो की कल्पना कर ली गई है।

ऋषियो ने अहब्रह्मास्मि सोऽह तत्वमसि आदि महावाक्यो द्वारा स्पष्ट रूप म जीव और ब्रह्म मे अभेद बताया है। इन महावाक्यो के आधार भूत छायावादी कवियों ने रहस्य के क्षेत्र मे आत्मा परमात्मा की एकता एव विरह मिलन के अनेक गीत गाये है। इसी से स्थान स्थान पर उन्होंने उक्त महावाक्यो का सिद्धान्त रूप मे भी प्रवचन किया है।

अहब्रह्मास्मि—

निराला जी ने स्पष्ट कहा है कि मौलिकता के प्रश्न पर बारीक छान बीन होने पर निश्चय है ब्रह्म ही हर सृष्टि के मूल म दृष्टिगोचर[6] होगा। निराला जी की इस पैनी अन्तर्दृष्टि ने व्यवहार जगत म कुकुरमुत्ता जैसी अपूत एव उपहासास्पद वस्तु म भी अहब्रह्मास्मि और सोऽह के मूल सिद्धान्त को पकड लिया। अहब्रह्मास्मि अथवा सोऽह की विश्वव्यापिनी चेतना का प्रत्यक्ष उद्घाटन कुकुरमुत्ता नामक काव्य मे कराया है।[7] इसी प्रकार बालकृष्ण शर्मा नवीन ने कहा है—

---

१ २ ३ रश्मि क्रमशः पृ० ५७ ५८ और ६१
४ तुम तुङ्ग-वन घन विटप
और मैं सुख शीतल-तल शाखा। —परिमल पृ ८८
५ वह एक बूंद सागर अपार। —पल्लविनी पृ० २५४
६ पन्त और पल्लव प्रथमावृत्ति १९४९ पृ ८४
७ सब जगह तू देख ले

सुबह का सूरज हू मैं ही
चाँद मैं ही शाम का। आदि—
निराला कुकुरमुत्ता, पृ० ६

मैं रवि हूँ, पावक हूँ
शशि हूँ शीतल सुमन सुवास
अटल शक्ति है किन्तु निहित है
मुस्मय हास विलास।[1]

किन्तु निराला जी ने जहाँ 'अयमस्मि सब' पर ही विशद बल दिया है, वहाँ 'नवीन' जी ने उसके साथ ही ब्रह्म के आनन्दमय स्वरूप का भी संकेत कर दिया है।

सृष्टि के पूर्व जिस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म में यह व्यक्त जगत् निहित था उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी ही एकता को समस्त सृष्टि का उपादान कारण माना है।[2] और निराला जी ने सर्वत्र अपनी ही ज्योति का विस्तार देखा है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवियों ने व्यक्त और अव्यक्त, सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों में अपने को ब्रह्मवत सिद्ध किया है। इस प्रवृत्ति के कारण ही छायावाद में अहंभाव की प्रचुरता है।

तत्वमसि

छान्दोग्य उपनिषद में 'तत्वमसि'[4] महावाक्य द्वारा 'त्वम्' (जीव) तथा तत् (ब्रह्म) में अभेद स्थापित किया गया है। इसी मन्त्र से प्रभावित होकर निराला जी ने लिखा है—

जागो फिर एक बार

तुम हो महान, तुम सदा हो महान

ब्रह्म हो तुम।[5]

और पन्त जी ने अपने सन्यासी से प्रार्थना की है—

---

१ छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी पृ० १४२
२ एकता में अपनी अनजान
समाया था संसार। —रश्मि पृ० ७६
३ ज्योतिर्मय चारों ओर
परिचय सब अपना ही। —परिमल, पृ० २३३
४ छा० उ० ६।८।५ ६।९।४, ६।१४।३
५ परिमल पृ० १७७

तुम वह हो बोला संन्यासी छिन्न करो तम तोम

इस प्रकार तत्वमसि के आधारभूत छायावाद में जगत के तम तोम तथा राष्ट्र की अकर्मण्यता को दूर करने का प्रयत्न हुआ। ध्यान देने की बात है कि ऋषियों ने तत्वमसि के द्वारा वैयक्तिक मुक्ति की ही कामना अथवा कल्पना की थी। किन्तु छायावादी कवि ने तत्वमसि के सिद्धान्त को ऋषियों की भाँति एकान्त साधना अथवा वैयक्तिक मुक्ति तक ही सीमित नहीं रखा। उसने उक्त सिद्धान्त द्वारा प्रसुप्त जर्जर राष्ट्र को जगाने तथा उसके अज्ञान को दूर करने का उपक्रम भी किया। इस प्रकार यदि अहंब्रह्मास्मि के प्रभाव से छायावाद के कवि में अहं भाव जगा तो तत्वमसि के सिद्धान्त ने उसे लोक कल्याण की ओर भी प्रेरित किया। इसी से छायावाद काव्य का जागरण अथवा उद्बोधन गान अत्यन्त सूक्ष्म सशक्त एवं प्राणप्रद है। इस प्रकार छायावाद में जीव और ब्रह्म की एकता घोषित करने के उपरान्त तत्वमसि के आधारभूत समूह की मुक्ति पर विशेष बल दिया गया जिसे हम छायावाद की मौलिक देन कह सकते हैं।

वेदान्त का ब्रह्म बन्धनरहित तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः छायावाद के कवि ने जीव में ब्रह्म के उक्त गुणों का आरोप भी कर दिया है—

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।[2]

जगत

सृष्टि के विषय में उपनिषदों का एक मत नहीं है। किन्तु सामान्य रूप में सभी उपनिषदें ब्रह्म से ही जगत का आविर्भाव मानती हैं। सृष्टि का वर्णन करते समय छायावादी कवियों ने उपनिषद के सृष्टिमूलक मन्त्रों का बार-बार सहारा लिया है।

छान्दोग्य उपनिषद् में यह कहा गया है कि ब्रह्म से ही यह सब उत्पन्न हुआ है।[3] इसी के आधारभूत पन्त जी ने जगत के प्रपञ्च को एक ही शक्ति

१ स्वर्ण धूलि पृ० १३३
२ निराला परिमल पृ० १७६
३ आत्मन एवेद सर्वम। छा० ७।२६।१

ब्रह्म से विकसित माना है[1] और निराला जी ने उसे एक ही कर से गुथा हुआ हार कहा है।[2]

ब्रह्म से ही इस जगत के समस्त तत्व उत्पन हुए हैं इसका सुन्दरतम वणन उपनिषद म निम्न प्रकार से किया गया है—

जसे मकडी अपने स्वरूप से ही जाल को बनाती है और पुन उसे निगल लेती है जसे पृथ्वी से अन्न आदि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं जसे जीवित पुरुष से ही केश लोम आदि उत्पन होते हैं उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से यहाँ सम्पूण जगत प्रकट होता है।[3]

महादेवी जी की निम्न पक्तियो पर इस मत्र की स्पष्ट छाप है—

स्वणलूता सी कब सकुमार
हुई उसम इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरगें तार
बुन लिया अपना ही ससार।[4]

सष्टि का कारण बताते हुए उपनिषत्कार ने कहा है कि उसने (ब्रह्म ने) सकल्प अथवा ईक्षण किया कि मैं एक ही बहुत हो जाऊ अनेक रूपा म प्रकट होऊ।[5] दूसरे शब्दो म इस जगत के समस्त नानत्व का मूल कारण ब्रह्म की इच्छा है। छायावाद के प्रमुख कवियो प्रसाद और निराला ने सग अथवा इस त्रिगणात्मक प्रकृति को ब्रह्म की इच्छा के परिणाम स्वरूप चित्रित किया है।[6]

---

१ एक शक्ति से बहते, जग प्रपच यह विकसित, पत, ग्राम्या, द्वि० स० पृ० ६९

२ बहु सुमन बहुरग निर्मित एक सुदर हार
एक ही कर स गुथा उर एक शोभा भार।
गीतिका प्रथम सस्करण पृ० २२

३ यथोणनाभि सजते गहणते च यथा पृथिव्यामोषधय सम्भवन्ति।
यथा सत पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वरम॥
मु० उ० प्रथम खण्ड ७

४ रश्मि पृ० ६६

५ सोऽकामयत बहु स्या प्रजायेय। तत्तिरीय उ० २।६
तदक्षत बहु स्या प्रजायेय। छा० उ० ६।२।३

६ सग इच्छा का है परिणाम —कामायनी पृ० ६१
इच्छा हुई सष्टि की
प्रथम तरग वह आनन्द सिन्धु म
×
त्रिगुणात्मक रचे रूप ×
निराला—परिमल पृ० २३४

सृजन प्रकरण में यह भी स्पष्ट है कि सर्ग के उपरान्त प्रलय भी ब्रह्म की इच्छा से होती है। सृष्टि के इस नियम को निराला जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

उसकी ही इच्छा है रचना चातुर्य में
पालन संहार में।[1]

प्रलय के उपरान्त सृष्टि का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन पन्त जी की इन पंक्तियों में मिलता है—

रिक्त होते जब जब तरु वास
रूप धर तू नव नव तत्काल,
नित्य नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय-वट की डाल।[2]

छान्दोग्य उपनिषद में स्पष्ट कहा गया है कि इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म ही है।[3] छायावाद के कवियों ने इस सिद्धान्त को सर्वांशतः अपना लिया है। यथा—

(क) सृष्टि-स्थिति-प्रलय का
कारण कार्य भी है वही[4]—

(ख) चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय
चिन्मय प्रकाश में विकसित लय।

(ग) सिन्धु को क्या परिचय दें देव !
बिगड़ते बनते वीचि विलास

---

१ परिमल पृ० २२३
२ गुंजन पृ० ८३
३ सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।—निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म है क्योंकि उससे उत्पन्न होना उसी में स्थित रहता तथा अन्त में उसी में लीन होता है इस प्रकार शान्त चित्त होकर उपासना करे। छा० उ० ३।१४।१
४ निराला-परिमल पृ० २२३
५ पन्त-पल्लविनी पृ० २२१

क्षुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश।[1]

(घ) आदि में छिप आता अवसान
अन्त में बनता नव्य विधान।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद की कविता में उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म द्वारा जगत की उत्पत्ति स्थिति और नाश के सिद्धान्त तथा उसके कारण ब्रह्म की इच्छा का पूरा पूरा समावेश हो गया है। छायावाद के कवियों ने उक्त सिद्धान्त की भावमयी अभिव्यक्ति भी की है[3] जो In poetry Philosophy lives[4] के सिद्धान्त को चरितार्थ करता है और जिसे हम छायावाद की मौलिक देन के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

एकोऽहंबहुस्याम्

सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय[5] के अनुसार ब्रह्म ने बहुरूप धारण करने की इच्छा प्रकट की तो 'एकोऽहं बहुस्याम्' अथवा एक रूप बहुधा में

---

१ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ० ४४
२ वही, पृ० ८
३ (क) छोड़ निर्जन का निभृत निवास, नीड़ में बंध जग के सानन्द
भर दिए कलरव से दिशि आस, गृहों में कुसुमित मुदित, अमन्द!
पन्त, गुंजन तृतीय संस्करण पृ ८३
(ख) सुप्त-जग में गा स्वप्निल गान स्वर्ण से भर दी प्रथम प्रभात
मंजु गुंजित हो उठा अजान, फुल्ल जग-जीवन का जलजात।
पन्त गुंजन, पृ० ८२
(ग) उसी में घड़ियाँ पल अविराम पुलक से पाते नव विकास
दिवस रजनी तम और प्रकाश, बन गये उनके श्वासोच्छ्वास।
महादेवी वर्मा, रश्मि, पृ० ७८
सृष्टि और प्रलय की भावमयी अभिव्यक्ति
(घ) बदलता इन्द्रधनुष सा रंग सदा वह रहा नियति के संग
नहीं उसको विराम विश्राम, एक बनने मिटने का काम!—वही पृ० ६६
(ङ) अमर सुषमा का सृजन विनाश, यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास?
वही, पृ० ७
4 Radha Krisnan The philosophy of Tagore P 166
५ तैत्तिरीय उपनिषद् २।६

करोति [1] के अनुसार वह अनेक रूपो म परिवर्तित हो गया। एक ही अनक हो गया। उपनिषद के इस सष्टिमूलक सिद्धान्त की बडी ही भावपूण अभिव्यक्ति मथिलीशरण गुप्त की यकार [2] तथा छायावादी पत [3] निराला [4] आदि कवियो की रचनाओ म हुई है।

व्यक्त और अव्यक्त जगत

किन्तु ब्रह्मरूप धारण करने के पूव उस एक का स्वरूप क्या था इसका स्पष्टीकरण करते हुए तत्तिरीय उपनिषद कहती है कि प्रकट होने से पहले यह जगत अव्यक्त रूप म था उसम ही यह प्रकट हुआ है उस परब्रह्म परमेश्वर न स्वय अपने को ही इस जगत क रूप म प्रकट किया। [5] छायावादी कवि पन्त जी ने अव्यक्त को प्रसुप्त मतवत शस्य शून्य कहकर उसी के आधारभूत इस व्यक्त जगत का बडा ही मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। यथा—

आदि-काल म बाल प्रकृति जब
थी प्रसुप्त मतवत हत ज्ञान
शस्य शून्य वसुधा का अचल
निश्चल जलनिधि रवि शशि म्लान

---

१ जो एक ही रूप को बहुत प्रकार से बना लेता है।
—कठोपनिषद द्वितीय वल्ली १२

२ हुआ एक होकर अनेक वह—झकार पृ २२

३ एक छबि के असख्य उडगन
एक ही सब म स्पन्दन

एक ही तो असीम उल्लास
विश्व म पाता विविधाभास
पन्त—पल्लव पृ ८६

४ रूप—रस—गन्ध—स्पश
शब्द ज ससार यह
वीचियाँ ही अगिनित शुचि सच्चिदानन्द की।
निराला परिमल पृ २३४

५ असद्वा इदमग्र आसीत। ततो व सदजायत। तदात्मान स्वयमकुरुत।
तत्तिरीयोपनिषद ब्रह्मानन्दवल्ली, सप्तम अनवाक।

प्रथम हास-से, प्रथम अश्रु-से
प्रथम पुलक से हे छविमान!
स्मृति में विस्मय से तुम सहसा
विश्व स्वप्न में खिले अजान।[1]

इसी प्रकार महादेवी वर्मा ने अव्यक्त को 'शून्यता की निद्रा' कह कर उसी से स्वप्निल घन के समान इस जगत को निःसृत माना है। किन्तु उनका चित्र पंत जी की भांति सिद्धान्त प्रतिपादक के रूप में न होकर केवल जिज्ञासा पूर्ण है— जैसे

शून्यता में निद्रा की बन
उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन
× ×
हुआ त्यों सूनेपन का भाव
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण।[2]

'विश्व स्वप्न से खिले अजान' और 'उमड़ आते ज्यों स्वप्निल घन' से स्पष्ट है कि पन्त और महादेवी दोनों जगत को मायारूप मानते हैं जिसका आधार वैदिक मंत्र 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'[3] कहा जा सकता है।

अव्यक्त (ब्रह्म) को निराकार और व्यक्त (जगत) को साकार मान कर भी छायावादी काव्य में सृष्टि का बन्धन का भव्य चित्र उपस्थित किया गया है। यथा—

(क) निराकार तम मानो सहसा
ज्योति पुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धर कर नाम रूप नाना[4]

---

१ पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति १९४२ पृ० २५
२ महादेवी रश्मि पृ० ५
३ माया द्वारा ब्रह्म अनेक रूपों में दृष्ट होता है।
(ऋ० अष्ट० ४ मं० ७ व ३, मं० १८)
४ पन्त—वीणा-ग्रन्थि, पृ० ५४

(ख) अखिल इच्छाओ का ससार
स्वण छबि मे निज गए छविमान
बन गई मानसि ! तुम साकार ।[1]

(ग) हम अलग हुए है पूण स व्यक्त होवे[2]

जगत सत्य है

अव्यक्त ब्रह्म मे ही सूक्ष्म रूप से यह व्यक्त जगत निहित था[3] और वही सृष्टि-काल म स्थूल जगत के नानारव म व्यक्त हो गया स यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म ही इस जगत का उपादान कारण है। कर्तारमीश पुरुष ब्रह्मयोनिम[4] भूतयोनि परिपश्यन्ति धीरा[5] आदि उपनिषद मन्त्रो म ब्रह्म को इस सम्पूण का उपादान कारण बताया गया है। और सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म[6] सत्सत्य स आत्मा[7] आदि मन्त्र ब्रह्म को सत्रूप घोषित करते है। सुतरा सत्य रूप ब्रह्म के इस जगत का उपादान कारण होने के नाते यह जगत भी सत ही है। इसीलिए उपनिषदो न अखिल विश्व को ब्रह्मरूप घोषित किया है।[8] उपनिषद के इस सिद्धात का छायावाद के कवियो पर व्यापक प्रभाव पडा है। फलत उन्होने अपनी कलाकृतियो म इस दिखाई देन तथा अनुभव मे आन वाल स्थूल जगत का सत्रूप चित्रित किया है। उपनिषदो और शवागमो के प्रभाव स जहा प्रसाद जी ने इस जगत को नित्य चिर सुन्दर और सतत

१ पन्त—गुजन पृ० ६५
२ प्रसाद—कानन कुसुम पृ ६९
३ उसम अनन्त का है निवास
यह जग जीवन म ओतप्रोत ! पन्त—पल्लविनी पृ २५५

उस छोटे उर म छिप हुए है डाल पात औ स्कन्ध मूल
ससृति की गहरी हरीतिमा बहु रूप रग फल और फूल ।
पन्त—पल्लविनी पृ० २५४

४ मु० उ ।१।३
५ वही १।१।६
६ तत्तिरीयोपनिषद २।१
७ छा० उ ६।८।७
८ सव खल्विद ब्रह्म। —छा० उ० ३।१४।१

सत्य[1] बताया है वहाँ वेदान्त दर्शन (उपनिषद) के पुजारी होने के नाते निराला जी ने उसे 'सतत सत्य अनादि निर्मल सकल सुख विस्तार'[2] तथा पंत जी ने सत्य, शुभ और अमर[3] कहा है। महादेवी जी ने भी अंग जग उनका कण-कण उनका[4] द्वारा ब्रह्म को इस जगत का उपादान कारण घोषित करते हुए प्रकारान्तर से सृष्टि को सत्यरूप माना है।

जगत् परब्रह्म परमेश्वर की लीला है

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' सूत्र से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार आप्तकाम और वीतराग पुरुषों द्वारा बिना किसी प्रयोजन के जगत का हित साधन करने वाले कर्म स्वभावतः होते रहते हैं उनके कर्म किसी प्रकार के फल लाभ की इच्छा से युक्त न होने के कारण केवल लीलामात्र ही है उसी प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा का भी जगत रचना आदि कर्मों से अपना कोई प्रयोजन नहीं है तथा उन कर्मों में कर्तापन का अभिमान या आसक्ति भी नहीं है इसलिए उसके कर्म केवल लीलामात्र ही हैं। इसी के आधारभूत प्रसाद जी ने विश्व को विश्वेश का क्रीडा क्षेत्र[5] तथा क्रीडा पूर्ण प्रसार[6] कहा है और पन्त जी ने अपने मानस को उसकी क्रीडा का स्थल माना है।[7] मैथिलीशरण गुप्त का भी वह लीलाद्रत ब्रह्म आँख मिचौनी की क्रीडा में छलता हुआ दिखाई पडता है।[8]

---

१ चिति का स्वरूप यह नित्य जगत —कामायनी, पृ० २५०

चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर। —कामायनी पृ० २९६

२ गीतिका पृ० २२

३ एक अनेक सत्य ही था केवल क्षर अक्षर।
धरा सत्य थी सत्य पवन जल पावक अंबर
सत्य हृदय मन इन्द्रिय सत्य समस्त चराचर —पल्लविनी पृ० ६२

४ सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर-पल्लविनी, पृ० २३१ ब्रह्मसूत्र २।१।३३

५ विश्व क्रीडा-क्षेत्र है विश्वेश हृदय उदार का'—कानन-कुसुम पृ० ११६

६ सकल चराचर जिसका क्रीड़ापूर्ण पसारा। वही

७ मेरा मानस तो हासि हासिनी ! तेरी क्रीडा का स्थल है
—पल्लविनी पृ० ३७

८ आँख मिचौनी की क्रीडा में सचमुच तूने मुझे छला।
झंकार, वंचिता व्यापक कविता, पृ० १३८

किन्तु छायावाद की समकालीन पृष्ठभूमि म हम देख चुके हैं कि छायावाद युग की प्रवृत्ति को उपनिषदों की ओर मोडने म विवेकानन्द का प्रमुख हाथ रहा है। स्वामी जी न भारतवष की सर्वांगीण उन्नति के लिए उपनिषद की शिक्षा को अनिवाय बताया। उपनिषद ज्ञान के प्रकाश म ही उन्होंने अपने देशवासियो को निभयता तीव्रकमण्यता अनन्त शान्त भाव त्याग पवित्रता प्रेम दृढता एकता आत्म विश्वास देश भक्ति आदि का पाठ पढ़ाया तथा कमयोग भक्तियोग ज्ञानयोग का अमर सन्देश दिया। यहा तक कि राजनीतिक और सामाजिक विचारो के विकास के लिए भी उन्होंने आध्यात्मिक विचारो को आवश्यक ठहराया। जिस सावभौम धम का विश्व म विवेकानन्द ने प्रचार किया उसका मूलाधार उपनिषद ज्ञान ही था। अत उन्होंने बड ही ओजस्वी स्वर म कहा सब रहस्य विद्याओ को तिलाजलि दे दो और अपने उपनिषदो का—उस बलप्रद आलोकप्रद दिव्य दशन शास्त्र का आश्रय ग्रहण करो। उपनिषदो के सत्य तुम्हारे सामने हैं। इनका अवलम्बन करो इनकी उपलब्धि कर इन्हे काय म परिणत करो—बस देखोगे भारत का उद्धार निश्चित है।[1] इस प्रकार विवेकानन्द ने यह प्रचारित किया कि वेदान्त दशन अत्यन्त व्यावहारिक और प्राणप्रद है। फलत उनके प्रभाव और प्रयत्न से जनसमुदाय म यह भावना बद्धमूल हो गई कि व्यावहारिक वेदान्तवाद और रहस्यवाद की तुलना म निरा भौतिकवाद अति तुच्छ तथा एकागी है और भारत का अतीत सहृत सम्पन्न सुसंस्कृत एव सकल ऐश्वर्यों का छविधाम है। उपनिषदो की नवीन वैज्ञानिक अथवा दाशनिक व्याख्या तथा व्यावहारिक वेदान्तवाद का बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल म भारतीय विचारधारा पर प्रचुर प्रभाव पडा जिसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि साहित्य म भी सुनाई पडी। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के जिन तत्वो का छायावाद म समावेश हुआ वह इस प्रकार है

ब्रह्म या ईश्वर

विवेकानन्द का ब्रह्म उपनिषदो का ही ब्रह्म है अत वह अभय अव्यक्त अनिवचनीय अखण्ड और समस्त भूतो म अनुस्यूत है। इस ब्रह्म को छायावाद के कवियो प्रसाद पन्त निराला महादेवी आदि—ने बार बार स्मरण किया

---

१ विवेकानन्द मेरी समर-नीति पृ० ६१ ६२

है जिसकी चर्चा हम छायावाद-काव्य में उपनिषदों के प्रभाव के अन्तर्गत कर चुके हैं।

ईश्वर के सम्बन्ध में विवेकानन्द का मत यह है कि ईश्वर व्यष्टियों की समष्टि है और साथ ही एक व्यष्टि भी है समष्टि ही ईश्वर है और व्यष्टि ही जीव है।[१] 'विवेकानन्द' द्वारा वर्णित ईश्वर के उक्त स्वरूप के आधार पर ही निराला जी ने कहा है कि व्यष्टि और समष्टि में कुछ भी भेद नहीं है। वस्तुतः व्यष्टि और समष्टि में वही एक हरा चिद्घन आनन्द समाया हुआ है।[२] पन्त जी ने भी अपनी एक रचना व्यष्टि और विश्व में अपने ही भीतर ग्रह शशि दिनकर आदि को परिभ्रमित दिखा कर व्यष्टि और समष्टि में अभेद स्थापित किया है।[३] व्यष्टि और समष्टि की यह अभिन्नता पन्त और निराला का पलायनवादी संसार में जाने से रोकती तथा समाज-सेवा के लिए प्रेरित करती है, जो विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्तवाद का प्रमुख किंवा उदात्त स्वर है।

विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर शक्तिरूप है[४] ईश्वर ही समस्त सुखों का स्रोत है[५] ईश्वर से बढ़ कर हम अन्य किसी उच्च वस्तु का कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि ईश्वर ही पूर्णरूप है और वही मनुष्य का चरम लक्ष्य है।[६] ईश्वर की उक्त कल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने मातरूप में लोकप्रिय बताया था।[७] विवेकानन्द की ईश्वर रूप जगदम्बा से छायावाद के प्रमुख कवि पन्त और निराला विशेष रूप से प्रभावित हुए। निराला जी की 'दलित तुम्हें मैं क्या दूं'[८] 'एक बार बस और नाच तू श्यामा'[९] आदि रचनाओं में यह प्रभाव स्पष्ट है। ईश्वर को जगज्जननी मान कर निराला जी ने पंचवटी प्रसंग में कहा है

जगदम्बा के कटाक्ष से हो करोड़ों शिव विष्णु अज, कोटि कोटि सूर्य चन्द्र

१ विवेकानन्द विविध-प्रसंग पृ० ५९
२ परिमल पृ० २२२
३ स्वर्ण किरण पृ० ६६
४ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ० ४०
५ वही पृ० ४३
६ विवेकानन्द प्रेमयोग पृ० २१ २२
७ विवेकानन्द विविध प्रसंग, पृ० २९
८ निराला परिमल, अष्टमावृत्ति, पृ० ८४
९ वही, पृ० १०७

तारा-ग्रह आदि बनते और अन्त में नष्ट होते हैं। आदि शक्ति रूपिणी जगदम्बा ही सारे ब्रह्माण्ड के मूल म विराजती है। उन्ही के गुण गा कर नर भव सिन्धु पार करते है।[1] इसी प्रकार पन्त जी ने अपनी मातृ शक्ति शीर्षक कविता म 'मा की भक्ति शक्ति ज्ञान ग्रथित सदनुरक्ति तथा भय भजने जन रजने चिर पावन सृजन चरण आदि कह कर उससे भव जीवन को पूर्ण बनाने की आकाक्षा प्रकट की है और उस पर तन मन, जीवन उत्सर्ग करने का पावन प्रन लिया है।[2] पन्त जी की प्रारम्भिक कृति वीणा म आधी से अधिक रचनाए 'मा को निवेदित हैं। ये गहन अनुराग की रचनाए हैं। एक बालिका के हृदय म मा के प्रति जितना अनुराग हो सकता है इन कविताओ म पाया जाता है। विवेकानन्द की जग माता की भांति ही पत जी की मा विराट अनन्तरूप और अनन्त शक्तिरूपिणी हैं। अत हम कह सकते है कि पन्त और निराला दोनो का ध्यान विवेकानन्द की आदि शक्ति रूपिणी जगदम्बा की ओर विशेष रूप स गया है। इसी मा की सेवा[3] प्रेम[4] आराधना[5] तथा गुणगान[6] मे उनका

---

१ निराला परिमल पृ० २१५

२ स्वर्ण धूलि प्रथम संस्करण पृ० ८१

३ (क) जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा
है माता का आदेश यही,—निराला परिमल पृष्ठ २१४

(ख) माँ ! तेरे प्रिय पद पदमो म अर्पण जीवन को कर दू ।
पन्त—वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृष्ठ २

४ (क) माँ की प्रीति के लिए ही चुनता हू सुमन दल
इसके सिवा कुछ भी नही जानता।—निराला परिमल पृष्ठ २१४

(ख) तू कितनी प्यारी है मुझको जननि कौन जाने इसको।
पन्त—पल्लविनी पृष्ठ ५८

५ (क) माता की चरण रेणु भरी परम शक्ति है—
माता की तृप्ति मेरे लिए अष्ट सिद्धियाँ।
निराला—परिमल पृष्ठ २१४

(ख) मुग चरण म शीश नवाकर अवनत-वदना होने दो —
पन्त—वीणा-ग्रन्थि पृष्ठ ११

६ (क) निराला परिमल देखिए पचवटी प्रसग (२) पृ २१५ २१७

(ख) राम रोम के छिद्रों से माँ ! फूटे तेरा राग गहन !
पन्त—रश्मि बध, पृ० २५

कविहृदय मग्न है। इसी विराट मां के प्रति युगल कवियो ने बार बार आत्म समर्पण का भाव व्यक्त किया है। उपनिषदो की शिक्षा के अनुरूप उन्हे इस ईश्वररूपिणी मा के अतिरिक्त किसी और को जानने की आवश्यकता नहीं है। विवेकानन्द की इसी जगन्माता से प्रभावित होकर पन्त और निराला ने विशन्‍ ईशीत्व का पूजन किया है।[1]

पन्त और निराला ने जगदम्बा के गुणगान पर बल तो दिया है किन्तु उनके उपनिषद के ईश्वर का प्रतीक होने के कारण उनके गुण भी अनिर्वचनीय ही रहेंगे। इसी से पन्त जी कहते है कि मैं जीवन भर मां के पूरे गीत गाने म असमर्थ ही रहूँगा।[2] अत जहाँ वे मां से यह प्रार्थना करते हैं कि उनके रोम रोम के छिद्रो मे मां का गहन राग फूटे वहाँ वे यह भी कहते है कि मा का चरित्र न गा सकने पर भी उन्हे सुख का ही अनुभव होगा।[3]

ईश्वर अथवा ब्रह्मरूप होने से ही पन्त और निराला ने जगन्माता को द्वेष द्रोह मद अहकार आदि से रिक्त और अपार शक्ति एव सकल कामनाओ का पूर्ण कराने वाली बताया है।[4] इसी मां का साक्षात्कार करना युगल कवियो का अभीष्ट है। पन्त जी ने उसके दर्शन का भी वर्णन किया

१ विशन्‍ ईशीत्व का ही मैं मन म करता हू नित पूजन।
पन्त—ग्राम्या प ८१

२ जीवन भर भी माँ! मैं पूरे गा न सकूँगी तेरे गीत।
—वीणा ग्रथि प० ६१

३ गा न सकी यदि मैं इसको तो मुझको इसम भी है सुख।
पन्त—पल्लविनी पृ० ५८

४ (क) द्रोह मोह, छल, मदन मद सुख निज सगति म खोने दो
हाय पकड, यह विश्व महोदधि तरने दो माँ! तरने दो।
पन्त वीणा-ग्रथि, पृ० १२

(ख) माता के स्नेह शब्द मर सुख-साधन हैं।

* *

शक्ति स जिनकी शक्तिमानियां म सत्ता है,
माता हैं मेरी वे। —निराला, परिमल पृ० २१४ १५

५ (क) मा! वह दिन कब आवेगा जब मैं तेरी छवि देखूँगी।
पन्त वीणाग्रथि पृ० २०

(ख) निराला, परिमल देखिए पंचवटी प्रसग (२) पृ० २१४ १५

है ।[1] इस प्रकार की कविताओ की विशेषता यह है कि भावुकता के आँसुओं के बन्धन जीवन की दारुण व्यथा को गहरे रंगो में अंकित किया गया है और माता रूप म इष्टदेवी आनन्द स अधिक शक्ति की दवी हैं। वह कवि को पलायनवादी ससार म नही ले जाती न सुनहली किरणा स उसके ओस जसे आसू पोछ लती हैं। वह उस दुःख भार सहन करने के लिए प्रेरणा देती है और माता कहती हैं कि यह भार वहन करना ही उनकी श्रेष्ठ उपासना है।[2]

वीणा की रचनाओ म पन्त जी ने अपने उपास्य को माँ के अतिरिक्त प्रियतम रूप मे भी देखा है। इसी आधार पर विश्वम्भर मानव ने यह धारणा बनाई है कि अपने उपास्य के प्रति पन्त जी की भावना निर्दिष्ट नही है। उस अलौकिक सत्ता को उन्होने कहीं मा माना है और कहीं प्रियतम[3]। पुन उक्त अनिर्दिष्ट भावना का समर्थन करते हुए वे लिखते है एक मूल सत्ता के विविध नामरूपो से परिचित रहस्य ज्ञानियो को इसम कुछ भी आश्चर्य नही हो सकता। इसस पता चलता है कि पन्त ने रहस्यवाद को भावना के रूप म ही स्वीकार किया अनुभूति क रूप म नही।[4] किन्तु वस्तुत पन्त जी द्वारा मूल सत्ता के मा अथवा प्रियतम के रूप मे अपनाने का सम्बन्ध भावना और अनुभूति से उतना नही है जितना विवेकानन्द और रवीन्द्र के दर्शन और विचारधारा का प्रभाव। विवेकानन्द न ईश्वर को जगन्माता के रूप म और रवीन्द्र ने अपन उपास्य को प्रियतम के रूप म अपनाया था। उक्त दोनो व्यक्तियो स प्रभावित होने के कारण पन्त जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओ म अपन उपास्य को कही पर माँ और कही पर प्रियतम-रूप म स्मरण अथवा सम्बोधित किया है। वीणा पल्लव-कालीन रचनाओ पर विवेकानन्द और रवीन्द्र क प्रभाव को उन्होने उत्तरा की प्रस्तावना म स्वय स्वीकार किया है।[5]

---

१ क्षीण-क्षपाकर की छाया म नलिनी वन की करुण-पुकार
  माँ ! तब स न मुख दिखाई अपनी ज्योतित छटा अपार !
  वीणा-ग्रन्थि पृ० ५०

२ नया साहित्य निराला अक रामविलास शर्मा—सास्कृतिक जागरण और निराला पृ १३

३ 'सगम—फरवरी १९४९ पृ० १७

४ सगम—फरवरी १९४९ पृ० १७

५ वीणा-पल्लव—काल म मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है। —उत्तरा, प्रस्तावना पृ० १९

ईश्वर का मातृशक्ति के रूप म अपनाने के साथ विवेकानन्द ने यह भी कहा है कि मनुष्य के सिवाय दूसरा ईश्वर नहीं है।[1] अत विवेकानन्द स प्रभावित छायावाद की कविता म मानव ईश्वर का यथष्ट समावेश मिलता है।

मानव ईश्वर

विवेकानन्द के मत म ईश्वर सव यापी है। प्रत्यक प्राणी म वह अपने को व्यक्त करता है पर मनुष्य क लिए वह मनुष्य म ही दिखाई द सकता है और पहचाना जा सकता है।[2] उन्हान स्पष्ट शब्दो म कहा है कि ईश्वर की पूजा नहा हो सकती क्योकि ईश्वर तो सष्टि म सवत्र व्याप्त है। हम उसक मानव स्वरूप की ही उपासना कर सकते हैं।[3] अस्तु ईश्वर की मनुष्य के रूप म उपासना करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार विवेकानन्द क अनुसार ईश्वर सम्बन्धी हमारे समस्त विचार मानव रूप म ही केन्द्रीभूत हो सकते है।[4] विवेकानन्द के उक्त मानव ईश्वर स प्रभावित होकर छायावादी कवि ने मानव म ईश्वरत्व का आरोप किया और उस सूक्ष्म रूप म चित्रित किया।

विवेकानन्द के मानव ईश्वर का प्रचुर प्रभाव पन्त जी पर परिलक्षित होता है। पन्त जी ने बार बार यह आकांक्षा प्रकट की है कि मानव जीवन म पुन मानव ईश्वर अवतरित हो। इसी म उन्होने देवत्व को मानव का धाम माना है[5] और मानव के देवत्व स ही जन-समाज अथवा जन जीवन के निर्माण की कामना प्रकट की है।[6] पन्त जी ने इस देवत्व का आरोप महात्मा गाधी और श्री अरविन्द के व्यक्तित्व म किया है। अत जहाँ महात्मा गाधी के विषय म उन्हान कहा है कि—

---

1 व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ४७

2 प्रेमयोग तृतीय सस्करण श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर पृ० १०७

3 प्रेमयोग, पृ० ५०

4 प्रेमयोग, पृ० ५०

5 स्वर्ण किरण पृ० २२

6 स्वर्ण किरण पृ० १४०

7 मानव के देवत्व म प्रथित जन समाज जीवन हो निर्मित।

—स्वर्णकिरण पृ० ७२

जडवाद जर्जरित जग म तुम अवतरित हुए आत्मा महान,
यन्त्राभिभूत युग म करने मानव जीवन का परित्राण[1]

वहा श्री अरविन्द की भी अभ्यर्थना निम्न शब्दो म की है—

ज्योति श्री अरविन्द चेतना के दिव्योत्पन्न
पूर्ण सच्चिदानन्द रूप शोभित स्वर्गोज्ज्वल।

* *

मानव से ईश्वर ईश्वर स मानव बन कर
आये लौट धरा पर ले नव नवीन का वर।[2]

विवेकानन्द का वेदान्त यह शिक्षा देता है कि मनुष्य के सिवा दूसरा ईश्वर नही है। अत पन्त जी ने जीवन का अपरिमित ऐश्वर्य मानव ईश्वर को ही अर्पित किया है।[3] उनके निकट विवेकानन्द की भाँति ही मनुष्य म ईश्वर का दर्शन करना ईश्वर दर्शन का स्वाभाविक मार्ग है। इसी स उन्होने जीवन-सौन्दर्य म 'मानव ईश्वर' को ईश्वर के समकक्ष रख कर देखा है। यथा—

हे जीवन आराध्य हृदयवासी, हे मानव ईश्वर
मंगलमय तुम सव प्रथम अक्षर करुणा के सागर।

* *

तुमम केन्द्रित लोक योजना बने स्वर्ग सी पावन
मानव के घट वासी दो मानव को नव जीवन वर।[4]

विवेकानन्द के मत म प्रेम ही परमेश्वर है।[5] अत पन्त जी 'मानव ईश्वर' म प्रेम की प्रतिष्ठा को ही धरती का स्वर्ग मानते है—

मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव ईश्वर।
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर?[6]

---

१ पल्लविनी, पृ० २३३
२ स्वर्ण किरण, पृ० ९
३ जीवन का ऐश्वर्य अपरिमित मानव ईश्वर को ही अर्पित।
—स्वर्ण किरण, पृ० १३७
४ स्वर्ण किरण पृ १४५ ४६
५ प्रेमयोग पृ० २२१
६ युगवाणी पृ० २९

और प्रेम को ही मानव-आत्मा का खाद्य घोषित करते हैं।[1]

ईश्वर और प्रेम

स्वामी विवेकानन्द के मत में प्रेम ही परमेश्वर है अत: प्रेम और पवित्रता ही दुनिया के शासक हैं।[2] जिसे ईश्वर की चाह है उसी को प्रेम की प्राप्ति होगी। उसी के पास भगवान अपने आपको प्रकट करेंगे।[3] ईश्वर पर आस्था तथा उसके समागम अथवा साक्षात्कार की आकांक्षा रखने वाले छाया वादी कवियों पर विवेकानन्द के उक्त अध्यात्मवादी प्रेम का पर्याप्त प्रभाव पड़ा, जिसमें उन्होंने प्रेम की कामना को इतर भूमि पर भी रख कर परखा। विवेकानन्द की शिक्षा के अनुरूप ही जयशंकर प्रसाद ने प्रेम को जगत का धारक,[4] पवित्र पदार्थ तथा ईश्वर रूप में चित्रित किया है। निराला जी ने अपनी अद्वैतपरक प्रसिद्ध रचना 'तुम और मैं' में ईश्वर को प्रेम की संज्ञा दी है[6] और पंत जी ने प्रेम को स्वर्ग भव तत्त्व[7] तथा जग का इति अथ[8] आदि आध्यात्मिक मानों से समन्वित किया है। इसी प्रकार छायावाद युग के अनेक कवियों, जैसे रामनरेश त्रिपाठी ने किसी अनाम सत्ता की प्रेम कथा को ही इस भूतल पर चित्रित देखा[9] और रामकुमार वर्मा ने प्रेम की उंगली से ही उस अनादि चिर छवि को छूने का दावा किया है।[10]

---

१ मानव-आत्मा का खाद्य प्रेम—युगवाणी पृ० २६
२ प्रेमयोग पृ० ९९
३ प्रेमयोग, पृ० ३१
४ प्रेम-पथिक, तृतीय संस्करण, पृ० २३
५ प्रेम-पथिक, तृतीय संस्करण, पृ० २२
६ परिमल, अष्टमावृत्ति, पृ० ७६
७ भव तत्त्व प्रेम —ग्राम्या, पृ० ९६
८ अनिमा, प्रथम संस्करण सं० २०१२ पृ० ५४
९ सोच रहा था—भूतल पर यह
किसकी प्रेम-कथा है चित्रित ?
स्वप्न आठवाँ संस्करण सं० १९८५ पृ० २२।
१० मैंने आज प्रेम की उंगली से वह चिर छवि छू ली
—चित्ररेखा दूसरा गीत।

स्वामी विवेकानन्द का प्रेम संसारी अथवा वासनात्मक प्रेम न होकर आध्यात्मिक विकार रहित प्रेम है जिसके परम लक्षण के विषय में उन्होंने स्वयं कहा है

'वह (प्रेम) सौदा करना नहीं जानता। वह तो सदा देता ही है। प्रेम सदा देने वाला ही होता है लेने वाला कभी नहीं बनता। इस प्रकार जो प्रेम पूर्णतया निःस्वार्थ हो वही प्रेम प्रेम है और वही सचमुच ईश्वर का प्रेम है।'[1] अतः जब हम प्रसाद को यह कहते हुए पाते हैं कि—

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।
आँसू के कन कन से गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार
तू क्यों फिर उठता है पुकार?—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।[2]

तब यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि वे विवेकानन्द द्वारा प्रचारित निष्कलुष निःस्वार्थ निरामय ईश्वरीय प्रेम की ओर ही प्रवृत्त हैं।

स्वामी विवेकानन्द का यह प्रेम विश्व कल्याण अथवा लोकमंगल की भावना से सिक्त है। उनका यह कथन कि संसार की यह प्रेरक शक्ति प्रेम निर्लेप और सब वस्तुओं में प्रकाशमान है[3] विश्व प्रेम अथवा सार्वभौम प्रेम की ओर ही इंगित करता है। अतः छायावादी कवियों ने जहाँ प्रेमरूप ईश्वर को जगत में व्याप्त दिखाया है।[4] वहाँ उन्होंने विश्व प्रेम का रुचिकर राग भी अलापा है।[5] प्रसाद जी ने जहाँ संसार को प्रियतममय[6] घोषित किया है

---

१ विवेकानन्द प्रेमयोग पृ० २२

२ लहर, पृ० ३७

३ प्रेमयोग पृ० १२१

४ उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है—
प्रसाद प्रेम-पथिक पृ० ३०

५ विश्व प्रेम का रुचिकर राग पर-सेवा करने की आग,
इसको सन्ध्या की लाली सीमा! न मन्द पड जाने दे
द्वेष दाह का साध्य-जलद-सा इसको छटा बनाने दे।
पन्त वीणा ग्रंथि पृ० १५

६ प्रेम-पथिक, पृ० ४

जहाँ उन्होंने प्रकृति को विश्व प्रेम में मिला देने का आदेश भी कर दिया है यद्यपि उनके मत में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।[1] इस प्रकार उनके निकट विश्वरूप ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए विश्व प्रेम आवश्यक है। निराला जी ने भी कहा है कि मुनियों ने प्रेम के पिपासुओं को सेवाजन्य प्रेम का जो अत्यन्त पवित्र है इसलिए उपदेश दिया कि सेवा से चित्त की शुद्धि हो जाती है और शुद्ध चित्तासन में ही पवित्र ईश्वर प्रेम के अंकुर उगते हैं।[2] इस प्रकार उनके मत में भी सर्वस्व त्याग[3] का पाठ पढ़ाने वाला सेवाजन्य प्रेम ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र साधन है। इस आध्यात्मिक प्रेम की शिक्षा उन्हें रामकृष्ण मिशन से प्राप्त हुई थी जिसका स्वरूप निर्धारण उन्होंने निम्न शब्दों में किया है—

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।
प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट
जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोयोग
तृण सम बह जाते हैं।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला जी ने भी विवेकानन्द की भाँति ही आध्यात्मिक प्रेम के लिए सर्वस्व त्याग पर बल दिया है और दिव्य देहधारियों को ही उसका अधिकारी बताया है।[5]

पन्त जी ने भी विश्व को प्रेममय[6] घोषित करते हुए उसमें प्रेममय

---

१ प्रकृति मिला दो विश्वप्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।
प्रेम पथिक पृ० ३०

२ परिमल पृ० २२५

३ परिमल पञ्चवटी प्रसंग पृ० २१०

४ परिमल, पृ० २१०

५ याद कर प्रेम-वाडवाग्नि की प्रचंड ज्वाला
दिव्य देहधारी ही कूदते हैं इसमें प्रिय,
पाते हैं प्रेमामृत
पीकर अमर होते हैं।—परिमल पृ० २१७

६ अनिल सा लोक लोक में,
हृदय में और लोक में
कहाँ रहा है प्रेम ? साँस सा सबके उर में ! पल्लविनी, पृ० १५१

ईश्वर की व्याप्ति का निर्देश किया है।[1] अतः उस मिश्र मूर्ति ईश्वर के साक्षात्कार के हेतु उन्होंने भी प्रेम पथ का अनुसरण करने का आदेश किया है। विवेकानन्द के मत में ईश्वर मुक्ति स्वरूप है[3] अतः पंत जी ने प्रेम को मुक्ति और सृजन के रूप में भी अपनाया है।[4]

विवेकानन्द ने आध्यात्मिक प्रेम की चर्चा करते हुए कहा है कि मानव प्रेम में स्त्री पुरुष का प्रेम ही उच्चतम अत्यन्त व्यक्त परम प्रबल और परम आकर्षक होता है इसी कारण उसी भाषा का व्यवहार उच्चतम भक्ति के वर्णन में किया जाता है। इस मानव प्रेम का उन्माद सन्त महात्माओं के ईश्वर प्रेम के उन्माद की अत्यन्त क्षीण प्रतिध्वनि है। ईश्वर के सच्चे प्रेमी भक्त ईश्वरीय प्रेम में रंग कर उन्मत्त होना चाहते हैं। प्रत्येक धर्म के साधु महात्माओं ने जो प्रेम मदिरा अपने हृदय का रक्त डालकर तैयार की है—जो प्रेम मदिरा प्रेम के लिए प्रेम करने वाले समस्त निष्काम ईश्वर प्रेमी भक्तों की आशाओं का आधार या आश्रय स्थान है—उसी प्रेम मदिरा का प्याला ये प्रेमी भक्त पीना चाहते हैं। प्रेम का पुरस्कार प्रेम ही है और यह कैसा उत्तम पुरस्कार है। यही एक वस्तु है जो समग्र दुःखों को दूर करती है इसी प्याले को पीने से इस संसार रूपी व्याधि का नाश हो जाता है, मनुष्य ईश्वरोन्मत्त बन जाता है और मैं मनुष्य हूँ यह भी भूल जाता है।[5] विवेकानन्द द्वारा वर्णित प्रेम का उक्त आध्यात्मिक स्वरूप प्रसाद जी के 'प्रेम पथिक' का आदर्श प्रतीत होता है। सन्त महात्माओं के ईश्वर प्रेम के उन्माद की प्रतिध्वनि प्रेमपथिक और उसकी प्रिया चमेली के आदर्श प्रेम में पूर्णतः सुनाई पड़ती है। कायिक अथवा कामद सौन्दर्य पर टिका हुआ उनका प्रेम चलते चलते निष्काम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और वे ईश्वरीय प्रेम में रंगकर उन्मत्त हो उठते हैं।

विवेकानन्द के मत में जब मनुष्य त्याग की अवस्था में आरूढ़ हो जाता है तब वह नैतिक संघर्ष की समस्त वस्तुओं से परे चला जाता है और

---

१ प्रिय ही प्रिय र व्याप्त अहर्निशि भीतर बाहर।
स्वर्णधूलि पृ ८०
२ देखिये पंत वीणा ग्रंथि गीत संख्या ४३ पृ० ३८
३ विविध प्रसंग पृ० ९७
४ प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सृजन—। स्वर्णधूलि पृ० १४४
५ प्रेमयोग पृ १२४–१२५

समस्त भूतो म एक ही सत्ता का प्रकाश देखता है।[1] इस भाव की अनुभूति त्यागमूर्ति प्र म पथिक को हुई है। इसी म उसने कहा है कि प्र मरूप ईश्वर हो, मन नयनो क्या जग भर म व्याप्त है।[2]

प्र म के सिद्धान्त पक्ष म विवकानन्द का कथन है कि जो प्रेम पूणतया नि स्वाथ हो वही प्रेम प्रेम है और वही सचमुच ईश्वर का प्रेम है। (किन्तु) उस प्र म को प्राप्त करना बडी कठिन बात है।[3] प्र म के इस उदात्त सिद्धान्त अथवा स्वगिक पक्ष का भी प्रेम पथिक म स्पष्टतया चित्रित किया गया है।[4] यह आध्यात्मिक प्र म कठिन इसलिए है कि इसका सिद्धान्त अपना सभी अस्तित्व मिटा देना है।[5]

विवकानन्द ने एक स्थल पर कहा है कि वह ईश्वर ही एकमात्र प्रेमी है। उसके प्र म म कभी कोई विकार नही होता और उसका प्र म हम सदा अपने म लीन करने को प्रस्तुत रहता है। उसके प्रम म कभी कोई अन्तर नहा पडता और वह सदा हम अपनाने को तयार रहता है।[6] ऐसे ही शाश्वत निमल प्र म की शिक्षा मोहमुक्त प्रेम पथिक अपना प्रयसी चमेली को देता हुआ पाया जाता है—

> सुनो चमेली ! भूनो बीती बातो को मन स धोकर
> स्वच्छ बनो, आन्तरिक स्वग म रमण करो होकर निष्काम
> स्निग्ध शान्त गम्भीर, महा सौन्दय सुधासागर के कण
> य सब बिखरे हैं जग म—विश्वात्मा ही सुन्दरतम ह !
> न्योछावर कर दो उस पर तन मन जीवन सवस्व नहा—
> एक कामना रहे हृदय म सब उत्सग करो उस पर।

---

१ विविध प्रसग पृ ९१
२ प्रम पथिक पृ० २३
३ प्रमयोग पृ० २२
४ पथिक ! प्रेम की राह अनोखी भूल भूलकर चलना है
घनी छाँह है जो ऊपर तो नीचे काँटे बिछे हुए
प्रेमयज्ञ म स्वाथ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वग विहारी होने का फल पाओगे
—प्रेम पथिक पृ० २२
५ प्र म-पथिक पृ० २३
६ प्र मयोग पृ० २३

एक सिंधु में मिल कर अक्षय सम्मेलन होगा सुन्दर
फिर न बिछुड़ने का भय तुमको मुझको होगा कहीं कभी ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के आदर्शवादी कवियों ने विवेकानन्द के आध्यात्मिक त्यागमय प्रेम को भावमयी अभिव्यक्ति देने का बड़ा ही श्लाघ्य प्रयास किया है।

ईश्वर और दुख

एक संन्यासी तथा अद्वैतवादी होने के नाते विवेकानन्द ने सुख और दुख को भी *आध्यात्मिक स्तर पर अपनाया है।* एतदर्थ उन्होंने कहा है जीवन और मृत्यु में सुख और दुख में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है। दुखी ही ईश्वर ईश्वर का रूप है। जो गरीबों निर्बलों और पीड़ितों में शिव को देखता है वही वास्तव में शिव का उपासक है।[4] विवेकानन्द के दुख विषयक इस आध्यात्मिक स्वरूप का निराला और पन्त पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है। पन्त जी ने दुख को आध्यात्मिक स्तर पर अपनाते हुए उसमें ईश्वर दर्शन का उपक्रम भी किया है—

इस भीषण घन में सुन्दर छिपा हुआ है मुक्तावर
इसी अश्रु-जल में वह मुख अवलोको मन ! अवलोको ![5]

और अपनी प्रार्थनापरक रचनाओं में दीन दलितों के कष्ट निवारण का यत्न भी किया है।[6] अपनी छाया शीर्षक कविता में उन्होंने पर पीड़ा से पीड़ित होने की तीव्र आकांक्षा भी प्रकट की है।[7] इसी प्रकार उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में जगन्माता से जग का अपार ताप हरने के हेतु बारम्बार प्रार्थना की है।[8]

---

१ प्रेम-पथिक पृ० ३० ३२
२ शक्तिदायी विचार पृ ३५
३ प्रेमयोग पृ० १३
४ शक्तिदायी विचार पृ० १०
५ वीणा-ग्रन्थि ज्योत्स्नावृत्ति पृ० ४०
६ वीणा-ग्रन्थि गीत संख्या १४ पृ० ११
७ पर पीड़ा से पीड़ित होना मुझे सिखा दो कर मद हीन।
पल्लविनी पृ० २५
८ पल्लव पृ ६९

किन्तु छायावादी कवियो म स्वामी विवेकानन्द के सन्यासी जीवन तथा व्यावहारिक वेदान्त का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी पर ही देखने को मिलता है। निराला जी ने विवेकानन्द की इस शिक्षा को कि दुखियो के दुख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़ो[1] अपने जीवन म पूर्णत चरितार्थ किया। और विवेकानन्द की भाति ही उन्होने गरीबो अज्ञानियो और दुखियो की सेवा को अपने जीवन का ध्येय अथवा आदर्श बनाया। यही कारण है कि दीन दुखियो की हीनावस्था को देख कर उनके हृदय म करुणा अथवा वेदना का अपार सागर उमड आया—

मैंने 'मैं'-शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पडी हृदय म मेरे
झट उमड वेदना आई,
उसके निकट गया मै धाय
लगाया उसे गले से हाय।[2]

धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध म अपने विचार प्रकट करते हुए विवेकानन्द ने कहा कि मैं उस धर्म और ईश्वर म विश्वास नही करता जो विधवाओ के आँसू पोछने या अनाथो को रोटी देने म असमर्थ है।[3] विधवाओ और अनाथो के प्रति विवेकानन्द का यही उद्गार निराला जी की परिमल की प्रसिद्ध कविताओ विधवा और भिक्षुक का प्रेरणा स्रोत प्रतीत होता है। विवेकानन्द की भाँति ही विधवाओ के कष्टो के प्रति ईश्वर के उपेक्षाभाव से क्षुब्ध होकर निराला जी ईश्वर से कई उलाहना भरे प्रश्न पूछ बैठे है—

यह दु ख वह जिसका नही कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोछे किसी के अश्रुजल
या किया करते रहे सबको विकल ?[4]

इसी प्रकार अनाथो की रोटी की समस्या को उन्होने अपनी भिक्षुक नामक कविता म साकार रूप दे दिया है। उसमे दोनो भाग्यविधाता (जगाय

1 शक्तिदायी विचार पृ० २१
2 परिमल पृ० १०९
3 शक्तिदायी विचार पृ० २८
4 परिमल पृ० १११

स ईश्वर) की अनाथा को रोटी दन की असमर्थता पर कटु व्यग्य भी किया गया है–

भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता स क्या पाते–
घूट आसुओ के पीकर रह जाते ।[1]

निराला जी की यह सहानुभूति अथवा करुणा प्राणिजगत तक ही सीमित नही है । एक अद्वतवादी होने के कारण वह जड पदार्थ म भी चेतन प्राणी के स दु ख सख का अनुभव करते है । अत स्वार्थान्ध मानी द्वारा प्रफुल्ल पुष्प के जीवन को नष्ट होते देख वह व्यथा विह्वल होकर वन्य ही क्षोभपूर्ण आक्रोश प्रकट करते है–

स्वाथ का मारा यहा भटकता–
फूटी कौडी पर विनोदमय जीवन सदा पटकता–
तोड लिया नचकाई ज्याही डाली
पत्थर से भी कठिन कलेज का है
चला गया जो वह हत्यारा माली ।

इसी प्रकार दलित कुसम क प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार स क्षुब्ध हाकर वह कहते है–

किन्तु देखकर तुम्हें जरा से बजर
फेंक दिया पृथ्वी पर तमको
रक्खे हुए हृदय म अपने उस निदय न पत्थर ।[3]

परिमल की वन नामक कविता की प्रतीक व्यजना भी दलितो के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है । वन को आकाश देखत और अत्याचार सहत हुए न जाने कितने दिन मास बीत चुके है–

ताक रहे आकाश
बीत गए कितने दिन—कितने मास !
पड हुए सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियो के पद प्रहार

१ परिमल पृ० ११८
२ वही पृ० ११२
३ वही पृ १३३

वन्दन म पद म कोमलता नात
किन्तु हाय व तुम्ह नीच ही है कह जाते ।[1]

वन्दन म, पद म कोमलता नात' स स्पष्ट है कि निराला जी ने दु ख का पयवसान सामाजिक विद्रोह म न कर आध्यात्मिक उल्लास कोमलता अथवा सहनशीलता म ही लिया है। इसी स क्षण रज होत हुए भी विरज की कामना म हर प्रकार का अत्याचार सहन करता ह–

तुम्ह नहीं अभिमान
छूट कहा न प्रिय का ध्यान
इसमे सदा मौन रहत हो
क्या दा विरज के लिए ही इतना सहते हो ।[2]

छायावाद का कविता म दु ख क इसा आध्यात्मिक पक्ष का अपनान के कारण दु ख की प्रतिक्रिया पर आधारित भौतिकवादी दशन के सामाजिक विद्रोह अथवा क्रान्ति की भावना का प्राय अभाव सा है। रहस्यवादिता के आग्रह स छायावाद का कवि दु ख का प्रभु की करुणा अथवा उसके मिलन के लिए प्रमुख प्रसाधन के रूप म अपनाता हुआ पाया जाता है।[3] किन्तु दु ख के प्रति छायावादी कवि का यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन म कायरता, भीरुता अथवा पराजय की भावना का प्रश्रय नहीं दता। उसका यह दु ख विवेकानन्द क दु ख का भाति ही आत्म शक्ति का प्ररक है। विवेकानन्द की शिक्षा है कि यदि तुम दुखी हो तो सुखी बनन का प्रयत्न करो। अपने दु खो पर विजय प्राप्त करो। दुबलो को ईश्वर की प्राप्ति नहा होती अत दुबल कदापि न बनो। तुम्हार अन्दर असीम शक्ति है तुम्ह शक्तिशाली बनना चाहिए। शक्तिशाली हुए बिना तुम ईश्वर का कभ प्राप्त कर सकोग। तुम शुद्ध स्वरूप हो उठो जाग्रत हो जाओ ह महान यह नींद तुम्ह शोभा नहीं देती। तुम अपन को दुबल और दु खी समझत हो ह सवशक्तिमान उठो

१ परिमल पृ० १४६
२ वही,
३ भर दत हो
बार-बार प्रिय करुणा की किरणो स
क्षुब्ध हृदय का पुलकित कर दत हो। परिमल पृ० १०३
४ प्रमयोग पृ० १५

जाग्रत होओ अपना स्वरूप प्रकाशित करो।[1] तुम अनन्त स्वरूप हो। तुम्हारे स्वरूप की तुलना में देश काल कुछ भी नहीं है। तुम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो तुम सर्वशक्तिमान हो। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के इसी पक्ष को निराला जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता जागो फिर एक बार में बड़ी ही ओजपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त कर अपने देशवासियों को हीनता का भाव त्याग कर जाग्रत हो जाने के लिए ललकारा है—

पशु नहीं वीर तुम
समर-शूर क्रूर नहीं
काल चक्र में हो दबे
आज तुम राजकुँवर !—समर-सरताज !
पर क्या है
सब माया है—माया है
मुक्त हो सदा ही तुम

*   *

तुम हो महान तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता कामपरता
ब्रह्म हो तुम
पद रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार—
जागो फिर एक बार ।[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में निराला जी ने देश को निद्रा से जगाने के प्रसंग में माया और मुक्ति को भी स्मरण किया है जो विवेकानन्द के ब्रह्म माया विषयक विचारों से सम्बद्ध है।

---

१ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ३१–३२
२ वही पृ० १६
३ परिमल पृ १७७

जगत्

स्वामी विवेकानन्द संन्यासी थे अतः उनके जगत विषयक विचार शंकराचार्य की ही परम्परा में आते हैं। शंकराचार्य की तरह विवेकानन्द ने भी संसार को मिथ्या और ब्रह्म को एकमात्र सत्य माना है।[1] विवेकानन्द के अनुसार जगत की समस्त विभिन्नता नाम और रूप से सृष्ट हुई है पर जब हम चाहते हैं कि इस विभिन्नता को पकड़ें अलग कर तब यह कहीं दिखाई नहीं देती। यही प्रपंच या विकार माया है जिसका अस्तित्व निर्विकार (ब्रह्म) पर निर्भर रहता है और जिसकी ब्रह्म से पृथक कोई सत्ता नहीं है।[2] इस प्रकार विवेकानन्द के मत में अध्यात्म और अधिभूत जगत एक ही है उसी का नाम ब्रह्म है, और जो अलग अलग जान पड़ता है वह भ्रम है। यही माया अविद्या अथवा अज्ञान है।[3] अतः उन्होंने कहा है कि जगत एक है यही अनेक वत प्रतीत होता है।[4] दूसरे शब्दों में अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं की समष्टि ही का नाम विश्व है। जिसे हम व्यष्टि कहते हैं वह समष्टि ही की अभिव्यक्ति मात्र है।[5] निराला जी ने नीचे की पंक्तियों में विवेकानन्द के इसी जगत विषयक दृष्टिकोण को अपनाया है—

> व्यष्टि औ समष्टि में नहीं है भेद
> भेद उपजाता भ्रम—
> माया जिसे कहते हैं।[6]

माया अथवा अज्ञान के कारण ही यह जगत नाना नाम रूपों में व्यक्त हो रहा है इस तथ्य के आधारभूत निराला जी ने संसार को मायावत मैं का परिवार (अनेकत्व) बताकर उसे नश्वर तथा दुर्गम अज्ञान राज्य भी कहा है—

> नश्वर संसार
> सृष्टि पालन प्रलय भूमि—

---

१ यह संसार बिलकुल मिथ्या है (प्रेमयोग पृ० ३२) एक मात्र ईश्वर ही सत्य है (भक्तिमयी विचार, पृ० ४०)
२ विविध प्रसंग, पृ० ६५–६६
३ प्राच्य और पाश्चात्य, पृ० ८६
४ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० २०
५ विविध प्रसंग पृ० ३४
६ परिमल, पृ० २२२

दुगम अनात राज्य—
मायावत मैं का परिवार[1]—

पन्त जी ने भी ससार को ब्रह्म की माया अथवा कौतुक के रूप म देखा है—

सजनि ! यह कौतुक है या रास ?
× × ×
ब्रह्म माया का था ससार।

इसी प्रकार महादेवी वर्मा न भी ससार को कौतक अथवा विस्मय[3] के रूप म देखा है और उस माया का देश[4] कहा है। माया के कारण ही मनुष्य ईश्वर को भूलकर इस विषमय ससार को सजीवन मान बठता है—

रचाता मायावी ससार
लुभा जाता स्वप्नो का हास
मानत विष को सजीवन
मुग्ध मेरे भ्रान्त जीवन ![5]

इस सम्बन्ध म यह ध्यान रखना चाहिए कि विवेकानन्द और शकरा चाय के समान ही कबीर आदि सन्त कवियो ने भी ससार को माया नश्वर अस्थिर आदि कहा है जिनका छायावादी कवियो पर पयाप्त प्रभाव पडा है। अत उनकी ससार को मायावत मानने की भावना पर किसी एक ही व्यक्ति सम्प्रदाय अथवा मत का प्रभाव नही माना जा सकता विशेषकर उस दशा म जबकि शकराचाय विवेकानन्द तथा सतो के मायावाद म तात्विक दृष्टि से कोई भेद नही है। वास्तव म छायावाद का मायावाद शकराचाय विवेकानन्द तथा सन्तो के मायावाद की क्षीण प्रतिध्वनि ही है। इसी स उसम सवत्र जगत को नश्वर अथवा मिथ्या रूप म नही देखा गया है। छायावाद का कवि वष्णव वदान्तवाद (विशिष्टाद्वत द्वताद्वत आदि) तथा शवाद्वयवाद से भी प्रभावित है जिनके अनुसार जगत सत्य है माया मिथ्या अथवा स्वप्न नही है। अत

१ परिमल पृ० २८२
२ पल्लव पृ० ७६
३ आधुनिक कवि पृ २८
४ वही पृ० १८
५ वही पृ० १७

वह जगत का सत्यरूप भी चित्रित करता है। इस प्रकार छायावाद में हम दर्शन शास्त्र में उपलब्ध माया के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इसका विवेचन हमने अद्वैतवाद के भिन्न भिन्न रूपों के साथ अलग अलग कर लिया है।

जिस प्रकार शंकराचार्य ने माया से निवृत्त होने के लिए ज्ञान को आवश्यक माना है, उसी प्रकार विवेकानन्द ने भी माया की उत्पत्ति अज्ञान से बतला कर उससे मुक्त होने के लिए ज्ञान-योग का मार्ग दिखाया है।[1]

अज्ञान अविद्या अथवा माया ही मनुष्य को संसार में भटकाती रहती है—माया ही समस्त सांसारिक तृष्णाओं का मूल है। ज्ञान होते ही माया तथा तज्जनित तृष्णा का अन्त हो जाता है। माया और ज्ञान की इन दोनों स्थितियों का वर्णन निराला जी की निम्न पंक्तियों में मिलता है—

बार-बार छाया में धोखा खाया

जागी तब न प्यास की और न माया।[3]

ज्ञान-दशा में नानात्व का उपशम हो जाता है और जीव को सत्य ज्ञान-अनन्त' ब्रह्म की उपलब्धि हो जाती है। जीव की इसी स्थिति का वर्णन निराला जी ने इन शब्दों में किया है—

वहाँ कहाँ कोई अपना सब
सत्य-नीलिमा में लयमान
केवल मैं, केवल मैं, केवल
मैं, केवल, मैं केवल ज्ञान।[3]

निराला जी की उक्त कथन विवेकानन्द के इस मत से कि सान्त मैं केवल भ्रम मात्र है अत्यथा मात्र है। उसी अनन्त के ऊपर मानो एक आवरण पड़ा हुआ है और उसका कुछ अंश इस मैं रूप में प्रकाशित हो रहा है किन्तु

१ परमात्मा ही मुक्ति है (विविध प्रसंग पृ० ९६)। प्रत्येक नर-नारी वही प्रत्यक्ष जीवन्त आनन्दमय एकमात्र ईश्वर है (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० ५६)। इस ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान द्वारा होती है (विविध प्रसंग १०८)।

२ परिमल, पृ० ७९

३ वही, पृ० ८१

वास्तव म वह उसी अनन्त का अश है। यथाथ म असीम कभी समीप नही होता—ससीम केवल बात की बात है[1] के कितना समीप है।

विवेकानन्द ने पारमार्थिक दृष्टि से जगत को माया अथवा उसके नानात्व को मिथ्या कहा है किन्तु वे उसे बिलकुल निष्प्रयोजन नहीं मानत क्योकि उनके मत म यह सृष्टि भी एक मूर्ति ही है जिसमे और जिसके द्वारा हम जिसकी वह मूर्ति है और उससे परे है उसको ग्रहण करने का प्रयत्न कर रहे हैं।[2] इस प्रकार विवेकानन्द के समीप 'इस ससार और मनुष्य देह का भी मूल्य है परन्तु वह मूल्य गौण है। ससार और मनुष्य देह साध्य (ईश्वर) की प्राप्ति के साधन मात्र हैं। ससार और इन्द्रियो के द्वारा ही मनुष्य को धीरे धीरे ईश्वर तक पहुचना है।[3] किन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्य ससार को साध्य और ईश्वर को साधन सामग्री मान बैठता है।[4] मनुष्य के इसी भ्रम को पन्त जी ने मगमरीचिका तथा इसके कारण मायाकृत ससार को मरु कहा है और विवेकानन्द के समान ही मनुष्य-जीवन के साध्य ईश्वर की प्राप्ति के लिए गौणरूप से ससार के महत्व को स्वीकार किया है—

> उस छवि के मजुल उपवन को
> इस मरु से पथ जाता है
> पर मरीचिका म मोहित हो
> मग मग म दुख पाता है।[5]

ससार को मगमरीचिका अथवा माया मानने के कारण विवेकानन्द ने ससार को त्यागने का भी आदेश दिया है। उनका कहना है कि वेदान्त म हमारे इस वतमान मायामय जीवन का—इस मिथ्या जीवन का—परित्याग करने के लिए कहा गया है और ऐसा होने पर ही उसके पीछे जो सत्य जीवन सदा वतमान है प्रकाशित होगा।[6] इसी के आधारभूत उन्होने बताया है कि हम लोगो को यह विशेष रूप से जानना आवश्यक है कि वेदान्त का उद्देश्य इन सब वस्तुओ म भगवान का दशन करना है उनका जो रूप आपातत

१ व्यावहारिक जीवन म वेदान्त पृ २३–२४
२ प्रेमयोग पृ १०२
३ वही पृ० ३२–३३
४ वही पृ० ३३
५ वीणा ग्रन्थि पृ ३५
६ व्यावहारिक जीवन म वेदान्त पृ •

प्रतीत होता है वह न देख कर उनको उनके प्रकृति स्वरूप में जानता है।[1] जो व्यक्ति प्रत्येक वस्तु में उसी सत्य को देखता है, वही संसार में रहने योग्य है वही यह कह सकता है कि मैं इस जीवन का उपभोग कर रहा हूँ मैं इस जीवन में सुखी हूँ।[2] स्वामी विवेकानन्द के जीवन और जगत सम्बंधी इन विचारों तथा उपदेशों का छायावादी कवियों की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप उसने जगत की सुन्दर असुन्दर सभी वस्तुओं में ईश्वर दर्शन का प्रयास किया। विवेकानन्द के इसी प्रभाव के कारण छायावाद की बाह्य सौन्दर्य पर टिकी हुई दृष्टि अनासक्त भाव में अन्तर्मुखी हो गई है। अतः छायावाद का कवि कुकुरमुत्ता जैसी हेय वस्तु में भी ब्रह्म की खोज करता है और उसे ब्रह्मवत अथवा अयमस्मि सत्व के रूप में चित्रित करता है।

मुक्ति

स्वामी विवेकानन्द के मत में प्रत्येक (आत्मा) ही वही पूर्ण ब्रह्मतत्व है।[3] अतः मनुष्य तो मुक्त ही है किन्तु उसे इस सत्य को जानना पड़ता। वह प्रति क्षण इसे भूल जाता है। जाने या बिना जाने अपने इस मुक्त स्वरूप का पहचान लेना—यही प्रत्येक मानव का सम्पूर्ण जीवन है। ज्ञानी और अज्ञानी बिना जाने अणु से लेकर नक्षत्र तक—सभी मुक्त होने का ही प्रयत्न करते हैं।[4] इस प्रकार उनके अनुसार मुक्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य ध्येय है।[5] और इस मुक्ति का अर्थ है बाह्य एवं अन्त प्रकृति दोनों का नियमन कर अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को अभिव्यक्त करना।[6]

विवेकानन्द के वेदान्त में 'इस ब्रह्म-तत्व की अनुभूति का एक मार्ग योग है।'[7] जिसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है—

"ब्रह्म और उसकी प्राप्ति के साधना इन दोनों को मिला कर योग कहा जाता है। योग शब्द संस्कृत के युज धातु से व्युत्पन्न हुआ है जिससे कि अंग्रेजी शब्द 'योक' (Yoke) जिसका अर्थ है जोड़ना जो कि हमारा प्राप्त

1 व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ३४
2 वही पृ० ४५, ४४
3 ४ ५ विविध प्रसंग पृ० ६० ९७ ९७
६ मतिदायी विचार, पृ० ३१
७ विविध प्रसंग, पृ० ८५ ८६

स्वरूप है। इस प्रकार के योग अथवा मिलन के साधन कई है पर उनम मुख्य हैं कमयोग भक्तियोग राजयाग और ज्ञानयोग।[1]

याग क इन भिन्न प्रकारा की परिभाषा इस प्रकार की है—

१ कमयोग—इसके अनुसार मनुष्य कम और कत्तव्य के द्वारा अपन ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।

२ भक्तियोग—इसके अनुसार अपन ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति सगुण ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रम द्वारा होती है।

३ राज-योग—इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति मन सयम के द्वारा करता है।

४ ज्ञान-योग—इसके अनुसार अपन ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा होती है।

ये सब एक ही केन्द्र—भगवान की आर ले जाने वाले विभिन्न माग हैं।[2] अत विवेकानन्द का आदेश है कि कम भक्ति याग या ज्ञान के द्वारा इनम स किसी एक के द्वारा या एक स अधिक के द्वारा, या सबके सम्मिलन के द्वारा मुक्त हो जाओ। यही धम का सवस्व है। मत मतान्तर विधि या अनुष्ठान ग्र थ मन्दिर य सब गौण हैं।[3]

विवेकानन्द के इसी योग का समथन निराला जी ने पचवटी प्रसग मे राम के मुख स कराया है—

आती जिज्ञासा जिनास के मस्तिष्क म जब
भ्रम स बच भागने की इच्छा तब होती है—

जागता है जीव तब
योग सीखता है वह योगियो के साथ रह
स्थल से वह सूक्ष्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता [4]

कर्म भक्ति याग ज्ञान म से किसी एक को अपना कर मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकता है अत सामान्य दृष्टि से वे एक ही हैं विवेकानन्द क इस मत की स्थापना निराला जी न पचवटी प्रसग म ही इस प्रकार की है—

---

१ विविध प्रसग पृ० १०३
२ वही
३ शक्तिदायी विचार ३१
४ परिमल पृ० २२२ २३

भक्ति-योग कर्म ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ[१]—

किन्तु 'योग' के इन विभिन्न रूपों में निराला जी ने 'ज्ञानयोग' को अत्यन्त जटिल[२] तथा भक्तियोग को सब सुलभ बनाया है क्योंकि यह सामान्य मनुष्य के मन की गति के अनुकूल है। इस प्रसंग में उन्होंने प्रकारान्तर से मुनियों की व्यावहारिक दृष्टि से प्रशंसा भी की है—

मुनियों ने मनुष्यों की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसलिए द्वैतभाव भावुकों में
भक्ति की भावना भरी[३]—

इससे स्पष्ट है कि निराला जी मुक्ति की उस अवस्था को नहीं चाहते जिसमें जीव अव्यक्त ब्रह्म से एकाकार होकर अपनी सत्ता खो देता है। अतः उन्होंने स्पष्ट कहा है—

मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रह काफी है।[४]

इस प्रकार निराला जी के लिए भक्ति अथवा उपासक उपास्य की आनन्दानुभूति ही काम्य है। अतः वे मुक्ति की उस दशा की जिसमें जीव अपना अस्तित्व खोकर आनन्दमय ब्रह्म रूप हो जाता है घोर निन्दा भी करते हैं—

आनन्द बन जाना हेय है
श्रेयस्कर आनन्द पाना है[५]

निराला जी को भक्ति ही काम्य है अतएव वे सदा ही ईश्वर से मनाते हैं—

परमात्मन् लोग तुम्हें मनस्काम कल्पतरु कहते हैं, तुम सबके मनो-भिलाष पूरे करते हो यदि प्रभो, मुझ पर सन्तुष्ट हो तो मैं यही वर माँगता हूँ—

---

१ परिमल पृ० २२५
२ यह है बड़ा जटिल भाव भक्ति-कथा कहा नाथ !
　　　　परिमल पंचवटी प्रसंग, पृ० २२२ ॥
३ वही, पृ० २२५
४ वही पृ० २१८
५ वही, पृ० २१६

तुच्छ वासनाओं का
विसर्जन मैं कर सकूँ
कामना रह ता एक
भक्ति की बनी रहे।[१]

परिमल की जागरण—शीर्षक कविता में निराला जी ने हमें यह भी बतलाया है कि मैं संसार के मायामोह से मुक्त होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त अर्थात जीवन्मुक्ति का भी अनुभव कर चुका हूँ—

प्रतिपद पराजित भी अप्रतिहत बढ़ता रहा
पहुँचा मैं लक्ष्य पर।
अविचल निज शान्ति में
क्लान्ति सब खो गई—

टूट गये सीमा बन्ध—
छूट गया जड़ पिण्ड—
ग्रहण देश-काल का
निर्बीज हुआ भ्रम—
पाया स्वरूप निज
मुक्ति रूप से हुई[२]—

उपयुक्त पंक्तियों में विवेकानन्द के इस मत का कि योग अपने आन्तरिक मुक्त स्वभाव की अनुभूति से होता है और इस अनुभूति के सामने सभी वस्तुएं पराभूत हो जाती हैं[३] का ही सम्यक निरूपण हुआ है।

जीवन्मुक्ति के सम्बन्ध में विवेकानन्द ने कहा है कि यह बात नहीं है कि मुक्त होने पर मनुष्य कर्म करना छोड़ दे और निर्जीव मिट्टी का ढेर बन जाय प्रत्युत वह अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कर्मशील होता है क्योंकि अन्य लोग तो केवल बाध्य होकर कर्म करते हैं पर वह स्वतंत्र होकर।[४] दूसरे

१ परिमल पृ० २१७
२ वही पृ० २३३
३ विविध प्रसंग पृ० ८६
४ वही पृ० ९१

शब्दों में जीवन्मुक्त का कर्म निष्काम कर्म होता है। निरालाजी का कवि इसी निष्काम कर्म में प्रवृत्त है—

कवि तुम एक तुम्हीं
बार-बार झेलते सहस्रों वार
निर्मम संसार के
दूसरों के अर्थ ही लेते दान

मोड़ निज सुख में मुख।[1]

इसी कारण वह सर्वस्व त्याग में ही नित्यानन्द का अनुभव करता है—

रिक्त तत्क्षण कर
रहते हो रिक्त ही
चिर प्रसन्न! चिरकालिक पतझड़ बन हुए।[2]

निराला जी की भाँति ही महादेवी वर्मा भी अद्वैतवाद की उपासिका हैं किन्तु आराधना के क्षेत्र में वह द्वैतभाव बनाये रखना चाहती हैं। उनकी इस द्वैतभावना का आधार भी उपास्य-उपासक भाव ही है जिसमें आत्मा परमात्मा की केलि अथवा क्रीडा का सुन्दर विधान है—

रंगमय है देव दूरी!
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीडा अधूरी!

दूर रहकर खेलना पर मन न मेरा मानता है।[3]

अतः वह अपने निजत्व के अभिमान को त्यागना नहीं चाहती—

सजनि मधुर निजत्व दे
कैसे मिलूँ अभिमानिनी मैं।[4]

इस प्रकार महादेवी वर्मा में इस निजत्व अथवा द्वैत की रक्षा अथवा लोभ का कारण प्रिय अथवा परमात्मा के प्रति आराध्य आराधक सम्बन्ध ही है—

---

१ परिमल पृ० १७०
२ वही पृ० १८०
३ आधुनिक कवि (१) पृ० ९४
४ वही पृ० ९२

यह रहे आराध्य चिन्मय
मृण्मयी अनुरागिनी मैं ![1]

महादेवी वर्मा की इस भक्ति भावना पर विवेकानन्द के भक्ति-योग का प्रभाव माना जा सकता है क्योंकि उनका प्रियतम विवेकानन्द के ब्रह्म की तरह निर्गुण ब्रह्म ही है जिसका स्मरण चिन्तन तथा तादात्म्य उनकी कविताओं के उपादान है। केवल आराधना के क्षेत्र में ही वे द्वैतभाव का आग्रह करती हैं जो विवेकानन्द के भक्ति योग के अत्यन्त निकट है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विवेकानन्द के ब्रह्म या ईश्वर मानव ईश्वर की भावना दुःख तथा प्रेमरूप भगवान मायारूप जगत तथा उसमें भक्ति के सिद्धान्तों का छायावाद की कविता पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है।

श्री अरविन्द दर्शन

श्री अरविन्द का दर्शन भी औपनिषदिक अद्वैतवाद की ही परम्परा में आता है। और उसकी सबसे बड़ी देन औपनिषदिक ज्ञान के आधारभूत अतिमानस की खोज सामूहिक मुक्ति पृथ्वी और स्वर्ग का समन्वय अथवा दिव्य जीवन की कल्पना या स्थापना है। किन्तु छायावाद युग में किसी भी छायावादी कवि पर अरविन्द दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। आज भी हिन्दी में श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दर्शन के एकमात्र प्रचारक या अभिभावक छायावादी कवि पन्त जी ही कहे जा सकते हैं। किन्तु छायावाद युग में जिसकी सीमा सामान्यतः सन १९४० ई० तक मानी जाती है पन्त जी का भी परिचय अरविन्द दर्शन से नहीं हो पाया था। अरविन्द दर्शन से अपना सम्बन्ध दिखलाते हुए पन्त जी ने उत्तरा की भूमिका में लिखा है कि इस दर्शन से मेरा परिचय सन ४२ के आसपास हुआ जबकि द्वितीय युद्ध का चक्र चल रहा था और जो मेरी मन स्थिति के लिए अत्यन्त ऊहापोह का युग था।[2] किन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि अरविन्द दर्शन के सम्पर्क में आने के पूर्व मेरे भीतर कुछ ऐसी नवीन अनुभूतियाँ उदित होने लगी थीं जिनकी पुष्टि अरविन्द दर्शन से अच्छी तरह हो गई—

'अपनी नवीन अनुभूतियों के लिए जिन्हें मैं अपनी सृजन चेतना का स्वप्न-सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक

---

१ आधुनिक कवि (१) पृ० ९२
२ उत्तरा प्रस्तावना पृ १८

तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी। इन्हीं दिनों मेरा परिचय श्री अरविन्द के भागवत जीवन (दि लाइफ डिवाइन) से हो गया। इसके प्रथम खण्ड के पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट सुगठित एवं पूर्ण दर्शन के रूप म रख दिया गया है।[1] इसमे स्पष्ट है कि छायावादी युग म श्री अरविन्द-दर्शन से परिचय न होते हुए भी पन्त जी के विचारों म श्री अरविन्द दर्शन के तत्व मौजूद थे और वे तत्व थे भूत और आत्मा का समन्वय[2] पृथ्वी पर स्वर्गलोक की कल्पना[3] आध्यात्मिक अथवा नावात्तर मानवता का सृष्टि तथा बहिरतर

---

१ पन्त उत्तरा प्रथम सस्करण, प्रस्तावना पृ० १८

2 We start then, with the conception of an omnipresent Reality of which neither the Non Being at the one end nor the universe at the other are negations that annual they are rather different states of the Reality obverse and reverse affirmations

Sri Aurobindo The life Divine Vol 1 1943 p 40

जड चेतन हैं एक नियम के वश परिचालित
माया का है भेद उभय है अन्योन्याश्रित।
भूत जगत की पावनता को करो न कलुषित
निखिल जीव जग की सत्ता इससे परिपालित।

पन्त युगवाणी, १९३९ पृ० ५४

3 For from the divine Bliss the original Delight of existence, the Lord of Immortality comes pouring the wine of that Bliss the mystic some into these jars of mental ised living matter eternal and beautiful he enters into these sheaths of substance for the integral transformation of the being and nature

Sri Aurbindo, The life Divine Vol 1 1943, p 315

मुक्त जहाँ मन की गति जीवन म रति
भव मानवता म जन जीवन परिणति।

ऐसा स्वर्ग धरा म हो समुपस्थित
नव मानव-संस्कृति किरणो म ज्योतित।

पत युगवाणी १९३९ पृ १८

शान्ति द्वारा सामूहिक मुक्ति।[1] इस प्रकार पन्त जी ने छायावाद काल में ही श्री अरविन्द के दिव्य जीवन की कल्पना के समान ही यह कल्पना कर ली थी कि भूत और आत्मा में से प्रत्येक अकेला रहने पर अपर्याप्त है। मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करे। जड़ चेतन के इसी समन्वय को ध्यान में रखकर उन्होंने युगवाणी (१ ३९) में कहा था—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।[3]

---

4 There may be even here a physical working of divine mind and sen e a physical working of divine life in the human frame and even the evolution upon earth of some thing that we may call a divinely human body
Sri Aurobindo The life Divine Vol 1 1943 p 307

क्या न एक हो मानव सभी परस्पर
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर।
पन्त युगवाणी १९३९ पृ २८

1 by the illumining descent of the higher into the nature of the lower being and the forceful ascent of the lower being into the nature of the heigher mind can recover its divine light in the all comprehending super mind life repossess its divine power in the play of omnipotent Conscious Force and Matter open to its divine liberty as a form of the divine Existence
Sri Aurbindo The Life Divine Vol I 1943 p 319

सब मुक्ति हो मुक्ति तत्त्व अब
सामूहिकता ही निजत्व अब
बने विश्व जीवन की स्वर्गलिपि
जन जन मम कहानी।
पन्त युगवाणी १९३९ पृ० १४

2 However high we may climb even though it be to the Non Being itself we climb ill if we forget our base Not to abandon the lower to itself but to transfigure it in the light of the higher to which we have attained is true divinity of nature
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I, 1943, p 45

३ पन्त, युगवाणी, १९३९ पृ० १३

इसी प्रकार श्री अरविन्द के सम्पर्क में आने के पूर्व ही उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) नदी के दो किनारों के समान हैं जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है।[1] अतः सत्य या तो भूत और आत्मा के समन्वय में है या उनसे परे है[2]—

> बहिरन्तर आत्मा भूतों से है अतीत वह तत्त्व।
> भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल
> व्यथित विश्व से स्थूल सूक्ष्म में परे सत्य के मूल।[3]

इसी दृष्टिकोण से उन्होंने युगवाणी में बहिर्जीवन के साथ अन्तर्जीवन के संगठन की आवश्यकता पर बल दिया है और मार्क्सवाद के लोक-संगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दर्शन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का समन्वय करने का प्रयास किया है।[4] युगवाणी की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भविष्य में जब मानव-जीवन विद्युत और अणु शक्ति की सबल टाँगों पर प्रलय वेग से दौड़ने लगेगा तब आज के मनुष्य की संकीर्ण वादों में बिखरी हुई चेतना उसका संचालन करने में किसी तरह भी समर्थ नहीं हो सकेगी। इसलिए सामाजिक जीवन के साथ ही मनुष्य की अन्तश्चेतना में युगान्तर का होना अवश्यम्भावी है।[5] यही कारण है कि पन्त जी ने भौतिकवाद के सिद्धान्तों का जहाँ समर्थन किया है वहाँ उनका अध्यात्मवाद के साथ समन्वय एवं संश्लेषण भी करने का प्रयत्न किया है।

---

१ पन्त : युगवाणी की भूमिका, देखिए प्रतीक शरद् पृ० १००

2 The Transcendent the Supracosmic is absolute and free in itself beyond Time and Space and beyond the Conceptual opposites of finite and infinite

Sri Aurbindo The Life Divine Vol I 1943 p 43

३ पन्त, युगवाणी १९३९ पृ० ४२

४ पन्त : युगवाणी की भूमिका—देखिए—प्रतीक शरद् पृ० १००

> जड़ भूत में अन्त पड़ा था युग-युग में निष्क्रिय निष्प्राण,
> जग में उसे प्रतिष्ठित करने किया साम्य ने वस्तु विधान।
>
> पन्त : युगवाणी १९३९ पृ० ८१

५ पन्त : उत्तरा प्रथम संस्करण प्रस्तावना में उद्धृत पृ० ५

श्री अरविन्द के आध्यात्मिक ऊर्ध्व सचरण से प्रभावित स्वर्णकिरण' के विचारो का अपने पूर्ववर्ती विचारो का ही विकास प्रमाणित करते हुए पन्त जी ने लिखा है कि ज्योत्स्ना की स्वप्नलोक चाँदनी (चेतना) ही एक प्रकार से स्वर्णकिरण म युग प्रभात के आलोक म स्वर्णिम हो गई है—

वह स्वप्न भार को ठहरी जग के ज्योतित आगन पर
तापसी विश्व की बाला पान नव जीवन का वर।[1]

इस पक्ष को और पुष्ट तथा स्पष्ट करते हुए उन्होने उत्तरा की भूमिका म कहा है कि ज्योत्स्ना म मैंने जीवन की जिन बहिरन्तर मान्यताओ का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता। म उनके रूपान्तरित होने की ओर इगित किया है युगवाणी और ग्राम्या म उन्हा के बहिर्मुख (समतल) सचरण का (जो भौतमवाद का क्षेत्र है) तथा स्वर्णकिरण म अन्तर्मुखी (ऊर्ध्व) सचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है किन्तु समन्वय तथा सश्लेषण का दृष्टिकोण एव तज्जनित मान्यताए दोनो म समान रूप से वर्तमान ह।[2]

युगवाणी म भौतिकता को प्रधानता देने के कारण ही पन्त जी ने लिखा है—

जीवन का चिर सत्य
नही दे सका मुझ परितोष
मुझ स्थान स वस्तु सुहाती
सूक्ष्म बीज स कोष।[3]

किन्तु आध्यात्मिकता के पक्ष म सकीर्ण भौतिकवादियो को उन्होन यह चेतावनी भी दे दी है—

आत्मवाद पर हसते हो भौतिकता का रट नाम।
मानवता की मूर्ति गढोगे तुम सवार कर चाम ?[4]

इसी प्रकार स्वर्णकिरण स्वर्णधूलि तथा उत्तरा म आध्यात्मिकता को प्रधानता देने के कारण उन्होने जड भौतिकवादियो का मजाक उडाते हुए जड चेतन की एकता की विज्ञप्ति भी दे दी है—

१ पन्त उत्तरा प्रथम सस्करण प्रस्तावना पृ १
२ उत्तरा, प्रस्तावना प्रथम सस्करण पृ० २
३ युगवाणी १९३९ पृ० ७६
४ वही पृ ८२

तुम वस्तु तमस से ढके दाग
आदर्शों का अक्षय प्रकाश ?
यांत्रिक पशुबल से राज्य
मानव का देवोत्तर विकास ।

फिर भी यदि जग ना तुमको प्रिय
उसकी चंचलता दुख नितान्त
है सत्य एक —जो जड़ चेतन
भर अक्षर परम अनन्त शान्त ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूत और आत्मा के समन्वय का व्यामोह पन्त जी अपने जीवन तथा काव्य के किसी सस्थान पर नहीं छोड़ पाये हैं। वास्तव में भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय ही पन्त का जीवन दर्शन तथा उनके काव्य का मौलिक स्वर है। उनके इस समन्वय का बीज उनकी प्रारम्भिक कृति ज्योत्स्ना में विद्यमान है। ज्योत्स्ना में वर्णन का निम्न कथन पन्त जी के समन्वयात्मक जीवन-दर्शन के क्रम विकास पर जिसे वे किसी समय और किसी अवस्था में विस्मृत नहीं कर पाये हैं पूर्ण प्रकाश डालता है—

जिस प्रकार पूर्व की सभ्यता अपने एकांगी आत्मवाद और अध्यात्मवाद के दुष्परिणामों से नष्ट हुई है उसी प्रकार पश्चिम की सभ्यता भी अपने एकांगी प्रकृतिवाद विकासवाद और भूतवाद के दुष्परिणामों से विनाश के दलदल में डूब गई। पश्चिम के जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भरकर एवं अध्यात्मवाद के अस्थिपंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूप रंगों को भर कर हमने आने वाले युग का निर्माण किया है।[2]

किन्तु आने वाले युग में भी पन्त जी के भीतर यह शंका बराबर बनी रही कि भूत और आत्मा में वरेण्य कौन है ? यदि भूत आधार और आत्मा आधेय है तो भूत की उपेक्षा करके आत्मा की उपेक्षा से कैसे बचाया जा सकता है ? यही प्रश्न उनके लिए मार्क्स और गांधी के बोध का प्रश्न बन गया। गांधी जी आत्मा का उद्धार करना चाहते थे किन्तु जिस दिन रात मूल

---

१ उत्तरा प्रथम संस्करण पृ० ८६ ८८

२ पन्त मेरा रचनाकार दक्षिण प्रकार—८ हनन्द पृ० ३२

सता रही हो उसकी आत्मा किस प्रकार उत्थान पा सकती है ? आधार के बिना आधेय का अस्तित्व ही संकटपूर्ण हो जाता है। निदान पन्त जी कल्पना करने लगे कि गांधी का स्वीकार करते समय किसी न किसी दूरी तक मार्क्स को भी स्वीकार करना होगा। अर्थात आत्मा का वरण करते समय भूत का भी सर्वथा त्याग नहीं चल सकता। यही पन्त जी की वे नवीन अनुभूतियां थीं जिनके लिए वे कोई बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब चाहते थे और अन्ततोगत्वा यह अवलम्ब उन्हें अरविन्द दर्शन में प्राप्त हुआ। तब से द्विधा की स्थिति समाप्त हो गयी है और वे पूरी निश्चिन्तता के साथ उस विश्व का काल्पनिक चित्रण कर रहे हैं जो भूत और आत्मा के सम्यक विकास एवं सम्यक मिलन से उत्पन्न होगा।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी पर श्री अरविन्द दर्शन का प्रभाव कोई आकस्मिक घटना नहीं है प्रत्युत यह उनके छायायुगीन समन्वयात्मक जीवन-दर्शन के क्रम विकास की ही एक सुदृढ़ और समुज्ज्वल कड़ी है जिसकी अभिव्यक्ति का अवसर उन्हें छायावादोत्तर काल में ही मिल सका है। छायावादकाल में उपनिषदों के प्रभाव से जड़ चेतन की एकता का भान तो उन्हें था और वह भूतल को स्वर्ग बनाने की कामना भी करते थे[2] किन्तु जड़ चेतन को किस प्रकार समन्वित किया जाय यह समस्या उनके सामने बराबर बनी रही जिसका समाधान उन्हें श्री अरविन्द दर्शन द्वारा हुआ। श्री अरविन्द से उन्होंने यह सीखा कि चेतन ही जड़ है[3] अतः जड़ चेतन दोनों को संयोजित कर नव जीवन की रचना सम्भव हो सकती है।[4] तब से पन्त जी निरन्तर जड़ (अध =

१ देखिये दिनकर पन्त प्रसाद और मैथिलीशरण
प्रथम संस्करण १९५८ पृ १ ६

२ शुद्ध बुद्ध हो सब जग
भेद मुक्त निर्भय मन
जीवित सब जीवन क्षण
स्वर्ग यहीं भू-तल हो।— ज्योत्स्ना से
देखिए पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ २८९

३ तम प्रकाश चेतन ही जड़ है मंत्र अमोघ सिखाया तुमने !
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० ८३

४ नव जीवन रचना सम्भव थी जड़ चेतन को कर संयोजित !
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६२

भौतिकवाद) और चेतन (ऊर्ध्व=अध्यात्मवाद) के समन्वय द्वारा पृथ्वी और स्वर्ग का परिरम्भण कराने में संलग्न है।[1] इस प्रकार छायावाद-युग के भूत और आत्मा, जड़ और चेतन दर्शन और विज्ञान पृथ्वी और स्वर्ग के भावात्मक अथवा कल्पनात्मक समन्वय को ही पन्त जी अपनी छायावादोत्तरकालीन कृतियों स्वर्ण किरण स्वर्ण धूलि उत्तरा अतिमा, वाणी आदि में श्री अरविन्द के दिव्य जीवन—जो मैटर (भूत) का ही चरम विकास है—की भूमिका में बड़ी तन्मयता तथा विश्वास के साथ व्यक्त करते चले जा रहे हैं।

जड़-चेतन का समन्वय श्री अरविन्द-दर्शन की मौलिक देन है।[2] अतः पन्त जी के जीवन-दर्शन में श्री अरविन्द के प्रभाव से जड़-चेतन का उक्त समन्वय भिन्न-भिन्न द्वन्द्वों—यथा तम-प्रकाश मर्त्य-अमर शरीर आत्मा[3] सत्-असत्[4] श्रेय-प्रेय,[5] इह-पर[6] स्थूल-सूक्ष्म[7] व्यक्ति-विश्व

१ हो रहा स्वर्ग में धरणी का जड़ में चेतन का रहस मिलन
भू स्वर्ग एक हो रहे आज सुरगण नरतन करते धारण।
पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण पृ० ७८

2 Matter also is Brahman and it is nothing other than or different from Brahman If indeed Metter were cut off from Spirit this would not be so but it is as we have seen only a final form and objective aspect of the divine Existence with all of God ever present in it and behind it
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I, 1943 P 92

३ तम प्रकाश हों जड़ चेतन हों इन्द्रिय हों आत्मा तन मन हों
मर्त्य अमर का एक योनि में पूरक मान मिलाओ।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण, पृ० ४५

४ क्या प्रकाश तम भिन्न ? पृथक सदसत जड़ चेतन ?
एक सच्चिन्मय भर में व्याप्त अमर नव अनुक्षण।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० ५३

५ श्रेय प्रेय हों व्यक्ति धर्म हों नाश क्षय हो—
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० ५५

६ जड़ से हो विच्छिन्न न चेतन आत्मा से रे भिन्न न तन मन,
इह पर से हों भग्न न जीवन अमिलन हो युग गाना।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० ७०

७ स्थूल सूक्ष्म का नव प्रकाश से जीवन में होना सयोजित।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण, पृ० १७३

अध—ऊर्ध्व[1] बहि—अन्तर स्वर्ग धरणी[3] विद्या अविद्या[4] ज्ञान भावना बुद्धि हृदय[5] आदि के रहस्य मिलन के रूप में व्यक्त हुआ है।

छायावाद युग में गांधी जी के प्रभाव से पन्त जी आध्यात्मिकता के प्रबल पक्षपाती थे[6] किन्तु अध्यात्म दर्शन का वैराग्य सिद्धान्त उन्हें स्वीकार न था अतः भू जीवन से पृथक भागवत जीवन उन्हें किंचित भाता नहीं था।[7] इसी से लोक संस्कृति के सम्बन्ध में उनमें आत्मा की महिमा के प्रति उनका प्रश्नवाचक चिह्न बना रहा।[8] इस प्रश्न का समाधान श्री अरविन्द दर्शन

---

१ सामाजिक जन विश्व रूप जो रहे एक में वन्मय जीवित
अध ऊर्ध्व को बहिरंतर को मनुष्यत्व में कर समन्वित।
पंत वाणी प्रथम संस्करण पृ १७७

२ बहिरंतर की सत्या का जग जीवन में कर परिणय
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मगन हों निःसंशय।
पंत स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण प २३

३ बंधता प्रभात तम वा में सुर मानव तन करते धारण
फिर नव चेतना रंगभूमि भू स्वर्ग कर रहे परिरंभण।
पंत उत्तरा प्रथम संस्करण प ७

४ ब्रह्मज्ञान रे विद्या भेता का एकरस समन्वय
लौकिक ज्ञान अविद्या बहुमुख एक सत्य का परिचय।
पन्त स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण प ३

५ फिर स्वर्ग बजाए भू की हृत्तंत्री निश्चय
जो ज्ञान भावना बुद्धि हृदय का हो परिणय।
पंत उत्तरा प्रथम संस्करण प ४५

६ नव संस्कृति के दूत! देवताओं का करने काम
आत्मा के उद्धार के लिए आए तुम अनिवार्य।
पन्त युगवाणी १९५९ पृ० १३

७ बन त्याग वैराग्य ध्येय हो हृदय न तब करता था स्वीकृत
भू जीवन से पृथक भागवत जीवन मुझे न भाता किंचित।
पंत वाणी प्रथम संस्करण पृ० १४४

८ आत्मा की महिमा से मण्डित होगी नव मानवता?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त्र हो जावेगी पाशवता?
पन्त युगवाणी १९३६ पृ० १३

द्वारा भली भाँति हो जाने पर उन्हें ज्ञात हो गया कि जड़ विज्ञान और चेतना का संचरण दोनों लोक जीवन के विकास में बाधक न होकर सहायक किंवा आवश्यक हैं ।[1] अतः उनके सांस्कृतिक संचरण में गांधी जी तो मात्र साधन बन कर रह गये और साध्य हुए योगेश्वर श्री अरविन्द ।[2] निदान आश्वस्थ होकर पन्त जी यह प्रचारित करने लगे कि मानव जीवन का परिचालन वही सत्य कर सकता है जिसका रज तन भूतवाद हो जिसका मन प्राणिवाद और हृदय अध्यात्मवाद हो ।[3] दूसरे शब्दों में वे इस जगत में अध्यात्म संचरण का मूर्तित तथा स्थूल सूक्ष्म को नवीन प्रकाश में संयोजित होने की कामना करने लगे ।[4] इसी दृष्टि से उन्होंने उन लोगों के जीवन-दर्शन को मिथ्या कहा जो सृष्टि में एकता को विभिन्नता में वियुक्त करके खोजते हैं क्योंकि उनके मत में जगत की विचित्रता (विभिन्नता) ही पूर्ण एकता का एकान्त निदर्शन है ।[5] इस प्रसंग में उन्होंने संसार से विमुख करने वाले संन्यास मार्ग का भी

---

१ वास्तव में चाहे चेतना को पदार्थ (अन्न) का सर्वोच्च या भीतरी स्तर माना जाय चाहे पदार्थ को चेतना का निम्नतम या बाहरी धरातल दोनों ही मानव जीवन में अविच्छिन्न रूप से वागर्थाविव जुड़े हुए हैं। जिस प्रकार पदार्थ का संचरण परिस्थितियों के सत्य या गुणों में अभिव्यक्त होता है उसी प्रकार चेतना का संचरण मन के गुणों में लोक जीवन के विकास के लिए दोनों ही में सामंजस्य स्थापित करना नितान्त आवश्यक है।

पन्त, उत्तरा, प्रथम संस्करण पृ० ७

२ बुद्ध बने गांधी जी साधन, साध्य सिद्ध युग के योगेश्वर
देता जड़ विज्ञान उपकरण-गढ़ता भू जन का नव चेतन !
पन्त वाणी, प्रथम संस्करण, पृ० १६८

३ पन्त स्वर्ण धूलि प्रथम संस्करण पृ० १३

४ पन्त, वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६८

५ मिथ्या उनका जीवन दर्शन
जो विभिन्नता में वियुक्त कर
खोज रहे एकता सृष्टि में,

मेरे उपवन की विचित्रता
पूर्ण एकता का एकान्त निदर्शन !—पन्त वाणी, पृ० २३४

विरोध किया है[1] क्योंकि उनके मतानुसार जीवन की शोभा-जड चेतन की धूप छाँह से ही है।[2] जड चेतन के ऐक्य के आधारभूत उन्होंने आध्यात्मिकता की अवहेलना करने वाले भौतिकवादियों तथा भौतिकता का निषिद्ध निर्णीत करने वाले अध्यात्मवादियों को खण्ड सत्य का ही पुजारी प्रमाणित कर उन्हें यह सुझाव दिया है कि वे जन-जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए एक दूसरे के दृष्टिकोण का मर्म और अपनावें—

> तट अधिवासी उतरो भीतर घट अभ्यासी विचरो बाहर
> वितरित हो बहिरन्तर वभव जन जीवन हो सुखमय, सुन्दर !
> खण्ड करो मत पूर्ण सत्य को भू जीवन की तुम्हें शपथ है।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी ने भौतिकता और आध्यात्मिकता को एक ही सत्य के दो पहलुओं के रूप में ग्रहण कर उन्हें लोक कल्याण के लिए महत्तर सांस्कृतिक समन्वय में एक दूसरे के पूरक की तरह संयोजित करना चाहा है।[4] भौतिकता और आध्यात्मिकता के उक्त समन्वय को ही उन्होंने भागवत जीवन माना है—

> जन भू पर करना निर्मित नव जीवन बहिरन्तर संयोजित
> एक मनज हो एक धरा हो—यही भागवत जीवन निश्चित ![5]

पन्त जी का स्वयं कथन है कि आज अध्यात्म के विरुद्ध भौतिकवाद ऊर्ध्वचेतन अतिचेतन के विरुद्ध उपचेतन अवचेतन दर्शन के विरुद्ध विज्ञान व्यक्तिवाद के विरुद्ध समूहवाद एवं जनतन्त्र के विरुद्ध पूँजीवाद खड़े होकर मानव जीवन में एक अधिविश्व क्रान्ति तथा अन्तर्गत असंगति का आभास दे रहे हैं।[6] इसी अन्तर्गत असंगति ने उनका ध्यान एक व्यापक अन्तर्मुख विकास

---

१ भू पर संस्कृत इन्द्रिय जीवन मानव आत्मा को रे अभिमत
ईश्वर का प्रिय नहीं विरागी संन्यासी जीवन में उपरत !
पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ १३६

२ जड चेतन की धूप छाँह में जीवन शोभा का मुख मण्डित।
पन्त वाणी प्रथम सं० पृ० १२

३ पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ ४८

४ पन्त गद्य-पथ प्रथम संस्करण पृ १४०

५ पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० १७२

६ पन्त गद्य पथ, प्रथम संस्करण पृ० १९७

तथा बहिर्मुख समन्वय की ओर आकृष्ट किया है [1] किन्तु प्रधानता उन्होंने अंतर्मुख विकास को ही दी है ।[2] उनका स्पष्ट कथन है—

तो क मन म कहा अतरित आत्मा का मन है चिर ज्योतित
इन छाया दशा को जो निज आभा से कर देती जीवित ।[3]

तथा

जन मन के विकास पर निभर सामाजिक जीवन निश्चित
सस्कृति का मू स्वग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित ।[4]

स्पष्ट ही पन्त जी के इस आत्म प्रधान सस्कृति पर श्री अरविन्द के आत्म विकासवादी साधना एव दिव्य जीवन का प्रचुर प्रभाव है । श्री अरविन्द के मत म आत्म सत्य पर आधारित एकता सामजस्य और समता का जीवन ही जीवन का एकमात्र सत्य है, जो विगत युगो के अपूर्ण बौद्धिक निर्माणो का स्थान ले सकता है ।[5] इसी आत्म सत्य को अपना कर पन्त जी ने आत्मा को

---

१ आज मनुज को ऊपर उठ जो भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना म जग जीवन को करना है दीपित ।
पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण पृ० १०

२ (क) आज हम मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख —
पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण पृ० १३
(ख) अन्तर्जीवन क वभव म मुकुलित हो जगती के दिशि क्षण ।
पन्त उत्तरा, प्रथम सस्करण पृ० ६
(ग) भू जीवन का अनिर्मम कर स्वग धरा पर रचना जीवित ।
पन्त वाणी प्रथम सस्करण पृ० १३५
(घ) अन्तर एश्वर्यों से मडित मानव हो न्यारतर ।
पन्त उत्तरा प्रथम सस्करण पृ० १८

३ पन्त स्वणकिरण प्रथम सस्करण पृ० ७

४ वही, पृ० ८६

5 A life of unity mutuality and harmony born of a deeper and wider truth of our being in the only truth of life that can successfully replace the imperfect mental constructions of the past
Sri Aurbindo The Life Divine Vol II (2) 1940 p 1109

सम्मुख आन का आवाहन किया है[1] और यह आशा बाधी है कि यदि मानव अन्तर विस्तृत और चेतनना विकसित हो जाये तो आत्मा के स्पर्शो से भू रज सहज ही जीवित हो उठगी ।[2] इसी प्रकार जस श्री अरविन्द न दिव्य जीवन के लिए आत्मिक ऐक्य की अनभूति को आवश्यक माना है[3] पत जी न भी भावी सम्कृति के निर्माण के लिए आत्म एक्य का नाव के रूप म अपनाया है—

> आत्म ऐक्य हो नीव मनुष्य समाज का भवन
> स्वर्गोन्नत हो मुक्त व्यक्ति रुचि के वातायन ।[4]

और मन स्वग अथवा आत्मा के नवीन द्र या जस एकता सामजस्य और समता के द्वारा ही ग्लानि पराभव मत्यु अमगन पर शाश्वत जय पाने की लालसा प्रकट की है ।[5]

श्री अरविन्द ने प्रकृति के रूपान्तर तथा दिव्य जीवन के लिए भीतर देखने आत्मा म प्रवेश करने तथा आत्मा का जीवन विताने को पहली

---

१ आत्मा जाये सम्मुख महिमान्वित मानव मुख !
पन्त स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ८२

२ विस्तृत जा हो जाए मानव अन्तर चेतनता विकसित
आत्मा के स्पर्शो स भू रज सहज हो उठगी जीवित !
पत स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ४६

3 A realisation of spiritual unity can alone found and govern by its truth the action of the divine life
Sri Aurbindo The Life Div ne Vol II 1940 p 1129

४ पन्त स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ४७

५ हम विश्व सस्कृति रे भू पर करनी आज प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व क नव द्रव्या से मानव उर कर निर्मित
मानवीय एकता जातिगन मन म करनी स्थापित
मन स्वग की किरणो से मानव मुख श्री कर मडित ।

एकत्रित कर मन शक्ति चेतन मानव का निश्चय
ग्लानि पराभव मत्यु अमगन पर पाना शाश्वत जय !
पन्त स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण, पृ १९—२०

आवश्यकता माना जाता है।[1] पन्त जी भी अन्तर्भू-स्वर्ग के लिए नवीन मानवता को अन्तःकेन्द्रित तथा अणुमत जन को भीतर देखने का आदेश देते हैं—

> नव मानवता को निःसंशय होना है अब अन्तःकेन्द्रित
> जन भू स्वर्ग नहीं युग सम्भव बाह्य साधना पर अवलम्बित!
> व्यक्तिगत सामूहिक गति के दुस्तर द्वन्द्वों में जग मज्जित
> ओ अणुमत जन भीतर देखो समाधान भीतर यह निश्चित।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी आत्मा को जाग्रत कर उसे भीतर से दीपित करने के पक्ष में हैं किन्तु इसके साथ ही वे उसके बाहरी विस्तार और विकास को भी नितान्त आवश्यक मानते हैं।[3] इतना अवश्य है कि वे आत्मा को अनन्त के पावक का कण होने के कारण अक्षय धन मानते हैं[4] और इसी लिए उसे स्वर्ण युग के निर्माण में सामाजिक मायता से महत्तर प्रमाणित करते हैं[5] और धरती के नगर विलासियों को अपनी आत्मिक निधि से परिचित होने का सन्देश देते हैं।[6] इस सम्बन्ध में उन्होंने उत्तरा की प्रस्तावना में

---

1 Thus to look into ourselves and see and enter into ourselves and live within is the first necessity for transformation of nature and for the divine life

Sri Aurbindo The Life Divine Vol II 1940, p 1120

२ पन्त, वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६५

३ मानव आत्मा को जाग्रत हो
भीतर से होना नव दीपित
बाहर से विस्तृत नव विकसित!—वही पृ० ८२-८३

४ निश्चय रे आत्मा अक्षय धन वह अनन्त के पावक का कण—
वही पृ० १२

५ पिघला दगा लौह मुष्टि को आत्मा की कोमलता,
जन बल से रे कहीं बड़ी है मनुष्यत्व की क्षमता!
पन्त स्वर्णधूलि, प्रथम संस्करण, पृ० १३

६ ये धरती के नगर विलासी
क्षुधित हृदय आकांक्षा प्यासी
निज आत्मिक निधि से हों परिचित!
पन्त, वाणी प्रथम संस्करण, पृ० ७९

स्वय कहा है कि राजनीति का क्षेत्र मानव जीवन के सत्य के सम्पूर्ण स्तरों को नहीं अपनाता वह हमारे जीवन का धरती पर चलने वाला समतल चरण है हम अपने मन तथा आत्मा के शिखरों की ओर चढने वाले एक ऊर्ध्व सचरण की भी आवश्यकता है जो हमारे ऊपर के वैभव को धरती की ओर प्रवाहित कर समाज के राजनीतिक आर्थिक ढाँचे को शक्ति सौन्दर्य सामजस्य तथा स्थायी लोक कल्याण प्रदान कर सके। अन्यथा पृथ्वी के गहरे पक मे डूबा हुआ मनुष्य का पाव ऊपर उठकर आगे नही बढ सकेगा।[1] अपनी उक्त स्थापना के अनुरूप ही उन्होने मानव और प्रकृति को सयुक्त कर इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की शुभ्र आकांक्षा प्रकट की है।[2] इस प्रकार उनकी आत्मा प्रधान संस्कृति का ध्येय जन हित के अतिरिक्त और कुछ नही है जैसा कि नीचे की पक्तियो से स्पष्ट है—

आत्म जयी मांग जीवन सुख
जन समाज का दुख ही निज दुख
हृदय न हो भू सत्य प्रति विमुख
ध्येय एक जग जीवन जन हित।[3]

अत पन्त काव्य के सम्बन्ध मे यह मत देना कि उनकी तमाम कविता भौतिकवाद को अस्वीकार करती है और वह दरअसल समन्वय करती है तमाम देवी देवताओ की उपासना के साथ पूजीवाद की उपासना का[4] उचित नही है।

वास्तव मे पन्त जी का आदर्श व्यक्तियो द्वारा आदर्श संस्कृति और समाज की स्थापना अभीष्ट है और उसके निर्माण के लिए भूमिका के रूप मे उन्होने श्री अरविन्द दर्शन के जड चेतन की एकता आरोहण अवरोहण

१ पन्त उत्तरा प्रथम सस्करण प्रस्तावना पृ १४

२ मानव हो सयुक्त प्रकृति मे स्वर्ग बने भू पावन —
पन्त स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ० २२

३ पन्त वाणी प्रथम सस्करण पृ ७९

४ शचीरानी गुर्टू सुमित्रानन्दन पन्त लिए डा राम विलास शर्मा का स्वर्णकिरण और स्वर्ण धूलि—शीर्षक लेख पृ ३१०

वास्तव में पन्त जी को आदर्श व्यक्तियों द्वारा आदर्श संस्कृति और समाज की स्थापना अभीष्ट है और उसके निर्माण के लिए भूमिका के रूप में उन्होंने श्री अरविन्द दर्शन के जड चेतन की एकता, आरोहण अवरोहण मन अतिमन तथा दिव्य जीवन के सिद्धान्त और सन्देश को ग्रहण किया है। अत कभी वे जड चेतन की एकता से नव हीरक दल भू जीवन निर्मित[1] करना चाहते हैं कभी मन के उर्ध्व सचरण और दिव्य चेतना के आवाहन द्वारा मत्य भूमि को स्वर्ग बना देना अथवा भू और स्वर्ग को एक कर देना चाहते हैं[2] और कभी आत्मा के स्वर्णिम प्रकाश से भू जीवन के प्रागण को श्री शोभा मगल से भर देना चाहते हैं।[4]

श्री अरविन्द का कहना है कि हमारे वर्तमान प्रकृति जीवन में ऐसा प्रतीत होता है कि ससार ही हमारी सृष्टि कर रहा है किन्तु आध्यात्मिक जीवन में हम स्वय अपनी और अपने ससार की सृष्टि करनी होगी। सृष्टि के इस नवीन नियम के अनुसार आन्तरिक जीवन ही प्रधान होगा शेष उसी का अस्तित्व और परिणाम। हमारी आत्मा मन और प्राण तथा मनुष्य जीवन की पूर्णता की ओर अग्रसर होने से इसी का आभास मिल रहा है।[5] अन्तर

---

१ जड चेतन में करना अब नव हीरक दल भू जीवन निर्मित।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण, पृ० १८२

२ वह पूर्ण मानवों का मानव जो जन में धरता अमिव चरण
वह मत्य भूमि को स्वर्ग बना जन भू को कर नया धारण।
पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण, पृ० ६९

३ भू स्वर्ग एक हो रह हैं सुरगण नरतन करते धारण।
पन्त उत्तरा, प्रथम संस्करण पृ० ७५

४ आत्मा का स्वर्णिम प्रकाश कण
भू कर्दम कल्मष तम का उज्वल कर आनन
श्री शोभा मगल में भर दे
भू जीवन का प्रागण।
पन्त वाणी प्रथम संस्करण, पृ० १०८

5 In our present life of Nature it is the world that seems to create us but in the turn to the spiritual life it is we who must create ourselves and our world In this new formula of creation the inner life becomes of the

की इसी उत्क्रान्ति अथवा साधना का दिग्दर्शन पन्त जी ने नीचे की पंक्तियों में कराया है—

> सम्पूर्ण जगत का रहस हो रहा रूपान्तर
> आलोकित होते निश्चेतन उपचेतन स्तर —
> हंसता चिन्मृत प्रकाश शुभ्र मानव तन धर
> चैतन्य बिम्ब —नव सूर्य चन्द्र शत रहे निखर !
> यह अधिमानस की क्रान्ति धरा तन पर बिम्बित
> आत्मा को घर रजत शान्ति का व्योम अमित !
> संयुक्त हो रहा विश्व चेतना में विकसित
> मानवता को होना भीतर में संयोजित ![1]

इस प्रकार पन्त जी मन और आत्मा के विकास द्वारा इस धरा को स्वर्ग बना देना चाहते हैं[2] इसी से वे बार बार कहते हैं कि स्वर्ग भू से दूर नहीं है विश्व आनन्द से भरा हुआ है[3] और यह निश्चित है कि इस धरा को छोड़कर कहीं भी स्वर्ग सम्भव नहीं है।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी के सम्पूर्ण काव्य में आंतरिक क्रान्ति और सामंजस्य का स्वर अत्यन्त प्रखर है और उस सामंजस्य में श्री अरविन्द दर्शन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार श्री अरविन्द ने सामूहिक आध्यात्मिक जीवन के लिए एकता, सामंजस्य और समता के

---

first importance and the rest can be only its existence and outcome It is this indeed that is indicated by our own soul and mind and life and the perfection of the life of the race
Sri Aurobindo The life Divine Vol II 1943 P 1108 9

१ पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० ७१

2 For it is a Gnostic way of dynamic living that must be the fulfilled divine life on earth
Sri Aurobindo The Life Divine Vol II 1943 P 1108

३ स्वर्ग न भू से दूर —

विश्व आनन्द भरा है।—पन्त वाणी प्र० स० पृ ५९

४ मनुज धरा को छोड़ कहां भी स्वर्ग नहीं सम्भव यह निश्चित !
पन्त वाणी प्र० स० पृ० १७३

सिद्धान्त को अनिवार्य घोषित किया है,[1] उसी प्रकार पन्त जी ने भी उस (एकता सामञ्जस्य और समता के सिद्धान्त को) अपने नव चेतनावादी सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के लिए आवश्यक प्रमाणित किया है।[2]

अब हम उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि पन्त जी का कवि समन्वयात्मक है जो बाहरी भीतरी परिस्थितियों से सतत प्रभावित होता रहा है। उक्त बाहरी भीतरी परिस्थितियों को सामञ्जस्य के स्वर्णिम सूत्र में समन्वित करने के लिए भी वह सतत प्रयत्नशील रहा है। अतः उनके विकासशील कवि ने श्री अरविन्द दर्शन को भी सामञ्जस्य की भूमिका में ग्रहण किया है।

वैष्णव वेदान्तवाद

उपनिषदों में ब्रह्म के निर्गुण निर्विशेष और सगुण, सविशेष दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। किन्तु आगे चलकर उपनिषद् ज्ञान के आधार पर वेदान्त के दो विशिष्ट मतों का प्रतिपादन हुआ। निर्गुण अशब्द अरूप अगन्ध अस्पर्श अव्यक्त अनिर्वचनीय ब्रह्म का विशद प्रतिपादन शाङ्कर वेदान्त में और सगुण सविशेष सहज उपास्य ब्रह्म का प्रतिपादन वैष्णव वेदान्तवाद में हुआ। वेदान्त-दर्शन के उक्त दोनों रूपों में से किसी एक के प्रति एकान्तिक आग्रह छायावाद की कविता में नहीं मिलता। छायावाद का कवि कभी तो निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म का और कभी वैष्णव वेदान्त के सगुण सविशेष ब्रह्म का समर्थन करता है। एक ओर वह शाङ्कर वेदान्त के आधारभूत जगत को माया अथवा

---

1 Unity mutuality and harmony must therefore be the inescapable law of a common or collective gnostic life
Sri Aurobindo The life Divine Vol II, 1943, P 1129

२ दक्षिण पन्त, उत्तरा, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

३ संग ! यह है माया का देश
क्षणिक है मेरा तेरा संग
यहाँ मिलता काँटों में बन्धु !
सजीला सा फूलों का रंग
तुम्हें करना विच्छेद सहन
न भूलो हे प्यारे जीवन !
महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण, पृ १८

मिथ्या घोषित करता है तो दूसरी ओर वह वैष्णव-वेदान्तवाद की भाँति यह भी स्वीकार करता है कि जगत सत्य है।[1]

ब्रह्म के निराकार और निर्विशेष स्वरूप तथा आत्मा परमात्मा की अभिन्नता आदि का निरूपण जो शाङ्कर वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय है हमने औपनिषदिक अद्वैतवाद के भीतर कर लिया है। अतः यहाँ पर वैष्णव वेदान्तवाद के उन रूपों का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा जिनसे छायावाद का कवि प्रभावित हुआ है।[2] वैष्णव वेदान्तवाद के वे रूप इस प्रकार है—

विशिष्टाद्वैत स्वाभाविक भेदाभेद अथवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत अचिन्त्य भेदाभेद और शुद्धाद्वैत।

विशिष्टाद्वैत

रामानुज दर्शन का वाद विशिष्टाद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है। इसका शाब्दिक अर्थ है— विशिष्टयोरद्वैतम् अर्थात् विशिष्ट कारण और विशिष्ट कार्य की एकता। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कारण है और स्थूल चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म कार्य है। सत्कार्यवाद सिद्धान्त को उक्त वेदान्त स्वीकृत करता है और तदनुसार कारणावस्थ ब्रह्म और कार्यावस्थ ब्रह्म के अद्वैत का प्रतिपादन करता है। ब्रह्म जीव और जड़ स्वरूपतः परस्पर पृथक् है किन्तु जड़चेतनात्मक वस्तु का अस्तित्व स्वतन्त्र नहीं उसकी सत्ता सर्वदा ब्रह्माधीन है। वह ब्रह्म से पृथक् स्थित नहीं अपितु सर्वदा उससे अपृथक् सिद्ध है। वह ब्रह्म के द्वारा नियम्य धार्य और उसका शेष होने के कारण उसका शरीर है और ब्रह्म उसका नियन्ता धारयिता और शेषी होने के कारण आत्मा है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वविश्वात्मक वस्तु ब्रह्मात्मक या ब्रह्म का शरीर है और इस शरीरात्म भाव में ब्रह्म के प्रकार या विशेषण रूप में ही उसके स्वरूप का परिचय है।[3] रामानुजाचार्य के इस विशिष्टाद्वैत मत का निराला जी ने अपनी सुप्रसिद्ध अद्वैत

---

१ सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर

पन्त पल्लविनी प्र० सं० पृ० २३१

■ जीवन ही नित्य चिरन्तन।

पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० २०

३ रामकृष्ण आचार्य, ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रथम संस्करण पृ० ३४

मूलक कविता 'तुम और मैं' में ब्रह्म को 'प्राण' और उसकी सृष्टि को 'काया' कहकर व्यक्त किया है।[1]

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा।[2]

इसमें भी विशिष्टाद्वैत मत का ही प्रतिपादन अभीष्ट है। उक्त पंक्तियों में 'मानस के भाव' ब्रह्म के प्रतीक और 'भाषा' जिसमें भाव निहित हैं, ब्रह्म के शरीर के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार महादेवी जी के 'दीपक' (शरीर-जगत) और 'प्रकाश' (ब्रह्म) तथा 'बीन' (शरीर-जगत) और 'झंकार' (जगत में निहित ब्रह्म) के रूपक द्वारा विशिष्टाद्वैत मत का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण नीचे की पंक्तियों में हुआ है—

बीन जगी तार की झंकार है आकाशचारी।
धूलि के इस मलिन दीपक में बसा है तिमिरहारी।[3]

निम्बार्क वेदान्त

उक्त वेदान्त को 'स्वाभाविक भेदाभेद' या 'स्वाभाविक द्वैताद्वैत' कहते हैं। इसके अनुसार ब्रह्म, जीव और जड़ परस्पर स्वरूपतः भिन्न हैं और साथ ही जीव और जड़ अपने स्वरूप, स्थिति और प्रवृत्ति में ब्रह्माधीन होने से ब्रह्म से अभिन्न हैं। इस प्रकार ब्रह्म से जड़ और जीव का भेद और अभेद स्वाभाविक है जो समान स्तर पर मान्य है। उक्त दृष्टि से स्वाभाविक भेदाभेद रामानुज को भी मान्य है, किन्तु जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं रामानुज के विशिष्टाद्वैत में भेद तथा अभेद का प्रयोग कार्य कारण के अद्वैत की दृष्टि से किया गया है, उसकी तुलना में यहाँ निम्बार्क के 'स्वाभाविक भेदाभेद' की दृष्टि यह है कि कारण और कार्य का अद्वैत नहीं, अपितु 'स्वाभाविक द्वैताद्वैत' है। दूसरे शब्दों में कार्य और कारण का स्वाभाविक भेदाभेद समान स्तर पर मान्य है। ब्रह्म कारण है और चिदचिदात्मक जगत कार्य है, दोनों का स्वाभाविक भेदाभेद है। ब्रह्म अनन्त शक्ति युक्त है, चित और अचित भी उसकी शक्तियाँ हैं। ब्रह्म अपने में स्वाभाविकतया विभाजित उक्त स्वात्मरूप और स्वाविच्छिन्न चित और अचित शक्तियों का विकास या प्रसार कर अपने को चिदचिदात्मक जगत के

---

१ निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ३३
२ वही, पृ० ७१
३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ८१

रूप म परिणत करता है और इस प्रकार वह जगत का निमित्त कारण होने के साथ उपादान कारण भी है।[1] निम्बाक के इस मत का प्रतिपादन ही महादेवी जी की निम्न पक्तियों का अभिप्राय प्रतीत होता है—

सिधु को क्या परिचय दें देव !
बिगडते बनते बीचि विलास
क्षुद्र ह मेरे बुदबुद प्राण ?
तुम्ही म सृष्टि तुम्ही म नाश ![2]

कारण और काय का समान स्तर पर स्वाभाविक भेदाभेद महादेवी जी की निम्न पक्तिया म अत्यन्त स्वाभाविक पद्धति पर अभिव्यक्त हुआ है—

चित्रित तू मैं हू रेखाक्रम
मधुर राग तू मैं स्वरसगम
तू असीम म सीमा का भ्रम
काया छाया म रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ![3]

इसी प्रकार निराला जी की इन पक्तिया म—

तुम विमल हृदय उच्छवास
और मैं कान्त कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति[4]

म हृदय के उच्छवास और प्रेम का कारण और कान्त कामिनी कविता तथा शान्ति को उनका काय बताकर दोना म स्वाभाविक भेदाभेद स्थापित किया गया है। महादेवी जी की निम्न पक्तिया म भी स्वाभाविक भेदाभेद की भावना स्पष्ट व्यक्त हुई है—

नयन म जिसके जलद वह तृषित चातक हू
शलभ जिसके प्राण म वह निठुर दीपक हू
फूल को उर म छिपाये विकल बुलबुल हू

---

१ डा० रामकृष्ण आचाय ब्रह्मसूत्रों के वष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सस्करण पृ ३४–३५
२ महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ पृ ४४
३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्करण पृ० ५७
४ निराला परिमल अप्सरावलि पृ० ७६

एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ ।[1]

वल्लभ वेदांत

उक्त वेदान्त का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है जिसका अर्थ यह माना गया है कि 'शुद्ध च तदद्वैतम्'—अर्थात माया सम्बन्धरहित ब्रह्म का अद्वैत दूसरा अर्थ यह किया गया है 'शुद्धयोरद्वैतम्'—अर्थात मायासम्बन्धरहित ब्रह्म और जगत का अद्वैत ।[2] उक्त वेदान्त के अनुसार एकमात्र तत्व ब्रह्म है और यावत जड़ जीवात्मक जगद्रूप कार्य भी ब्रह्म है अतः दोनों का साधा अद्वैत है। ब्रह्म जीवभाव को किसी अविद्या या उपाधि के कारण प्राप्त नहीं हुआ अपितु अपनी इच्छा से हुआ है अपनी इच्छा से वह जड़ जगत के रूप में है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है ब्रह्म के उक्त तीन गुण—सत् चित और आनन्द—अपने तारतम्य से ब्रह्म के नाना रूपों में परिणत होने के लिए सहायक है उक्त गुणों का आविर्भाव और तिरोभाव ही नाना रूपों का हेतु है। ब्रह्म ने अपने जिस अंश में आनन्द के साथ चित का भी तिरोभाव कर लिया है वह जड़-तत्व है। ब्रह्म जब चाहे तब जीव और जड़ में तिरोहित गुणों का आविर्भाव कर सकता है और इस प्रकार चिदंश और सदंश पुनः सच्चिदानन्द हो जाते हैं। उक्त प्रकार से एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही आविर्भाव दशा में कारण और तिरोभाव दशा में कार्य है अतः कारण और कार्य का शुद्धाद्वैत है।[3] महादेवी वर्मा ने बीन के रूपक द्वारा मनोभावों के उक्त विशुद्धाद्वैत भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

तुम्हारी बीन ही में बज रहे हैं बेसुरे सब तार ।

अभिनव मधुर उज्ज्वल स्वप्न शत शत राग के शृंगार ।[4]

कारण-कार्य का शुद्धाद्वैत ही पन्त जी की निम्न पंक्तियों का अभिप्राय है—

---

१ महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ५४
२ गोस्वामी श्री गिरिधर जी महाराज 'शुद्धाद्वैत मार्तण्ड', श्लोक ४७ पृ०२३
३ डॉ० रामकृष्ण आचार्य ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव-भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम संस्करण पृ० ३६ ३७
४ महादेवी वर्मा दीपशिखा प्रथमावृत्ति १९४२ ४ थी गीत

बताऊँ मैं कैसे सुन्दर!
एक हूँ मैं तुमसे सब भाँति
जलद हूँ मैं यदि तुम हो स्वाति
तृषा तुम यदि मैं चातक पाँति!
छिपा सकता है क्या गुणि सर
कभी अपना अनन्य समसर?
करे क्या दर्पण ही निर्मल
दिखा सकता निज मुख उज्ज्वल?
और हो तुम उर के भीतर
बताऊँ मैं कैसे सुंदर?[1]

महादेवी वर्मा की 'बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ'[2] जैसी भावाभिव्यक्तियाँ वल्लभवेदान्त के शुद्धाद्वैत भाव का ही प्रतिपादन करती हैं।

बलदेव वेदान्त—

उक्त वेदान्त का वाद अचिन्त्य भेदाभेद है। जहाँ तक कार्यकारण का सम्बन्ध है उक्त वेदान्त को विशिष्टाद्वैत के समान केवल अभेद स्वीकार है निम्बार्क वेदान्त के समान भेदाभेद नहीं। चित् और अचित् दोनों ब्रह्म की शक्तियाँ हैं। उन शक्तियों से युक्त ब्रह्म कारण है और उन्हीं से युक्त वह कार्य है। ब्रह्म कारणावस्था में सूक्ष्मशक्तिक और कार्यावस्था में स्थूल शक्तिक है और इस प्रकार दोनों का अनन्यत्व विशिष्टाद्वैत के समान स्वीकृत है।[3] बलदेव वेदान्त के उक्त दार्शनिक मत का छायावाद की कविता पर प्रभाव के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह छायावादी काव्य पर रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के प्रभाव को और पुष्ट करने में सहायक हुआ है।

छायावादी काव्य को प्रभावित करने वाले स्थान—शीर्षक अध्याय में चैतन्य की प्रेमाभक्ति का छायावाद की कविता पर प्रभाव डालने वाले कारणों के स्पष्टीकरण में हमने देखा है कि किस प्रकार छायावाद का कवि रामकृष्ण परमहंस रवीन्द्रनाथ टैगोर और विवेकानन्द के प्रभाव से चैतन्यदेव

---

१ पन्त वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति १९४२ पृ० २

२ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ८४

३ डा० रामकृष्ण आचार्य ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम संस्करण पृ० २८८

की प्रेमाभक्ति की ओर प्रेरित किया। छायावाद के कवियों मे उक्त विभूतिया का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी पर ही रहा है। अत उनके मानवीय ओजस्व प्रणयिक भी प्रेमाभक्ति की आध्यात्मिक ध्वनि से आपूरित हैं। गीतिका म अमूत की वजना करन वाले उनके मूल पदों म प्रमाभक्ति की पराकाष्ठा प्राप्त हुई है।[1] उनके 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जावग चले ?'— जस पदो म परकीया की उक्ति द्वारा प्रमाभक्ति का रहस्य भी प्रकट किया गया है।[2] 'प्रिय यामिनी जागी'[3]—जस पदा म इस युग के कवि द्वारा भक्तो की राधा की ही अवतारणा हुई है।[4] गीतिका के साधना अपलक आज सखी मौन रही हार प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृङ्गार' प्यार करती है इसलिए (कि) मुझ भी करते है वे प्यार प्राण धन को स्मरण करत नयन झरते-नयन करते आदि गीता का निर्माण प्रमाभक्ति की भूमिका म ही हुआ

---

१ निराला गीतिका प्रथम सस्करण आचाय नन्ददुलार वाजपेयी द्वारा लिखित समीक्षा, पृ ७

२ हुआ प्रात प्रियतम तुम जावग चले ?
कसी थी रात बधु थ गल गल।

बाधा यह प्रान,
पार करो मधु विरह का यह व्यवधान !
मिलिर म मुख नग आओ मल मल !
निराला गीतिका प्रथम सस्करण पृ०

३ (प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पकज दग अरुण मुख
तरुण-अनुरागी।

ग्लानि की तन्वी, लज्जित
दानि न क्षमा माँगी।

मागना की मुक्ति मुक्ता त्याग म त्यागी।—वही पृ० २

४ निराला गीतिका प्र० स० आ० नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा लिखित समीक्षा, पृ० ७

५ निराला गीतिका, प्रथम सस्करण, गीत, पृ० ४, ६, ३६, ५०

है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी काव्य में चैतन्यदेव की प्रेमाभक्ति के प्रभाव से मानवीय जीवन का सामान्य प्रेम भी अत्यन्त उदात्त भावभूमि पर अधिष्ठित है।

वैष्णव भक्ति की एक बड़ी विशेषता व्यक्तित्व परमात्मा के साथ विश्वास और प्रेम का सम्बन्ध है। अतः उसमें उपासक और उपास्य के मध्य द्वैतवाद को अंगीकार किया गया है। वैष्णव वंश में उत्पन्न वैष्णव संस्कारों से युक्त छायावाद का कवि जिस समय अपने अरूप को नव रूप विभा के रूप में देखना चाहता है[1] और बंधन मुक्ति के प्रति घनी आसक्ति प्रकट कर गन्धहीन को गन्धयुक्त तथा अरूप को मूर्तिमान बन जाने का आग्रह करता है[2] उस समय उसकी भावना निर्गुणोपासना की अपेक्षा वैष्णव भक्ति के अत्यन्त समीप आ जाती है। इस भावभूमि में वह अद्वैत के स्थान पर द्वैत भाव को अपनाता है क्योंकि द्वैतवाद भ्रम होते हुए भी मनुष्यों की गति के अनुकूल है।[3] इस प्रकार देखते हैं कि छायावाद का कवि कबीर आदि निर्गुणियों की भाँति अपनी सत्ता को ब्रह्म में विलीन कर देना नहीं चाहता प्रत्युत

१ हे अरूप नव रूप विभा के
चिर स्वरूप पाके जाओ।
निराला गीतिका प्रथम संस्करण पृ० ११

२ तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन
गन्धहीन तू गन्ध युक्त बन
निज अरूप में भर स्वरूप मन।
मूर्तिमान बन निर्धन।
पन्त गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० ११

३ द्वैतवाद ही है भ्रम।
तो भी प्रिये,
भ्रम के भीतर से
भ्रम के पार जाना है।
मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसीलिए द्वैतभाव भावुकों में
भक्ति की भावना भरी—
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० २२८

वह उसे उससे (ब्रह्म से) साथ क्रीडा-केलि करने के लिए स्थिर बनाये रखना चाहता है।[1] इसी मनोदशा में वह यह उद्गार प्रकट करता है कि—

कामना रहे तो एक
भक्ति की बनी रहे।[2]

अथवा

मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रहे काफी है।[3]

छायावाद के कवि के लिए प्रभु की करुणा ही पूर्ण उदार और अभय है। अतः वह पतितावित हतभागे हताश, काम क्रोध मद में पागल तथा ज्ञान भक्ति के अभिलाषी को करुणानिधि प्रभु के द्वार आने का आह्वान करता है करुणा तथा महिमा के उदार मेघ को पाने के लिए बार बार लालायित हो उठता है और अनेक भावन उसके प्रति अपनी अनन्य प्रीति प्रदर्शित करता है।[4]

ब्रह्म की उपासना के लिए जिन साधना को छायावाद के कवि ने अपनाया है वे भक्ति के ही चिरपरिचित साधन अर्थात नाम कीर्तन तथा गुण कीर्तन हैं। वेद उपनिषद पुराण तथा महाभारत में भगवन्नाम तथा गुण की महिमा भरी पड़ी है। इसके अतिरिक्त सन्त कबीर से लेकर महात्मा गाँधी तक सभी सन्त भक्त एवं महात्माओं ने नाम और गुण की महिमा गाई है। छायावाद का कवि भी उक्त भक्तों की भाँति परमार्थ प्राप्ति के लिए भगवान के नाम और गुणों का गान करता हुआ पाया जाता है।[5]

---

१ (क) रंगमय है देव दूरी!
छू तुम्हें रह जायगी यह
चित्रमय क्रीडा अधूरी!
दूर रहकर खेलना पर मन न मेरा मानता है!
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ९८

(ख) रजनि मधुर निजरस दे कम मिले अभिमानिनी मैं।—वही पृ० ९२

२ निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० २१७

३ वही पृ० २१८

४ पंत स्वर्ण धूलि प्रथम संस्करण पृ० ९२

५ (क) भजन कर हरि के चरण मन!
पार कर मायावरण मन!
निराला, अर्चना ७८वाँ गीत।

वैष्णव भक्ति में प्रार्थना एक अपरिमित शक्ति है। प्रार्थना सन्तो भक्तों और महात्माओं के जीवन की समृद्धि शक्ति और बल है। वे अपने जीवन की प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक पल में प्रार्थना के अलभ्य प्रभाव तथा अपरिमित शक्ति का अनुभव करते हैं। सभी भक्त अपनी प्रार्थनाओं में भगवान के मंगलमय विधान में आत्मसमर्पण और लोकहित की कामना करते हुए पाये जाते है। छायावाद के कवियों ने भी अपनी व्यक्तिगत प्रार्थनाओं में भगवान के प्रति अपार प्रेम श्रद्धा भक्ति विश्वास तथा आत्मसमर्पण आदि के भाव प्रकट किए हैं। देश समाज राष्ट्र तथा मानवमात्र का कल्याण भी उनकी भक्तिपरक प्रार्थनाओं का अंग बना है। प्रसाद के कानन-कुसुम में करुण क्रन्दन प्रियतम याचना विनय आदि कविताएं प्रार्थनापरक है तथा महाक्रीडा नमस्कार वन्दना प्रभो आदि गुणगान प्रधान हैं। निराला जी ने भी अपनी अर्चना में परम प्रभु का भक्त-हृदय से स्मरण वन्दन और स्तवन किया है। 'अर्चना' के दुरित दूर करो नाथ अशरण हू गहो हाथ भवसागर से पार करो हे! मानव का मन शान्त करो हे आदि गीत भक्तिरस से सिक्त हैं। इनमें भक्तों के दैन्य, सान्त्वय दास्य समर्पण आदि भाव सहज ही उद्दीप्त हो उठे हैं। परिमल की तुम और मैं —शीर्षक कविता में जिस निराला ने अद्वैत के आधारभूत निर्गुण-सगुण व्यक्तिक-अव्यक्तिक ब्रह्म का गान किया है उसका स्वर अर्चना के इन गीतों में वैष्णव भक्ति के रस से सराबोर हो गया है। कवि पन्त का हृदय भी आस्तिक का श्रद्धालु हृदय है अतः भक्ति की करुणा में सिक्त है। इसी से उन्होंने भक्ति विह्वल होकर गाया है–

> चरण कमल में अर्पण कर मन
> रज रंजित कर तन
> मधुरस-मज्जित कर मम जीवन
> चरणागत-आश्रय में।[1]

इसी प्रकार पन्त के स्वर्णकिरण के आवाहन निवेदन स्वर्ण धूलि के 'आवाहन मानशक्ति', 'मानचेतना तथा उत्तरा के युग विषाद',

---

(ख) हरि का मन में गुणगान करो,
तुम और गुमान करो, न करो।
निराला, अर्चना ४४वाँ गीत।

१ पन्त, गुंजन तृतीय संस्करण, पृ० ८०

उन्मेष आवाहन वन्दना, स्तवन नमन, विनय, आदि गीत भक्ति भावना स परिपूण है।

इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद की कविता म परम्परागत वष्णव वेदान्तवाद—विशिष्टाद्वैत, स्वाभाविक द्वैताद्वैत शुद्धाद्वैत आदि—के दार्शनिक सिद्धान्तो तथा वष्णव भक्तिभावना क पूजन आराधन आत्म निवेदन आत्मसमपण आदि का बडा ही प्रभावपूर्ण और सुन्दर चयन हुआ है।

२

छायावादी काव्य में ईश्वराद्वयवाद

ईश्वराद्वयवाद का प्रचुर प्रभाव हम छायावादी काव्य के भीतर जयशंकर प्रसाद में देखने को मिलता है। वैसे प्रसाद पर उपनिषदों के अद्वैतवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। उनकी ब्रह्म जीव आत्मा तथा आनन्द विषयक मान्यताओं पर उपनिषदों के ब्रह्मवाद अथवा आत्मानन्द की स्पष्ट छाप है। उनके काव्य में औपनिषदिक ब्रह्म के अनिर्वचनीय सर्वव्यापी सर्वप्रकाश तथा विराट रूप एवं आत्मा की सर्वव्यापकता सर्वमयता असंगता आदि के प्रभाव को हमने छायावादी काव्य में औपनिषदिक प्रभाव के भीतर देख लिया है। किन्तु इस औपनिषदिक अद्वैतवाद के सिद्धान्त को प्रसाद जी ने शैवकुल में उत्पन्न तथा शैवोपासक होने के नाते ईश्वराद्वयवाद की परम्परा अथवा भूमिका में ही देखने का प्रयास किया है। इस प्रकार उन्होंने उपनिषदों के अद्वैतवाद का सच्चा विकास आगम ग्रन्थों में ही माना है। आगम ग्रन्थों में प्रतिपादित जगत और ब्रह्म की सत्यता तथा अभिन्नता को ही उन्होंने उपनिषदों की पक्की अद्वैत भावना का रूप बताया है।[1] आगम शास्त्रों में वर्णित काम-कला की उपासना सामरस्य अथवा आनन्दवाद के सिद्धान्त आदि का उद्गम भी

---

१ भारतीय उपनिषदों का प्राचीन ब्रह्मवाद इस मूर्त विश्व को ब्रह्म का *ब्रह्म में आज निकृष्ट स्थिति में नहीं मानता। वह विश्व को ब्रह्म का* स्वरूप बनाता है—। आगमों में भी शिव की शक्ति विग्रही मानते हैं और यही पक्की अद्वैत भावना कही गई है अर्थात—पुरुष का शरीर प्रकृति है।—प्रसाद काव्य और कला, पृ० १४

उन्होंने वेदों और उपनिषदों को ही घोषित किया है।[1] इस प्रकार उनके मत में आगम ने अनुयायियों ने निगम के आनन्दवाद का अनुसरण किया विचारों में भी और क्रियाओं में भी। निगम ने कहा था— आगमवादियों ने दोहराया आगम के टीकाकारों ने भी इस अद्वैत आनन्द को अच्छी तरह पल्लवित किया।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों के आनन्दवाद से प्रभावित होते हुए भी जयशंकर प्रसाद की अद्वयतर भावना सामरस्य अथवा आनन्दवाद का सीधा सम्बन्ध उपनिषदों की अपेक्षा शैवदर्शन के ईश्वराद्वयवाद से ही अधिक है। शैवदर्शन में भी उनका कवि काश्मीरी प्रत्यभिज्ञा दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित था। अतः प्रसाद जी के काव्य पर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के तत्वों का ही प्रचुर प्रभाव पड़ा है। प्रत्यभिज्ञादर्शन ही ईश्वराद्वयवाद के नाम से प्रसिद्ध है।[3]

शिव तत्व

शैव दर्शन में एकमात्र तत्व शिव है। उसी से अन्य तत्व अभिव्यक्त होते हैं। प्रत्येक जीव में रहने वाला शिव तत्व ही आत्म तत्व है। यह चैतन्य रूप है।[4] इसी को परा संवित्' परमेश्वर, शिव या परम शिव भी कहते हैं। यह तत्व न केवल जीव में ही है प्रत्युत जितनी वस्तुएं संसार में हैं, जड़ या चेतन सभी में व्यष्टि रूप में वर्तमान है। यह अनन्त वस्तुओं में

---

१ काम का धर्म में अथवा सृष्टि के उद्गम में बहुत बड़ा प्रभाव ऋग्वेद के समय में ही माना जा चुका है—कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेत प्रथममदासीत इसी वैदिक काम की आगमशास्त्रों में, कामकला के रूप में उपासना भारत में विकसित हुई थी। यह उपासना सौन्दर्य आनन्द और उन्माद भाव की साधना प्रणाली थी। —प्रसाद काव्य और कला रहस्यवाद शीर्षक निबन्ध पृ० ३२–३३

माया का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय कामकला की सौन्दर्य-उपासना आदि का उद्गम वेद और उपनिषदों के ऋषियों की वे साधना प्रणालियाँ हैं जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने संघों में प्रचार किया था।—वही पृ० ३४

२ प्रसाद काव्य और कला रहस्यवाद शीर्षक निबन्ध पृ० ४२ ४३

३ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० २८०

४ चैतन्यमात्मा शिवसूत्र १।१

रहने पर भी एक है और एक रूप में ही समस्त वस्तुओं में निहित है। यह देश और काल में अतीत है और फिर भी सभी देशों और सभी कालों में एक रूप में वर्तमान है। यह नित्य और अनन्त है। यह समस्त विश्व में व्यापक रूप में है और विश्वातीत भी है। समस्त विश्व इसी तत्व का अभिन्न रूप है।[1] विश्वातीत विश्वात्मक परमानन्दमय तथा प्रकाशघन इस शिव-तत्व का ही अभिन्न रूप में स्फुरण है।

शिवतत्व अनन्त वस्तुओं में रहने पर भी एक है और एक रूप में ही वह अनन्त वस्तुओं में निहित है इस तथ्य की अभिव्यक्ति प्रसाद जी ने कामायनी की निम्न पंक्तियों द्वारा की है—

सबमें घुल कर रसमय
रहता वह भाव चरम है।

यह शिवतत्व समस्त विश्व में व्याप्त भी है और उससे परे भी है। परम शिव का विश्वव्यापी एवं विश्वातीत रूप कामायनीकार ने दर्शन सर्ग में ताण्डव नृत्य के अन्तर्गत दिखाया है—

अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित
थी शून्य भेदिनी सत्ता चित
नटराज स्वयं थे नृत्य निरत
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित
स्वर लय होकर दे रहे ताल
थे लुप्त हो रहे दिशा काल।[4]

परमशिव पूर्णानन्द स्वरूप भी हैं। शिव का आनन्दमय स्वरूप जो उनके नृत्य में अभिव्यक्त होता है सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। नृत्य जगत में व्याप्त ईश्वरीय साम्य का प्रतीक है। इस प्रकार शैवदर्शन के अनुसार एक ही आनन्दमय सत्ता सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[5] यही आनन्द स्वरूप सत्ता परमेश्वर की लीला के रूप में परिणत हो

१ डा उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८२
२ अखिलम अभिनव स्फुरति—प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ■
३ कामायनी दर्शन पृ २९६
४ कामायनी पृ २६
५ एष सत्ता पूरितानन्द रूप पूर्णोव्यापी वर्तते नास्ति किंचित।
शिव महिमा १।१०१

जाती है। शिव-तत्व के इस आनन्दमय स्वरूप का वर्णन भी प्रसाद जी ने ताण्डव नर्तन के भीतर ही दिखाया है। वहाँ पर शिवतत्व ही जगत की लीला के रूप में परिणत हो गया है—

> लीला का स्पन्दित आह्लाद,
> वह प्रभा पुञ्ज चितिमय प्रसाद।[1]

कामायनी में प्रसाद जी ने पराशक्ति का भी समावेश किया है। पराशक्ति का यह समावेश उन्होंने श्रद्धा के भीतर किया है। श्रद्धा पहले तो मनु की गुरु बन कर उन्हें प्रवृत्ति की शिक्षा देती है फिर पत्नी बन कर उनकी गृहस्थी चलाती है और अन्त में पराशक्ति का रूप धर कर वह उन्हें शिवलोक पहुँचा देती है। रहस्य सर्ग में पहुँच कर श्रद्धा जिस अधिकार के साथ त्रिपुर का वर्णन करती है उसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि वह पराशक्ति है साक्षात् शंकर की सिद्धि है। उसका यह रूप सच पूछिए तो दर्शन-सर्ग में ही खुल पड़ता है जहाँ वह मनु से कहती है—

> तब चलो जहाँ पर शान्ति प्रात
> मैं नित्य तुम्हारी सत्य बात।[2]

इतना ही नहीं वह मनु को ऐसी दिव्य दृष्टि भी दे देती है जिससे उन्हें सर्वत्र अद्भुत दृश्य दिखाई देने लगता है—

> सत्ता का स्पन्दन चला डोल
> आवरण पटल की ग्रंथि खोल
> तम जलनिधि का बन मधु मंथन,
> ज्योत्स्ना-सरिता का आलिंगन
> वह रजत गौर उज्ज्वल जीवन
> आलोक पुरुष ! मंगल चेतन !
> केवल प्रकाश का था कलोल
> मधु किरनों की थी लहर लोल।[3]

विमर्शशक्तितत्व

यह तत्त्व प्रकाशात्मा है अर्थात् 'विमर्श ही इसका स्वभाव है'। 'सृष्टि परम्परा में विश्वाकार होने से स्थिति' में विश्व को प्रकाशित करने

१ कामायनी पृ० २६१
२ कामायनी पृ० ५८। देखिए, पन्त प्रसाद, मैथिलीशरण, पृ० ८४
३ कामायनी पृ० २६०

तथा सहार म आत्मसात करने से शिव म जो अहभाव है उसी को विमश शक्ति कहते हैं[1] यदि शिव म विमश शक्ति न हो तो वह 'अनीश्वर तथा जड हो जायेंगे । इस शक्ति के अनन्त स्वरूप हैं किन्तु इनम पाच स्वरूप बहुत महत्व के हैं—

१—चित्त शक्ति

यह प्रकाशरूप है ।[2] इसी के द्वारा शिव अपने को स्वप्रकाश समझते हैं । इस शक्ति का सकेत प्रसाद जी ने कामायनी की लीला का स्पदित आह्लाद वह प्रभापुज चितिमय प्रसाद[3] कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त[4] तथा चेतन की चितकला विश्व म जिसकी सत्ता[5] आदि पक्तिया म स्पष्टत किया है ।

२—आनन्द शक्ति

जिसके द्वारा शिव आनन्दमय है तथा अपने म आनन्द का साक्षात्कार करते है । इस शक्ति की अभिव्यक्ति कामायनी की निम्न पक्तियो मे हुई है—

मेरा निवास अति मधुर कान्ति
यह एक नीड है सुखद शान्ति ।[6]

३—इच्छा शक्ति

जिसके द्वारा शिव जगत का सष्टि सहार और अन्य सभी काम करते हैं । प्रसाद जी ने विश्व को इसी इच्छाशक्ति का परिणाम कहा है—

काम मगल से मण्डित श्रेय
सग इच्छा का है परिणाम ।[7]

---

१ डा उमेश मिश्र भारतीय दशन प ३८३ पराप्रवेशिका प० १ २
२ तन्त्रसार आह्निक १।
३ कामायनी पृ २६१
४ वही पृ० ६१
५ कानन-कुसुम पृ० ९४
६ कामायनी प० २४४
७ वही प० ६१

कामायनी का यह 'काम' ऋग्वेद के 'कामस्तदग्र'[1] मत्र के आधारभूत इच्छा का ही पर्याय है, अत प्रसाद जी ने इस इच्छा शक्ति को प्रेम कला की भी सज्ञा दे दी है—

> यह लीला जिसकी विकस चली
> वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।[2]

इस प्रकार प्रसाद जी ने इस इच्छा समन्वित काम को सृजन शक्ति के रूप म अपनाया है—

> वह मूल शक्ति उठ खडी हुई
> अपने आलस का त्याग किए
> परमाणु-बाल सब दौड पडे
> जिसका सुन्दर अनुराग लिए।[3]

इच्छा शक्ति द्वारा जगत की सृष्टि स्थिति और सहार का वर्णन भी प्रसाद जी ने कामायनी के दर्शन सर्ग म बडी ही ओजपूर्ण शैली म किया है।[4]

४—ज्ञान शक्ति

जिसके कारण शिव स्वय ज्ञान स्वरूप है। इस शक्ति का समाहार प्रसाद जी ने श्रद्धा के चरित्र म किया है।

छान्दोग्य उपनिषद म श्रद्धा को आस्तिक बुद्धि समन्विता कहा गया है।[5] शाक्त तत्र म सम्बद्ध त्रिपुरारहस्य (ज्ञान खण्ड) नामक ग्रन्थ म श्रद्धा 'आस्तिक बुद्धि' के रूप म गृहीत हुई है। इस ग्रन्थ म कर्तव्यजन्य श्रद्धा द्वारा नर के सफल होने की बात कही गई है अन्य श्रद्धा द्वारा सफल होने की बात नही मिलती—

> सत्तर्कमथयेनाशु साधनकपरो भवेत।
> सत्तर्कजनिता श्रद्धा प्राप्यष्ट परमाड नर.।[6]

---

१ ऋग्वेद १०।१२९।४
२ कामायनी पृ० ८४
३ वही पृ० ८०
४ कामायनी दर्शन-सर्ग, पृ० २६०–२६२
५ आस्तिक बुद्धि इति श्रद्धा।
६ त्रिपुरारहस्यम अध्याय ७, श्लोक ७

ज्ञानमय होने के कारण ही कामायनी की श्रद्धा जड़ में स्फूर्ति प्रकट करती है[1] तथा मन को महाचिति[2] समरसता[3] आदि का सन्देश और चेतना का सुन्दर इतिहास[4] सुनाती है।

५—क्रिया शक्ति

जिसके कारण शिव सभी स्वरूप को धारण करते है। इसी शक्ति द्वारा प्रसाद जी ने सत्ता को तारा हिमकर दिनकर आदि में परिवर्तित होना हुआ दिखाया है—

सत्ता का स्पन्दन चला डोल
आवरण पटल की ग्रंथि खोल

आनन्द पूर्ण ताण्डव सुन्दर
झरते थे उज्ज्वल श्रम सीकर
बनते तारा हिमकर दिनकर
उड़ रहे धूलिकण से भूधर।[5]

शक्ति के उक्त पाचो स्वरूपो से सम्पन्न शिव अपने आप समस्त विश्व की अभिव्यक्ति करते है। वस्तुत यह जगत शिव की शक्ति ही का विस्तृत रूप है, जिसे परमशिव ने अपने में (स्वभित्तौ) स्वेच्छा से अभिव्यक्त किया है।[6] इसी मत का प्रतिपादन प्रसाद जी ने अपनी कामायनी में किया है।[7]

---

१ कामायनी पृ ५८
२ वही पृ० ६१
३ वही पृ० ६२
४ वही पृ० ६६
५ वही पृ० २६१
६ डा० उमेशमिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८३
७ चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द अम्बु निधि शोभन।
कामायनी पृ० २९४

सदाशिवतत्व

जब शिव का शक्ति म उन्मेष होता है तब सष्टि होती है और जब वह आँख मूद लेता है तब जगत का लय हो जाता है।[1] यह उन्मष और निमष अनादि और अनन्त ह। इसी उन्मेष के कारण 'सदाशिवतत्व' का अभिव्यक्ति होती ह। यह शक्ति-तत्व का प्रथम और स्थूल उन्मष है। इस अवस्था म इच्छा शक्ति को प्रधानता होती है, क्योंकि 'इद अश अस्फुट रहता ह और अह अश प्रधान रूप म उस आच्छादित किये रहता है। इसलिए मैं हू इस प्रकार का प्रतीति होती है। इस स्थिति म द्विधाभाव बना रहता है।[2] अह (मैं) द्वारा उत्पन्न इसी द्विधा अथवा विषमता की ओर प्रसाद जी ने निम्न पक्तियो म सकेत किया है—

> सब की सेवा न पराई
> वह अपनी सुख ससति है
> अपना ही अणु अणु कण कण
> द्वयता ही तो विस्मृति है।
> म की मरी चतनता
> सबको ही स्पश किय सी
> सब भिन्न परिस्थितियो की
> है मादक घूँट पिय सी।[3]

ईश्वर तत्व

शिव का अह अश पुरुष म और 'इदम्' अश प्रकृति म अभिव्यक्त होता है। किन्तु पुरुष स प्रकृति किंवा प्रकृति स पुरुष एकान्तत पथक नही है। व दोनो एक क ही दो प्रकार है। जिस समय पुरुष सूक्ष्म तत्व म प्रवश करता है उस समय वह अपने को सूक्ष्म प्रपञ्च जो स्थूल प्रकृति का सूक्ष्म रूप है क समान उन्मीलन लगता है। इस अवस्था

1 यस्योन्मेष निमेषाभ्या
जगत प्रलयोदयौ।
त शक्ति चक्रविभव—
प्रभव शकर स्तुम ॥१॥
[illegible]

म मैं–यह हू इस प्रकार की प्रतीति उल्लसित होती है। इसम मैं चैतन्य है और यह प्रकृति है। यहाँ मैं और यह दोनो बराबर महत्व के है। किन्तु इस स्थिति म द्वैतभान स्पष्ट रहता है। इसके अनन्तर जब पुरुष सूक्ष्म प्रपच के साथ तादात्म्य बोध करने लगता है और यह–मैं हू ऐसी प्रतीति उसकी विमर्श शक्ति म होने लगती है तब यह की प्रधानता रह जाती है। इस अवस्था को ईश्वरतत्व कहते है।[1] ईश्वरतत्व की इस स्थिति म सुखदुख क द्वन्द्वात्मक भाव मिट जाते हैं जिससे पुरुष आनन्द का अनुभव करने लगता है। इसी सिद्धान्त क आधार पर प्रसाद जी न अपने रहस्यवाद की परिभाषा म अह को इद म पर्यवसित कर देने को आवश्यक बताया है[2] और कामायनी म मानव मात्र के कल्याण के लिए उसे ही अपना लेने का सन्देश दिया है—

सब भेद भाव भुलवा कर
दुख सख का दृश्य बनाता
मानव कह रे— यह मैं हू
यह विश्व नीड बन जाता।[3]

शिव और सृष्टि

शैव मत म परमशिव ही एकमात्र तत्व है। वह चित है और उसी स सभी चिन्मय पदार्थ आविर्भूत होते हैं तथा उसी म अन्तर्भूत हो जाते है। सृष्टि तो उनका उन्मीलन मात्र है।[4] इस प्रकार सृष्टि रूप म कोई नवीन वस्तु उत्पन्न नहीं होती—जो वस्तु पहले स थी उसी की अभिव्यक्ति होती है। अत परमशिव ही इस जगत का निमित्त और उपादान कारण है। सूक्ष्म रूप स वह कारण है और स्थूल रूप स उसका कार्य है। शिव ही जगत क

---

१ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८७

२ इसम अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य क द्वारा अह का इदम स समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।
प्रसाद काव्य और कला 'रहस्यवाद'—शीर्षक निबन्ध पृ० ५९

३ कामायनी पृ० २९७

४ अन्तः स्थितवतामेव घटते बहिरात्मना। —ईश्वर प्रत्यभिज्ञा, ३२
उन्मीलनम अवस्थितस्यैव प्रकटीकरणम। —प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ६

रूप में परिणत हुआ है'[1] अतः जगत सत्य है। शैवोपासक होने के नाते प्रसाद जी जगत की इसी व्याख्या को स्वीकार करते हैं। शंकर की भाँति वे ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या नहीं मानते। कामायनी में उन्होंने अपनी जगत विषयक इस मान्यता को 'चिति का विराट वपु मंगल, यह सत्य सतत चिर सुन्दर'[2] तथा 'चिति का स्वरूप यह नित्य जगत'[3] आदि खण्ड पंक्तियों द्वारा व्यक्त किया है। शैव दर्शन के इस सृष्टि विधान में परमशिव का ही सर्वत्र विस्तार है अतः यहाँ पर कोई भी किसी से भिन्न नहीं है।[4] इस तथ्य को प्रसाद जी मनु के इन उद्गारों कि 'देखो यहाँ पर कोई भी पराया नहीं है तथा हम न अन्य हैं और न अन्य कुटुम्बी हैं हम केवल एक हमी हैं'[5] द्वारा अभिव्यक्त किया है।

शिव और जीव

शैव दर्शन में जीव सम्पूर्ण विश्व के तद्रूप माना गया है। चिन्ता की कोई भी अवस्था ऐसी नहीं है जिसका तादात्म्य शिव के साथ स्थापित न किया जा सके। भोक्ता भोग्य भाव से शिव सदा सर्वत्र स्थित है।[6] अतः जीव और शिव में कोई तात्विक भेद नहीं है। शक्ति सत्य है फलतः जीव और जगत भी सत्य है। अतः यहाँ पर सब कुछ शिवमय है। किन्तु मायाशक्ति के

---

१ अहा लख्यो यह विश्वाधर की सृष्टि अनूप।
शिव स्वरूप तिन माहिं विराजत लखि सब ही सम।
यह विराट संसार तासु अव्यक्त रूप है।

चन्द्र सूर्य युग नैन, जबहिं यह अपन पसारत।
तब ही तममय जगत माहिं नर आँखिन देखत। —चित्राधार प्रसाद

२ ३ कामायनी पृ० २९६, २५०

४ एक तत्व की ही प्रधानता कहो उसे जड़ या चेतन।—कामायनी, पृ० १

५ कामायनी, पृ० २९५

६ यस्मात्सर्वमयो जीवः सर्वभावसमुद्भवात्।
तत्संवेदनरूपेण तादात्म्य प्रतिपत्तितः ॥ ॥
तस्माच्छब्दार्थचिन्तासु न सावस्था न या शिवः।
भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः ॥४॥
वसुगुप्त स्पन्दकारिका, काश्मीर सम्प्रदाय ग्रन्थ ४२, पृ० ४०

द्वारा परमेश्वर जब अपने रूप को आच्छादित कर लेते है तब वह पुरुष तत्व होकर पृथक हो जाता है। माया से मुग्ध कर्मो को अपना बन्धन समझता हुआ यही ससारी पुरुष अथवा जीव है। परमेश्वर से अभिन्न होता हुआ भी इसका मोह परमेश्वर मे नही होता।[1]

माया के पाच कचुक हैं–कला विद्या राग काल तथा नियति। परमशिव सर्वकर्ता सर्वज्ञ पूर्ण नित्य व्यापक तथा असकुचित शक्ति सम्पन्न होता हुआ भी अपनी इच्छा से सकुचित होकर माया के उक्त पाँच कचुको के रूप मे स्वय अभिव्यक्त होता है। इन्ही कचुको का आवरण रूप मे स्वीकार कर पुरुष ससारी हो जाता है। इन्ही से आवृत चैतन्य पुरुष तत्व है। परमशिव को आवृत करने के कारण ये कचुक कहे जाते है।[2] कला के आवरण से जीव अपना सब कुछ करने का सामर्थ्य खो देता है विद्या के आवरण से जीव मे अल्पज्ञता आती है राग से जीव विषयो मे फस जाता है काल के कारण जीव अपने को अनित्य मानता है तथा नियति के कारण जीव को निश्चित कर्म करने पडते है। जब साधक इनके अतस मे प्रवेश कर इनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है तब उसे माया से छुटकारा मिल जाता है। माया से मुक्त होकर जब वह आगे बढता है तब उसे शुद्धसत्व विशिष्ट पुरुष शुद्ध विद्या के रूप मे दिखाई पडता है। इस भूमि को सद विद्या कहते है। यह सद विद्या तत्व ईश्वरतत्व मे लीन हो जाता है और साधक को ईश्वरतत्व मे अनुभव करने का अवसर मिलता है। ईश्वरतत्व सदाशिवतत्व मे सदाशिव तत्व शिवतत्व मे तथा शक्तितत्व परमशिवतत्व मे परिणत हो जाता है। यहाँ पहुच कर साधक शिव शक्ति के सामरस्य का अनुभव करता है। यही पूर्णावस्था है। यही इस दर्शन का परम लक्ष्य है।

माया के कचुको का स्पष्ट प्रभाव मनु के जीवन मे दिखाई पडता है। कला के आवरण से मनु को समस्त ललित कलाए नश्वर छाया सी प्रतिभा सित होने लगती है[4] जिससे वे उद्विग्न और निरुत्साहित भी हो उठते है।

---

१ डा उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३७९, ३८४–८५

२ वही पृ० ३८५

३ वही

४ मन त्व सारे वाहर जाव नश्वर छाया सा ललित कला।

कामायनी पृ० १०२

कला का यह आवरण ही उन्हें जीवन में ममता का अनुभव कराता है।[1] विद्या के आवरण से उन्हें अल्पज्ञता का अनुभव होता है क्योंकि यह (विद्या) सर्वज्ञान का क्षुद्र अंश मात्र है।[2] इसी प्रकार राग भाव उन्हें संकुचित पूर्णता के रूप में दिखाया गया है[3] जिसके कारण वह नाना विषयों में लिप्त दिखाये गये हैं। काल के आवरण से मनु जीवन में अनित्यता का भी अनुभव करते हैं[4] और नियति जाल से क्षुब्ध होकर उससे मुक्ति की भी कामना करते हैं।

मुक्ति के प्रसंग में शैव दर्शन में कहा गया है कि बिना गुरु के मुक्ति मिलना असम्भव है। इस तथ्य को इस दर्शन में स्त्री अथवा नायिका के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। जिस प्रकार कोई स्त्री नायकानुरक्त होने पर भी बिना बताये किसी विशाल जन समूह में अपने प्रियतम को नहीं पा सकती किन्तु दूती द्वारा जान लेने पर कि उसका प्रियतम यही है, आत्म समर्पण कर देती है उसी प्रकार जीव बिना गुरु की सहायता के परमेश्वर को नहीं पहचान सकता।

मनु को जीव की स्थिति में रखकर उन्हें समस्त अज्ञान अथवा सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर परमशिवतत्व की स्थिति में पहुँचा देना ही कामायनी

---

१ ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है तुममें ज्योति कला।

कामायनी पृ० १६७

२ सर्वज्ञ ज्ञान का क्षुद्र अंश विद्या बनकर कुछ रच रहा।

कामायनी पृ० १७३

३ 'कुछ मेरा हो' यह राग भाव संकुचित पूर्णता है अज्ञान
मानस जलनिधि का क्षुद्र यान।— कामायनी पृ० १७१

४ नित्यता विभाजित हो पल पल में काल निरन्तर चल बन।'

कामायनी पृ० १७३

५ शक्ति का मुकुर वह काल लोक

उसके भी पर सुना जाता कोई प्रकाश का महा लोक
वह एक किरण अपनी देकर मेरी स्वतन्त्रता में सहाय
क्या बन सकता है नियति जाल से मुक्ति दान का कर उपाय।

कामायनी पृ० १७८

कार का लक्ष्य प्रतीत होता है। कामायनी में श्रद्धा गुरु तथा मनु जीव के प्रतीक रूप में अपनाये गये जान पड़ते हैं। श्रद्धा से ही मनु को माया द्वारा जीव को अपने पाश में फंसा ले जाने का ज्ञान होता है।[1] मनु को आनन्द भूमि तक पहुंचाने वाली इच्छा कर्म ज्ञान की एकता तथा समरसता का बोध भी श्रद्धा द्वारा ही होता है। श्रद्धा की सहायता से ही वह परमशिवतत्व का अनुभव करने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार गुरु की सहायता से जिन विभिन्न भूमियों में प्रवेश करता हुआ साधक अन्त में परमशिवतत्व को प्राप्त कर लेता है उन सब का समाहार प्रसाद जी ने मनु की जीवन यात्रा में किया है।

(१) माया के बन्धन से छूटने के उपरान्त साधक सद्विद्या की भूमि में पहुंचता है। इस भूमि में अहम् और इदम् का दोनों रूपों में ऐक्य की प्रतीति रहती है। इस तथ्य का अनुभव मनु को भी हुआ है यह बात उनके निम्न व्याख्यान से स्पष्ट हो जाती है—

हम अन्य न और कुटुम्बी
हम केवल एक हमी हैं
तुम सब मेरे अवयव हो
जिसमें कुछ नहीं कमी है।[2] —अथवा
अपना ही अणु अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।[3]

(२) दूसरी भूमि है ईश्वरतत्व की। इसमें अहम् अंश गौण होता है और 'इदम्' अंश की प्रधानता रहती है। अतः साधक इदं अहं (यह मैं हूँ) का अनुभव करता है।[4] मनु का यह कथन कि—

सब भेद भाव भुलवाकर
दुख सुख को दृश्य बनाता

---

१ यहाँ मनोमय विश्व कर रहा
रागारुण चेतन उपासना
माया राज्य यही परिपाटी
पाश बिछा कर जीव फँसाना।—कामायनी, पृ० २७२

२ कामायनी पृ० २९८

३ कामायनी, पृ० २९७

४ डा० उमेश मिश्र, भारतीय दर्शन पृ० ३८४

मानव कह रे ! 'यह मैं हूं'
यह विश्व नीड बन जाता ।[1]

इसी ज्ञानदशा का परिचायक है।

(३) तीसरी भूमि सदाशिवतत्व की है। इसमें साधक को 'मैं हूँ' की प्रतीति होती है।[2] इस भूमि का संकेत मनु के इस कथन में माना जा सकता है–

मैं की मेरी चेतनता
सबको स्पर्श किये सी।।

किन्तु सकल कृतियों की अपनी सीमा है हम ही तो,
पूरी हो कामना हमारी विफल प्रयास नहीं तो।[4]

(४) चौथी भूमि है शक्ति तत्व की। यही परमशिव की उन्मीलनावस्था है।[5] इस अवस्था का वर्णन प्रसाद जी ने आनन्द सर्ग में इस प्रकार किया है—

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द-अम्बु-निधि-शोभन।[6]

(५) अन्तिम अवस्था है चिन्मय सामरस्य की। यहाँ पहुंच कर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को परमशिव में लीन कर देता है। किन्तु परमशिव में लीन होने पर भी कोई तत्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता। सभी तत्व परमशिव में लीन होकर चिन्मय हो जाते हैं। यही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। यहाँ शुद्ध अद्वैत है। चिन्मय शिवतत्व में सभी चिन्मय हो जाते हैं। शिवशक्ति के सामरस्य की यही अवस्था है। अद्वैत तत्व का ज्ञान

१ कामायनी पृ० २९७
२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८४
३ कामायनी पृ० २९७
४ वही, कर्म सर्ग पृ० १३९
५ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८७
६ कामायनी पृ० २९४

यही होता है।[1]

प्रसाद जी ने भी मनु का चिन्मय सामरस्य की इस अवस्था तक पहुंचा कर कामायनी काव्य का अन्त किया है। यथा—

वह चन्द्र किरीट रजत नग स्पन्दित सा पुरुष पुरातन
देखता मानसी गौरी लहरों का कोमल नर्त्तन।
प्रतिफलित हुई सब आँखें उस प्रेम ज्योति विमला से
सब पहचाने से लगते अपनी ही एक कला से।
समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।[2]

समरसता

प्रसाद का समरसता का सिद्धान्त भी अद्वैत की ही भित्ति पर खड़ा है। आगमशास्त्र में आनन्द से तात्पर्य है ब्रह्म का नित्य सामरस्य।[3] इसी सिद्धान्त के आधारभूत बोधसार में कहा गया है कि जिस प्रकार परस्पर अत्यन्त प्रेम वाले दम्पतियों का द्वैत दोनों के समरस हो जाने पर आनन्दमय हो जाता है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा के समरस हो जाने पर जो आनन्द अबाध रूप से उत्पन्न होता है उसमें यह कल्पित द्वैत या पार्थक्य भी ब्रह्मानन्द के तुल्य हो जाता है।[4] इसी प्रकार नेत्रतन्त्र में उस अवस्था को जिसमें योगी यह अनुभव करने लगता है कि न तो मैं हूं और न कोई अन्य सामरस्य कहा गया है।[5] इस सामरस्य अवस्था में न तो सुख रहता है और न दुःख न ग्राह्य और न ग्राहक—केवल परमार्थ तत्व ही शेष रहता है।[6] इसी सिद्धान्त का उपयोग

१ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ५८७

२ कामायनी पृ० ३०२

३ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८१

४ नरहरिस्वामी बोधसार व्याख्याकार—पं० रामावतार विद्याभास्कर प्रथम संस्करण पृ० १०७

५ नाहमस्मि न चान्योऽस्ति ध्येय भावो न विद्यते।
आनन्दरूपलीन यः स समरसीगतम्॥
नेत्रतन्त्र भाग १ पृ० १९८

६ न दुःखं न सुखं यत्र न ग्राह्यं ग्राहको न च।
न चास्ति मूढभावोऽपि तदस्ति परमार्थतः॥ —स्पन्दकारिका, १।५

प्रसाद जी ने अपने काव्य विशेषकर कामायनी में मानव-कल्याण के लिए जीवन की दोनों सरणियों—लौकिक और पारलौकिक—में किया है। उन्होंने कामायनी में यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य समरसता के सिद्धान्त को अपनाकर ऐहिक जीवन को भी सार्थक और सुखी बना सकता है और जीवन्मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

कामायनी के रहस्य सर्ग में त्रिपुर का विधान कर प्रसाद जी ने समरसता के दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक पक्ष को पुष्ट किया है। इच्छा, कर्म और ज्ञान मानव मन की नैसर्गिक वृत्तियाँ हैं। अतः इनमें सामंजस्य अथवा सामरस्य स्थापित करके ही मनुष्य पूर्णता को प्राप्त हो सकता है। इन तीनों के पृथक्त्व में आनन्द की प्राप्ति असम्भव है। इस पक्ष अथवा सत्य की ओर प्रसाद जी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और स्पष्ट कहा है—

> ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
> इच्छा क्यों पूरी हो मन की
> एक दूसरे से न मिल सके
> यह विडम्बना है जीवन की।[1]

तदनन्तर दिव्य जीवन अथवा दिव्य ज्योति की प्राप्ति के लिए इन तीनों (इच्छा, कर्म, ज्ञान) की समरसता को अनिवार्य बताया है और श्रद्धा द्वारा मनु को इन तीनों के सामरस्य का साक्षात्कार कराकर उन्हें योगियों की भाँति परमानन्द का अनुभव कराया है—

> स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
> इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे
> दिव्य अनाहत पर निनाद में
> श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।[2]

किन्तु प्रसाद जी की मौलिक अथवा महानतम विशेषता अध्यात्म जगत के इस सामरस्य सिद्धान्त को व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र में प्रतिष्ठित कर देने में है। प्रसाद का युग समन्वयवादी युग था। जीवन के सभी क्षेत्रों में समन्वय की भावना पल्लवित हो रही थी। युग की इस समन्वयवादी दृष्टि की सुन्दरतम सृष्टि प्रसाद का समरसता सिद्धान्त है। प्रसाद जी की क्रान्तिदर्शिता

१ कामायनी पृ० २८०

२ प्रसाद : कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० २८१

ने व्यक्तिगत सामाजिक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की समस्त क्रियाओं के निराकरण अथवा समन्वय का उपाय इस सामरस्य सिद्धान्त में पा लिया। इस प्रकार सत्-असत् यथार्थ आदर्श श्रेय प्रेय तृष्णा तृप्ति बुद्धि हृदय आदि द्वियाओं के मंगलमय समन्वय अथवा सामरस्य का बड़ा ही विशद वर्णन हम कामायनी में देखने को मिलता है।

जीवन में उत्पीडनजन्य वैषम्य का कारण सुख दुख का पृथक् पृथक् अथवा परस्पर विरोधी तत्त्व मान लेने में है। इस द्विधा का निराकरण दोनों को समभाव से अपना कर ही हो सकता है। इस तथ्य की स्थापना कामायनी में प्रसाद जी ने अत्यन्त मार्मिक रूप से किया है—

जिसे तुम समझे हो अभिशाप जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान कभी मत इसको जाओ भूल

नित्य समरसता का अधिकार उमड़ता कारण जलधि समान
व्यथा से नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान।[1]

कामायनी की सृष्टि के पूर्व आँसू में भी उन्होंने जीवन में सब दुख अथवा विरह मिलन को समभाव में अपनाने का सन्देश दिया है।

मनुष्य स्वभाव से ही कामनाओं का पुञ्ज है। वह हर प्रकार अपनी आकांक्षाओं की तृप्ति चाहता है। किन्तु संघर्षमय जीवन में मनुष्य की समस्त आकांक्षाओं का पूरा होना नितान्त असम्भव है। अतः इच्छाओं को बन्धनमय प्रमाणित कर उसमें छुटकारा पाने के लिए निवृत्ति-मार्ग का प्रचार हुआ। किन्तु सामरस्य की दृष्टि में निवृत्ति मार्ग नितान्त एकांगी है। अतः प्रसाद जी उसका समर्थन नहीं करते। व्यावहारिक दृष्टि से वे कामना और तृप्ति के समन्वय अथवा समरसता को ही उत्तम मार्ग मानते हैं[2]—

हम भूख प्यास से जाग उठे आकांक्षा-तृप्ति-समन्वय में
रति काम बने उन रचना में जो रही नित्य यौवनवय में।

मैं तृष्णा था विकसित करता, वह तृप्ति दिखाती थी उनको
आनन्द-समन्वय होता था हम ले चलते पथ पर उनको।[3]

---

१ कामायनी प ६१ ६२
२ देखिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ६०
३ प्रसाद कामायनी द्वितीय सस्करण पृ० ८२

व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है अतः प्रसाद जी व्यक्तिगत जीवन की समरसता के उपरान्त सामाजिक जीवन में भी समरसता के सिद्धान्त को अपनाने का सन्देश देते हैं। सामाजिक जीवन को समतल बनाने के लिए वह व्यष्टि और समष्टि शासक और शासित अथवा अधिकार और अधिकारी में[1] भी समरसता की स्थापना करते हैं जिसके अभाव के कारण कामायनी में वर्णित सारस्वत प्रदेश के सामाजिक जीवन में विषमता और अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

आनन्दवाद

कामायनी में समरसता सिद्धान्त की भाँति ही प्रसाद जी ने शैवागम से ही अपने अद्वैत अथवा सर्ववादमूलक आनन्दवाद का ग्रहण किया है।[2] अतः उनका यह आनन्दवाद वल्लभाचार्य के कार्य या आनन्द के रूप का न होकर तान्त्रिकों और योगियों की अन्तर्भूमि पद्धति पर है।[3]

प्रसाद जी ने कामायनी में आनन्द को साध्य मानकर श्रद्धा और इड़ा के समन्वय को प्राथमिकता दी है। रूपक की भावना के अनुसार श्रद्धा विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति है और इड़ा व्यवसायात्मिका बुद्धि। कवि ने श्रद्धा को मृदुता प्रेम और करुणा का प्रवर्तन करने वाली और सच्चे आनन्द तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है। इड़ा या बुद्धि अनेक प्रकार के वर्गीकरण और व्यवस्थाओं में प्रवृत्त करती हुई कर्मों में उलझाने वाली चित्रित की गई है।[4] इस प्रकार प्रसाद जी के मत में आनन्द की ओर प्रेरित करने वाला तत्व श्रद्धा है, बुद्धि नहीं। प्रसाद जी ने स्वयं कहा है कि यह इड़ा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने में सहायक होता है। फिर बुद्धिवाद के विकास में अधिक सुख की खोज में, दुःख मिलना स्वाभाविक है।[5] इससे

---

१ समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की। —कामा० पृ० १७०

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ६४

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० १९९३ पृ० ८२५-८२६

४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० १९९७, पृ० ८२६

५ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण आमुख पृ० ८

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने बुद्धि का विरोध व्यावहारिक दृष्टिकोण से अध्यात्म की भूमिका में ही किया है। अत शुक्ल जी का यह कथन कि बुद्धि की विगहणा द्वारा बुद्धिवाद के विरुद्ध उस आधुनिक आन्दोलन का आभास भी कवि को इष्ट जान पडता है जिसके प्रवर्तक अनातोले फ्रान्स ने कहा है कि बुद्धि के द्वारा सत्य को छोडकर और सब कुछ सिद्ध हो सकता है। बुद्धि पर मनुष्य का विश्वास नहीं होता। बुद्धि या तर्क का सहारा तो लोग अपनी भली-बुरी प्रवृत्तियों को ठीक प्रमाणित करने के लिए लेते हैं[1] साधु प्रतीत नहीं होता। प्रसाद जी ने अनातोले फ्रांस की भांति बुद्धि का सर्वांशत विरोध नहीं किया है। उन्होंने उस श्रद्धाविहीन बुद्धि का विरोध किया है जो क्लेश सन्ताप और संघर्ष को ही जन्म देने में निरत रहती है। इस प्रकार प्रसाद जी का बुद्धि विरोध किसी विदेशी बुद्धि विरोधी आन्दोलन के मूल में न होकर भारतीय व्यावहारिक वेदान्त के अनुकूल है जिसमें स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में विचार (बुद्धि) का विशेष मूल्य नहीं हृदय की ही सबसे बडी आवश्यकता है। हृदय के द्वारा भगवत्साक्षात्कार होता है बुद्धि के द्वारा नहीं। बुद्धि केवल जमादार के समान रास्ता साफ कर देती है—वह गौण भाव से हम लोगों की उन्नति की सहायक हो सकती है। बुद्धि पुलिस के समान है—किन्तु समाज के सुन्दर परिचालन के लिए पुलिस का बहुत प्रयोजन नहीं है। उसे केवल गडबड रोकना पडता है अन्याय निवारण करना पडता है। विचारशक्ति अर्थात् बुद्धि का कार्य भी इतना ही होता है। विचार शक्ति अन्ध है उसकी अपनी गति शक्ति नहीं है उसके हाथ पर नहीं हैं। हृदय भाव ही वास्तव में कार्य करता है वह बिजली अथवा उससे भी अधिक वेगगामी पदार्थ की अपेक्षा शीघ्रगामी होता है। *विचार शक्ति एक गौण सहायक मात्र है वह अधिक कुछ नहीं कर पाती।*[2]

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने अपने आनन्दवाद की प्रतिष्ठा में श्रद्धा (हृदय) और इडा (बुद्धि) का वही स्थान दिया है जो उन्हें (हृदय और बुद्धि) को विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त में प्राप्त है। फलत कामायनी में इडा (बुद्धि) अन्याय निवारण के प्रति अत्यन्त दक्ष और सजग है। व्यवस्था और नियम का उल्लंघन उसे किसी प्रकार सह्य नहीं है। कारण उसके अभाव में

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास सं० १९ ७ पृ ८३४-३८

२ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० २५-२६

सत्यानाश निश्चित है ।[1] अत वह मनु को निर्बाधित अधिकार भोगने के प्रति कड़ी चेतावनी देती हुई कहती है—

> आह प्रजापति यह न हुआ है कभी न होगा
> निर्वाधित अधिकार आज तक किसने भोगा ।[2]

किन्तु इस चेतावनी का भी मनु के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पडता । स्वेच्छाचारी मनु उत्तेजित हो कहने लगते हैं मैं शासक हूँ चिर स्वतन्त्र हूँ मेरा जीवन तभी सफल होगा जब मैं तुम (बुद्धि) पर अपना असीम अधिकार प्राप्त कर लूँगा[3] । यदि ऐसा न हुआ तो मेरा प्रजापति होना वृथा है ।[4] लाचार होकर इडा राष्ट्र कल्याण अथवा लोक धर्म की रक्षा के लिए प्रजा द्वारा विद्रोह कराकर मनु स युद्ध करती है । मनु युद्ध म आहत होते हैं । श्रद्धा का आगमन होता है वह मन की महरानी है और अपने मधुर स्पर्श स उनकी व्यथा हर लेती है ।[5] इस प्रकार श्रद्धा के अवलम्ब म पुन मनु का हृदय-कुसुम खिल जाता है ।[6] श्रद्धा के संरक्षण और पथ प्रदर्शन म मनु उस आनन्दभूमि तक पहुँच जाते हैं जो मानव जीवन का साध्य है । इस प्रकार हम देखते है कि सामाजिक व्यवस्था के लिए अनिवार्य होते हुए भी बुद्धि मानव-जीवन के उद्धार अथवा आनन्द के हेतु अपर्याप्त अथवा एकांगी है । उसके लिए श्रद्धा (हृदय) का सहयोग आवश्यक है । मानव का साम्योन्य श्रद्धा नियोजित सतनित बुद्धि द्वारा ही हो सकता है ।[7] वह सकते हैं कि प्रसाद जी ने बुद्धि का सर्वांगीन तिरस्कार

---

१ और यह क्या किन्तु नियामक नियम न मान
तो फिर सब कुछ नष्ट हुआ निश्चय जान ।
कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० २००

२ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० २००

३ मैं शासक मैं चिर स्वतन्त्र तुम पर भी मेरा
हो अधिकार असीम सफल हो जीवन मेरा ।
कामायनी पृ० २०९

४ छह ! मुझे यह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूँ,
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूँ ।—वही, पृ० २०२

५ वही पृ० २ ३

६ वही, पृ २२७

७ यह तर्कमयी तू श्रद्धामय,
तू मननशील कर कर्म अभय,
इसका तू सब सन्ताप निचय,
हर ले, हो मानव भाग्य उदय —वही, पृ० २५२

अथवा प्रतिरोध नही किया है। उनका विरोध मात्र सकुचित अनियन्त्रित बुद्धि के प्रति है जो प्रसाद म परिवर्तित होकर नाना विघ्नो, विषमताओ और अन्त म विनाश का कारण बन जाती है। प्रसाद जी का स्पष्ट मत है कि इडा (बुद्धि) और श्रद्धा (हृदय) दोनो के सहयोग से ही मानव की मुक्ति अथवा परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। यही भारतीय आध्यात्मिक दृष्टि है यही व्यावहारिक जीवन का वेदान्त है। इसम श्रद्धा (हृदय) पक्ष प्रधान और इडा (बुद्धि) पक्ष गौण है। यही कामायनी के आनन्दवाद का प्रतिपाद्य विषय है।

नियतिवाद

प्रसाद जी की नियति कल्पना बहुत कुछ वयक्तिक है वह किसी क्रमागत सिद्धान्त की प्रतिरूपमात्र नही है।[1] इस नियति पर भी उनका बौद्धिक रग था।[2] फिर भी शास्त्रो म जो नियति का स्वरूप उपलब्ध होता है उससे उनकी नियति कल्पना नितान्त भिन्न नही है। योगवाशिष्ठ म कहा गया है कि सवत्र सम रूप से स्थित जो यापक ब्रह्म की सत्ता है उसी का नाम नियति है। वही काय कारण के नियम्य और नियामक रूप स स्थित है। कारण होने पर काय अवश्य होता है और काय होने पर उसका कोई कारण अवश्य होता है। इसी नियम का नाम नियति है वही कारण आदि की नियामकता है और वही काय आदि की नियम्यता भी है।[3] नियति ही सम्पूण ब्रह्माण्ड की स्थिति, विस्तार सामर्थ्य विवेक रचना जन्म और अथ नियामकतादि की हेतुता स महासत्ता महा चिति महाशक्ति महादृष्टि महा क्रिया महा उदभव और महास्पन्दगति आदि नामो से कही गयी है।[4] रुद्र आदि देवता भी नियति का

---

१ आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ० ६५

२ रामनाथ सुमन कवि 'प्रसाद की काव्य साधना प्रथम मु० पृ० ३२३

३ यथास्थित ब्रह्मतत्व सत्ता नियतिरुच्यते।
सा विनतुर्विनेत्व सा विनेयविनेयता॥

योगवाशिष्ठ, प्रकरण २ सग १० श्लोक १

४ महासत्तति कथिता महाचितिरितिस्मता।
महाशक्तिरिति ख्याता महादृष्टिरिति स्थिता॥

योगवाशिष्ठ, प्रकरण ३, सग ६२, श्लोक १०

उल्लंघन नहीं कर सकते। माधव और हर के समान सर्वज्ञ और बहुत ज्ञानी होने पर भी नियति के नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं कर सकता।[1] रुद्र से लेकर छोटे-से छोटे तृण पर्यन्त नियति का ही नियमन व्यापार सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इस नियमन के कारण ही इसे नियति कहा गया है।[2]

योगवाशिष्ठ में विश्व की नियामिका शक्ति के रूप में नियति की जो विराट कल्पना मिलती है वह प्रसाद जी की नियति-कल्पना के अत्यन्त निकट है। योगवाशिष्ठ की नियति की भांति ही प्रसाद जी की नियति समस्त विश्व का शासन अथवा नियमन करती है। संसार में जो कुछ भी उत्कृष्ट निकृष्ट भला बुरा दिखाई दे रहा है वह नियति का ही कृत्य है।[3] नियति ही मनुष्य की समस्त एषणाओं की प्रेरक शक्ति है।[4] उसी की प्रेरणा से मानव मन में व्यापकता अथवा सकीर्णता उत्पन्न होती है।[5] सत्य और मिलन भी उसी की इच्छा का परिणाम है।[6] जागतिक दुःख त्रास आदि नियति का ही भीषण अभिनय

महानियतिर् गदिता महोद्भव इति स्सता।
महा स्पन्द इति प्रोक्ता महात्मकर्तयोन्दिता॥
योगवाशिष्ठ प्रकरण ३ सर्ग ६२ श्लोक ११

१ न शक्यते लङ्घयितुमपि रुद्रादिबुद्धिभिः।
सर्वज्ञेनापि बहुज्ञेनापि माधवेनापि हरेणापि च॥
योगवाशिष्ठ प्रकरण ३ सर्ग ६२ श्लोक २६

२ आमहारुद्रपर्यन्त नियमितर्ययति स्थिते।
आतृणान्त मजस्पन्द नियमान्नियति स्मृता॥
योगवाशिष्ठ प्रकरण ६ सर्ग ५७ श्लोक २१

३ नियति चलाती कर्म चक्र यह तृष्णा जनित ममत्व वासना
पाणि पादमय पञ्चभूत की यहाँ हो रही है उपासना।
प्रसाद, कामायनी द्वि० सं०, पृ० २७५

इस एकान्त नियति शासन में चले विवश धीरे धीरे —वही पृ० ४२

४ कर्म चक्र सा घूम रहा है यह गोलक बन नियति प्रेरणा
सबके पीछे लगी हुई है कोई व्याकुल नयी एषणा। वही पृ० २७४

५ व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सीमा में रहे बन्द —वही पृ० १०३

६ चल रहा था विजन पथ पर मधुर जीवन-खेल
दो अपरिचित से नियति अब चाहती थी मेल।
प्रसाद, कामायनी, द्वि० सं०, पृ० ८९

है।[1] इस प्रकार हम देखते है कि प्रसाद जी ने नियति को विश्व का नियामिका शक्ति के रूप मे चित्रित किया है जिसके अनुशासन का समस्त भूतवग स्वीकार करते है।

शव दशन म यह कहा गया है कि परम शिव' ही अपनी इच्छा स सकुचित होकर नियति के रूप मे स्वय अभियक्त होता है।[2] अत नियति की शक्ति अनन्त है। प्रसाद जी ने भी उसे (शिव) निराकार ब्रह्म की सभी शक्तिया गुणा विशेषताओ रूपा एव कार्यो से समलकृत करने का प्रयत्न किया है यद्यपि इस प्रसग म उन्होन (शिव) ब्रह्म का नाम कही नहा लिया है।[3] प्रसाद जी की नियति सवशक्तिमता होन हुए भी केवल सासारिक यक्तियो अथवा सीमित आत्मा का ही नियत्रण करती है। भेद बुद्धि माया पाश आदि से मुक्त शिवत्व का अनभव करन वाल आनन्दमय आत्मा पर इसका नियत्रण नही चलता।[4]

प्रसाद जी का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद स भिन्न है। उसका प्रवाह मानवता के और सृष्टि के कल्याण के लिए है। वह जीवन क प्रति आस्था और अविरोध उत्पन्न करती तथा मानव के अतिचारो को रोक कर विश्व की अबाध प्रगति का माग प्रशस्त करती है। यह मनुष्य को सामाजिक कत्तव्य की पूरी छूट देती है और कही भी लौकिक न्याय की प्राप्ति म बाधक नहा बनती। किसी भी सीमा रेखा पर जाकर पूवजन्म और उसके कर्मों की दुहाई देना और मनुष्य को सामाजिक न्याय के माग म पूरी दूरी तक जाने देन से रोकना प्रसाद की नियति का काय नहा है।[5]

---

१ नियति विकर्षणमयी त्रास स सब याकुल थ।—कामा० पृ० २०८
क्या नियति नटी क अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही
—वही पृ० १६६

२ डा० उमश मिश्र भारतीय दशन पृ० ३८५
राम लाल सिंह कामायनी—अनुशीलन द्वितीय सस्करण प ४४७

४ निराधार है किन्तु ठहरना हम दोना को आज यहीं है
नियति खल देखू न सुनो अब इसका अय उपाय नही है।
प्रसाद कामायनी, द्वितीय सस्करण पृ० २६८

५ आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, प्र० स०, पृ० ६५

३

छायावादी काव्य में सर्वात्मवाद

डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि 'छायावाद में समस्त जड़-चेतन को मानव चेतना से स्पंदित मान कर अंकित किया गया है और इस भावना को यदि कोई दार्शनिक रूप दिया जायगा तो वह निश्चय ही सर्वात्मवाद होगा।'[1] किन्तु उनके इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि सर्वात्मवाद एक स्वतन्त्र दर्शन है। कारण, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि 'छायावाद मूलतः भारतीय अद्वैतवाद का ही प्रतिभास है।'[2] वास्तव में भारतवर्ष में सर्वात्मवाद के नाम से कभी भी किसी स्वतन्त्र दर्शन की सृष्टि नहीं हुई। भारतीय दर्शन में सर्वात्मवाद अद्वैतवाद के ही एक विशिष्ट रूप में स्वीकृत होता आया है। सम्भवतः इसीसे आचार्य शुक्ल ने उसे 'वेदान्त का पुराना रूप'[3] कहा है। सर्वात्मवाद की परिभाषा करते हुए उन्होंने बताया है कि 'सर्ववाद का अभिप्राय यह है कि व्यक्त अव्यक्त, मूर्तामूर्त, किंचित जो कुछ है सब ब्रह्म ही है। इस पुराने वाद के अनुसार जगत जिस रूप में हमारे सामने है उस रूप में भी ब्रह्म ही का प्रसार है।'[4]

जहाँ तक जगत के ब्रह्मरूप होने का प्रश्न है, वेदान्त दर्शन और सर्वात्मवाद में कोई अन्तर नहीं है। वेदान्त दर्शन की 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म,'[5] 'ईशावास्यमिदं'[6]

---

१ डा० नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, १९४५, पृ० ५६

२ डा० नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, प्रथम बार, पृ० १२

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काव्य में रहस्यवाद, प्रथम संस्करण, पृ० १२८

४ वही, पृ० १२८

५ छां० उ० ३।१४।१

६ ईशोपनिषद्, १

आदि श्रुतियाँ जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं। किंतु वेदांत जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी, ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता। वेदांत का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है।[1] यही पर वेदान्त अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद से पृथक अथवा भिन्न हो जाता है। सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानते हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता। ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसमें कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही।

भारतीय अद्वैतवाद जो मुख्यतः शांकर वेदांत अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है। किंतु सर्वात्मवाद में जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सर्वकाल और सर्वदेश में मात्र सत्यरूप है। अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि में रखकर पाल डायसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा में आत्म तत्व को सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा में आत्मतत्व की सत्यता के साथ ही जगत को भी सत्य कहा है।[3] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेनिसन ने अपने अद्वैतमूलक भावों को 'हायर पैंथीइज्म' के नाम से अभिव्यक्त किया है।[4] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥—ऋग्वेद १० ९०।१

2 Pantheism--The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical (implying a denial of the personality and transcendence of God the doctrine that God is everything and everything is God
James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 430

3 Idealism--The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion
Pantheism—The universe is real and yet the atma is the sole reality for the atma is the entire universe
Paul Deusson The Philosophy of the Upanishads p 405

4 The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul, the Vision of Him who reigns?

रान्त भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल पाश्चात्य विचारधारा में सर्वात्मवाद के सिद्धा त को आचारगत एव आध्यात्मिक अनाचार का प्रश्रय भी बताया गया है।[1] छायावाद के कवियो ने औपनिषदिक अद्वैतवाद जिसम सर्वात्मवाद भी सम्मिलित है, क साथ साथ अगरेजी कवियो वर्डसवर्थ, टेनिसन आदि की सर्वात्मवादी भावनाओं स भी प्रेरणा प्राप्त की है अत यहाँ पर सर्वात्मवाद के दार्शनिक पक्ष का सम्यक विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

सर्वात्मवाद (पैन्थिइज्म)

सर्वात्मवाद अगरेजी शब्द पर्थिइज्म का अनुवाद अथवा पर्याय है। पर्थिइज्म का शाब्दिक अर्थ है-पन-(सब), थीयोज-(ईश्वर), अर्थात सब कुछ ईश्वर है।[2] इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और जगत अभिन्न और अवियोज्य (Inseparable) है-ईश्वर ही विश्व और विश्व ही ईश्वर है। इसम एकात्मवाद (Monism) और नियतिवाद (Detemınısm) दोनो का होना अनिवार्य माना गया है।[3] परम तत्व एक है इस दृष्टि स वह एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है इस दृष्टि से वह नियतिवादी है।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit can meet—Closer ın He than breathing and nearer than hands and feet, God ıs law say the wise O Soul and let us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of men cannot see But ıf we could see and hear this Vision were ıt not He? Hallam, Lord Tennyson The Works of Tennyson 1913 P 239

1 The conception of Nature as being a direct expression of the Divine character, is responsible for the moral and spiritual perversions that are everywhere associated with polytheistic or pantheistic Nature worship
E Herman The Meaning and Value of Mysticism 3rd Edition p 231

2 Pantheism (Pan, 'all and theos, God), the name given to that system of speculation, which ın ıts spiritual form identifies the universe with God Chambers's Encyclopaedia Vol VII 1926 p 732

3 In order that there may be pantheism monism and determinism must be combined
Flint Anti Theistic Theories p 336

आदि श्रुतियाँ जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं। किन्तु वेदान्त जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी, ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता। वेदान्त का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है।[1] यही पर वेदान्त अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद से पृथक अथवा भिन्न हो जाता है। सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानते हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता। ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसमें कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही।

भारतीय अद्वैतवाद जो मुख्यतः शांकर वेदान्त अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत् को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है। किन्तु सर्वात्मवाद में जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सत्यरूप और सत्यरूप में मान सत्यरूप है। अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि में रखकर पाल ड्यूसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा में आत्म तत्व को सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा में आत्मतत्व की सत्यता के साथ ही जगत का भी सत्य कहा है।[3] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेनिसन ने अपने अद्वैतमूलक भावों को डायर पन्थिइज्म के नाम से अभिव्यक्त किया है।[4] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

---

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्॥—ऋग्वेद १ ९०।१

2 Pantheism—The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical (implying a denial of the personality and transcendence of God) the doctrine that God is everything and everything is God
James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 430

3 Idealism—The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion
Pantheism—The universe is real and yet the atma is the sole reality for the atma is the entire universe
Paul Deusson The Philosophy of the Upanishads p 40

4 The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul the Vision of Him who reigns?

रात भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल ------ विचारधारा में सर्वात्मवाद के सिद्धान्त को आचारगत एवं आत्मिक अनाचार का ग्रंथ भी बताया गया है।[1] छायावाद के कवियों ने भारतीय अद्वैतवाद जिसमें सर्वात्मवाद भी सम्मिलित है के साथ साथ अँगरेजी कवियों वर्डस्वर्थ, शेलिंग आदि की सर्वात्मवादी भावनाओं से भी प्रेरणा प्राप्त की है अतः यहाँ पर सर्वात्मवाद के दार्शनिक पक्ष का सम्यक विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

सर्वात्मवाद (पन्थिइज्म)

सर्वात्मवाद अंगरेजी शब्द पन्थिइज्म का अनुवाद अथवा पर्याय है। पन्थिइज्म का शाब्दिक अर्थ है–पन–(सब), थीयोज–(ईश्वर), अर्थात सब कुछ ईश्वर है। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और जगत अभिन्न और अवियोज्य (Inseparable) हैं–ईश्वर ही विश्व और विश्व ही ईश्वर है। इसमें एकात्मवाद (Monism) और नियतिवाद (Determinism) दोनों का होना अनिवार्य माना गया है।[3] परम तत्त्व एक है इस दृष्टि से वह एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है, इस दृष्टि से वह नियतिवादी है।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit can meet—Closer is He than breathing and nearer than hands and feet God is law say the wise O Soul, and let us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of men cannot see But if we could see and hear this Vision were it not He? Hallam Lord Tennyson The Works of Tennyson 1913 P 239

1 The conception of Nature as being a direct expression of the Divine character is responsible for the moral and spiritual perversions that are everywhere associated with polytheistic or pantheistic Nature worship
E Herman The Meaning and Value of Mysticism 3rd Edition p 231

2 Pantheism (Pan 'all, and theos God), the name given to that system of speculation which in its spiritual form identifies the universe with God Chambers's Encyclopaedia Vol VII 1976 p 732

3 In order that there may be pantheism monism and determinism must be combined
Flint Anti Theistic Theories p 336

आदि दुनियाँ जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं। किन्तु वेदान्त जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता। वेदान्त का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है।[2] यहीं पर वेदान्त अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद से पृथक अथवा भिन्न हो जाता है। सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानते हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता।[2] ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसमें कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही।

भारतीय अद्वैतवाद जो मुख्यतः शांकर वेदान्त अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है। किन्तु सर्वात्मवाद में जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सत्य और सत्य का में मात्र सत्यरूप है। अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि में रखकर पाल डायसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा में आत्म तत्व को सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा में आत्मतत्व की सत्यता के साथ ही जगत को भी सत्य कहा है।[3] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेनिसन ने अपने अद्वैतमूलक भावों को हायर पैंथिइज्म के नाम से अभिव्यक्त किया है।[4] अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

---

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥—ऋग्वेद १० ९०।१

2 Pantheism—The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical (implying a denial of the personality and transcendence of God the doctrine that God is everything and everything is God
James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 430

3 Idealism—The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion
Pantheism—The universe is real and yet the atma is the *sole reality for the atma is the entire universe*
Paul Deusson The Philosophy of the Upanishads p 405

4 The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul, the Vision of Him who reigns?

रान्त भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल [illegible] के सिद्धांत को आचारगत एवं आध्यात्मिक [illegible] गया है ।[1] छायावाद के कवियों ने औपनिषदिक [illegible] भी सम्मिलित है, के साथ साथ अँगरेजी कवियों [illegible] [illegible]मवादी भावनाओं से भी प्रेरणा प्राप्त की है [illegible] दार्शनिक पक्ष का सम्यक् विवेचन कर लेना समाचीन होगा ।

सर्वात्मवाद (पैंथिइज्म)

सर्वात्मवाद अँगरेजी [illegible] पैंथिइज्म का अनुवाद [illegible] । पैंथिइज्म का शाब्दिक अर्थ है—पन—(सब) थीओज—(ईश्वर), [illegible] कुछ ईश्वर है ।[2] इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और [illegible] अवियोज्य (Inseparable) है—ईश्वर ही विश्व और [illegible] है । इसमें एकात्मवाद (Monism) और नियतिवाद (Determinism) [illegible] का होना अनिवार्य माना गया है ।[3] परम तत्व एक है [illegible] एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है, [illegible] वह नियतिवादी है ।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit can meet—Closer is He than breathing and nearer than hands and feet God is law say the wise O Soul and let us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of men cannot see But if we could see and hear this Vision were it not He? Hallam Lord Tennyson The Works of Tennyson 1913 P 239

1 The conception of Nature as being a direct expression of the Divine character is responsible for the moral and spiritual perversions that are everywhere associated with polytheistic or pantheistic Nature worship E Herman The Meaning and Value of Mysticism [illegible] Edition P 23[illegible]

2 Pantheism (Pan all and theos God) the name given to that system of speculation which in its spiritual form identifies the universe with God Chambers's Encyclopaedia Vol VII 1926 p 732

3 In order that there may be pantheism monism and determinism must be combined Flint Anti Theistic Theories p 336

योरोपीय विचारधारा मे सर्वात्मवाद के कई स्रोत बताये गये हैं, जिनमें दशन और धम प्रधान हैं। हीगल हतु अथवा प्रत्ययवादी है अत उसके सर्वात्मवाद का आधार दशन है स्पिनोजा धमपरायण है अत उसका सर्वात्मवाद दार्शनिकता से ओत प्रोत होते हुए भी धम भावना प्रधान है । तीसरे ढग का सर्वात्मवाद का यमूलक सर्वात्मवाद है जिसका आधार कवि का प्रातिभज्ञान है।

सर्वात्मवादी प्रकृति की शक्तियो एव नियमो को ईश्वर की अन त शक्ति की सान्त अभि यक्ति मानता है। वह इस नाम रूपात्मक जगत म सव विध सवत्र चित शक्ति का दशन करता है । पाश्चात्य सर्वात्मवाद की इस मा यता का आधार ईसाई आस्तिकवाद है जिसके अनसार विश्व ईश्वर के अधीन है और ईश्वर उसम अनुस्यूत है।[1]

सर्वात्मवाद की प्राय सभी परिभाषाए ईश्वर और विश्व म एकता स्थापित करती हैं। वाटरलण्ड के अनुसार ईश्वर और प्रकृति अथवा ईश्वर और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अभिन्न एकता का नाम सर्वात्मवाद है यहा तक कि उसके मत म मानवात्मा भी ईश्वर का रूपभेद मात्र है।[2] जेम्स हेस्टिग्ज के निकट सर्वात्मवाद से अभिप्राय उस सिद्धा त से है जिसके अनुसार सत्ता तात्विक रूप मे एक है साथ ही चेतन और दि य भी।[3] विलियम फ्लेमिंग के धार्मिक सर्वात्मवाद जीवात्मा और परमात्मा के अनिवाय एव शाश्वत सहअस्तित्व का सिद्धान्त है। गेनर द्वारा सम्पादित रहस्यवाद का कोश के अनुसार सर्वात्म

---

1 To regard natural forces as the finite exercise of infinite power or natural laws as the finite expression of infinite wisdom is only to assert such a depend nce of the world on God and such an immanance of God in the world as are consistent with Christian theism
Encyclopaedia of Religion and Ethics Edited by James Hastings Vol IX 1917 p 612

2 It supposes God and nature or God and the whole univer se to one and the same substance one universal being in so much that men s souls are only modifications of the Divine substance · Waterland Works Vol VIII p 81

3 By pantheism we mean that doctrine which conceives rea lity as one in essence and form and thinks of this unity somehow rational or divine
(Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol IX p 613)

वाद वह सिद्धान्त है जिसमें सभी वस्तुएं एक ही परम तत्व के प्रकार अवयव आकृति अथवा विस्तार मानी गई हैं।[1]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि प्रायः सभी सर्वात्मवादी विचारक इस बात में सहमत हैं कि प्रकृति और परमात्मा मूलतः एक हैं। साथ ही ईश्वर एक ऐसी सत्ता है जो जगत से पृथक और उससे परे नहीं है प्रत्युत उसी में अनुस्यूत है। वास्तविक जगत ईश्वर की आत्माभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सृष्टि क्रम काल निरपेक्ष अथवा चिरतन है।

सर्वात्मवाद आत्मा और परमात्मा के सहअस्तित्व का तो स्वीकार करता है किन्तु उसमें अभेद स्थापित नहीं करता। अतः इस दृष्टि से वह भारतीय अद्वैतवाद से जिसके अनुसार आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है,[2] भिन्न है। सर्वात्मवाद आत्मा को परमात्मा का अंश मानता है और अंश के अंशी में विलयन पर बल देता है। उसका कथन है कि केवल ईश्वर ही सत और चित है, अतः मनुष्य को इस लोक में अपने भीतर की पवित्र धारा के प्रवाह को मन्द नहीं पड़ने देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं करना है हां यदि सम्भव हो तो उसे अपने स्व को भी उसी में विलीन कर देना चाहिए।[3]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सर्वात्मवाद की निम्न विशेषताएं हो जाती हैं—

(१) जगत ईश्वरमय है, और ईश्वर ही जगत है।
(२) ईश्वर सर्वानुस्यूत है, किन्तु विश्वातीत नहीं है।
(३) ईश्वर निर्गुण और चिरन्तन है।
(४) ईश्वर अंशी है और जगत के समस्त पदार्थ उसके अंश मात्र हैं।

1 Pantheism The doctrine that reality comprises a single being of which things are modes moments, members appearances or projections
Dictionary of Mysticism, edited by Frank Gaynor, p 135

२ अयमात्मा ब्रह्म।—बृ० उ० २।५।१९
अहं ब्रह्मास्मि।—बृ० उ० १।४।१०

3 God alone remains real and living Man has nothing else to do in this world than to let the torrent of the Divine life flow within him and lose himself in it he can
M Emile Sausset, Modern Pantheism, 1813, P 8

(५) जीवात्मा और परमात्मा का शाश्वत सहअस्तित्व है ।
(६) प्रकृति और परमेश्वर मूलत एक हैं ।
(७) सत्ता एक है, साथ ही दिव्य और चेतन भी ।
(८) जगत मिथ्या है माया अथवा भ्रम नहीं है ।

इस सर्वात्मवाद का उन्नीसवीं शताब्दी के अँगरेजी स्वच्छन्दतावादी (Romantic) कवियों पर प्रभाव पड़ा था उनकी रचनाएं प्राय सर्वात्मवादी भावना से ओत प्रोत है । अंगरेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों के माध्यम से इस सर्वात्मवाद का छायावादी कवियों पर भी प्रभाव पड़ा । किन्तु इसके प्रभाव तथा प्रभाव के कारणों के विवेचन के पूर्व छायावादी कवियों को परम्परा से प्राप्त हिन्दी काव्य की पूर्ववर्ती सर्वात्मवादी विचारधारा का विवेचन कर लेना उचित होगा ।

हिन्दी साहित्य की विस्तृत भूमि में भी सर्वात्मवाद की कल्याणमयी धारा कभी तीव्र और कभी मन्द गति से निरन्तर बहती चली आई है । मध्य युग के भक्तों ने सर्वात्मवाद के ही सब यापी सत्य को गाया है । कबीर[1] सुन्दर[2] दादू[3] भीखा[4] तुलसी[5] आदि सभी इसी पथ के पथिक हैं । यहाँ तक कि रीतिकाल की विलासी भूमि में भी इसका स्रोत समाप्त नहीं हुआ है । बिहारी में भी हमें सर्वात्मवाद की मार्मिक अनुभूति का दर्शन हो जाता है—

मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु कांचो कांच सौ ।
एक रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ[6] ॥

बिहारी ने अपने दोहे—

अधर धरत हरि कै परत ओठ डीठि पट जोति ।
हरित बांस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रंग होति ॥[7]

---

१ लालिक लालक लालक में लालिक सब घट रह्या समाई । क०ग्र०पृ० ५१
२ सुन्दर जाने ब्रह्म में ब्रह्म जगत द्वै नाहिं ।
स० बा० स० भाग १, पृ० १०८
३ सदा लीन आनन्द में सहज रूप सब ठौर ।
दादू देखै एक को दूजा नाहीं और ॥
—बानी (ज्ञानसागर) पृ० ४२
४ भीखा केवल एक है, किरतिम भया अनन्त ।
स० बा० स० भाग १, पृ० २१३
५ सीय राम मय सब जग जानी । —तुलसी
६ जगन्नाथदास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, नवीन संस्करण १, पृ० ७८
७ ,, ,, , पृ० १७२

में प्रकृति की नाना भाव भंगिमा को एक ही ब्रह्म (हरि की) व्यापक छवि के रूप में चित्रित किया है। जिस प्रकार हरित बाँस की बाँसुरी उसी एक के विविध रंगों से सतरंगी आभा धारण करता है उसी प्रकार यह बाह्य जगत भी उसी एक की अनेक रूपात्मक अभिव्यक्ति है। निखिल सृष्टि के भीतर से परब्रह्म परमेश्वर की वंशी ही नाना सुरों में प्रतिपल बजती रहती है। आधुनिक युग में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का काव्य भी वेदान्त के सर्ववाद को ही ध्वनित करते उपस्थित हुआ।[1] असीम के प्रति अभूतपूर्व जिज्ञासा का भाव उनके काव्य का मौलिक स्वर है। अतः उक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि छायावाद द्वारा अपनी साहित्यिक परम्परा से प्राप्त सर्वात्मवाद के पक्ष को लोक चेतना के अनुरूप हृदयंगम कर लेना अत्यन्त स्वाभाविक था।

यहाँ पर हम उस लोक चेतना अथवा परिस्थितियों का भी थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए जिनसे छायावाद-काव्य की सर्वात्मवादी भावना को विशेष प्रेरणा मिली। छायावाद-युग एवं उसकी पूर्वपीठिका में भारत के प्रायः सभी महान् चिन्तक दार्शनिक वैज्ञानिक एवं कवि युग की आवश्यकताओं के अनुरूप वैदिक साहित्य की नवीन व्याख्या करने में संलग्न थे। भारत का शरीर पराधीनता के पाश में जकड़ा अवश्य था किन्तु उसकी आत्मा ने हार स्वीकार न की थी। पश्चिम ने जब उसके भौतिक शरीर पर अधिकार जमाने के पश्चात् उसकी सांस्कृतिक निधि पर भी हाथ लगाया और उसे नष्ट भ्रष्ट कर अपने सांस्कृतिक मूल्यों की गरिमा भारत की आध्यात्मिक भूमि में स्थापित करने का दुस्साहस किया तब बद्ध भारत की उदबुद्ध आत्मा विद्रोह कर उठी, और स्वामी दयानन्द विवेकानन्द तिलक अरविन्द गांधी आदि युग विभूतियाँ के रूप में स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा अपने सांस्कृतिक आदर्शों की रक्षा के लिए सतत सजग हो गईं।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की दृष्टि योरुप के अन्धाधुन्ध अनुकरण की ओर थी जिससे कालान्तर में भारत का सर्वस्व लुट जाने की आशंका

---

१ ये प्रथम प्राण
एकइ वेग जगाइछ गोपन सञ्चारे
रस रक्तधारे
मानव शिराय आर तरुर तन्तुते
एकइ हर्षेर द्वन्द्व उमयेर अणुते अणुते।
—गीतांजलि

थी।[1] अत युग की उभरती हुई चेतना द्वारा उसकी तीव्र प्रतिक्रिया अवश्य म्भावी थी। भारतीय सस्कृति के पोषक स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य सभ्यता के भोगवाद को भारत के लिए अत्यन्त अक्षम एव अहितकर सिद्ध करते हुए उसके समर्थकों को इन शब्दों में फटकारा—

'यदि कोई भारतवर्ष में भोग सुख को ही परम पुरुषार्थ कहकर प्रचार करे, यदि कोई जड-जगत को ही भारतवासियों का ईश्वर कहकर प्रचार करे तो वह मिथ्यावादी है।   पाश्चात्य सभ्यता में चाहे कितनी ही चमक दमक क्यों न हो वह चाहे कितनी ही अदभुत व्यापार करने में समर्थ क्यों न हो मैं इस सभा के बीच खड़ा होकर उनसे साफ साफ कह देता हूं कि यह सब कचरा भ्रांति और मिथ्या है। एक मात्र ईश्वर ही सत्य है एक मात्र आत्मा ही सत्य है, एक मात्र धर्म ही सत्य है। इसी सत्य को पकड़ रहो।[2] स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनता को चेतावनी देते हुए यह भी कहा था—

यदि तुम धर्म को छोड़कर पाश्चात्य जाति की चकाचौंध सबरस सभ्यता के पीछे दौड़ोगे तो तीन पीढ़ियों में तुम लोगों का विनाश निश्चित है।[3] श्री अरविन्द ने भी उन्नीसवीं शताब्दी के भारत द्वारा यूरप की प्रत्येक क्षेत्र में अनुकरण नीति का खण्डन किया और भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए धार्मिक चेतना एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण को अत्यन्त आवश्यक ठहराया।[4] उन्होंने भारतवासियों से सानुरोध कहा कि ईश्वर की यह इच्छा है

---

1 The nineteenth century in India was imitative self forget ful artificial It aimed at a successful reproduction of Europe in India forgetting the deep saying of the Geeta— Better the law of one s own being though it be badly done, than an alien Dharma well followed death in one s own Dharma is better, it is a dangerous thing to follow the law of another s nature (Sri Aurobindo—Awakening Soul of India—from speeches and writings of Eminent Indians edited by M M Bhattacharya M A Ph D P 117

२ विवेकानन्द, स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृ० ८–९

३ वही पृ० १४

4 Religion and politics the two most effective and vital ex pressions of the nations self having been nationalised the rest will follow in due course The needs of our religion and political life are now vital and real forces, and it is

कि हम यारप का बजाय अपना आत्मा का पहचानें। हम अपने ही भीतर जीवन गति तथा जीवन स्रोत ढूढना होगा। भविष्य की उन्नति के लिए हम अपने अतीत को पहचानना और तदनुकूल आचरण करना होगा। अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए हम भारत की प्रकृति एव शाश्वत जीवन के नियमानुकूल अपना सर्वाङ्गीण विकास करना होगा।[१] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के जन्म काल में देश में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रति अनास्था का भाव पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो चुका था और जनता अपने उत्थान के लिए अतीत की ओर आशा भरी दृष्टि से देखने लग गई थी।

पश्चिम का अपनी वैज्ञानिक उन्नति पर गर्व था। उसने प्रकृति को वश में कर भौतिक समृद्धि का मार्ग पा लिया था। उसी के आधारभूत उसने बड़े-बड़े साम्राज्यों एव उपनिवेशों की स्थापना की थी। किन्तु प्रकृति के पालने में पली भारत की संस्कृति उससे नितान्त भिन्न थी। उसने भौतिकता का अतिक्रमण कर चिरंतन सत्य की खोज की थी। अत जहाँ पश्चिम ने भौतिक समृद्धि के लिए प्रकृति को प्रतिपक्षी (Rival) के रूप में रखा वहाँ भारत ने

---

these needs which will reconstruct our society, recreate and remould our industrial and commercial life, and found a new and victorious art literature science and philosophy which will be not European but Indian
(Sri Aurobindo—Awakening Soul of India—from Speeches and writings of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya P 115

1 We say to the nations It is God s will that we should be ourselves and not Europe We must return and seek the sources of life and strength within ourselves We must know our past and recover it for the purposes of our future Our business is to realise ourselves first and to mould everything to the law of India s eternal life and nature
(Sri Aurobindo Awakening Soul of India from speeches and writings of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya P 115

२ प्रा शक्ति तुमा यज्ञा स गव की छीनी।
गापन कर जीवनी बना दो जजर माना।
प्रज्ञा कामायनी, द्वितीय संस्करण पृ० २०

उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने में सुख एवं आनन्द का अनुभव किया। प्रतिभा सम्पन्न ऋषियों द्वारा जिस अध्यात्मविद्या का प्रवर्तन हुआ वह अपने व्यवहार पक्ष में समन्वय एवं मानवतावाद की उदात्त भावनाओं से सिक्त है। अतः वैदिक वाङ्मय से सीधे प्रेरणा ग्रहण करने वाले छायावाद युग में लोगों के भीतर समस्त भूतगण के प्रति साहचर्य की भावना स्वतः जाग्रत हो रही थी।

छायावाद-युग में राजनीतिक आन्दोलनों ने बहुत जोर पकड़ लिया था। पराधीन भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं संस्कृति की रक्षा के हेतु एकता की नितान्त आवश्यकता थी। उसका मूल दर्शन उसे अपनी पुण्यभूमि में ही मिल गया। वह मूल दर्शन था उसका अनुभव सिद्ध अद्वैतोन्मुखित परम्परागत सर्वात्मवाद। उसी को पृष्ठाधार बनाकर भारत ने युग युग तक विश्व प्रेम और विश्व बंधुत्व का पाठ पढ़ाया था। उसी को पुनः स्वतन्त्रता के अभिलाषी भारत के मनीषियों ने देश में एकता की भावना जाग्रत करने के लिए अमोघ मंत्र के रूप में अपनाया। स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य सभ्यता के विरोध के साथ साथ वेदान्तिक अद्वैत के आवरण में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित किया था। वेदान्त के 'एक सत' के आधार पर उन्होंने कहा था—अब मैं सोचता हूं, मैं महाशक्ति तब केवल मैं ही वर्तमान रहता हूं मेरे अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं रह जाता। यही बात औरों के विषय में भी है। अतएव प्रत्यक्ष ही वही पूर्ण ब्रह्म तत्व है।[1] लोकमान्य तिलक ने भी गीताधर्म के आधारभूत यह प्रतिपादित किया कि ज्ञान वह है जिससे यह बात ज्ञात हो जाती है कि सृष्टि के अनेक व्यक्त पदार्थों में एक ही अव्यक्त मूल द्रव्य है।[2] बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में आर्य समाज का भी बड़ा जोर था। स्वामी दयानन्द ने अवतारवाद और मूर्ति पूजा का खण्डन करके वैदिक ब्रह्मवाद की स्थापना की थी। अतः आर्य समाज के प्रचार से जनता पौराणिक प्रभाव से निकल कर अवतारवाद की एकदेशीय उपासना के स्थान पर निराकार ब्रह्म की सार्वभौम भावना को अपना रही थी। महात्मा गांधी पर उपनिषद्, गीता और रामचरितमानस का गहरा प्रभाव था ही। सत्य और अहिंसा के साथ साथ उन्होंने जो सब धर्मों के साथ समान अधिकार यहां तक कि शत्रु के साथ भी मनोनुकूल

---

१ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० ६०

२ तिलक, गीता रहस्य, बारहवाँ संस्करण, आठवां प्रकरण, पृ० १७०

व्यवहार का आदेश किया उसकी तह में उपनिषदों के 'एक सत' का दार्शनिक सिद्धान्त ही काम कर रहा था।[1] सर्वात्मवाद के इसी व्यावहारिक स्वरूप को महात्मा गांधी ने 'जनता जनार्दन' की सेवा का केन्द्रबिन्दु बनाया और उसे राष्ट्र नीति में प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयोग किया। उन्हीं दिनों वैज्ञानिक जगत में भी एक अपूर्व घटना घटी। जहाँ पश्चिम के वैज्ञानिक भौतिक पदार्थों को भिन्न-भिन्न शाखाओं (रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि) में विभक्त कर विशेष अध्ययन (Specialisation) पर जोर दे रहे थे, वहीं भारत का आत्मा प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोस के रूप में अपने शाश्वत आध्यात्मिक सत्य 'चित्त मय हि संसार' को प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने में सफल हुई। सर जगदीश चन्द्र बोस ने अपने स्व निर्मित यन्त्रों द्वारा जड़ वनस्पति एवं प्राणि जगत् में एक ही चेतन सत्ता के अस्तित्व को प्रमाणित कर संसार को चकित कर दिया।[2] फिर तो भारत का हृदय अपने दार्शनिक

---

१ (क) अगर इस्लाम के लिए ही खुदा को तथा उसके पयम्बरों की अनन्त परम्परा का मानना काफी हो तो हम सब मुसलमान हैं, इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं।
देखिए- हिन्दी नवजीवन' पत्रिका, २८-९-१९२४, पृ० ५४

(ख) ईश्वर निश्चय ही एक है। वह अगम, अगोचर और मानवजाति के बहु-जन-समाज के लिए अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है। वह बिना आँखों के देखता है बिना कानों के सुनता है, वह निराकार और अभेद है। आदि
देखिए, हिन्दी नवजीवन पत्रिका, २-९-१९२१, पृ० ५३

2 Indian through her habit of mind in peculiarly fitted to realise the idea of unity, and to see in the phenomenal world an orderly universe. This trend of thought ledme unconsciously to the dividing frontiers of different science and shaped the course of my work in its constant alternations of the theoretical and the practical, of the investigation of the inorganic world and that of organic life and its multifarious activities of growth of movemant and even of sensation. This series of investigetion has fully established the funda mental identity of life relations in plant and animal seen even in a similar periodic insensibility in both corresponding to what we call sleep, and in death spasm, which

सत्य को भौतिक विज्ञान द्वारा भी पुष्टि होते देख एक अलौकिक आनन्द एवं कौतूहल से नाच उठा। इस प्रकार छायावाद-युग में दर्शन का सर्ववाद धार्मिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण तथा नूतन विज्ञान का योग पाकर व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशद रूप से उतर आया।

काल के एक दीर्घ विभाग को, जिसमें भावना की एकता पाई जाती है युग के नाम से अभिहित किया जाता है। एक ही भावना के वायुमण्डल में श्वास लेने के कारण युग जीवन के आन्तरिक अनुभवों की अभिव्यक्ति के साधना-दर्शन-साहित्य कला आदि—में समान ही प्रेरणा होती है। किसी युग विशेष में लोगों के धार्मिक विश्वास, नैतिक दृष्टिकोण आचार विचार और जीवन दर्शन लगभग समान ही होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप जन समुदाय सामंजस्य के मंगलमय सूत्र में बंधा रहता है। वास्तव में व्यष्टिगत चेतना युग की समष्टिगत चेतना का ही अंग होती है। इस दृष्टि से देखने पर छायावाद में समस्त भूतों की समष्टि प्रकृति में चेतना का आरोप और उससे तादात्म्य की भावना युग की सामूहिक चेतना जो निश्चयतः सर्वात्मवादी (सम न्वयवादी)[1] थी की ही छायामात्र प्रतीत होगी। छायावादी कवि का व्यक्तिगत जीवन चाहे कैसा भी रहा हो, किन्तु जीवन के जिन मूल्यों को उसने अपने काव्य में वाणी दी वह युग की सर्वात्मवादी, आस्तिक एवं स्वातन्त्र्य भावना को ही प्रतिध्वनित करती है।

ईसा की १९ वी शताब्दी में रहस्यात्मक कविता का जो पुनरुत्थान योरप के कई प्रदेशों में हुआ उसमें सर्ववाद (Pantheism) का-ब्रह्म और जगत की एकता का-भी बहुत कुछ आधार रहा। वहाँ इसकी ओर प्रवृत्ति स्वातन्त्र्य और आत्मसत्तात्मक भावों के प्रचार के साथ ही साथ दिखाई पड़ने लगी। स्वातन्त्र्य के बड़े भारी उपासक अंगरेज कवि शैली में इस प्रकार के सर्ववाद की झलक पाई जाती है। आयरलैंड में स्वतन्त्रता की भावना पुकार के

takes place in the plant as in the animal (The Voice of life by J C Bose) from speeches and Writings of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya p 8–9

१ शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।
प्रसाद, कामायनी, द्वितीय संस्करण, पृ० ६७

बीच ईटस (Yeats) की रहस्यमयी कवि वाणी भी सुनाई देती रही है। ठीक समय पर पहुँच कर हमारे यहाँ के रवीन्द्र भी वहाँ के सुर में सुर मिला आये थे। पश्चिम के समालोचकों की सम्मति में वहाँ के इस काव्यगत सर्ववाद का सम्बन्ध लोकसत्तात्मक भावों के साथ है। इन भावों के प्रचार के साथ ही स्थूल गोचर पदार्थों के स्थान पर सूक्ष्म अगोचर भावना (Abstractions) की प्रवृत्ति हुई और काव्यक्षेत्र में जाकर भड़कीली और अस्फुट भावनाओं तथा चित्रों के विधान के रूप में प्रकट हुई।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि योरप के रोमाण्टिक कवियों और हिन्दी के छायावादी कवियों के सर्ववादी दृष्टिकोण के मूल में स्वातंत्र्य भावना अथवा लोकसत्तात्मक भावों का विशेष हाथ रहा है। इसे हम यों भी कह सकते हैं कि जिस प्रकार योरप में लोकसत्तात्मक भावों के आधारभूत सर्वात्मवाद ने काव्य में स्थान पा लिया उसी प्रकार अध्यात्म समन्वित स्वातन्त्र्य भावना से प्रेरणा प्राप्त कर छायावाद के कवि ने सर्वात्मवादी भावनाओं और विचारों को युग प्रवृत्ति के अनुरूप अपनी रचनाओं में स्थान दे दिया। स्वातन्त्र्य भावना की इसी पृष्ठभूमि में उसने शेली, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग आदि अँगरेज कवियों की सर्वात्मवादी भावनाओं का स्वागत अथवा समादर किया और यत्र-तत्र जाने अनजाने उन्हें अपनी भावना का अंग बना लिया। इस प्रकार छायावादी सर्वात्मवाद में भारतीय परम्परागत अद्वैतपरक सर्वात्मवाद का ही विकास मिलता है। पाश्चात्य सर्वात्मवाद का प्रभाव प्रायः शैली अथवा अभिव्यक्ति तक ही सीमित है। कारण पाश्चात्य सर्ववाद में कोई ऐसा विशिष्ट तत्व नहीं है जो भारतीय अद्वैतवाद के किसी-न-किसी रूप में व्यक्त न हुआ हो।

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जायसी-ग्रन्थावली, तृतीय संस्करण भूमिका, पृ० १५२

The passion for intellectual abstractions, when transferred to literature of imagination becomes a passion for what is grandiose and vague in sentiment and in imagery

The great laureate of European democracy Victor Hugo exhibits at once the democratic love of abstract ideas the democratic delight in what is grandiose (as well as what is grand) in sentiment, and the democratic tendency towards a poetical pantheism

—Dowden's New Studies in Literature (Introduction) quoted by Pt Ram Chandra Shukla in Jayasi Granthawali (Introduction) p 152 53

छायावाद का कवि संस्कार से ही भारतीय अद्वैताश्रित सर्वात्मवाद के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान था। वह किसी न किसी रूप में भारत की किसी न किसी अन्तवादी परम्परा अथवा धारा से प्रभावित था। प्रसाद जी पर उपनिषदों का प्रभाव तो था ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी जिससे उन्होंने समरसता और आनन्दवाद के सिद्धान्त ग्रहण किये अद्वैतवादी दर्शन ही है। निराला पर विवेकानन्द के व्यावहारिक अद्वैतवाद का प्रखर प्रभाव है। पन्त और महादेवी ने भी वेदान्त दर्शन का गहन अध्ययन किया है। पन्त जी के मत में ईशावस्यमिद सर्व यत्किंच जगत्या जगत के मनन मात्र से ही जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है और हृदय में जिज्ञासा उठती है कि किस प्रकार इस क्षणभंगुर संसार के दर्पण में उस शाश्वत के मरा का बिम्ब देखा जा सकता है।[1] संसार के दर्पण में उस शाश्वत के मुख का बिम्ब देखना[2] सर्वात्मवाद का पक्ष है जो छायावाद की मुख्य प्रवृत्ति है। इसी प्रकार छायावाद के कवि को दर्शन के ब्रह्म का ऋणी[3] घोषित करने वाली महादेवी जी के इस कथन से कि जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा[4] से भी छायावाद काव्य के सर्वात्मवादी पक्ष की पुष्टि होती है। ईश्वराद्वयवाद के आधारभूत छायावादी रहस्यवाद को प्राकृतिक सौन्दर्य द्वारा अहं (आत्मा) का इदं (प्रकृति) से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न[5] कहकर प्रसाद जी ने भी प्रकारान्तर से भारतीय अद्वैताश्रित सर्वात्मवाद का ही समर्थन किया है।

---

१ पन्त गद्य पथ प्रथम संस्करण पृ० १७
२ मां! वह दिन कब आयेगा जब
मैं तेरी छवि देखूंगी
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
जग के निर्मल दर्पण में?
पन्त वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति १९४२ पृ० ३२
३ महादेवी वर्मा दीपशिखा प्रथमावृत्ति चिन्तन के कुछ क्षण पृ० १३
४ महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण, अपनी बात पृ० ८
५ प्रसाद, काव्य और कला, रहस्यवाद शीर्षक लेख, पृ० ५९

हिन्दी कविता में सर्वात्मवाद का स्रोत कभी तीव्र और कभी मन्द गति से निरन्तर प्रवाहित होता आया है। सन्त काव्य धारा में इसका तीव्रतम वेग हम देखते हैं। किन्तु वहाँ पर यह साधना अथवा भक्ति के परिवेश में ही व्यक्त हुआ है। अतः यह छायावाद के प्रकृतिमूलक सर्वात्मवाद से बहुत कुछ भिन्न है। सन्तों और छायावादी कवियों के सर्वात्मवादी दृष्टिकोण के इस भेद को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—जहाँ पूर्ववर्ती भक्ति काव्य में जीवन के लौकिक और व्यावहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनकी उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से यह पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य की प्रकृति निरपेक्षता और संसार मिथ्या की सैद्धान्तिक प्रतिक्रियाओं का विरोधी भी है। छायावाद मानव जीवन-सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है, उन्हें अव्यय की वेदी पर बलिदान नहीं कर देता।[1] परम्परित अध्यात्म प्रायः पुरुष से प्रकृति की ओर प्रवर्तित होता है—एक चेतन तत्त्व से नाना चेतन तत्त्वों की सृष्टि करता है। किन्तु छायावादी काव्य प्रकृति की चेतना सत्ता से अनुप्राणित होकर पुरुष या आत्मा के अधिष्ठान में परिणत होता है। उसकी गति प्रकृति से पुरुष की ओर, द्रव्य से भाव की ओर होती है। और इस दार्शनिक अनुभूति के अनुरूप काव्य वस्तु चयन करने में छायावादी कवियों ने प्रकृति के अपार क्षेत्र से यथेच्छ सामग्री ग्रहण की है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी सर्वात्मवाद का मूलाधार प्रकृति सौन्दर्य और उसके भीतर निहित रहस्य की प्रेरणा ही है। यह उसकी धर्म साधना का फल न होकर उसकी काव्य साधना अथवा सौन्दर्यानुभूति का ही प्रतिफल है। नाम रूपात्मक जगत में तथा कल्पना भूमि में रमण अथवा विचरण करके ही छायावाद के कवि ने सर्वात्मवाद के पथ को अपनाया है। व्यक्त जगत का आधार लेकर ही वह सर्वान्तर्गत चेतना एवं सूक्ष्मतम सौन्दर्य सत्ता की ओर उन्मुख हुआ था। इसी से छायावाद की सर्वात्मवादी धारा में अन्तर्जगत और बहिर्जगत के विकास तथा बहिरन्तर क्रान्तियों का प्रादुर्भाव भी है।[3]

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य प्र० सं० पृ० ३२०
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य प्र० सं० पृ० ३२१
३ बहिरन्तर की सत्यों का जग जीवन में कर परिणय
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मंगल हो निःसंशय।
पन्त, स्वर्ण किरण, प्रथम संस्करण, पृ० २२

किन्तु इंगित अध्यात्म अथवा [illegible] सिद्धान्तों का प्राय अभाव सा पाया जाता है।

छायावादी सर्वात्मवाद मुख्यतया प्रकृति सौन्दर्य पर ही आधारित है, जो प्रकृति रहस्यवाद का ही एक पक्ष है अतः उसका विवेचन हमने आगे रहस्यवाद के भीतर प्रकृति रहस्यवाद के अन्तर्गत किया है। अतः यहाँ पर छायावादी कविता में अंगरेजी कविता अथवा पाश्चात्य सर्वात्मवाद के प्रभाव को ही स्पष्ट कर देना अभीष्ट है।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि पाश्चात्य सर्वात्मवाद में कोई ऐसा तत्व नहीं है जो भारतीय अद्वैतवाद के किसी न किसी रूप की परिधि में न आ जाता हो। अतः जहाँ तक सिद्धान्त पक्ष का सम्बन्ध है छायावादी कवियों पर पाश्चात्य सर्वात्मवाद का प्रभाव नगण्य सा ही है। हाँ भाव अथवा विचार–साम्य की दृष्टि से उसके प्रभाव को छायावाद के कवियों विशेषकर पन्त जी ने अवश्य स्वीकार किया है। इसी से उन्होंने कहा है कि विश्ववाद सर्वात्मवाद आदि का प्रभाव छायावादी कवियों ने अधिकतर कवीन्द्र रवीन्द्र से (जो भारतीय औपनिषदिक तथा कबीर की ही परम्परा में आते हैं) और शेली आदि अंगरेजी कवियों से ग्रहण किया।[1] इस सम्बन्ध में पन्त जी ने लिखा है कि मैंने १९ वीं शती के अंगरेजी कवियों में शेली वर्ड्सवर्थ कीट्स और टेनिसन का विशेष अध्ययन किया है और ये कवि मुझे अत्यन्त प्रिय भी लगे हैं। किन्तु इन सब कवियों में कीट्स मेरा सबसे प्रिय अंगरेजी कवि रहा है और उसके ओड्स और सानेट्स' का मेरी कविता पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। कीट्स और टेनिसन के काव्य से ही मुझे शब्द चयन और शब्द सौन्दर्य का बोध हुआ। वीणा पल्लव गुञ्जन काल की मेरी कविता का कलात्मक पक्ष इन दो कवियों से प्रभावित हुआ है। वर्ड्सवर्थ की कविताएँ विशेषकर उनकी इम्मारटलिटी ओड का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। शेली भी मुझे प्रिय रहा है।[2] इसी प्रकार रामकुमार वर्मा ने स्वयं स्वीकार किया है कि शेली के काव्य में उभरा विद्रोहात्मक आदर्शवाद जिसकी सुन्दर अभिव्यक्ति उसके ओड टु द वेस्ट विंड में हुई है, मुझे बहुत पसन्द आया। ब्लेक और

---

१ पन्त गद्य-पथ आज की कविता और मैं—शीर्षक निबन्ध पृ० १३३

२ रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्र० सं० परिशिष्ट पृ० २८६

और वर्डस्वर्थ की रहस्यवादी कविता मुझे बहुत प्रिय रही है।'[1] अतएव हम देखते हैं कि छायावादी कवियों पर अंगरेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि, जिनकी गणना सर्वात्मवादी कवियों में की जाती है, का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। कवीन्द्र रवीन्द्र का काव्य भी, जिससे छायावादी कवियों ने प्रेरणा प्राप्त की थी, शेली के आदर्शवाद से प्रभावित था।[2] अतः यह सहज ही कहा जा सकता है कि अंगरेजी कवियों की सर्वात्मवादी भावनाओं को छायावाद के कवियों ने कुछ तो सीधे उनकी रचनाओं द्वारा और कुछ अप्रत्यक्ष रूप में टैगोर की गीतांजलि द्वारा अपनी रचनाओं के सृजन में अवश्य अपनाया है।

प्रकृति रहस्यवाद और प्रतीकवाद की चर्चा करते हुए इंज ने कहा है कि प्रकृति परम सत्ता को आधा छिपाये और आधा व्यक्त किये हुए है, और इसी भाव दृष्टि से उसे उसका (ईश्वर का) प्रतीक माना जा सकता है।[3] अंगरेजी के सर्वात्मवादी कवियों ने प्रकृति को इसी रहस्यात्मक भावदृष्टि से देखा है। अतएव उन्होंने उसे एक प्रकार का झीना आवरण माना है जो आत्मा को आधा छिपाये तथा आधा व्यक्त किये हुए है।[4] प्रकृति के इस आवरण में उसने ईश्वर का दर्शन भी किया है।[5] शेली को विश्व के प्रत्येक अणु परमाणु

---

1. रवीन्द्र सहाय वर्मा, हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्र०सं० परिशिष्ट पृ० २८०
2. Brownings influece was considerable during his most prolific period ... But his deepest admirations have been for Shelley and Keats among English poets
   Beroy Kumar Bhattachrya The philosophy of Rabindra nath Tagore p 21
3. Nature half conceals and half reveals the Deity and it is in this sense that it may be called a symbol of Him
   W R Inge Christian Mysticism 6th edition 192[illegible] p 2[illegible]
4. For words, like Nature half reveal
   And half conceal the soul within
   (The works of Tennyson edited by H Lord Tennyson see in Memoriam p 248
5. God is seen
   In the star in the stone, in the flesh in the soul and the clod The—poetical works of Robert Browning Vol II 1912 edited by Augustine Birrel p 30[illegible]

म एक व्यापक चेतन सत्ता का अनुभव होता है। उसके समीप वही एक चिर नन है शेष सब अस्थायी और परिवर्तनशील है।[1] और वही अंधकार और प्रकाश वनस्पति तथा प्रस्तर सब म अनुभव करने तथा जानने योग्य है।[2] इसी प्रकार वर्ड्सवर्थ प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ म आत्मा का स्पन्दन देखता है[3] उसने अपनी प्रसिद्ध आत्मचरितात्मक रचना प्रिल्यूड (Prelude) म अनुभव किया है कि प्रकृति म एक अंतश्चेतना परि याप्त है जिसम समस्त प्राणियों का सहअस्तित्व है और जो स्वत ईश्वर हैं तथा महापूर्ण म स्थित है।[4] उसके निकट भौतिक जगत ईश्वर की अभि यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नही है। इसी से उसे पूर्ण परितोष उस समय हुआ जब उसने समस्त जड़-चेतन पदार्थों म ईश्वर की स्निग्ध शक्ति का अनुभव कर लिया।[5] ब्राउनिंग भी समस्त जड़ चेतन पदार्थ म अपनी ही आत्मा का स्फुरण देखता है तथा उससे तादात्म्य स्थापित करता है।[6] इस प्रकार अंग्रेजी रोमांटिक कविता म सर्वात्मवाद

1 The one remains the many change and pass The Poetical works of P B Shelley Vol II 1807 edited by Mrs Shelley P 139

2 He is a pre ence to be felt and known
In darkn ss and in light from h rb and stone
Ibid p 139

3 And tis my faith that every flower
Enjoys the air it breathes
The poetical Works of Wordsworth edited by Thomas Hutchinson 1933 (Early Spring) p 482

4 The one interior life
In which all beings live with God themselves
Are God existing in the mighty whole —
Quoted by Gereld Bullett in The English Mystics p 212

5 I was only then
Contented when with bliss ineffable
I felt the centiment of Being spread
O er all that moves and all that seemeth still —
The Poetical Works of Wordsworth Book Second edited by Thomas Hutchinson (The Prelude) p 648

6 Nature ! animate inanimate
Ir parts or in the whole there s somet ing there
M inlike that some how meets th man in me
The Poetical works of Browning Vol II Edited by A Birrel p 305

की बड़ी ही विशद अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। अतः स्वभाव से ही सर्वात्मवादी विचारों के पोषक होने के नाते रोमाण्टिक अंगरेजी कविता के अध्ययन से छायावादी कवियों की सर्वात्मवादी भावनाओं को बड़ा उत्तेजन मिला। अतः पन्त जी की 'आत्मा है सरिता के भी'[1] 'शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास'[2] 'राम रूप घनश्याम अमर'[3] 'रूप नहीं है नश्वर .... सुन्दर है वह अमर'[4] जैसी पंक्तियों पर वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स आदि का प्रभाव ढूंढ़ा जा सकता है। बादल,[5] छाया[6] जैसी कविताओं में चेतना की प्रेरणा भी शैली के बादल (cloud), वेस्टविण्ड (west wind) जैसी कविताओं से प्राप्त की हुई मानी जा सकती है। इसी प्रकार 'उड़ते वसों' और 'लहरों से मृदु हाथ'[7] में ईश्वर दर्शन की प्रवृत्ति पर भी वर्ड्सवर्थ और टेनिसन की प्राकृतिक पदार्थों में ईश्वर दर्शन की प्रवृत्ति का प्रभाव माना जा सकता है।

रामकुमार वर्मा की निम्न पंक्तियों पर—

> यह तुम्हारा हास आया।
> इस घटे से बादलों में
> कौन सा मधुमास आया ?[8]

जिनमें वह किसी अलौकिक सत्ता का आभास पाते हैं शैली की 'I laugh when I pass by thunder' का स्पष्ट छाप है।

यद्यपि निराला जी के बादल राग की विराट भावना पर ऋग्वेद के उद्दाम, निर्बन्ध, आधाररहित, मरुत का ही विशिष्ट प्रभाव है, किन्तु बादल

---

१ पन्त, गुंजन तृतीय संस्करण, पृ० १४
२ पन्त, पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ० १२२
३ पन्त, 'बादल शायक' कविता पृ० ३६
४ पन्त, युगवाणी, पृ० ६२
५ पन्त, पल्लविनी पृ० ३२
६ वही पृ० ४७ २९
७ कभी उड़ते वसों के साथ मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से मृदु हाथ बुलाते फिर मुझको उस पार।
पन्त, पल्लविनी, पृ० ६९
८ रामकुमार वर्मा आधुनिक कवि (३) पृ० ४४

राग' का पार न चल मुझको [1] जैसी पंक्तियों पर शैली के 'वेस्टविण्ड' का प्रभाव माना जा सकता है।

छायावाद के रोमाण्टिक कवियों के पाश्चात्य सर्वात्मवाद से प्रभावित होने का एक महान कारण था कि पाश्चात्य सर्वात्मवाद भारतीय सर्वात्मवाद का ही एक रूप था। जर्मनी और इंगलैंड में जो रोमाण्टिक जागरण हुआ, उसके पीछे कुछ-न-कुछ भारतीय प्रभाव भी था, ऐसा मानने का सुनिश्चित आधार है। श्लीगल-बन्धुओं ने जर्मन भाषा के द्वारा यूरोप में भारतीय ज्ञान का अपरिमित आस्वादन किया। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता और मनुस्मृति तथा शाकुन्तला और ऋतुसंहार को देखकर जर्मनी के कवि और विद्वान अभिभूत थे। श्लीगल ने जब भगवद्गीता पढ़ी तब भगवान कृष्ण की स्तुति में उसके मुख से एक पूरी गद्य कविता ही फूट पड़ी कि 'ओ ईश्वर के व्याख्याता! ओ इस काव्य के कर्ता! अथवा सत्यों के बीच तुम्हारा जो भी नाम हो तुम्हारी वाणी के प्रभाव से मनुष्य का हृदय उस अकथनीय आनन्द की भूमि पर पहुँच जाता है जो अत्यन्त उच्चता पर अवस्थित तथा सनातन और ईश्वरीय है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और तुम्हारे चरणों पर अपना अभिनन्दन भेंट करता हूँ।[3]

इंगलैंड के शैली, वर्ड्सवर्थ और कारलाइल्स में भारतीय प्रभावों के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं। कारलाइल पर वेदान्त का प्रभाव जर्मनी होकर पड़ा था। ओड आन इण्टीमेशन्स आव इम्मारटलिटी नामक अपनी कविता में वर्ड्सवर्थ आत्मा के पूर्व जन्म की ओर संकेत करता है जो स्पष्ट ही भारतीय प्रभाव है। उसने वनस्पतियों में जो चेतना के होने (तथा प्रकृति और मानवात्मा के ऐक्य)[4] की बात कही है वह भी जैन विचारों (और उपनिषदों)

---

१ निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० १४८

२ देखिये रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव प्रथम संस्करण पृ० १७३

३ श्री रामतीर्थ के लेख में उद्धृत अंश का अनुवाद (मार्डन इण्डिया एण्ड दि वेस्ट)
देखिये रामधारी सिंह दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय द्वितीय संस्करण पृ० ४२६

४ To her fair works did Nature link
The human soul that through me ran
W Words worth written in Early Spring Stanza II

का छाया सी लगती है। शेली के अदोनाय (Adonais) नाम्नी कविता की कल्पना उपनिषदों पर आधारित है एवं उक्त कविता के कितने ही भाव शुद्ध वेदान्त के हैं।[1] डब्ल्यू० बी० ईट्स ने भी अपनी इण्डियन अपान गाड तथा 'दि इण्डियन टू हिज लव' आदि रचनाओ मे भारतीय भाव व्यक्त किये है। उन्होंने उपनिषदों के अनुवाद भी निकाले थे जिस काय म श्री भगवान पुरोहित नामक एक भारतीय विद्वान् उनके सहायक थे।[2]

इस प्रकार १९ वी शताब्दी म पश्चिम म जो विश्व मानवतावाद का आन्दोलन चला उस पर परोक्ष रूप म भारतीय सर्वात्ममूलक आध्यात्मिक मानवतावाद का भी प्रभाव पड़ा ऐसा मानने मे कोई अड़चन नहीं है। अस्तु जब २० वीं शताब्दी में हिन्दी के छायावादी कवि पश्चिम के रोमान्टिक कवियो के सम्पर्क म आये तब आदान प्रदान के सिद्धान्त के आधारभूत उनके सर्वात्मवादमूलक मानवतावादी दृष्टिकोण पर पाश्चात्य विश्वमानवतावाद का भी प्रभाव पड़ा, विशेषकर पन्त जी पर। इस सम्बन्ध म आचाय विनय मोहन शर्मा ने लिखा है कि पन्त पर विवेकानन्द का प्रभाव अमिट रूप स पड़ा है। इसीलिए वे अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त विभिन्नता म एकता (Unity in diversity) के दर्शन करते हैं। पाश्चात्य मानववाद भी अद्वैतवाद के इसी सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है। पन्त जी की ज्योत्स्ना म यही मानववाद है जिसका विकास 'गुजन' के बाद 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' म विशद रूप से हुआ है।[3] पाश्चात्य मानवतावाद भारतीय अद्वैतवाद की प्रतिध्वनि अवश्य है, किन्तु वह उससे (भारतीय अद्वैत अथवा सर्वात्ममूलक मानवतावाद से) बहुत कुछ भिन्न भी है। अत यहाँ पर दोनों (भारतीय मानवतावाद तथा पाश्चात्य मानवतावाद) का अन्तर स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

भारतीय मानवतावाद का मूलाधार, जैसा कि हम कह चुके हैं एकमात्र अद्वैतमूलक सर्वात्मवाद अथवा अध्यात्म है जिसके अनुसार सभी एक हैं—अन्तर केवल परिमाण और मात्रा के तारतम्य म है। अत भारतीय

---

१ रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय द्वि० सं० पृ० ४२७
See also the Poetical works of P B Shelley edited by Mr Shelley, Vol III Adonais XIX, p 131 XXXVIII p 137, XLI p 138 XLII, p 139

२ रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय द्वि० सं० पृ० ४२८

३ आचार्य विनय मोहन शर्मा, दृष्टिकोण, पृ० १९१

मानवतावाद पाश्चात्य मानवतावाद की भाँति केवल प्राणिमात्र का यथाशक्ति और यथासम्भव कष्टनिवारण ही नहीं करता,[1] प्रत्युत गीता के अनुरूप यह विश्वास करता है कि समस्त भूतों में समभाव से स्थित ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखा जा सकता है तथा सम दर्शन द्वारा ही शुभ मार्ग की प्राप्ति हो सकती है।[2] इस प्रकार भारतीय दृष्टि से प्राणिमात्र में भगवद्बुद्धि रखकर उस विराट भगवान को सर्वत्र देखना मानवता का सत्यस्वरूप है। ईश्वर से प्रेम, भक्तों से मैत्री, अज्ञानी पर कृपा, दुष्टों के प्रति उपेक्षाभाव मानवता का यथार्थ स्वरूप है।[3] भारत का मानवतावाद यह स्वीकार करता है कि जो सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में और सबमें आत्मा का दर्शन करता है वह किसी से घृणा नहीं करता।[4] कारण विश्वव्यापी प्रभु के प्रत्यक्ष ज्ञान से विश्वप्रेम और विश्वप्रेम से सेवाभाव का आविर्भाव होता है। सेवा रूप में भारतीय मानवतावाद प्राणिमात्र के प्रति मैत्री तथा करुणा पर विशेष बल देता है। सर्वात्मवादी वैदिक ऋषि ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्यों का प्रथम कर्तव्य है कि वे निश्छल भाव से मानवता का समादर करते हुए दूसरों की रक्षा और उन्नति में सहायक हों।[5]

---

1 Humanitarian movements have been chiefly directed towards proventing recognizable physical cruelty to men or animals or both

Encyclopaedia of the Social Sciences

Vols VII VIII p 544

२ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

गीता १३।२८

३ सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः ।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च ।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥

श्रीमद्भागवत ११।२।४५, ४६

४ यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।

ई० उ० ६ ७

५ पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः ।

ऋग्० ६।७५।१४

सर्वात्मवाद पर आधारित भारत का मानवतावाद भीतर बाहर के द्वन्द्वों को मिटाना चाहता है—समस्त भेद भावों एवं अंतरायों को दूर करने का उपक्रम करता है। एतदर्थ वह विश्व को खण्ड रूप में नहीं देखता प्रत्युत एक ही परम सत्ता से व्याप्त सम्पूर्ण भूतवर्ग को एक ही सूत्र में पिरोया हुआ देखता है। यही कारण है कि भारतीय अद्वैतमूलक मानवतावाद का पर्यवसान अथवा परिपाक व्यावहारिक जीवन में अहिंसा, विश्व बन्धुत्व विश्व प्रेम, चरित्र की उच्चता, त्याग, सेवा समरसता, सबके प्रति विश्वास सब प्राणियों में प्रीति, समस्त पशु पक्षियों में प्रीति, सब वस्तुओं में प्रीति आदि आध्यात्मिक गुणों में होता है। संक्षेप में भारतीय मानवतावाद सर्वभूतहिते रतः की भावना से ओत प्रोत है और उसका मूलाधार सर्वात्मवादी अथवा आध्यात्मिक है। किन्तु पाश्चात्य मानवतावाद के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती।

दार्शनिक दृष्टि से पाश्चात्य मानवतावाद प्रकृति दर्शन तथा निरपेक्षवाद दोनों का विरोधी है।[1] भारतीय मानवतावाद की भाँति वह अध्यात्मवादी तथा निरपेक्षवादी न होकर निश्चयात्मक रूप से सापेक्षवादी है, अतएव सत्य की विश्वातीतता में उसका किंचित विश्वास नहीं है।[2] वह केवल इतना ही स्वीकार करता है कि जो सत्य और वास्तविकता मानव की पहुँच के भीतर हैं वे ही मनुष्य के लिए पर्याप्त हैं।[3]

आचार शास्त्र की दृष्टि से पाश्चात्य मानवतावाद दया क्षमा करुणा विषयक सिद्धान्तों का एक गम्भीर क्रमबद्ध (शास्त्रीय) अध्ययन है, साथ ही

---

1 Humanism in philosophy is opposed to naturalism and absolutism
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings, Vol VI 1913, p 830

2 Humanism is confessedly a relativism and as such is a denial of the transcendence of the real and true
Ibid p 830

3 It holds on the contrary that the truth and reality for man which are attainable by man are also sufficient for man
Ibid, p 830

यह व्यक्त करने का प्रयत्न भी है कि यदि दया आचार का मूलाधार नहीं तो उसका अभिन्न अंग अवश्य है।[1] पाश्चात्य मानववाद का उपयोगितावाद मूलतः एक विज्ञान है जबकि मानववाद सामान्यतया एक दार्शनिक दृष्टिकोण है।[2] पश्चिम का मानववाद यह घोषित करता है कि मनुष्य वस्तुतः उसी तरह प्रकृति का एक अंग है जिस तरह कोई अन्य जीव अतः मनुष्य को प्रकृति से बिलकुल परे समझना दार्शनिक दृष्टि से गलत तथा आचार की दृष्टि से निषिद्ध है।[3] इस प्रकार पाश्चात्य मानवतावाद का विकासवाद से भी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अतः यह विकासवाद के सिद्धान्त का ही व्यावहारिक रूप माना गया है जो प्राणिमात्र के प्रति साहचर्य की भावना पर आधारित है तथा पूर्व और पश्चिम की भावसरणियों को मिलाता है।[4] इस सम्बन्ध में ध्यान देने की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पाश्चात्य मानवतावाद का दया सम्बन्धी सिद्धान्त भारतीय आध्यात्मिक करुणा की भांति ही सार्वभौम सहानुभूति की विस्तृत भूमि पर अधिष्ठित है

---

1 Humanitarianism in the ethical sense is the deliberate and systematic stu y of humane principles the attempt to show that humanene s is an integral part if not the actual basis of morals
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913 p 8 6

2 To pragmatism Humanism is closely related But pragmatism is intrinsically a theory of knowledge while Humanism is a more general philosophic attitude
Ibid p 830

3 Man is as truly a part and product of nature as any other animal and the attempt to set him up as an isolated point outside of it is philosophically false and morally pernicious Ibid p 838

4 Humanism then is the application of an evolutionary doctrine founded on the kinship of life which units the sentiment of East and West
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913, p 837

जिसकी सीमा के भीतर मनुष्य तथा मनुष्येतर सभी प्राणी आ जाते हैं।[1] इस प्रकार पाश्चात्य मानवतावाद का उद्देश्य यथार्थ और आदर्श में सामञ्जस्य स्थापित करना है, न्याय के साथ करुणा की मैत्री बिठाना है और इस तथ्य की खोज करना है कि किस प्रकार मानवमात्र के प्रति सहानुभूति प्रकट की जाय और उस सहानुभूति को किस प्रकार मानव के हितार्थ कार्य रूप में परिणत किया जाय।[2] इस दृष्टि से पाश्चात्य मानवतावाद सुव्यवस्थित एवं क्रियाशील करुणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[3] मानवतावाद के उक्त स्वरूप को ही वर्ड्सवर्थ, शेली आदि अँगरेजी के आधुनिक कवियों ने अपनाया और अपनी रचनाओं में स्थान दिया।[4] अँगरेजी कवियों के प्रभाव से छायावाद के कवियों ने भी पाश्चात्य मानवतावाद के स्वरूप को अपनाया, क्योंकि वह भारतीय करुणा के मेल में था। किन्तु भूलना न होगा कि पाश्चात्य मानवतावाद भारतीय सर्वात्मवादी मानवतावाद से बहुत कुछ भिन्न है।

---

1 The first point which needs to be emphasized is this—that the principle of humaneness is based on the broad ground of universal sympathy, not with mankind only but with all sentiment beings —Ibid p 837

2 It is the function of humanitarianism to reconcile the ideal with the actual to unite compassion with judgement, and to discover not only how we feel or ought to feel towards our fellow beings but also to what extent and with what limitations we can put those feelings into practice
Ibid p 837

3 humanitarianism is nothing more than conscious and organized humaneness
Encyclopaedia of Religion and Ethics, edited by James Hastings Vol VI 1913, p 836

4 It is sufficient to mention such names as those of Thomson Pope, Goldsmith Cowper Burns Shelley and Wordsworth to show how largely our modern poets have been concerned in this humanizing process Ibid p 837

ईसाई धर्म इस बात को स्वीकार नहीं करता कि जानवरों में भी वही आत्मा है जो मनुष्य में, अतः उसने जानवरों की भलाई की किंचित चिंता नहीं की।[1] धर्म की इस कमी को पूरा करने के लिए पश्चिम में मानवतावादी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य विशेष रूप में बच्चों और जानवरों की रक्षा करना है।[2] किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय सर्वात्मवादी मानवतावाद की भाँति पाश्चात्य मानवतावाद सर्वतोभावेन हिंसा का निषेध तथा अहिंसा का समर्थन करता है। सच तो यह है कि पश्चिम का मानवतावाद भारतीय ब्राह्मण अथवा ब्रह्मवाद के समान सर्वविधि हिंसा का प्रतिषेध नहीं करता, वह केवल अनावश्यक रूप में तथा लापरवाही, अज्ञान और व्यसनवश की जाने वाली जीव-हत्या का ही विरोध करता है। इस प्रकार पाश्चात्य मानवतावाद का भारतीय मानवतावाद के उस पक्ष से कुछ भी लगाव नहीं है जिसमें अहिंसाव्रत के पालन के लिए सर्वस्व त्याग की शिक्षा दी गयी है[3] और जिसका छायावादी कवियों ने खुलकर समर्थन किया है।[4]

---

1 Christianity denied ouls to animals and therefore had little care for their welfare
Encyclopaedia of the Social Sciences Vol VII VIII 1954, p 545

2 Humanitarian movements have been directed to the special protection of children and animals
Ibid, p 546

3 For example, it is not Brahmanism What is condemns is not the taking of life, as such but the unnecessary or want on taking of life through callousness ignorance or force of habit and there is no point whatever in applying to humanitarianism the trite story of the Hindu whose principles forbade him to drink water when the microscope had revealed to him the infinitesimal creatures that inhabit it
Encyclopaedia of Religion and Ethics Edited by James Hastings Vol VI 1913 p 837

४ नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय।
—पंत : युगवाणी, १९३९, पृ० १३

संक्षेप में छायावाद के मानवतावाद का मूलाधार भारत का चिर-परिचित आत्मवाद का सिद्धान्त है जो लोक और परलोक (सापेक्ष और निरपेक्ष) दोनों को अपनाता हुआ चलता है। इसी से छायावाद का कवि एक ओर मानव[1] तथा मानवेतर सृष्टि में ईश्वर (निरपेक्ष सत्य) की खोज करता है और दूसरी ओर लोक भूमि में समस्त भूतों के हित साधन की कामना करता है।[2] उसके समीप 'जन हित ही धर्म नीति और सदाचार का सच्चा मूल्यांकन है।[3] सर्वात्मवादी दृष्टिकोण अपनाने के कारण छायावाद का कवि समन्वय के सिद्धान्त का समादर करते हुए[4] मानवता के लिए अपेक्षित एकता समता समरसता प्रेम आदि उदात्त भावनाओं को अपने काव्य में वाणी देता है जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हमें छायावाद की कविता में कामायनी काव्य के रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद का मानवतावाद सर्वात्मवादी होने के कारण आध्यात्मिक भावना से सिक्त अथवा परिपूर्ण है जिसका पाश्चात्य मानवतावाद में नितान्त अभाव है। यही कारण है कि जहाँ छायावाद का मानवतावाद अहिंसा अथवा करुणा को[5] जीवन की सार्थकता के

१ मानव को समझो हे देवों के आराधक
मानव के भीतर ईश्वर ही अविरत साधक।

—पन्त, अतिमा प्रथम संस्करण पृ० ४६

२ विद्या वभव, गुण विशिष्टता
भूषण हों मानव के,
जीव प्रेम के बिना किन्तु ये
दूषण हैं मानव के।

—पन्त युगवाणी १९३६, पृ० १०

३ धर्म, नीति औ सदाचार का
मूल्यांकन है जनहित —

—पन्त युगवाणी १९३९ पृ० ३५

४ शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

—प्रसाद कामायनी, द्वि० सं० पृ० ६७

५ करुणा ही से होते साधक
ये जन्म मरण सध्या प्रभात।

—पन्त, युगवाणी १९३९, पृ० ९५

रूप म स्वीकार करता है वहाँ पाश्चात्य मानवतावाद उसे उपयोगितावाद तक ही सीमित रखता है।[1] आत्मवाद की व्यापक भूमि पर खड़ा होने के कारण छायावाद का मानवतावाद पाश्चात्य उपयोगितावादी तथा विकासवादी मानवतावाद के ■ वों-सहयोग सहानुभति प्रम सहअस्तित्व तथा समानता आदि को भी स्वत अपनाये चलता है।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद का मानवतावाद सर्वात्मवाद की विस्तृत भूमि पर अधिष्ठित है और उसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन म साधक बनाना है। पाश्चात्य मानवतावाद की भाँति वह दुबलों का धम नहीं है।[3]

---

1 Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913 p 830

२ आत्मा की महिमा से मडित होगी नव मानवता।

—पत युगवाणी १९३९ पृ० १३

3 It (Humanitarianism) is unavoidably a religion for the weak

Encyclopaedia of the Social Sciences Vols VII VIII, 1954 p 548

४

छायावादी काव्य में रहस्यवाद

पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद पर कतिपय दर्शनों का स्पष्ट प्रभाव है। उनमें से कुछ अधिक प्रभावित करने वाले दर्शन अद्वैतवाद (सर्वात्मवाद) और उसके विभिन्न रूप—शैवाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि हैं। इन दर्शनों का परिणाम पूर्व और पश्चिम दोनों की रहस्यानुभूतियों में देखा जा सकता है। शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णवों का माधुर्य भाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा कामकला की सौन्दर्य उपासना का उद्गम वेदों और उपनिषदों के ऋषियों की वे साधना प्रणालियाँ हैं, जिनका उन्होंने समय समय पर अपने संघों में प्रचार किया था।[1] संक्षेप में बृहदारण्यक छान्दोग्य आदि श्रुतियों के प्रकाश में जिस रति प्रीति युक्त भक्ति का विकास भारतीय रहस्यवादियों ने किया उसका स्वरूप अद्वैतवादी था।[2] सूफी रहस्यवादियों ने भी सर्वत्र अद्वैत का पक्ष लिया है। उनमें अद्वैत के भी उसी प्रकार कई पक्ष हैं जिस प्रकार भारतीय अद्वैत के।[3] उनकी विभिन्न विचारधाराओं में कितनी ऐसी हैं जिनका साम्य अद्वैतवाद विशिष्टाद्वैतवाद आदि के साथ है।[4] अतः अद्वैत विशिष्टाद्वैत शैवाद्वैत आदि दर्शनों

---

१ प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, रहस्यवाद-शीर्षक लेख, पृ० ३४

२ प्रसाद काव्य और कला, देखिए रहस्यवाद-शीर्षक लेख पृ० ४४ ४५

३ आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय तसव्वुफ अथवा सूफीमत १९४५, पृ० १४५

४ पं० रामपूजन तिवारी सूफीमत—साधना और साहित्य प्रथम संस्करण, पृ० ३०६

से विशेष रूप से प्रभावित होने के कारण छायावादी काव्य में भी रहस्यवाद का समावेश हुआ। रहस्यवाद के अनेक रूप हैं--
(१) प्रकृति रहस्यवाद (२) प्रेमपरक रहस्यवाद, (३) दार्शनिक रहस्यवाद (४) धार्मिक रहस्यवाद आदि। कि तु उक्त अनेक रूपों में छायावाद में अभिव्यक्त रूप प्रकृति और प्रेमपरक रहस्यवाद के हैं क्योंकि ये कवि-सुलभ रहस्यवाद हैं साधनाप्रसूत रहस्यवाद नहीं।

छायावादी रहस्यवाद का विश्लेषण

पिछले अध्यायों में हम अद्वैतवाद के विविध रूपों और छायावाद पर उनके प्रभाव को देख चुके हैं। उनमें हमने अद्वैतवाद के सिद्धान्त अथवा चिन्तन पक्ष पर विशेष बल दिया है। किन्तु अद्वैतवाद का एक दूसरा पक्ष भी है-- भावात्मक--जहाँ वह रहस्यवाद की कोटि में आ जाता है। वास्तव में दर्शन के अद्वैतवाद को ही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद की संज्ञा दे दी जाती है।[1] इस प्रकार अद्वैतवाद और रहस्यवाद में मूलतः कोई भेद नहीं ठहरता। इनमें बीच की विभाजन रेखा चिन्तन की अधिकता अथवा न्यूनता मात्र मानी जा सकती है। अर्थात् दर्शन में चिन्तन की अधिकता और रहस्यवाद में भावना की अतिशयता होती है। वरन् जगत के नानात्व एवं आत्मा में निहित नित्य चेतन सत्ता से सान्निध्य अथवा तादात्म्य स्थापित करना दोनों का ध्येय है। इसी से स्पर्जियन[2] ने कहा है कि रहस्यवादी, चाहे किसी देश और काल का क्यों न हो भगवान् कृष्ण के शब्दों में कहेगा--

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ --गीता १८।२०

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव हृदय अथवा ज्ञान की वह उन्मुक्त दशा जिसमें सभी वस्तुएँ एकता के तार में गुम्फित प्रतीत होती हैं रहस्यवाद और दर्शन दोनों का मूलाधार है। यही कारण है कि रहस्यवादी संसार की किसी वस्तु को नगण्य नहीं मानता। उसके यहाँ संसार का कण कण अनिर्वचनीय गुणों से युक्त है। इसी भावना से अभिभूत होकर प्रसिद्ध रहस्यवादी ब्लेक ने सिकता के एक कण में सम्पूर्ण विश्व और एक सामान्य पुष्प में स्वर्ग

---

1 जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।
पं० रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली प्र० सं०, पृ० १९५

2 Spurgaon Mysticism in English literature 1927, p 3

को देखने की परिकल्पना की है।[1] इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि समस्त विभिन्नताओं में एकता तथा सान्त में अनन्त की भावानुभूति का जो दार्शनिक सिद्धान्त है वही रहस्यवाद का भी पक्ष है।[2]

रहस्यवाद और दर्शन में भेद

अनेकता में एकता या सान्त में अनन्त की खोज दर्शन और रहस्यवाद दोनों को अभीष्ट है। किन्तु इस सत्य को दर्शन अनुभवों की व्याख्या और रहस्यवाद आत्मा की आभ्यन्तर उड़ान (Inward Flight of the soul) द्वारा पहचानना चाहता है। दर्शन अपनी सत्यता के लिए बाह्य प्रमाण की अपेक्षा रख सकता है, किन्तु रहस्यात्मक अनुभव स्वतः सिद्ध अपने में परिपूर्ण होता है। उसे अपनी सत्यता के लिए कथमपि बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। दर्शन और रहस्यवाद में एक महान अन्तर यह है कि दर्शन के अनुसार परम तत्व का साक्षात्कार उस समय तक सम्भव नहीं है जब तक कि अविद्या अज्ञान अथवा माया का निराकरण नहीं हो जाता। किन्तु रहस्यवाद में अन्तर्गत अविद्या, अज्ञान अथवा माया आदि समस्त भ्रमों का नाश परम तत्व के अनुभव के उपरान्त ही सम्भव हो सकता है।[3]

धर्म और रहस्यवाद

जिस प्रकार दर्शन और रहस्यवाद का लक्ष्य पूर्ण को पाना अथवा हृदयंगम करना है उसी प्रकार धर्म भी पूर्ण को प्राप्त करना चाहता है। दार्शनिक और रहस्यवादी की भाँति धार्मिक भी असत् और अशिव पर सत और शिव की विजय घोषित करता है। कोई भी सच्चा धार्मिक–मनोवैज्ञानिक अर्थ में यदि साम्प्रदायिक अर्थ में नहीं–रहस्य वृत्ति अथवा रहस्यानुभूति से अछूता नहीं रह सकता और कोई भी रहस्यवादी धार्मिक के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।[4]

---

1 To see a world in a grain of sand
And a heaven in a wild flower Ibid p 11

2 The mystic rajoices in the definite passing off into indefinite Mahendranath Sircar Hindu Mysticism, p 25

3 P D Ranade Pathway to God in Hindi literature p 103

4 E Under hill Mysticism, 17th Edition, 1944 p 70

धम का यह सिद्धा त कि अहम के उपशम द्वारा मनुष्य उ मुक्त दशा अथवा अपार आनन्द का अनुभव कर सकता है सम्पूर्ण रहस्यवादी दर्शन के मूल म निहित है।[1] इस प्रकार रहस्यवाद, सही अर्थों में धम क क्षेत्र की वस्तु हो जाता है। अवश्य ही अपने इस व्यापक अर्थ मे धम एक स्थगित विश्वास न होकर वह अनुभूति है जिसमे एक सचेतन शाश्वत सत्ता समस्त विश्व म व्याप्त साथही उसके परे भी प्रतीत होती है।[2] उसी सचेतन सत्ता म निमग्न होकर धार्मिक अथवा रहस्यवादी अपने वास्तविक स्वरूप को पाना चाहता है। इस प्रकार धम और रहस्यवाद एक दूसरे से अभिन्न ह । अत धम की भांति ही रहस्यवाद भी एक जीवन दर्शन है कोरा सिद्धा त मात्र नही है । किन्तु दर्शन के क्षेत्र म जहा रहस्यवाद भौतिकवाद और स देहवाद का विरोधी है व । धम के क्षेत्र म वह कोरे कमकाण्ड का भी विरोधी है।[3]

रहस्यात्मक अनुभव की विशेषताएं

प्रातिभज्ञान

दार्शनिक और रहस्यवादी दोनो परम तत्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं। किन्तु तर्क और धारणाओ से खेलते रहने के कारण दार्शनिक परम तत्व को पहचान नही पाता[4] और रहस्यवादी उसे प्रातिभज्ञान द्वारा सहज ही हृदयगम कर लेता है।[5] इसे हम यो भी कह सकते हैं कि दार्शनिक सत्य के साक्षात्कार के लिए साधना और प्रातिभज्ञान आवश्यक है।[6] प्रतिभा रहस्यवादी के लिए वह कुजी है जिसकी सहायता से वह उस महल के कपाट खोलने मे समथ होता है जिसम अव्यक्त सत्ता निवास करती है। इस प्रकार प्रातिभज्ञान

1 Gerald Bullet The English Mystics p 17

2 Gerald Bullet The English Mystics p 19

3 W R Inge Christian Mysticism sixth edition 1935 p 22

4 An intellectualist plays with words concepts and categories but misses the truth and reality
Radhakrishnan The Philosophy of Tagore p 152

5 The ultimate Reality is known in a flash of intuition —Ibid p 152

6 To catch sight of the philosophical ideal we require meditation and mystic insight —Ibid p 152

रहस्यज्ञान का सार तत्व है । जो कुछ रहस्यवादी कहता है वह उसके प्रातिभ ज्ञान का परिणाम है । प्रातिभज्ञान के प्रकाश में ही वह चिरंतन सत्य को हृदयंगम करता है । उसी के पार्श्व में वह चरम सत्य को प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ में तरंगित देखता है । इस प्रकार रहस्यवादी प्रातिभज्ञान को ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट साधन मानता है ।[1] किन्तु यह समझना भूल होगी कि प्रातिभज्ञान बुद्धि इच्छा शक्ति (Will) तथा भावना का विरोधी है । वस्तुत ये (बुद्धि इच्छा शक्ति और भावना) सभी प्रातिभज्ञान के पार्श्व में उपस्थित रहते हैं और रहस्यानुभूति में सहायक होते हैं । बुद्धि रहस्यवादी के संकल्प को दृढ़ करती है इच्छा शक्ति उसे क्रियाशील बनाती है और भावना उसे अपने आराध्य से एकाकार होने में सहायक होती है ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि रहस्यवाद अथवा रहस्यानुभूति में प्रातिभज्ञान की सार्वभौमिकता प्राप्त है । यही वह दिव्य शक्ति है जिसने संसार के समस्त रहस्यवादियों को एक अदृष्ट किन्तु स्थायी सूत्र में बाँध रखा है ।

छायावादी कवि का रहस्यवादी स्वरूप

इतना जान लेने के उपरान्त कि रहस्यात्मक अनुभव के लिए आध्यात्मिकता प्रातिभज्ञान सात्विक बुद्धि बलवती इच्छा शक्ति और भव्य भावना नितान्त आवश्यक है, यह प्रश्न उठता है कि क्या छायावाद के तथाकथित रहस्यवादी कवि रहस्यवादी की विशेषताओं से युक्त हैं ? यदि न्याय की नैत्रों से देखा जाय तो छायावादी कवियों की जीवन चर्या और साधक रहस्यद्रष्टाओं की जीवन चर्या में दो ध्रुवों का अन्तर दिखाई पड़ेगा । वस्तुत छायावादी कवियों को साधकों की श्रेणी में बिठाना बड़े साहस का काम होगा । किन्तु इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों का झुकाव प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ओर था । उन पर इस प्रकार के योद्धा स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ श्री अरविन्द, तिलक गांधी तथा टैगोर का व्यापक प्रभाव था । इन मनीषियों और युगद्रष्टाओं के प्रभाव के ऊपर ही प्रसिद्ध छायावादियों–प्रसाद निराला पन्त

1 Spiritualists consider intuition to be the only effective organ of knowledge Ibid p 152

2 R D Ranade Pathway To God in Hindi literature 1959 p 3

महादेवी–ने वेद उपनिषद गीता, शवदर्शन बौद्धदर्शन आदि का गहन अध्ययन करके जीव त सिद्धा ता को आत्मसात करने का भरपूर प्रयत्न किया था। इसके अतिरिक्त अस्थिर रूपराशि मे स्थिर अरूप–तत्त्व की ओर संकेत करने वाले तथा प्रेम को साधन और साध्य समझने वाले स त एव भक्त कवियो के प्रति भी वे परम श्रद्धालु थे। इस प्रकार आध्यात्मिक भूमि म विचरण करने के कारण उनका ध्यान अद्वैत दर्शन के मूल सिद्धा त अभिन्नता जो रहस्यवाद का भी मूलमन्त्र है या ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। अत अद्वैत दर्शन की छाया म उ होने विश्व के निखिल सौन्दर्य म विराट का दर्शन रूप और स्थूल म अरूप और सूक्ष्म का भावन अथिर म थिर का अ वेषण और अलौकिक प्रेम का आरोप किया। आध्यात्मिकता के आग्रह से ही वे निरपेक्ष साधना, कष्ट सहिष्णुता दुख सुख म समरसता अथवा समत्व बुद्धि अराध, अहिंसा सेवा श्रद्धा करुणा मत्री मुदिता उपेक्षा आदि रहस्यात्मक जीवन की प्रमुख विशेषताओ की ओर बड वेग से बढ। मध्ययुगीन स तो और भक्तो के प्रभाव से उन्होने पावन प्रेम और माधुर्य भाव की गगा भी बहाई। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी कवियों का जीवन साधको के समान चाहे पवित्र न रहा हो कि तु पवित्र जीवन के तत्त्वो को आत्मसात करने की लालसा उनम सदा बनी रही और जस जस समय बीतता गया वसे वसे वे और अधिक सयमी अथवा व्रती बनते गये। यही कारण है कि १९१७ की सफल रूसी क्रांति का भारतीय राजनीति पर प्रभाव पडने के पश्चात भी छायावाद के अध्यात्मप्रेमी, ऊर्ध्वगामी कवियो ने हिंसात्मक क्रा ति का स्वर मुखर नहीं किया। इतना होते हुए भी छायावादियो के रहस्यात्मक भाव ऋषियो और स तो की भाँति साधनाप्रसूत प्रातिभज्ञान की उपज नही माने जा सकते। वे उनकी म ज्ञानभूति अथवा रवि धर्म के ही परिणाम हैं। इसी से उनकी कृ तियो म ऋषियो और स तो की अपेक्षा कलात्मकता और कल्पनिकता की ही प्रधानता है। अत तटस्थ दृष्टि स यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि कवि पहिले और रहस्यवादी बाद मे हैं और कबीर दादू तुकाराम श्री अरविन्द आदि साधक रहस्यवादी पहले और कवि बाद म हैं। साधकों द्वारा का य को अपनाने का कारण यह है कि वणनातीत रहस्यात्मक अनुभवो को व्यक्त करने के लिए काव्य म व र अ य कोई साधन नहीं हो सकता। कि तु छायावादी कवियो की अनेकता म एकता एव सा त म अन त आदि रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अथवा अभिव्यक्तियाँ ठीक उसी स्तर की हैं जिस स्तर की १९ वी

शताब्दी की स्वच्छन्दतावादी अंगरेजी कवियों की रहस्यभावना, जिन्हें मूलतः रहस्यवादी नहीं माना जाता।[1] वे रहस्यवादी इसलिए जान पड़ते हैं कि कवि और रहस्यवादी दोनों व्यष्टि में समष्टि और नश्वर में अविनश्वर की खोज करते हैं। अभिप्राय यह कि छायावादियों की रहस्य भावना रोमानी काव्यगत रहस्यवाद की कोटि की है साम्प्रदायिक अथवा साधनात्मक रहस्यवाद की कोटि की नहीं। स्वच्छन्दतावादी कवियों के रहस्यवाद में प्रायः प्रकृति और प्रेमपरक रहस्यवाद की ही प्रधानता होती है अतः छायावादी रहस्यवाद में भी उक्त दोनों रूपों की प्रधानता है। यहाँ पर छायावादी काव्य में उनकी सम्यक विवेचना के पूर्व संक्षेप में उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाल देना लाभकर सिद्ध होगा।

प्रकृति रहस्यवाद

प्रकृति रहस्यवाद एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। ईश्वर की अभिव्यक्ति होने के कारण प्रकृति विराटरूप है विराटरूप प्रकृति के समस्त अवयव आध्यात्मिक सत्य के प्रतिरूप हैं, अतः वे परम सत्ता के ही किसी न किसी गुण को प्रकाशित कर रहे हैं।[3] अनेकरूपात्मक प्रकृति में एकता निहित है। एक ही उसका आदि और एक ही उसका अन्त है।[4] इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर प्रकृति रहस्य

---

1 The mystical apprehension of a unity in multiplicity, of eternity in time, runs like a thread of light through the works of many nineteenth century poets not regarded primarily as mystics

Gerald Bullet The English Mystics p 124

2 Both poet and mystic are concerned to find the universal in the particular, the eternal aspect of temporal things

Idid p 183

3 The great Mysticism is the belief that all symmetrical natural objects are types of some spiritual truth or existence Every thing seems to be full of God s reflex if we could but see it

W R Inge Christian Mysticism, p 27

4 (a) Unity underlies diversity This is the basic fact of Mysticism

C F E Spurgeon, Mysticism in English Literature, 1927, p 3

वादी प्रकृति का परम पुजारी बनता है उसके साथ तादात्म्य स्थापित करता है और भावयोग से उसके म य ईश्वर की स्पष्ट–अस्पष्ट झाँकी देखता है।

प्रकृति रहस्यवादी प्रकृति के माध्यम से ही ईश्वर का साक्षात्कार करता है। अत वह प्रकृति के भौतिक पक्ष की उपेक्षा कर उसके आध्यात्मिक पक्ष का चिन्तन करता है। इसी से उसका उद्देश्य यथार्थ में आदर्श अथवा भव समुदाय में अध्यात्म का उद्घाटन करना होता है। उक्त उद्देश्य के परिणामस्वरूप उसके समीप प्रकृति का प्रत्येक रूपखण्ड परम सुन्दर का प्रतीक बनकर उपस्थित हो जाता है और निखिल प्रकृति उसके लिए परम ज्योति का मन्दिर बन जाती है। इस मनोदशा में उसे साधारण असाधारण पार्थिव अपार्थिव, अपूर्ण पूर्ण और सान्त अनन्त प्रतीत होने लगता है।

इन्ज के मतानुसार प्रकृति रहस्यवाद एक ऐसा विश्वास है जिसमें प्रत्येक वस्तु जो कुछ भी वह है उससे अधिक की ओर संकेत करता हुई प्रतीत होती है।[1] अत पेड़ों से गिरती हुई पत्तियाँ उसे जगत की क्षणिकता और परिवर्तनशीलता का ही बोध नहीं कराती प्रत्युत निकट भविष्य में ही उनके–फूल पत्तों से लद जाने अथवा मांसल जीवन का सन्देश भी देती है। जल उसके शरीर का मल ही नहीं धोता उसके हृदय को सिक्त स्वच्छ करता है। उसके समीप ऊँचा पहाड़ पत्थरों का ढेर नहीं है वह शक्ति है जो गुरुत्वाकर्षण को अभिभूत कर रही है उस बोझ का प्रतीक है जो नीचे खींचने वाली परिस्थितियों को ठोकर मार कर उठाता है बसन्त में कली नहीं चटकती, शिशिर में पत्तियाँ नहीं झरती ब्राह्मी और रौद्री शक्तियाँ काम करती हैं कमल किंजल्क के बीच में भौंरा मधुपान नहीं करता लक्ष्मी अमृत के कलश लुढ़काती है।[2] इस प्रकार प्रकृति रहस्यवादी को अपने कोमल और दुद्धर्ष दोनों रूपों में नवीन जीवन की सन्देशवाहिका सत्य का दर्पण तथा एक ही चेतन सत्ता से ओत प्रोत प्रतीत होती है।

(b) The unity of all existance is a fundamental doctrine of mysticism W R Inge Christian Mysticism p 28

1 The true Mysticism is the belief that everything in being what it is is symbolic of something more

W R Inge Christian Mysticism p 250

२ डा० सम्पूर्णानन्द चिद्विलास ज्ञानमण्डल काशी, २० ११ ० २१

प्रकृति को परम चेतन का अधिवास मानने के कारण प्रकृति रहस्यवादी प्रकृति के विभिन्न व्यापारों यथा पत्तों के मर्मर, निर्झर के रव और विहग वृन्द के कलरव में ईश्वर का पुनीत संगीत सुनता है। प्रत्येक पुष्प उसके लिए पूजा का प्रतीक बन जाता है जिससे वह दिव्य रस का पान करता है। यहाँ तक कि सामान्य दूर्वादल में भी वह अलौकिक शक्ति का अनुभव करता है। इस प्रकार प्रकृति उसके लिए दिव्यानुभूति का आधार, परमानन्द का स्रोत एवं असीम का प्रतीक बन जाता है।

रहस्यवाद का विवेचन करते हुए कुमारी अंडरहिल ने लिखा है—'प्रकृति में ईश्वर का दर्शन, प्राकृतिक पदार्थों में अपार्थिव अलौकिक दीप्ति मान पाना का अनुभव ईश्वर का अत्यन्त सहज और सामान्य रूप है। अधिकतर लोग सौन्दर्य और भाव के वशीभूत होकर ही इस प्रकार की चेतना की प्रारंभिक झलक का अनुभव करते हैं। जहाँ इस प्रकार की चेतना की पुनरावृत्ति होती रहती है वहीं पर उस अनन्त सत्ता की, जो समस्त भूतों का अन्तरात्मा है और जिसे आधुनिक लेखकों ने प्रकृति रहस्यवाद के नाम से गौरवान्वित किया है, अनन्त झलक मिलती है।[1] उक्त व्याख्या के आधार भूत प्रकृति रहस्यवाद की निम्न विशेषताएं स्पष्ट हो जाती हैं—

प्रकृति रहस्यवादी

(१) प्रकृति में चेतना का आरोप करता है।

(२) प्रकृति में ईश्वर का दर्शन करता है।

(३) उसका उक्त दर्शन स्पष्ट नहीं होता—उसे ईश्वर की केवल अस्पष्ट झलक ही मिलती है।

---

1 To see God in nature,' to attain radiant consciousness of oneness of natural things is the simplest and commonest form of illumination. Most people, under the spell of emotion or of beauty, have known flashes of rudimentary vision of this kind. Where such a consciousness is recurrent there results that partial yet often overpowering apprehension of the Infinite life immanent in all living things which some modern writers have dignified by the name of Nature Mysticism.

E. Underhill, Mysticism 17th Edition, 1944, p. 234

(४) उसकी इस प्रकार का झलक का आधार उसकी भावुकता तथा प्रकृति का अपार सौ दय है ।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक पदार्थों म अपार्थिव की खोज करने के कारण वह भौतिकता की उपेक्षा करता है सवचेतनावादी होने के कारण अनेकता म एकता का दशन करता है और प्रकृति के रूपखण्डों को ईश्वर रूप मानने के कारण प्रतीकवादी होता है ।

प्रेमपरक रहस्यवाद

यो तो रहस्यवादी का दृष्टिकोण ही प्रेमी का दृष्टिकोण है[1] और रहस्यवाद म प्रेम का लक्ष्य ईश्वर म तादात्म्य स्थापित करना है । किन्तु प्रेमपरक रहस्यवाद म प्रेम ही परमेश्वर है ।[2] प्रेम का अवलम्ब लेकर ही आत्मा अपने मूलस्रोत की ओर प्रवृत्त होती है । इस प्रकार प्रेम रहस्यवाद का सिद्धान्त और आधार दोनो है ।[3] प्रेम को सवस्व मान लेने से इस कोटि के रहस्यवाद म यह भी कहा जाता है कि हृदय ही हम ईश्वर तक ले जाने म सफल काम हो सकता है बुद्धि म यह सामर्थ्य नहीं है ।[4] प्रेम ही ईश्वर है अत स्वग और ससार दोनो म प्रेम से मधुरतर सुन्दर प्रबलतर उच्चतर बृहत्तर तथा पूणतर कुछ भी नहीं है । ईश्वर के समस्त चमत्कार प्रेम के ही चमत्कार हैं और अध्यात्म प्रेम का ही अट्टहास है ।[5] इस प्रकार प्रेम रहस्यवादी

---

1 The mystics outlook indeed is the lover s outlook
E Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 89

२ (क) सवव्यापी प्रेम ही ईश्वर है ।
विवेकानन्द प्रेमयोग द्वितीय सस्करण जून १९५० पृ० १२२
(ख) स ईश अनिवचनीय प्रेम स्वरूप । —नारद सूत्र

3 The business and method of mysticism is love
E Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 85

4 It is the heart and never the reason which leads us to absolute
E Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 86

5 The wonders of God are wonders of love Spirituality is the laughter of Divine Love
L L Watkin Poets and Mystics First published 1953
p 59

के लिए आनन्द का स्रोत, जगत का रहस्य और समस्त भूतों की जीवन शक्ति है।[1] प्रेम रूप में ही ईश्वर मनुष्य में निहित है। अतः प्रेम ही मनुष्य की पवित्रतम विभूति और जीवन का सार तत्व है। प्रेम के द्वारा ही मनुष्य अपने 'स्व' को पहचानता तथा ईश्वरीय गुणों को आत्मसात करता है। अतः रहस्यवादी पुकार पुकार कर कहता है 'मेरे भगवान मेरे प्रियतम! तुम पूर्णतः मेरे हो और मैं पूर्णतः तुम्हारा हूँ। देव! मुझे या तो प्यार करने दो या मेरी जीवन लीला समाप्त कर दो।'[2] इस प्रकार प्रेम रहस्यवादी जीवन का प्रारम्भ, मध्य और अन्त सब कुछ है। पूर्ण आत्मसमर्पण इसका मूल मन्त्र है।[3] अतः रहस्यवादी अपने को ईश्वर के प्रेम में उसी तरह खो देता है जिस तरह बूंद सागर में विलीन हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी के लिए प्रेममय जीवन से बढ़कर कोई और जीवन नहीं है। जो प्रेमरस को नहीं पाता उसका जीवन व्यर्थ है। किन्तु रहस्यवादी प्रेम सांसारिक प्रेम से नितान्त भिन्न होता है। यह प्रेम का प्रतिकार नहीं चाहता। ईश्वर का प्रेम नैसर्गिक प्रकाश और संसार का प्रेम कृत्रिम प्रकाश है।[4] ईश्वर के प्रेम में 'वादों' और 'सौदों' के लिए स्थान नहीं होता।[5] किन्तु सांसारिक प्रेम से भिन्न होते हुए भी यह रहस्यवादी प्रेम इस नियम का अपवाद नहीं है कि हमारे सुख का तीन चौथाई अंश दुःख ही है, क्योंकि दुःख का अन्त होते ही प्राप्ति का अन्त भी हो जाता

---

1 For him it (love) is the source of joy, the secret of the universe, the vivifying principle of things
E Underwhill, Mysticism 17th Edition 1944, p 36

2 The cry of the mystic is my God my love Thou art all mine and I am all Thine 'O let me love or not live
E Underhill, Mysticism, 17th Edition p 83

3 Love is the beginning middle and end of virtue
Its essence is complete self surrender
W R Inge Christian Mysticism, p 193

4 The true light is love of God the false light is love of the world
W R Inge Christian Mysticism, p 199

5 The true mysticism claims no promises and makes no demands
E Underhill Mysticism 17th Edition, 1944, p 92

है।[1] अतः रहस्यवादी दुख को प्रेम का पूरक मानता है और दुख और प्रेम के युगल पक्षों पर बैठकर ईश्वर तक पहुंचना चाहता है।[2] रहस्यवादी के हृदय में करुणा की अजस्र धारा के फूट जाने का कारण यही आध्यात्मिक प्रेम है।[3] समस्त देशों तथा कालों के रहस्यवादी साहित्य के अनमोल मोतियों की आभा इसी अलौकिक प्रेम से दिखाई पड़ती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर प्रेमपरक रहस्यवाद की निम्न विशेषताएं मानी जा सकती हैं —

(१) प्रेम परमेश्वर है अन्य सब याचक है।
(२) संसार में सर्वत्र ईश्वरीय प्रेम की लीला चल रही है।
(३) प्रेमरूप ईश्वर मनुष्य के हृदय में मौजूद है।
(४) अहम् के नाश और निःस्वार्थ सेवा से उसका साक्षात्कार हो सकता है।
(५) दुख प्रेम का ही पूरक है
(६) सम्पूर्ण आत्मसमर्पण इसका मूलमंत्र है।

अण्डरहिल के अनुसार अपने सजातीय स्वच्छन्द प्रेमी की भाँति रहस्यवादी भी बिना किसी फल की आशा के अपने आराध्य की सेवा करता है।[4] अतः आध्यात्मिक वातावरण से अभिभूत छायावाद के स्वच्छन्द प्रेम का रहस्यवादी प्रेम के स्तर को स्पर्श करना अत्यन्त स्वाभाविक है।

प्रकृति और प्रेमपरक रहस्यवाद के उक्त संक्षिप्त परिचय के उपरान्त अब हम यह देखना है कि छायावाद काव्य के भीतर उनकी अभिव्यक्ति किस प्रकार और किन रूपों में हुई है।

---

1 Love is no exception to the rule that our joys may be three parts pain for where pain ends gain ends too
W R Inge Christian Mysticism p 319

2 Watching life he sees in pain the complement of love and is inclined to call these the wings on which mans spirit can best take flights towards the Absolute
E Underhill Mysticism p 19

3 'Mercy is the circle of divine Love
E I Watkin Poets and Mystics p 59

4 Like his type the devout lover of romance then the mystic serves without hope of reward
E Underhill Mysticism 17th Edition, 1944 p 93

प्रकृति रहस्यवाद

छायावाद की प्रवृत्तियों और समकालीन पृष्ठभूमि में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार छायावाद-युग में उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक नवोत्थान के परिणाम स्वरूप वेदों और उपनिषदों के कुछ चिरंतन सत्यों ने दुबारा जन्म लिया। हम यह भी जानते हैं कि छायावाद काव्य को प्रेरणा देने वाले प्राय सभी महान चिंतकों—विवेकानन्द, तिलक, गांधी, अरविन्द, टैगोर आदि ने उपनिषदों की शिक्षा को ही भारतीय जीवन का नवनीत मानते हुए जन समाज में यह प्रचारित किया कि सृष्टि के अनेक व्यक्त पदार्थों में एक ही अव्यक्त मूल द्रव्य है।[1] उसी का साक्षात्कार भारतीय जीवन का चरम उद्देश्य रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्यावहारिक वेदान्त द्वारा जन मन में यह भाव अच्छी तरह भर दिया कि 'आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है, अन्य सब स्तरों का जीवन मृत्यु स्वरूप है।'[2] इसी से उन्होंने प्रकृति के मुँह का घूँघट हटाकर कम-से-कम एक बार उस देशकालातीत सत्ता के दर्शन का यत्न करना ही हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण बताया।[3] ऋषियों मुनियों भक्तों और सन्तों ने अपने जीवन में इसी सत्ता का साक्षात्कार किया था। इस प्रकार जड़ चेतन की एकता और प्रकृति में ईश्वर की व्यापकता छायावादियों के लिए कोई नई वस्तु नहीं थी। यह सिद्धान्त उन्हें परम्परा में ही प्राप्त था। अत युगचेतना के अनुरूप समस्त भूतों की समष्टि प्रकृति में चेतना के आरोप तथा उससे साक्षात्कार की लालसा उनके मन में सहज ही उत्पन्न हो गई। यही कारण है कि राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, तिलक और गांधी की भाँति हम छायावादकालीन कविता में भी वेदों और उपनिषदों के सनातन सिद्धान्तों—अनेकता में एकता और समस्त भूतसमुदाय में ईश्वर की व्याप्ति आदि—को पूर्णरूप से जीवित पाते हैं। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा की कविता की आधारशिला भारत के इन्हीं प्राचीन सत्यों की भावभूमि है। इन कवियों ने अपने निबन्धों और भूमिकाओं में बार बार यह कहा

---

१ अव्यक्तात्तु परः पुरुषो—अव्यक्त ब्रह्म निराकार रूप में सर्वत्र व्यापक है।

कठोपनिषद् तृतीय वल्ली ८

२ विवेकानन्द विविध प्रसंग, पृ० ३५

३ ,, स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृ० ८

है कि छायावाद के मूल म भावों का सम्ब ध उपनिषद के भावो से है ।[1] अत उपनिषदो के आधारभूत' जब प्रकृति की अनेकता म परिवतनशील विभिन्नता म (छायावादी) कवि ने एने तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम म समाया था तब प्रकृति का एक एक अग अलौकिक अस्तित्व लेकर जाग उठा ।[2] यही कारण है कि इस युग की प्राय सब प्रतिनिधि रचनाओ मे किसी न किसी अश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दय म व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी मिलता रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दय पर चेतना का आरोप भी ।[3]

प्रकृति मे चेतना का आरोप

महादेवी जी के शब्दो म हमारी अ त शक्ति भी एक रहस्य स पूण है और बाह्य जगत का विकास क्रम भी अत जीवन म ऐसे अनेक क्षण आते रहते हैं जिनम हम रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते है। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है अन्यथा हम सभी देशो

---

१ (क) प्रकृति के अस्त व्यस्त सौन्दय म रूपप्रतिष्ठा बिखरे रूपो म गुण-प्रतिष्ठा फिर इनकी समष्टि म एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त म रहस्यानुभूति का जसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम काव्य देता है वसा अन्यत्र मिलना कठिन होगा ।
महादेवी वर्मा दीपशिखा प्रथमावत्ति १९४२ चिन्तन के क्षण पृ ११

(ख) छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म स अधिक दशन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूत और अमूत विश्व को मिलाकर पूणता पाता है । वही पृ० ११

(ग) ईशावास्यमिद सव के मनन मात्र से ही जीवन के प्रति दृष्टि-कोण बदल जाता है और हृदय म जिज्ञासा उठती है कि किस प्रकार इस क्षणभगुर ससार के दपण मे उस शाश्वत के मुख का बिम्ब देखा जा सकता है ।

पत गद्य-पथ, पृ० १७५ ७६

२ महादेवी वमा यामा द्वितीय सस्करण १९४७, अपनी बात, पृ० ८

३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१), स० २००६, अपने दृष्टिकोण से पृ० १०

के समग्र साहित्य में किसी न किसी रूप में रहस्य भावना का परिचय न मिले।'[1] इस कथन के अनुसार रहस्यभावना मनुष्य जीवन के विशिष्ट क्षणों की स्वाभाविक अनुभूति है। अनुभूति की तीव्रता में ही प्रकृति मनुष्य को अलौकिक वाणी में सम्भाषण करती हुई प्रतीत होती है।[2] अतः कहा जा सकता है कि छायावाद में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कुतूहल और उसमें चेतना का आरोप भावप्रवण मानव मन की स्वाभाविक वृत्ति अथवा मौलिक अनुभूति का परिणाम है। किन्तु जैसा कि हम देख चुके हैं प्रकृति के दिव्य रूपों में चेतना की सहज और प्रथम अनुभूति वैदिक ऋषियों को ही हुई थी। अतः प्रकृति से अभिभूत हो कर ही ऋषि ने उसमें परम चेतन का दर्शन किया था। हम यह भी देख चुके हैं कि छायावाद के सौन्दर्य द्रष्टा कवि वैदिक ऋषि के प्रति परम आस्थावान थे। अतः उनकी स्वाभाविक रहस्यभावना को प्राचीन ऋषियों की स्वाभाविक रहस्यभावना से विशेष योग मिला, ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं जान पड़ती। ऋषियों की स्वाभाविक रहस्य भावना में प्रकृति सप्राण और चेतन है, साथ ही मानवीय चेतना से अनुप्राणित और विराट भी। अतः ऋषियों के प्रभाव से छायावाद का कवि प्रकृति में अपनी आत्मा के चेतन को झाँकने के लिए उद्यत हुआ और स्थूल प्रकृति में समष्टि रूप से चेतना का आरोप कर उसमें विराट की झाँकी देखने लगा।

इस प्रकार वेदों और उपनिषदों के प्रभाव से छायावाद की प्रकृति में चेतना का आरोप हुआ[3] और छायावाद के कवि ने जड़ का चेतन से सम्बन्ध जोड़ा।[4] अतः छायावाद का कवि यह अनुभव करता है कि जड़ में चेतना का

---

१ महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) सं० २००६ अपने दृष्टिकोण से पृ० १३

२ When our emotions are deeply stirred even Nature speaks to us with voices unheard before
W. R. Inge, Christian Mysticism p. 31

३ बादलों को साथ बाल मरुद्गण की उपयोगिता जान लेने वाला ऋषि जब उन्हें वीर रूप में उपस्थित करता है तब हम उसके प्रकृति में चेतना के आरोप से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते।
महादेवी वर्मा दीपशिखा, प्रथमावृत्ति १९४२ विस्तृत के कुछ क्षण पृ० ११

४ चेतना में जड़ का बन्धन यही सृष्टि की हृदयस्पन्दन।
महादेवी वर्मा रश्मि, १९३८ पृ० ६७

बीज निहित है जो जड के बन्धनों को तोड़कर बाहर निकल आता है।[1] उसे यह भी अनुभव होता है कि जड चेतन और चेतन जड बन बन कर सृजन प्रलय का अभिनय रचते रहते है।[2] अपनी इसी भावना के आधारभूत वह प्रकृति के अणु अणु को जीवित पाता है[3] और उसमें अपने ही उर की चाह का दर्शन करता है।[4] इसी भावभूमि में वह अपने चारों ओर फैली हुई प्रकृति की वस्तुओं में अपना ही परिचय पाता है।[5] अत वह घोषित करता है कि सरिता के भी आत्मा है[6] और जलद सामान्य मेघ न होकर जीवनद है क्योंकि वह जगज्जीव मात्र को जिलाता है।[7] इस प्रकार छायावाद का कवि प्रकृति के पदार्थों में चेतना का आरोप कर उन्हें आत्मवत देखता है और उनके साथ तादात्म्य सुख का अनुभव करता है।[8]

प्रकृति साहचर्य

प्रकृति में चेतना के आरोप तथा उसे आत्मवत देखने के उपरान्त छायावाद के कवि में प्राचीन ऋषियों की भाँति प्रकृति साहचर्य की भावना

---

१ बन्धी उसमें जीवन अंकुर जो तोड़ निखिल जग के बन्धन
पाने को है निज सत्व मुक्ति जड निद्रा से जग कर चेतन।
पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ २५४

२ जड चेतन चेतन जड बन बन रचते चिर सृजन प्रलय अभिनय।
पन्त पल्लविनी, प्रथम संस्करण, पृ ९४

३ देखो है ऐश्वर्य प्रकृति का उसका अणु अणु जीवित।
पन्त, स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण पृ० २२

४ वही चाह है कण कण में जो मेरे उर में निश्चय। —वही पृ० ६६

५ ज्योतिर्मय चारों ओर परिचय सब अपना ही।
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० २३३

६ पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० १४

७ जलद नहीं -जीवनद, जिलाया
जबकि जगज्जीवनमात्र को
निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ७४

८ तुम में कवि का मन गया समा तुम कवि के मन की हो सुषमा
हम दो भी हैं या नित्य एक ? तब कोई किसको सके देख ?
पन्त, पल्लविनी प्रथम संस्करण छाया पृ० २८

भी जगी। प्रकृति साहचर्य का बड़ा ही भव्य और मार्मिक रूप हमें वैदिक ऋषियों में देखने को मिलता है। उनके उषा, मरुत, वरुण आदि के वर्णन प्रकृति-साहचर्य की भावना से सिक्त हैं। ऋषि स्वयं-पुत्री उषा से निवेदन करता है—

देवि, मां की तरह अपने अंगों को विकसित कर, तुम दानपरायण और दीप्तिमान सूर्य के निकट जाओ। तदनन्तर युवती की तरह अत्यन्त प्रकाश सम्पन्न होकर, कुछ हँसती हुई सूर्य के सामने अपना हृदय-देश उघारो।[1] इसी भांति पृथ्वी पर उगने वाली वनस्पतियों पर मातृत्व का आरोप कर शिशु हृदय ऋषि कहता है—

हे मातृरूप ओषधियो तुम्हारे जन्म असीम हैं और तुम्हारे प्ररोहण अपरिमित हैं। तुम सौ कर्मों वाली हो। तुम मुझे आरोग्य प्रदान करो।[2]

ऋषियों के इस उदात्त प्रकृति साहचर्य का प्रभाव अतीतोपासक छायावादी कवि की प्रकृति पर भी पड़ा। अतः उसने प्रकृति को जीवन की चिर संगिनी के रूप में वरण किया तथा उसे विभिन्न मानवीय सम्बन्धों में बांधकर देखा। इस प्रकार छायावाद की प्रकृति देवि, मां, सहचरि, प्राण आदि अनेक रूपों में प्रकट हुई है।

छायावाद के कवि ने साहचर्यावस्था में प्रकृति को कभी क्रीड़ा करते हुए[3] कभी अभ्यागत की सेवा और स्वागत करते हुए[4] कभी किसी की प्रतीक्षा

---

१ अन्वेव सन्दा दाशुषानी एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
 संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥
 ऋग्वेद १।१२३।१०

२ शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
 अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥ ऋग्वेद, ७।९७।२

३ उस फैली हरियाली में
 कौन अकेली खेल रही मा,
 वह अपनी वय बाली में—
 पन्त आधुनिक कवि प्रथम संस्करण पर्यालोचन, पृ० २

४ हो उस मानस में मिल हुए तुम

करते हुए[1] तथा कभी प्रसन्नवदना[2] कभी म्लानमना[3] कभी हतभागिन[4] आदि विभिन्न स्थितियों और मुद्राओं में देखा है।

विचार विनिमय और भावों का आदान प्रदान भी छायावादी कवि और प्रकृति के बीच प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। तारे से वह भ्रातृत्व भाव से पूछता है कि तुम किसकी राह देखते हो? वह परदेशी कौन है जिसके लिए तुम इतने व्याकुल हो रहे हो?[5] इसी प्रकार वह उषा से पूछता है कि तुम यहाँ पर किसकी बात मानकर आती हो? तुम्हें यह दिव्य रूप किसने दिया है? तुम किस वस्तु को इस लोक में सबसे अधिक चाहती हो? त्याग का सरलतामय भाव तुमने किससे पाया है?[6] किरण से पूछता है कि तुम आज क्यों बिखरी हो और किसके अनुराग में रंगी हो?[7] ऋतुपति से प्रश्न करता है कि तुम पुष्पों के प्याले में किसका यौवन भर भर कर मधुकर को पिला रहे हो?[8] और खद्योत से जानना चाहता है कि वह पीपल के तरु के नीचे किसे खोजता रहता है।[9] प्रकृति से वह अपने नाना प्रश्नों का

सजे धज करते थे सबका स्वागत
घूघट का पट खोल दिखाते उस प्रकृति का मुखड़ा
जिसे समझते थे अभ्यागत।

निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ११२

१ कब से विलोकती तुम को उषा आ वातायन से?

पन्त, गुञ्जन, तृतीय संस्करण पृ० ४८

२ तरु तरु वीरुध-वीरुध तृण-तृण
जाने क्यों हँसते मसृण मसृण
जैसे प्राणों से हुए उऋण कुछ लखकर,

निराला, तुलसीदास प्रथम संस्करण पृ० ११

३ कौन कौन तुम परिहृत वसना म्लानमना भू पतिता सी?

पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ० २९

४ अहा! अभागिन हो तुम मुझ सी —वही पृ० २९

५ सरस्वती १९२१ जनवरी दिसम्बर भाग २२ स० ४, पृ० २४७ ४८

६ वही पृ० २३५ ३६

७ प्रसाद झरना आठवाँ संस्करण, पृ० २६

८ पन्त वीणा ग्रंथि द्वितीयावृत्ति, पृ० २०

९ वही पृ० २८

उत्तर ही नहीं चाहता, उससे अपनी मनोकामना की पूर्ति भी चाहता है। अतः कभी 'बादल' से कहता है कि 'मुक्त गगन का वक्ष सघन छोड़ दिखाओ'[1] और कभी छाया से प्रार्थना करता है कि 'मेरे मन का ताप हरो'[2] और पर पीड़ा से पीड़ित होना सिखाओ।[3] कवि की स्थिति यह है तो प्रकृति भी उसके सामने 'अनावृत रूप में खड़ी' हो जाती है और उससे अपने प्रश्नों का उत्तर तथा कामनाओं की पूर्ति चाहती है। कलियाँ, निर्झर, गिरि, नक्षत्र आदि के मिस प्रकृति कहती है—

> 'इन सम्पुटों में कौन छवि जिसको नहीं हम खोलतीं ?
> गाओ उसे भी गीत में'—यों बात कलियों ने कहा।
> जिसके लिए घर से चली कवि ! धूल वन वन छानती
> वह प्राणवल्लभ है कहाँ ? कह निर्झरी रोने लगी।
> गिरि ने कहा मुख से कहा— द्रष्टा ! कहो मेरी व्यथा
> वह कौन विस्मय है, जिसे मैं देखकर निर्वाक् हूँ ?
> बोले नखत—'जलते विफल हम किस निठुर की राह में ?
> हर प्रात बनकर ओस चू पड़ते पिघल किस पीर से ?'[4]

इस प्रकार के प्रकृति और कवि के बीच विचारों और भावों के आदान प्रदान, अनुनय विनय, हास विलास आदि के राशि राशि उदाहरण हमें छायावाद की कविता में मिलेंगे।

ऊपर हम कह आये हैं कि छायावादी कवियों ने प्रकृति-साहचर्य की प्रेरणा प्राचीन ऋषियों से प्राप्त की। सामान्यतः ऋषियों और छायावादियों के प्रकृति सम्बन्धी भावोद्गार अनुभूतिजन्य तथा कल्पना प्रसूत हैं, परन्तु दोनों में एक अन्तर भी है और वह यह कि छायावादियों के प्रकृति के काव्य की पृष्ठभूमि में सामाजिक विषमता के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं, जबकि ऋषियों के उद्गीथों में उनका नितान्त अभाव है। ऋषियों के सामने प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में किसी सामाजिक विषमता का प्रश्न नहीं था। प्रकृति के प्रांगण में स्वच्छन्द विचरण करने के परिणाम स्वरूप ही प्रकृति उनकी सहचरी बन गई और उसने अपना सम्पूर्ण रहस्य उनके सामने खोल दिया। किन्तु छायावादी कवियों का प्रकृति साहचर्य ऋषियों की भाँति स्वाभाविक

---

१ निराला, परिमल, अष्टमावृत्ति पृ० १४८
२ पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ० ३०
३ वही २८
४ रामधारीसिंह 'दिनकर', हुंकार प्रथम संस्करण पृ० ८०-८१

जीवन का परिणाम नही कहा जा सकता। वह मुख्यत उनकी सामाजिक एव वयक्तिक परिस्थितियो की देन है। वास्तव मे छायावाद का कवि 'एक प्रकार से अनाथ कुलहीन बालक रहा जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नहीं मिला। फलत उसने आकाश तारे फूल निर्झर आदि से आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ा और उसी सम्बन्ध को अपना परिचय बनाकर मनुष्य के हृदय तक पहुचने का प्रयत्न किया।'[1] उसके इस प्रयत्न के परिणाम स्वरूप उषा, सन्ध्या फूल कोपल कलरव भ्रमर ओसो के वन और नदी, निर्झर उसके एकाकी किशोर मन को सदव अपनी ओर आकर्षित करते रहे और वह सौन्दर्य के अनेक सद्य स्फुट उपकरणो मे प्रकृति की मनोरम मूर्ति रचकर उसे काव्य मन्दिर मे प्रतिष्ठित करता रहा।[2]

प्रकृति सन्देश

इस प्रकार सामाजिकता के अधिकार से वचित छायावाद के कवि ने जब प्रकृति की समृद्धि प्राप्त की तब उसमे रहस्यद्रष्टाओं की भाति ही प्रकृति से अलौकिक सन्देश सुनने की भी इच्छा प्रकट हुई।[3] अत उसने प्रकृति से घूघट उठाकर कुछ बोलने तथा अलौकिक सन्देश सुनाने का आग्रह भी किया।[4] फलत उसके स्नेहिल आग्रह से स्नेहवत्सला प्रकृति बोल उठी—

> लो मैं अमाम का लाई हू सन्देश तुम्हें।
> आओ फिर खुली प्रकृति की गोदी मे बठो।

इस प्रकार जब छायावाद का कवि खुली प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ तब प्रकृति के स्पन्दन अर्थात कली *किसलय पुष्प डालियाँ* भौरे हिलोरें पवन सरिता निर्झर मेघ साँझ ऊषा आदि उस छवि का दर्श दिखाते भेद भरे सन्देश सुनाते[5] तथा गूढ सकेतो मे अस्फुट बात कहते-से जान पड़े।[7] प्रकृति के इन गूढ सकेतों तथा सदेशो मे छायावाद के कवि ने जीवनोपयोगी एव

१ महादेवी वर्मा दीपशिखा प्रथमावृत्ति चिन्तन के कुछ क्षण पृ० १६
२ पन्त, रश्मिबन्ध प्रथम सस्करण परिदर्शन पृ० २
३ लाये कौन सन्देश नये घन।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्करण, पृ० ६६
४ क्या लाती हो ? सन्देशा किसका है ? कोकिल बोलो तो।
माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी, तृतीय सस्करण, पृ० १४
५ पन्त अतिमा, प्रथम सस्करण पृ० १२६
६ पन्त, गुजन तृतीय सस्करण पृ० ७३
७ पन्त गुजन, तृतीय सस्करण, पृ० ७४

आध्यात्मिक दोनों प्रकार के तत्वों अथवा आदर्शों को संचित किया है। जीवनादर्श के क्षेत्र में वह एक ओर साँझ और ऊषा के आँगन में जीवन के हास अश्रुमय होने का आभास पाता है[1] तो दूसरी ओर हिलोरों में हँस हँस कर जन्म मरण के आलिंगन का संगीत सुनता है।[2] इसी तरह मालती कुञ्ज में चन्द्रिका और अँधेरी का मिलते देखकर वह मन में सुख और दुख दोनों के स्थित होने का ज्ञान प्राप्त करता है।[3] प्रकृति के इन व्यापारों से शिक्षा ग्रहण कर वह इस सिद्धान्त तक पहुँचता है कि सुख दुख के मधुर मिलन से ही यह जीवन परिपूर्ण हो सकता है।[4] इसी प्रकार प्रकृति में जीवन के उल्लास सिद्धान्तों को अपनाने के कारण वह उठती हुई लहरों में अनन्य उत्साह का पाठ सीखता है[5] 'खग' से सुन्दर सुखमय जग जीवन की कहानी सुनता है[6] फूल से त्याग तथा सेवा का भाव ग्रहण करता है[7] और ओस से विश्व के सुन्दर, विशद एवं प्रेममय होने का सन्देश सुनता है।[8]

आध्यात्मिक क्षेत्र में वह प्रकृति से जगत की नश्वरता एवं शाश्वतता दोनों की शिक्षा ग्रहण करता है। कलिकाएँ उसे बताती हैं कि यह जगत केवल असार स्वप्न है।[9] विरस डालियाँ यह स्मरण कराती हैं कि यह जग

---

१ पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० २५

२ चिर जन्म मरण को हँस हँसकर हम आलिंगन करती पल पल
फिर फिर असीम से उठ उठ कर फिर फिर उसमें हो हो ओझल।
पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० १२७

३ लिपटे सोते थे मन में, सुख दुख दोनों ही ऐसे।
चन्द्रिका अँधेरी मिलती मालती कुञ्ज में जैसे॥
प्रसाद, आँसू दशम संस्करण, पृ० ४८

४ पन्त पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० २७४

५ उठ उठ लहरें कहतीं यह हम कूल विलोक न पावें,
पर इस उमंग में बह बह नित आगे बढ़ती जावें।
पन्त, गुंजन, तृतीय संस्करण पृ० ,१

६ गाता खग प्रात उठकर सुन्दर, सुखमय जग जीवन। —वही, पृ० ०

७ हँसमुख प्रसून सिखलाते पल भर है जो हँस पाओ
अपने उर की सौरभ से जग का आँगन भर जाओ।
पन्त गुंजन, तृतीय संस्करण पृ० ३१

८ पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण, पृ० २२०

९ पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ० ६

परिवतनशील तथा क्षणभगुर है।[1] कि त जगत की उक्त क्षणभगुरता और परिवतनशीलता म वह शुभ और चिर तन का दशन भी करता है। निदान वह कहता है कि कटीली डाल जीवन की लालो की सूतिका है[2] और यह अनित्य जग नित्य का ही नतन है।[3] इस प्रकार सिद्धा त रूप म वह कहता है कि अचिर म चिर का अ वषण ही विश्व का तत्वपूण दशन है।[4] इसस यह स्पष्ट है कि छायावाद का कवि प्रकृति को नश्वर और शाश्वत दोनो रूपो म अपनाता है।

प्रकृति स जीवनोपयोगी एव आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करना तो प्रकृति रहस्यवाद का प्रधान पक्ष ही है किन्तु छायावाद की प्रकृतिमूलक नश्वरता अथवा क्षणिकता पर शकराचाय क मायावाद और बौद्धमत के क्षणिकवाद का तथा उसकी जगत विषयक शाश्वतता अथवा सत्यता की दृढ भावना पर उपनिषदो शवदशन और हीगल क दशन का जो जगत को सत्य प्रमाणित करते हैं प्रभाव माना जा सकता है।

अनेकता मे एकता

इस प्रकार प्रकृति से स देश लेन के लिए जब छायावाद का कवि प्रकृति के बाह्यरूपों से हटकर उसके अ तस्तल मे प्रविष्ट हुआ तब उसे निखिल प्रकृति यह कहती हुई प्रतीत हुई कि उसम अमत सत्य अन्तर्हित है।[5] अत उसन अपने चारो ओर फली हुई जड चतन रूप प्रकृति म एक ही तत्व की प्रधानता घोषित की।[6] फल वह जल थल मारुत व्योम आदि मे उसी एक तत्व की व्याप्ति का अनुभव करने लगा[7] और सम्पूण प्रकृति उस एक ही कर स अनक रगा या अनेक कुसुमो का गुथा हुआ एक सुन्दर हार

१ हम भी हरी भरी था पहिल पर अब स्वप्न हुए वे दिन।
पल्लविनी प० ८

२ पत गुजन ततीय सस्करण प २२

३ पत पल्लविनी प्रथम सस्करण प० ८४

४ पन्त पल्लविनी प्रथम सस्करण प० ८४ ८५

५ निखिल प्रकृति कहती रे उसम अमत सत्य अन्तर्हित।
पत स्वण किरण प्रथम सस्करण प० २१

६ एक तत्व की ही प्रधानता कहो उस जड या चेतन।
प्रसाद, कामायनी द्वितीय सस्करण प० ११

७ जल थल मारुत व्योम म जो छाया है सब ओर।
प्रसाद स्कन्दगुप्त, सप्तम सस्करण प्रथम अक, प ४१

प्रतीत होने लगी।[1] इस प्रकार छायावाद के कवि ने प्रकृति की अनेकता म एकता का भावन कर एक को ही इस जगत के विविधाभास का कारण बताया[2] और उसी 'एक' म अनन्त का विकास देखा–

उसम अन त का है निवास
वह जग जीवन म ओत प्रोत।[3]

अब उसे यह स्पष्ट अनुभव होन लगा कि उस एक क छोटे उर (सूक्ष्म) म ही स्थूल प्रकृति क समस्त अवयव फल पात स्कन्ध मूल फल, रूप रग आदि-छिप हुए हैं[4] जो सृष्टि काल म जगत के प्रपच म बदल जात हैं।[5] इस प्रकार सूक्ष्म म स्थूल और स्थूल म सूक्ष्म की अनुभूति द्वारा छायावाद का कवि जीवन और प्रलय दोनो म एक ही प्रकार सजता है।[6] अब जसा कि प्रकृति रहस्यवाद का पक्ष है छायावाद का कवि यह घोषित करता है कि हम भी उसी ज्योति के रूप हैं जिसम हम जगती का आँगन आलोकित है[7] तथा अन्न प्राण मन आत्मा आदि उस परम ज्योति अथवा सत्य क ही भानन्द हैं, अथवा इन सबम एक ही चिर तन सत्य ईश्वर व्याप्त है।[8] कवि का इसी आस्था मिश्र दृष्टि क कारण छायावाद की प्रकृति घट कूप आदि म भरे जल की एक रूपता क समान अनक रूपो म प्रकट एक महाप्राण बन गई (अब) प्रकृति क लघु तृण और महान वट कोमल कलियाँ और स्थिर पवन निविड अन्धकार और

१ जग का एक देखा तार।
कठ सुमन, बहु रग, निर्मित एक सुन्दर हार,
एक ही कर स गुथा, उर एक शोभा भार।
निराला गीतिका प्रथम सस्करण प० २२

२ एक ही तो असीम उल्लास, विश्व म पाता विविधाभास,–
पन्त पल्लव, चतुर्थावृत्ति प० ८७

३ पन्त पल्लविनी, प्रथम सस्करण, प २५५

४ पन्त, पल्लविनी प्रथम सस्करण, प० २५५

५ था ही अनेक रूपी बनकर कभी पुजाया
लीला उसी की जग म सबम वही समाया।
प्रसाद कानन-कुसुम प्रथम सस्करण प० ६

६ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्करण, प० ५२

७ पन्त पल्लविनी, प्रथम सस्करण, प० १५६

८ अन्न प्राण मन आत्मा बदन भानन्द हैं सत्य क परम
इन सबम चिर व्याप्त ईश रे मुक्त सच्चिदानन्द निरन्तर।
पन्त स्वर्णकिरण, प्रथम सस्करण प० १३३

उज्जवल विद्युत रेखा मानव की न्यूनता विशालता कोमलता कठोरता चचलता निश्चलता और मोह ज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर प्रतीत होने लगे।[२]

प्रकृति मे विराट का आरोप

इस प्रकार जब छायावाद के कवि को प्रकृति के सर सरित नदी नद च द्र नगम, पवत पुष्प आदि विराट क सहोदर प्रतीत होने लगे तब उसके लिए प्रकृति म विराट पुरुष तथा विराट प्रकृति नारी का सौन्दय देखना अत्यन्त सहज और स्वाभाविक हो गया। उसकी इस भावना को पनपने के लिए भारतीय दशन वेदान्त की उवर भूमि भी मिल गई। अत हमें छायावाद की कविता म कल्पना और विचार के सहारे उषा[३] वसन्त सूय शशि तारे, तुषार[३] पुष्प[४] सागर[५] बादल[६] वन[७] सध्या[८] आदि के आधारभूत विराट पुरुष तथा विराट प्रकृति नारी क बड़े ही प्रवण मार्मिक अथवा हृदयग्राही रूप देखने को मिल जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति म विराट का आरोप कर छायावाद का कवि उसकी हर समय वन्दना करने की कामना करता है।

ईश्वर दर्शन

वेदान्त के अनुसार प्रकृति का यह विराट रूप ईश्वर का ही प्रकट रूप है और इसी म ईश्वर की आभा तरगित होती रहती है। छायावाद का प्रकृति प्रेमी कवि वेदान्त के उक्त सिद्धान्त[९] को अपनाकर प्रकृति म ईश्वर की खोज करता है।[१०] अत विश्व क समस्त भूत समुदाय म उस ईश्वर का प्रकाश दिखाई देता है। इसी अलौकिक प्रकाश म कभी उस उडते पत्तो के साथ उसके

१ महादेवी वर्मा स। यगीत चतुर्थ सस्करण अपनी बात पृ ८
२ देखिए पन्त स्वर्णकिरण, प्रथम सस्करण पृ ८१
३ वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृ० १०
४ पल्लव चतुर्थावृत्ति प० ७३ ७४
५ प्रसाद कामायनी द्वितीय सस्करण पृ० ३४
६ , निराला, परिमल अष्टमावृत्ति प० १५०
७ वही पृ १४५
८ , पन्त रश्मिबन्ध प्रथम सस्करण, प० ६४
९ यह विराट ससार तासु प्रकट रूप है,
या म अगन की आभा राजत अनूप है। —प्रसाद प्रेम राज्य
१० तुम्हें खोजने छाया वन म अब भी कवि विम्यान।
पन्त, गुजन तृतीय सस्करण, प० ६६

सुकुमार' मिल जाते हैं।[1] कभी द्रुम, पल्लव, सुमन आदि में ईश्वर की लिखी हुई कथा दिखलाई पड़ जाती है[2] और कभी विश्व-जनता के बीच उस अपने 'प्यारे' का दर्शन हो जाता है।[3] इस प्रकार यह विश्व छायावाद के कवि के लिए ईश्वर का 'अनन्त मन्दिर' है[4] जिसमें वह मन्दिर के नाम 'ईश्वर' का नित्य दर्शन किया करता है।[5] इस मन्दिर के समस्त उपकरणों—सागर, नदी, लहर, चाँद, तारे, सूर्य आदि—में वह ईश्वर का संगीत और गुणगान[6] भी सुनता है जो उसे उसकी आत्मा के अमरत्व का बोध भी कराते हैं।[7]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है छायावाद का कवि विवेकानन्द से प्रभावित था। स्वामी विवेकानन्द ने ईश्वर को आदि शक्ति रूपिणी जगदम्बा के रूप में भी देखा था। अतः उनके प्रभाव में छायावाद का कवि प्रकृति में ईश्वर का दर्शन जगन्माता के रूप में भी करता है। यह प्रवृत्ति 'निराला', 'पन्त' और 'दिनकर' में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। निराला जी को प्रतीत होता है कि जगन्माता ही पत्रों के झुरमुट में नूतन स्वर सुनाया करती है[8] और पन्त जी[9] और दिनकर जी[10] तो उसकी ज्योतित छटा का दर्शन भी करते पाये जाते हैं।

---

१ पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण, पृ० ६९

२ द्रुम-द्रुम में पल्लव पल्लव में सुमन सुमन में वन वन में,
कथा तुम्हारी लिखी हुई है सारे जग के जीवन में।
गोपालशरण सिंह, आधुनिक कवि, १९४३, पृ० ३८

३ सब विश्व-जनता में प्यारे हम तमको पाते हैं।
प्रसाद, कानन कुसुम, पंचम संस्करण, पृ० ६१

४ प्रसाद, कानन-कुसुम, पंचम संस्करण, पृ० ६

५ वही पृ० ४

६ वही पृ० १२

७ दूर वन के ओ राजकुमार! अखिल उर उर में तेरे गान
मधुर इन गीतों से सुकुमार, अमर मेरे जीवन औ' प्राण!
पन्त, गुंजन, तृतीय संस्करण, पृ० ८३

८ निराला, गीतिका, प्रथम संस्करण, पृ० ६४

९ क्षीण दीपाकर की छाया में नलिनी बन, की करुण-पुकार,
माँ! तब तूने मुझे दिखाई अपनी ज्योतित-छटा अपार।
पन्त, वीणा ग्रन्थि, दीपावलि, पृ० ५०

१० गाल दृग देखा प्राची और अलक्तक चरणों का शृंगार,
तुम्हारा नव उन्नत रूप व्योम में उड़ता कुन्तल भार।
रामधारी सिंह 'दिनकर', रसवन्ती, पृ० १०

ईश्वर दर्शन की अस्पष्टता

किन्तु प्रकृति रहस्यवादियों की भाँति ही छायावादी कवियों का प्रकृति में ईश्वर का उक्त दर्शन प्रायः अस्पष्ट ही रहता है। दूसरे शब्दों में उसे प्रकृति में किसी अलौकिक सत्ता का आभास तो मिलता है किन्तु साक्षात्कार नहीं हो पाता। इसी से छायावाद की कविता में कुतूहल अथवा जिज्ञासा की भावना की प्रधानता है। इस कुतूहल और जिज्ञासा के मूल में छायावाद के कवि की प्रकृति में ईश्वर के स्पष्ट दर्शन की असमर्थता ही है जैसा कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट है—

> हहर गया क्या तरु पुंज यों अचानक है
> किसलिए घहर उठा यों घनघोर है ?
> कंप उठे हर्ष से विभोर हो क्या खग सभी
> मच गया सागर में क्यों बड़ा हिलोर है ?
> बोल उठे पादप के कोटरों में क्यों विहग
> मोद मद मत्त हो क्यों नाच उठा मोर है ?
> मैं न देख पाया वह आया किस ओर से था
> और किस ओर गया मेरा चित चोर है।[1]

इस प्रकार छायावाद का कवि अपने चित चोर का ठीक ठीक पता न पाने पर 'अरे कहीं देखा है तुमने मुझे प्यार करने वाले को ?'[2] की रट लगाता है और यदि कहीं संयोग से उसके ठौर ठिकाने का पता लग गया तो बार बार 'खोलो प्रियतम खोलो द्वार'[3] की पुकार लगाता है। और अत्यन्त आतुरता और विकलता से कहता है—

> मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्रान समा जा रे।[4]

किन्तु उसके प्रिय दर्शन का यह सारा प्रयत्न विफल जाता है क्योंकि उसका प्रियतम प्रायः कनक किरन के अन्तराल से लुक छिपकर ही चलता है।[5] यदि अत्यधिक अनुनय विनय के उपरान्त वह सामने आता भी है तो 'शशि मुख पर घूँघट डाले' ही।[6] अतः वह अपने प्रियतम की स्पष्ट झाँकी देखने में असमर्थ ही रह जाता है। इसी से वह उसके शशि मुख के स्थान पर उसकी निर्मल शीतल छाया को देखकर ही सन्तुष्ट हो जाता है। अतः वह

---

१ गोपालशरण सिंह आधुनिक कवि १९४३ आत्मकथा पृ० ४
२ प्रसाद लहर तृतीय बार पृ० ३८
३ वही झरना आठवाँ संस्करण पृ० १६
४ वही लहर तृतीय बार पृ० २८
५ वही चन्द्रगुप्त नाटक का एक गीत
६ वही, आँसू दशम संस्करण, पृ० १९

प्रकृति से अधिक से अधिक इतना ही जान पाता है कि—

हे विराट ! हे विश्वरूप ! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान—
मंद गंभीर धीर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान ![1]

और यदि कभी उसका छविमान उसे अबोध और अज्ञान जानकर उसके सुख दुख का सहचर बन भी जाता है तो वह उसे अपने अज्ञानवश पहचान नहीं पाता।[2] कभी ऐसा भी होता है कि उसे उसका प्रियतम सध्या के आलोक में हँसता हुआ दिखाई दे जाता है किन्तु जब वह उसका गुणगान करने लगता है तब वह सद्य आँखों से ओझल हो जाता है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि का चिर परिचित प्रियतम प्राय छायारूप में ही उसके सामने आता है।[4] अत हम कह सकते हैं कि छायावादी कवि को प्रकृति में सामान्यत ईश्वर की अस्पष्ट झलक ही मिलती है उसका स्पष्ट अथवा खुलकर दर्शन नहीं होता।

प्रतीकात्मकता

प्रकृति रहस्यवादी प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से मन और आत्मा यहाँ तक कि ईश्वरीय सौन्दर्य का भी अनुभव करता है। किन्तु उसका यह अनुभव वर्णनातीत होता है। अर्थात उसकी अभिव्यक्ति भाषा में, चाहे वह कितनी ही विकसित क्यों न हो सम्भव नहीं है। जिन भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उनकी अभिव्यक्ति प्रतीकों द्वारा ही हो सकती है

---

१ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० ३४

२ न जाने कौन, अये द्युतिमान ! जान मुझको अबोध अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान फूँक देते छिद्रों में गान
अहे सुख दुख के सहचर मौन ! नहीं कह सकती तुम हो कौन !
पन्त पल्लव, चतुर्थावृत्ति पृ० ११

३
हुआ था जब सध्या आलोक
हँस रहे थे तुम पश्चिम ओर
विहग रव बनकर मैं चितचोर
गा रहा था गुण किन्तु कठोर
रहे तुम नहीं वहाँ भी शोर।
पन्त वीणा-ग्रंथि द्वितीयावृत्ति पृ० १३

४ मजनि कौन तम में परिचित सा, सुधि सा छाया सा आता ?
महादेवी वर्मा यामा नीरजा पृ० ९८

क्योंकि प्रतीक उस सत्य के प्रकाशक है जिनके प्रकाशन म वाणी असमर्थ होती है। इस प्रकार भूतिमत्ता रहस्यवादी भाषा की आत्मा है इस कारण जिस भाव की अभिव्यक्ति असम्भव है उसकी ओर सकेत ही किया जा सकता है। रहस्यवाद म प्रतीको का प्रयोजन वणनातीत आत्मानुभूतियो को नाटकीयता एव चित्रात्मकता द्वारा हमारी ग्राहक कल्पना के भीतर लाना है।[1] इस प्रकार प्रतीको की सार्थकता उनके उन रूपो म नहीं है जिन रूपो म वे हमारे सामने ह प्रत्युत उस सत्य म है जिसकी ओर वे सकेत करते हैं।[2] अर्थात वे व्यक्ति म किसी विशेष तत्व का अथवा विशेष म सामान्य का या सामान्य म किसी सावभौम सत्ता का आभास देते है और इन सब के ऊपर नश्वर म अनश्वर की झाकी दिखाते है।[3] इसी म रहस्यदृष्टा ऋषियो ने कहा था—

पश्य देवस्य काव्यम्[4]

अर्थात तुम प्रकृति देवी के सौन्दय को जो मूत रूप म भगवान का काव्य है देखो और उसम प्रसन्नता प्राप्त करो।

हर देश और काल के रहस्यवादियो ने अपनी रहस्यमयी भावनाओ को प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया है। छायावाद का काव्य भी इस दृष्टि से बहुत समृद्ध है। अनुभूति और कल्पना के वैभव द्वारा छायावादी कवियो—प्रसाद पन्त निराला महादेवी रामकुमार वर्मा माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने अनेकानेक रहस्यात्मक अप्रस्तुत विधानो की सृष्टि की है।

---

1 The function of symbolism is to bring metaphysical ideas within reach of the imagination by presenting then in a dramatic or pictorial form

Gerald Bullett The English Mystics P 16

2 Symbol is some form of external existence immediately presented to the senses which however is not accepted for its own worth as it lies thus before us in its immediacy but for the wider and more general significance which it offers to our reflection

Hegel The Philosonby of Art Vol II 1916 P 6

3 A Symbol is characterized by a translucence of the special or of the universal in the general above all by the translucence of the eternal through and in the temporal (Coleridge)

The Stalemans Mannual Complete Works
Vol I P 407 8

४ सा० पृ० ४।४।३

छायावाद के रहस्यात्मक गीतों में स्वप्नपरक प्रतीकों की बहुलता है।[1] परम्परागत प्रतीक यथा चातक, दीपक, शलभ, बुलबुल, चकोर[2] हंस[3] आदि का प्रयोग भी आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर हुआ है।[4] किन्तु छायावाद में रहस्य के प्रतीक प्रायः प्रकृति के क्षेत्र से ही लिये गये हैं और वे उतने ही नवीन हैं जितनी नवीन छायावादी कवि की कल्पना।

छायावादी कवि की लालसा थी कि रूप की लघु विराट कल्पनाएँ संसार के सुन्दरतम रूपों में जिस तरह अंकित हों उसी तरह रूप तथा भावनाओं से अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है।[5] इन छायावाद में उड़ते पत्ते, लहरों के हाथ,[6] सरिता के प्रवाह, जल प्रपातों से अरूप और उसकी महिमा की ओर बड़ी ही मार्मिक ढंग से संकेत किया गया है। और चाँदनी, रजनी, संध्या आदि के आधार पर विराट की बड़ी ही मनोरम काल्पनिक सृष्टि हुई है।[7] रहस्यवादी काव्य में इस प्रकार के प्रतीकों का बड़ा महत्व है और यह हिन्दी के रहस्यात्मक साहित्य को छायावाद की एक बड़ी देन है।

प्रेमपरक रहस्यवाद

छायावाद युग में सांस्कृतिक आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप एक साधनात्मक संतुलनमय त्याग और शान्ति का विकास हुआ जिसका व्यापक प्रभाव छायावाद की प्रेम भावना और उसकी अभिव्यक्ति पर भी पड़ा। स्पष्ट है कि छायावाद का कवि योगी अथवा संत नहीं था किन्तु विवेकानन्द, अरविन्द और टैगोर आदि के प्रभाव में वह शारीरिक प्रेम को अपने वास्तविक रूप में ही स्वीकार नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कविता में प्रेम जैसी कुछ सूक्ष्म किन्तु चिरन्तन वृत्ति के पतन पर भी वह क्षुब्ध था अतः उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह पवित्र निःस्वार्थ अथवा निरपेक्ष प्रेम की

---

१ देखिए महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) प्रथम संस्करण पृ० ४४

२ वही,

३

> हे राजहंस ! यह दीन चाह
> तू पिंजरबद्ध चला छोड़
> बनने अपना ही आप काल !
>
> रायकृष्ण दास उद्बोधन सरस्वती नवम्बर १९१८

४ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० ३३

५ निराला प्रथम प्रकाश द्वितीयावृत्ति पृ० १४८

६ पंत पल्लविनी प्रथम सं० पृ

७ पंत ज्योत्स्ना द्वितीयावृत्ति पृ० ४८

ओर उन्मुख हुआ । यही कारण है छायावाद की कविता का सूक्ष्म अतीन्द्रिय प्रेम तथा सौन्दर्य से अनुप्राणित होने का । इस प्रकार जब छायावाद का कायिक प्रेम भी इन्द्रियातीत प्रेम की परिधि में पहुंच गया तब वह रहस्यात्मक प्रेम के स्तर को स्पर्श करने लगा और उसमें ऐन्द्रियता की मात्रा स्वल्प हो गई ।

जैसा कि हम देख चुके हैं रहस्यवादी प्रेम उस ओर उन्मुख होता है जहाँ स्वार्थ और कामनाओं को स्थान नहीं है जहां आत्मोत्सर्ग की कामना जीवन का मोल है जहां दुःख प्रेम की परछाई है जहाँ वह प्रभु का रूप धारण करता है और जहां प्रेम की कसौटी अपने अस्तित्व को मिटा कर प्रिय के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण कर देना है । कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावाद का प्रेम काव्य भी इस प्रकार की निर्मल रहस्यात्मक प्रेम भावनाओं से परिपूर्ण है ।

प्रेमपरक रहस्यवाद में प्रेम ही परमेश्वर है इस सिद्धान्त को छायावाद का कवि बड़े मनोयोग से अपनाता हुआ पाया जाता है । अतः वह दृढ़ता के साथ कहता है—

> जहाँ प्रेम जहाँ प्रीति जहाँ एकरसता
> समता सहानुभूति वहाँ ब्रह्म बसता ।[1]

रहस्यवादी की भांति ही छायावाद का कवि प्रेम के क्षेत्र में क्षणभंगुर कायिक सौन्दर्य से दूर रहने और ईश्वर के स्निग्ध शान्त गम्भीर तथा शाश्वत महा सौन्दर्य पर रीझने की सीख देता है—

> क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत देखो ! देखो ! !
> उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है[2]—

और उसी सुन्दरतम की सुन्दरता में प्रतिक्षण स्नान करने की कामना करता है—

> मैं सुन्दरता में स्नान कर सकूं प्रतिक्षण
> वह बन न बन्धन ।[3]

क्योंकि उसका अनुभव है कि प्रेम सलिल में स्नान करने से ही मन पवित्र और उत्साहपूर्ण हो सकेगा है—

१ डा० देवराज प्रणयगीत पृ० ६५
२ प्रसाद प्रेम पथिक तृतीय संस्करण पृ० ३०
३ पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण पृ १३२

सद्य स्नात हुआ मैं प्रेम सुतीर्थ में—
मन पवित्र उत्साहपूर्ण-सा हो गया।[1]

अतः वह चेतावनी देता है कि रूपजन्य सांसारिक प्रेम किंवा मोह कभी भी पवित्र, अलुप निष्काम ईश्वरीय प्रेम का स्पर्द्धी नहीं हो सकता। कारण सांसारिक प्रेम व्यक्तिगत होता है किन्तु ईश्वरीय प्रेम अत्यन्त उदार और अनन्त है। उसमें (सांसारिक प्रेम) और इसमें (ईश्वरीय प्रेम) शैल और सरिता का सा अन्तर है—

यह जो केवल रूपजन्य है मोह न उसका स्पर्शी है
यही व्यक्तिगत होता है पर प्रेम उदार अनन्त अहा
उसमें इसमें शैल और सरिता का सा कुछ अन्तर है।[2]

इस प्रकार छायावाद का कवि सांसारिक प्रेम का तिरस्कृत कर ईश्वरीय प्रेम को जो रहस्यवाद का पक्ष है अपनाता हुआ पाया जाता है। इसीलिए प्रेम उसके लिए प्राणों का बन्धन नहीं है प्रत्युत सृजन और मुक्ति है।[3] अतः स्वतः सत्य शिव सुन्दर और आनन्दमय है—

प्रेम सत्य शिवसार प्रेम में है आनन्द समाया।[4]

इस प्रेम के अभाव में मनुष्य जीव मन है अपने आप में ही सीमित है। इस अपना कर ही वह अमरत्व प्राप्त कर सकता है—

प्रेम बिना जन है जीवन्मृत
प्रेम बिना अपने में सीमित
मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत
मृत्यु न आती पास वहाँ।[5]

प्रेम की ऐसी विशद व्याख्या करके छायावाद का कवि ईश्वर से याचना करता है—

हम हों कहीं इस लोक में उस लोक में भू लोक में
तव प्रेम पथ में ही चलें हे नाथ! तव आलोक में।[6]

---

१ प्रसाद झरना आठवाँ संस्करण पृ० १८
२ प्रसाद प्रेम पथिक तृतीय संस्करण पृ० २०
३ पन्त स्वर्णधूलि, प्रथम संस्करण पृ० १४४
४ पन्त स्वर्णकिरण प्रथम संस्करण पृ० ३३
५ पन्त स्वर्णधूलि प्रथम संस्करण पृ० १४८
६ प्रसाद कानन-कुसुम पाँचवाँ संस्करण पृ० ४१

प्रेम सर्वव्यापी है

प्रेमपरक रहस्यवाद में प्रेम ही परमेश्वर है अतः वह सर्वव्यापी है। उसी की लीला जगत में सर्वत्र चल रही है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति प्रसाद जी ने कामायनी में इस प्रकार की है—

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला।[1]

इसी प्रकार पन्त जी क्रन्दन क्रीडन आलिंगन मदन आराधन आदि में प्रेम की कल्पित कलाओं का विलसन हम पाते हैं। उनके निकट प्रेम ही बचपन का हास यौवन का विलास प्रौढ़ता का बुद्धि विकास जरा का अन्तर्नयन प्रकाश तथा जन्मदिन का हुलास और मृत्यु का दीर्घ निःश्वास है।[3] इस प्रकार वह हर दशा में और हर जगह प्रेम का दर्शन करते हैं—

अनिल सा लोक लोकान्तर में
कहाँ नहीं है प्रेम साँस सा सब के उर में।[4]

उनका यह भी विश्वास है कि प्रेम के कोमल तार से ही विश्व का सम्पूर्ण जीवन बंधा हुआ है। यदि यह प्रेम न होता तो जगत में चारों ओर हाहाकार मच जाता—

बंध है जीवन तार
सबमें छिपी हुई है यह झंकार!
हो जाता संसार
नहीं तो दारुण हाहाकार!

प्रेम की अनन्यता और व्यापकता की दृष्टि से प्रसाद का प्रेम पथिक आदर्श रचना है। प्रेम पवित्र पथ प्रेम सर्वव्यापी और अनन्त है। उसका कहीं आर पार नहीं है। वह अपरिमित है क्योंकि प्रभु का स्वरूप है अतः एक व्यक्ति में बंध कर नहीं रह सकता। ईश्वर रूप होने के कारण वही जगत का धारक है और उसी के आकर्षण में खिंच कर मिट्टी का पिण्ड सभी दिन रात फेरा किया करते हैं। मरु धरणी गिरि सिन्धु सभी अपने अन्तर में इसी की गर्मी आनन्द सहित रख रहे हैं।[6]

---

१ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० ८८
२ पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० ६
वही पृ० ७
४ पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ० १२१
५ पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० ७
६ प्रसाद प्रेमपथिक तृतीय संस्करण पृ० २२ २

पन्त और प्रसाद के इस प्रेम दर्शन पर स्वामी विवेकानन्द के प्रेमयोग का, जिसमें प्रेम को ईश्वर और सर्वव्यापी कहा गया है और जिसके बिना यह संसार क्षण भर में चूर्ण हो जायगा, स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।[1]

दुःख प्रेम का अंग है

रहस्यवादी जीवन में दुःख की बड़ी महिमा है क्योंकि वह इस मानव-आत्मा का नित्य का मधुमय भोजन है।[2] अतः रहस्यवादी दुःख को सहर्ष अपनाता है। दुःख के घटाटोप बादलों में भी वह अपने प्रिय के दर्शन की आशा करता है—

मेरे वियोग के नभ में जितना दुःख का धारापन।
क्या विह्वल विद्युत ही में होंगे प्रियतम के दर्शन ?[3]

दुःख को अपनाने की यह प्रवृत्ति छायावाद के प्रायः सभी कवियों में समान रूप में पाई जाती है। पन्त जी के यहाँ यदि प्रेम अंग है तो पीड़ा अंगी; प्रेम और पीड़ा की अलग-अलग सत्ता नहीं है। यहाँ तक कि प्रेमा की रग रग पीड़ा की बनी हुई है और व्यथा प्रेम की ही परछाई है—

पीड़ा की प्रेमा की रग रग
व्यथा प्रेम की ही परछाई।

इस पीड़ा की विशेषता यह है कि वह रहस्यवादी को एक क्षण भी अपने प्रियतम को भूलने नहीं देती—

एक क्षण भी हे उसे भूलने न देती कभी
धन्य धन्य मेरे मानस की पीर है।[5]

साथ ही वह प्रेम का रहस्य खोलने में भी सहायक होती है—

प्रेम रहस्य जान सकते हैं केवल विरह-व्यथित प्रेमी जन।[6]

इस प्रकार पीड़ा (विरह) के प्रताप से रहस्यवादी सर्वत्र अपने प्रियतम का दर्शन करता है—

पहले तो मैं बस एक ठौर देखता था
देखता हूँ सब ठौर उसको जुन्हाई में।[7]

---

१ स्वामी विवेकानन्द प्रेमयोग पृ० १२१
२ पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० २०
३ रामकुमार वर्मा चित्ररेखा ८०वाँ गीत
४ पन्त स्वर्णधूलि, प्रथम संस्करण, पृ० १४१
५ सियारामशरण गुप्त आधुनिक कवि १९४३ आत्म-कथा, पृ० ९
६ रामनरेश त्रिपाठी स्वप्न आठवाँ संस्करण, पृ० ५
७ सियारामशरण गुप्त आधुनिक कवि १९४३ आत्म-कथा पृ० ९

यही कारण है कि पंत जी का मन पीडा से पुलकित होता है और आंसू के कण सुख में ढलते रहते हैं—

पीडा में पुलकित होता मन
सुख में ढलते आँसू के कण।[1]

प्रसाद जी को पीडा (या विषाद) इसलिए प्रिय है कि वह सुख का कण है[2] कल्याणी शीतल ज्वाला है अत निर्मम जगती को मंगलमय उजेला[3] तथा पाप को पुण्य बना देने वाली है।[4] दुःख महादेवी जी के मानस में असीम जग का आमन्त्रित कर लाता है[5] अत विरह में उन्हें चिर सुख का अनुभव होता है।[6] इस प्रकार उनके लिए—

जलना ही रहस्य है बुझना—
है नैसर्गिक बात।[7]

सम्भवत इसीलिए उनका यह दृढ संकल्प है—

पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीडा
तुमको पीडा में ढूंढा तुममें ढूंढूंगी पीडा।[8]

इस प्रकार छायावाद का कवि दुख को प्रेम से अभिन्न अतः मान कर दुख में ही ईश्वर का साक्षात्कार करता है—

आँसू के अविरल जल को
मत रोको मन! मत रोको!
इस भीषण घन में सुन्दर
छिपा हुआ है मुक्तावर
इसी अश्रु-जल में वह सुख
अवलोको मन! अवलोको!

इस तम में ही है प्रियतम
अवलोको मन! अवलोको![9]

---

१ पंत स्वर्णधूलि प्रथम संस्करण ७२
 किसी हृदय का यह विषाद है छेडो मत यह सुख का कण है।
 प्रसाद झरना आठवाँ संस्करण पृ० ९०
३ प्रसाद आँसू दशम संस्करण पृ० ६०
४ वही पृ० ७४
५ ६ ७ तथा ८ महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण, क्रमश पृ० संख्या ७४ २१८, ७८ तथा ३२
९ पन्त वीणा-ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृ० ४०

जीवन उत्सर्ग की अभिलाषा

छायावाद का कवि ईश्वर-दर्शन के हेतु वेदना, विरह और दुःख को अपना कर प्रेम मार्ग में त्याग तथा निःस्वार्थ सेवा भाव की प्रतिष्ठा करता है क्योंकि प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना का हवन करके ही वह अपने प्रियतम को प्राप्त कर सकता है।[1] ईश्वर प्रेम का मदिरा का प्याला पीने की इच्छा में ही प्रसाद के प्रेम पथिक का वासनात्मक प्रेम निष्काम ईश्वर प्रेम में बदल जाता है जिसमें वह अखण्ड शान्ति प्राप्त कर लेता है।[2] इसी प्रकार पन्त जी भी मात्र आत्म-त्याग को जगत में सुखप्रद[3] बताकर जगन्माता के प्रेम में संसार के समस्त सुखों को तिलाञ्जलि दे देते हैं।[4]

आत्म समर्पण

प्रेमपरक रहस्यवादी दुःखसहन एवं आत्म-त्याग द्वारा अपने अहं पर विजय पाता है अहं का शमन कर वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है और शाश्वत प्रेम रूप ईश्वर में तादात्म्य स्थापित करता है। इस तादात्म्य के लिए वह अपना सर्वस्व अपने प्रिय के प्रति अर्पित कर देता है। यही आत्म समर्पण उसकी प्रेमसाधना का मूल मन्त्र है।

छायावाद के कवियों ने अपनी प्रेमानुभूतियों में आत्म-समर्पण को सर्वाधिक महत्व दिया है। इसी से वह कामनारहित रहस्य-दर्शन में निश्छल आत्मसमर्पण की प्रतिष्ठा करता है[5] और तन्मय हो यह अनुभव करता है कि—

> आत्म-समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
> प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।[6]

---

१ प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा
तब तुम प्रियतम स्वर्गविहारी होने का फल पाओगे।
प्रसाद प्रेम-पथिक तृतीय संस्करण पृ० ३३

२ देखिए प्रेम पथिक तृतीय संस्करण पृ० ३१ ३२

३ देखिए पन्त युगवाणी १९३९, पृ० ९५

४ तू कितनी प्यारी है मुझको जननि कौन जाने इसको
यह जग का सब जग का दे दे अपने को क्या मुख क्या दुःख ?
पन्त, वीणा-ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृ० ४

५ यह कामना रहित रहस्य-दर्शन केवल निश्छल आत्म समर्पण।
पन्त, उत्तरा प्रथम संस्करण पृ० १ ३

६ प्रसाद प्रेम पथिक तृतीय संस्करण पृ० ३०

उसका यह गटा विश्वास है कि पूण आत्म समपण से उसकी समस्त कामनाओ की सिद्धि हो जायगी—

पूण समपण कर दें प्रभु को लगे सकल सवार।[१]

अत वह बडी आस्था के साथ कहता है—

तुहिन बिन्दु बन कर सुन्दर
कुमुद किरण से सहज उतर
माँ! तेरे प्रिय पद पदमो मे
अपण जीवन को कर दू।[२]

सूफी रहस्यवाद

प्र मपरक रहस्यवाद का सर्वोत्कृष्ट रूप हम सूफी रहस्यवाद म देखने को मिलता है। छायावाद की प्र म भावना पर सूफी रहस्यवाद का भी प्रचुर प्रभाव पडा है अत यहा पर सक्षप म उसका विवेचन कर लेना उचित होगा।

सूफी रहस्यवादियो न आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को प्र म के रूपक द्वारा व्यक्त किया है। भारत के लिए भी यह भावना नितान्त भिन्न नहीं थी। साख्य दशन के प्रकृति और पुरुष विश्व की प्र म लीला म स्त्री और पुरुष के ही प्रतीक है। उपनिषदो म भी परमात्मा के साथ जीवात्मा के मिलन की तलना दो प्र मियो के आलिगन से की गई है। वृहदारण्यक उपनिषद म कहा गया है कि जिस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रियतमा द्वारा आलिगन होने पर सभी बाहरी या भीतरी बातो को एकदम भल जाता है उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा के साथ सयुक्त हो जाने पर सभी बाहरी और भीतरी बातो का ज्ञान खो देता है।[३] कृष्ण की प्र मिका गोपियाँ वदिक ऋषियो की प्रतीक मानी जाती थी और उनका प्र म इतना उग्र था कि भगवान के साथ अति निकट का सम्पर्क रखे बिना उन्ह सतोष नहीं था।[४] सन्त आण्डाल ने जो एक बहुत प्राचीन आलवार सन्त कवयित्री थी अपना गीता म विष्णु के साथ सम्पन्न हुए विवाह का स्वप्न देखा था।[५] कृष्ण भक्त वष्णव कवियो के यहाँ भी मधुर भाव अथवा प्र मरग का बडा महत्त्व है। सन्त आण्डाल की भाँति ही मीराबाई ने भी कहा है—

१ पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण पृ० ९२
२ पन्त वीणा-ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृ० २
३ वृहदारण्यक उपनिषद ४।३।२१
४ डा बडथ्वाल हिन्दी काव्य म निर्गुण सम्प्रदाय
　　　　　　　　　प्रथम सस्करण, पृ० ३४४
५ वही पृ० ३४५

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।[1]

वल्लभ सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि पुरुषोत्तम ही एकमात्र पुरुष है और जो कोई उससे प्रेम करते हैं उन्हें स्त्री समझना चाहिए।[2] कबीर, दादू आदि ने भी परमात्मा को पति तथा अपने को पत्नी रूप माना है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि अध्यात्म प्रेमी छायावादी कवि के सामने वैष्णव भक्त, सूफी तथा निर्गुणपन्थी सन्तों की आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री पुरुष के रूपक द्वारा व्यक्त करने की एक अत्यन्त परम्परा विद्यमान थी। इसी परम्परा से प्रभावित होकर छायावादी कवियों ने अपनी सामान्य रति को भी परम रति का स्थान दे दिया।

सूफीमत में स्त्री केवल मात्र पत्नी या प्रेमिका न होकर ईश्वरीय प्रकाश की एक किरण किंवा स्रष्टा की आत्मा मानी गई है।[4] उधर छायावाद-युग को प्रभावित करने वाले स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने व्यावहारिक वेदान्त द्वारा यह प्रचारित किया कि जिस दिन से तुम नर-नारियों में ईश्वर दर्शन लगोगे उसी दिन से मैं तुम्हें धार्मिक कहूँगा।[5] अतः युगधर्म के अनुरूप ही आध्यात्मिक उल्लास में छायावाद का कवि अपने लौकिक प्रेम-पथ में मामा जिक आराध्य तथा अवधानों के कारण असफल हो सूफी प्रेम भावना से जिसका लक्ष्य लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण है[6] विशेष रूप से प्रभावित हुआ। इस प्रकार उसका वासनात्मक प्रेम भी परिमा र्जित होकर सूफियों के परम प्रेम-सा प्रतिभासित होने लगा और उसके लौकिक

---

१ मीरा पदावली, पृ० २४
२ दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता पृ० ४१०
३ हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया। ... कबीर हम ताहि चरे हैं पुरिखि एक अविनाशी।
कबीर ग्रन्थावली पृ० ८
इस मन नारि एक भरतार सब काहू तन पर सिंगार।
बानी (सार सागर) पृ० ५
४ Woman is a ray of God, not a mere mistress,
the Creator's self as it were.
F. Hadland Davis: The Persian Mystics. P. 69
५ विवेकानन्द: व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ५४
६ लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण ही सूफियों का प्रतिपाद्य विषय है।
चन्द्रबली पाण्डेय: तसव्वुफ अथवा सूफीमत, १९४८ पृ०

विरह मिलन मे भी सूफियो के चिर परिचित विरह और 'वस्ल' की झलक मिलने लगी।

विरह

सूफीमत मे प्रेम वह शक्ति है जो जीव को उसके विरह की अनुभूति कराती है और प्रेम से ही प्रेरणा पाकर जीव उस सत्ता मे फिर से मिल जाने का प्रयास करता है जिस सत्ता से वह सृष्टि की प्रक्रिया मे वियुक्त हो गया है।[1] इस प्रकार सूफीमत मे विरह की बड़ी महिमा है। सूफियो के इस विरह का आभास हम छायावाद के कवियो मे भी मिलता है।[2] महादेवी जी ने स्पष्ट ही जन्म को विरह की रात[3] और जीवन को विरह का जलजात[4] कहा है। उनके लिए जीवन वरदान न होकर सुप्त व्यथाओ का उन्मीलन मात्र है।[5] प्रसाद जी ने भी खुलकर कहा है—

हम अलग हुए हैं पूर्ण से व्यक्त हो के
वह स्मृति जगती है प्रेम की नींद सो के[6]

और अपने आँसू के प्रसग मे उस महामिलन को स्मरण भी किया है—

ये सब स्फुलिंग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महामिलन के।[7]

---

१ रामधारी सिंह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय द्वितीय सस्करण पृ० २५२

२ कबीर ने प्रेम की पीड़ा और विरह की आकुलता का जो मार्मिक वर्णन किया उससे हिन्दी मे एक नई परम्परा का आरम्भ हो गया अथवा यो कहना चाहिए कि भारतीय भावुकता कबीर के हाथो मे इस्लामी भावुकता से मिलकर एक नए रग मे ढल पड़ी जिसकी झाँकी हम मीरा बोधा और घनानन्द से लेकर छायावादी कवियो (विशेषत महादेवी) तक मे मिलती है। रामधारी सिंह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय द्वि० सस्करण पृ० २५६

३ महादेवी वर्मा, यामा तृतीय सस्करण पृ० ७३

४ वही पृ १३८

५ महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ पृ० ४८

६ प्रसाद कानन कुसुम पचम सस्करण पृ० ६

७ प्रसाद आँसू दशम सस्करण पृ ९

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद का कवि सूफी भक्तों के समान ही जन्म से पहले के ईश्वर के साथ संयोग की याद कर इस जीवन को विरह के रूप में अपनाता है। किन्तु सूफियों का उक्त विरह निष्प्रयोजन नहीं होता। विरह उनके लिए वरदान स्वरूप है। विरह के द्वारा ही वह अपने प्रियतम का सायुज्य प्राप्त करता है। सूफियों की भाँति छायावादी कवियों को भी विरह अत्यन्त प्रिय है।[1] क्योंकि वह उन्हें उनके प्रियतम की याद दिलाता रहता है।[2] महादेवी जी के लिए तो विरह आराध्य का प्रतीक ही बन गया है।[3] अतः वे उसमें चिर सुख का अनुभव करती हुई पाई जाती हैं।[4] सूफियों की भाँति छायावाद का कवि विरह द्वारा प्रिय अथवा ईश्वर-दर्शन की कामना अथवा आशा भी करता है—

ये दुख के दिन
काटे हैं जिसने
गिन गिन कर
पल छिन तिन तिन।
आँसू की लड़ मोती के हार पिरोये
गले डाल कर प्रियतम के
लखने को शशिमुख
दुःख निशा में
उज्ज्वल अमलिन।[5]

विरह की ज्वाला में जलने का रहस्य वह निम्न शब्दों में व्यक्त करता है—

---

1. किसी हृदय का यह विषाद है छेड़ो मत यह सुख का कण है।
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ करुणा का विश्रान्त चरण है।
प्रसाद झरना आठवाँ संस्करण पृ० २९

2. वे स्मृति बन कर मानस में खटका करते हैं निशि दिन
उनकी इस निष्ठुरता को जिसमें मैं भूल न जाऊँ।
महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ पृ० ७३

3. विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा।
महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण पृ० २१३

4. मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।
महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण पृ० १८

5. निराला अर्चना १९५० ६९ वाँ गीत

इस ज्वाला म जनन का है अलि विचित्र इतिहास ।
उर्मि उबल बन गया अश्रु कण नदी सख नि श्वास
प्रिय दशन है साध हृदय की प्रिय की छवि उल्लास
प्रियतम तन मन धन सखि प्रियतम जीवन मरण विकास ।[1]

छायावाद का कवि प्रिय दशन के अभाव म अपना करुण यथा का सबल लेकर ही जीवित रहना चाहता है—

हृदय नही मेरा शून्य रह
तुम नहिं आओ जो इसम तो तव प्रतिबिम्ब रह
मिलन का आनन्द मिले नहिं जो इस मन को मेरे
करुण-व्यथा ही लेकर तेरी जिये प्रम के डर ।[2]

वह अपनी बेसुध पीडा को उस समय तक अपने हृदय म सजोये रखना चाहता है जब तक कि उसका प्रियतम उसके पास न आ जाय—

ठहरो बेसुध पीडा को मरी न कहा छू नना ।
जब तक वे आ न जगायें सब सानी रहन दना ।[3]

इस प्रकार हम देखते ह कि छायावाद का कवि अपन उर के यथा भार और क्रन्दन गायन स अपन करुणाकर का रिझान तथा उसके साथ तन्मय होन का सतत प्रयत्न करता है ।[4]

प्रियतम की निष्ठुरता

सूफिया का प्रियतम कठोर बनता है पर कही किसी को मना नही पाता। अन्त म वह जीव मात्र का निस्तार कर देता है ।[5] ठीक यही दशा छायावादी कवियो ने प्रियतम की भी है । छायावादी कवि सदा प्रिय क वियोग

१ भगवती चरण वर्मा मधुकण पृ० ५०
२ प्रसाद कानन कुसुम पचम सस्करण प० ९३
३ महादेवी वर्मा यामा ततीय सस्करण पृ० २३
४ अग अग म हृदय उद्वेलता
राम राम म प्रणय मिसक्ता
तुम म तन्मय होन का उर
करता क्रन्दन गायन ।
पन्त उराग प्रथम सस्करण पृ० १ ८
५ प० रामबना पाण्डय तसव्वुफ अथवा सूफीमत १ ४१ पृ० ७८

म रोता रहता है ।[1] वह उस प्रिजान क निए आराधना प्रार्थना पूजा विलाप कलाप सब कुछ करता है किन्तु वह इतना निर्मो ी है कि पसीजता नही—

आराधना प्रार्थना पूजा प्रमाजनि विलाप कलाप
तरा ह तर चरणो म हू पर कहाँ पमाजे आप ![2]

इस ट सह पीरा म कभ धीर म कराह उठता ह कि मुझको कभी प्यार नहा मिला ।[3] और जब कभी स्वीमत भाकर उसका प्रियतम आन का वचन भी देता है तो युग कप बीत जाते ह फिर भी वह नहा आता ।[4] और यदि कभी उसक सामन आता भी है तो कुछ दूरी पर ही कपन क ताग म गुथा हुआ सा लहराता रहता है—अति निकट नहा आता—

दूर नहा होत माना
पर पास न । आत हा ?
कम्पन के ताग म गुथ
म लहरात हो ।[5]

प्रियतम क इस निष्ठुर यापार म छायावादी कवि क सताप का बाँध टूट जाता है जिसस उसका सम्पूर्ण अनुनय विनय विलाप कलाप उपालम्भ म बदल जाता है ।[6]

---

१ मन राया ी करता क्या अपने एकाकीपन पर ?
　　महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्करण प ८३
२ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी तृतीय सस्करण प० ८८
३ प्रसा लहर तृतीय बार प० ३५
४ व कह जो गय कल आन को
　सदि पल गय गिनत कल्पा ।
　　निराला अर्चना १९५० ४७वाँ गीत
५ माखन लाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी तृतीय सस्करण प० १०४
६ (क) आँख बचाते हो
　तो क्या आते हो ?
　काम हमारा बिगड गया
　दिया रूप जब कभी नया
　कहाँ तुम्हारी मेहर दया
　क्या ममजान हो ?
　निराला अर्चना १९५० ४ वाँ गीत
　(ख) यह कैसी इतना निमम कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ?
　तुम मन म हो फिर मुझ से कहाता है सारा ससार ।
　　महादेवी वर्मा, यामा तृतीय सस्करण पृ० ६४

मिलन

उपालम्भ की इस स्थिति में उसका निर्मोही प्रियतम पसीज जाता है और उसके साथ प्रेम-केलि करने लगता है।[1] अतः उसके प्राणों में रागिनी छा जाती है[2] और उसे सृष्टि में चारों ओर उल्लास ही उल्लास दृष्टिगत होने लगता है—

> तुम आये कनकाचल छाये
> ऐ नव-नव किसलय फनाये।
> शतशत बल्लरियाँ नत मस्तक
> झुक कर पुष्पाधर मुसकाये।[3]

प्रियतम के उक्त मिलन से उसका हृदय कमल अलौकिक आनन्द में खिल उठता है और उसका दैन्य दूर हो जाता है—

> तुम से जो मिले नयन
> दूर हुए दुरित शयन।
> खिले अंग अंग अमन
> सर के प्रात शतदल
> पावन पवनोच्छल पल
> अलक मन्द गन्ध वपन।[4]

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि छायावाद के कवि ने अलौकिक विरह मिलन को मानवीय प्रेम-सम्बन्धों के अतिरिक्त प्रकृति के रूपकों द्वारा भी बड़े ही कलात्मक तथा मनोरंजक ढंग से व्यक्त किया है, जिसका सुन्दरतम उदाहरण हमें निराला जी की 'जुही की कली' में मिलता है। उसमें पवन (परमात्मा) जुही की कली (आत्मा) के साथ अलौकिक केलि कलाप करता हुआ चित्रित किया गया है।[5] कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी कवियों का प्रिय के साथ यह प्रेम मिलन अथवा प्रेम-केलि सूफी साधकों के प्रियतम के साथ मिलन अथवा प्रेम-लीला के अत्यन्त समीप है। अन्तर केवल इतना ही है

---

१ इस हमारे और प्रिय के मिलन में
स्वर्ग आकर मेदिनी से मिल रहा
प्रसाद : झरना, आठवाँ संस्करण, पृ० ७४

२ तुम मिले प्राण में रागिनी छा गई !
माखनलाल चतुर्वेदी : समर्पण, प्रथम संस्करण पृ० [illegible]

३ निराला : अर्चना, १९५०, ८६वाँ गीत

४ वही, ५५वाँ गीत

५ देखिए निराला : परिमल, षष्ठमावृत्ति, पृ० १६३-६५

कि सूफियों ने अपने अलौकिक प्रेम-सम्बन्धों को लौकिक प्रेम के रूपकों द्वारा व्यक्त किया है और छायावादी कवियों ने अपने लौकिक प्रेम सम्बन्धों को अलौकिक प्रेम के आवरण में अभिव्यक्त किया है। किन्तु जहाँ तक प्रेम-तत्त्व की उन्मादना का सम्बन्ध है दोनों में किंचित भेद नहीं है।

डा० ब्राउन ने जो सूफीमत के विश्वासों की सूची तैयार की है उसके अनुसार सूफियों का एक विश्वास यह भी है कि आत्मा शरीर के पिंजड़े में बन्द है किन्तु पिंजड़ा पीछे बना और पक्षी (आत्मा) पहले से ही मौजूद रहा है। पिंजड़े के टूटे बिना पक्षी स्वाधीन नहीं हो सकता। अतएव मृत्यु काम्य है क्योंकि मृत्यु के बाद ही आत्मा परमात्मा को प्राप्त करता है।[1] इस विश्वास के आधारभूत सूफियों का दार्शनिक सिद्धान्त यह था कि जीव ब्रह्म से बिछुड़ा हुआ है एवं ब्रह्म मिलन का सुख वह मरने के बाद पा सकता है। इससे दूसरा सिद्धान्त यह निकला कि शीघ्र से शीघ्र मर कर ब्रह्म को प्राप्त करना चाहिए। भारत का बौद्धमत भी जीवन के शोषण या बुझ जाने को अपना परम उद्देश्य मानता है और जैनमत तो शरीर के बुझने के पूर्व शरीर को जर्जरा करके ही रखने का पक्षपाती है। किन्तु मृत्यु काम्य है यह बात किसी ने भी स्वीकार नहीं की। हाँ कबीर को सूफीमत की लहर में जब ब्रह्म वियोग की प्रखर अनुभूति हुई तब वे अनुभव करने लगे कि मृत्यु त्याज्य नहीं काम्य है—

जिस मरने से जग डरे मेरो मन आनन्द।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ पूरण परमानन्द।[2]

किन्तु सूफियों के प्रभाव के पूर्व भारतीय भक्तिभावना में मृत्यु काम्य नहीं थी। भारत के भक्त कवि यह उपदेश देते आ रहे थे कि जीवन का उपयोग भगवान की सेवा करने में करना चाहिए और सेवा का आनन्द उनकी दृष्टि में इतना उत्तम था कि उसके आगे वे मुक्ति को भी तुच्छ समझते थे। मुक्ति अथवा आत्मा का परमात्मा में विलयन के विरुद्ध इन कवियों का तर्क यह था कि जीव ब्रह्म में लीन हो जाने के उपरान्त ब्रह्म से अलग रह कर उसकी सेवा करने से वंचित रह जायगा, अतः उन्होंने मुक्त कण्ठ से गाया—

देवा ! तेरी भक्ति न छाँडूँ मुक्ति न मांगूँ
तव जस सदा सुनावों।[3]

---

१ रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय
द्वितीय संस्करण पृ० ५८

२ वही पृ० ३२८

३ वही पृ० ३२८

मृत्य को काम्य और मोहक मानने की भावना भारत देश में सूफियों के प्रभाव से फली और बढ़ते बढ़ते वह छायावाद युग तक भी पहुँची। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने—

> मरते चाहिना आमि सुन्दर भुवने
> मानवर माझे आमि वाचिबारे चाइ।[1]

कहकर जीवन और जगत के प्रति घनी आसक्ति अवश्य प्रकट की है किन्तु भानुसिंह ठाकुरेर पदावली की मरण शीर्षक कविता में सूफीमत के प्रभाव[2] से उन्होंने मृत्यु को अत्यन्त मोहक चित्रित किया है—

> मरण रे
> तु हु मम श्याम समान।
> मेघवरण तुझ मेघ जटाजूट
> रक्त कमलकर रक्त अधरपुट
> तापविमोचन करुण कोर तव
> मृत्यु अमृत करे दान।
> तु हु मम श्याम समान॥[3]

इसी प्रकार नवद्य की मृत्यु शीर्षक कविता में भी रवि बाबू ने मृत्यु के प्रति अपना प्रेम प्रकट किया है—

> मृत्युर प्रभाते
> सेइ अचेनार मुख हेरिबि आवार
> मुहूर्ते चेनार मतो। जीवन आमार
> एत भालो वासि बले हयेछे प्रत्यय
> मृत्युरे एमनि भालो वासिब निश्चय॥

---

१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर सचयिता (विश्वभारती प्रकाशन) षष्ठ संस्करण (बंगला) कड़ि ओ कोमल की प्राण—शीर्षक कविता पृ० ४२

२ रवीन्द्रनाथ पर सूफी संस्कार का प्रभाव सूफी कविताओं से पड़ा होगा। ब्रह्म-समाज में सूफी कविताओं का काफी प्रचलन था। राजा राम मोहन राय और महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर पर हाफिज आदि फारसी कवियों का गहरा प्रभाव था। ये लोग पूजा-समाज के समय भजनों के साथ फारसी की गजलें भी गाते थे। ब्रह्म-समाज के दूसरे नेता केशवचन्द्र सेन भी हाफिज के प्रेमी थे।

रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय द्वि० सं० पृ० ५९०

३ रवीन्द्रनाथ ठाकुर सचयिता षष्ठ संस्करण पृ० २१

स्तन हुत तुल नित और शिशु डर
मुक्ति आश्वास पाय गीय स्तनान्तर ॥[1]

अतः मृत्यु प्रेम छायावादी कविता में भी कुछ तो सीधे कबीर आदि सूफी कवियों और कुछ रवि बाबू के प्रभाव से व्यक्त हुआ।[2] किन्तु इस भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति छायावादी कविता में महादेवी वर्मा ने ही की है। मृत्यु काम्य है, मृत्यु विश्राम है, यह भाव उनकी कविता में बार-बार आया है।[3]

पाश्चात्य रहस्यवाद

छायावादी कवियों के अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों (ब्लेक, वर्ड्सवर्थ आदि) के सम्पर्क में आ जाने के कारण इनकी रहस्य भावना पर उक्त कवियों की रहस्य भावना का भी प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव छायावादी कवियों की शिशुभावना पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वर्ड्सवर्थ ने अपनी 'ओड आन इन्टीमेशन्स आव इम्मारटेलिटी फ्राम रिकलेक्शन्स आव अर्ली चाइल्डहुड' में शिशु एवं शैशव को रहस्यभरी दृष्टि से देखा है। इसके मत में शिशु उच्चतम दार्शनिक और अन्धों की आँख है जिसे शाश्वत सत्य की अनुभूति होती रहती है। शिशु में ही शाश्वत सत्ता निवास करती है और वह महान देवदूत (प्राफेट)

---

1. रवीन्द्रनाथ ठाकुर संचयिता, पञ्चम संस्करण, पृ० ४४४

2. नहीं मृत्यु भय का अब कारण,
   नहीं दुःख संशय का दंशन —
   निधन द्वार कर पार
   मुक्त हो गया आज मन
   पा नव जीवन दर्शन !

   पन्त, वाणी, प्रथम संस्करण, पृ० ६२

3. (क) अमरता है जीवन का ह्रास
   मृत्यु जीवन का चरम विकास !
   महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) प्रथम संस्करण, पृ० ४

   (ख) रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार !
   वही, पृ० [illegible]

   (ग) दृष्टि का है यह अमिट विधान एक मिटने में सौ वरदान
   —वही, पृ० ३

   (घ) मिटने वालों का है निष्ठुर ! बेसुध रंगरलियाँ देखा !
   —वही, पृ० ६०

एव तत्वद्रष्टा है।[1] वर्ड्सवर्थ की शिशु विषयक उक्त रहस्यभावना से छायावादी कवि पन्त निराला और गोपालशरण सिंह विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं।[2]

वर्ड्सवर्थ का बालक स्वर्ग के समीप होने के कारण शैशव की आनन्दानुभूति में स्वर्गिक प्रकाश का अवलोकन करता हुआ पाया जाता है।[3] पन्त का बालक भी स्वर्ग की स्मृति में आनन्दविभोर हो उठता है—

> बालक के कम्पित अधरों पर
> किस अतीत सुधि का मृदु हास
> जग की इस अविरत निद्रा का
> करता नित रह रह उपहास ?

जिस प्रकार वर्ड्सवर्थ[5] को उसी प्रकार पन्त जी को भी प्रकृति के रूपखण्ड स्वर्गिक आत्मा से प्रदीप्त प्रतीत होते हैं—

> आज शिशु के कवि का अनजान
> मिल गया अपना गान !

---

1 Thou best Philosopher who yet dost keep
Thy heritage thou Eye among the blind
That deaf and silent read st the eternal deep
Haunted for ever by the eternal mind —
Mighty Prophet ! seer blest !
The Palgrave s Golden Treasury Wordsworth s
Ode on Intimations of Immortality From
Recollections of Early Childhood 8th Stanza

२ अत डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा का यह कथन कि हिन्दी कवियों में केवल उन्होंने (पन्त जी ने) बाल्यावस्था में एक गम्भीर रहस्य पाया है गलत है। डा रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्रथमसंस्करण पृ १९१

3 But he beholds the light and whence it flows He sees it in his joy —
Wordsworths Ode on Intimations of Immortality Fifth Stanza

४ पन्त पल्लव पद्यावलि पृ० २४

5 There was a time when meadow grove and stream
The earth and every common sight,
To me did seem
Apparell d in celestial light
The glory and the freshness of a dream
Wordsworth s Immortality Ode First Stanza

खोल कलिया न उर क द्वार
द दिया उसका छवि वा देश
बजा भौरा न मधु का तार
कह दिए भद भरे सन्देश

गूढ सकना म हिल पात
कह रह अस्फुट बात,
आज कवि क चिर चचल प्राण
पा गए अपना गान ![1]

वह सवध म समान जो पन्त जी भी प्रौढावस्था म बाल्यावस्था की स्वर्गिक आभा के विलुप्त हा जान पर विक्षुब्ध हा उठते है—[2]

यौवन क मादक ... न
उग कलिका का खोल अजान
छीन लिया हा ! आज किस सा
मरा मधुमय तुतला गान !

अत व दयामय म अपन छान गय बचपन को पुन लौटा देन की प्रार्थना करत है—

इस अभिमानी अचल म फिर
अकित कर दो विधि ! अकलक
मरा छीना बालापन फिर
... ! ... मर अक ।[3]

वह सबध न शिशु का महान दार्शनिक तत्ववना आदि रूपा म दखता है । पन्त का शिशु भी अतुल अभिनव अभिराम गढ गहन अजान और निरुपम है—

कौन तुम अतुल अरूप अनाम ?
अय अभिनव अभिराम !

---

१ पन्त पल्लविनी प्रथम सस्करण पृ १०
2 Heaven lies about us in our infancy !

At length the Man perceives it die away
And fade into the light of common day
The Palgrave s Golden Treasury Wordsworth s Ode on Intimations of Immortality Fifth Stanze
पन्त पल्लविनी प्रथम सस्करण पृ ८८
४ वही पृ ४९

कौन तुम गूढ़ गहन अज्ञात !
अहे निरुपम नवजात ।[1]

वर्ड्सवर्थ के मत में मनुष्य बाल्यावस्था में स्वर्गिक आभा से घिरा रहता है ।[2] यही भाव दिनकर की निम्न पंक्तियों में व्यक्त हुआ है—

कहते हैं शिशु को मन देखो अगम्भीर भावों में
अभी नहीं ये दूर केन्द्र से परम गूढ़ सत्ता के
जानें क्या कुछ देख स्वप्न में भी हँसते रहते हैं ।[3]

वर्ड्सवर्थ और छायावादी कवियों की शिशु भावना में अन्तर यह है कि वर्ड्सवर्थ शिशु में केवल ईश्वरीय शक्ति अथवा शाश्वत सत्ता का अनुभव करता है जबकि छायावादी कवि उसके स्वरूप में साक्षात दर्शन करते हैं ।—

शुभ ! सच्चा शिशु के स्वरूप में ईश्वर ही आते हैं ।[4]

वह है अकाम काम से है उसे काम नहीं
भाता जिसे जो है उसे देता वही नाम है ।
उसकी उपासना में लीन रहता है नाथ
चित्त वह वासना विहीन अविराम है ।[5]

अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का रहस्यवाद काव्यगत (Poetic) होने के कारण असाम्प्रदायिक और भावात्मक है । छायावादी रहस्यवाद भी अपने में कबीर, नानक, दादू आदि के रहस्यवाद की भाँति साधनात्मक अथवा साम्प्रदायिक न होकर काव्यगत (Poetic) ही है अतः वह स्वरूपतः अंग्रेजी के असाम्प्रदायिक स्वच्छन्दतावादी रहस्यवाद के अत्यन्त समीप है । सन्त कवियों और छायावादी कवियों के रहस्यवाद के सम्बन्ध में महादेवी वर्मा का निम्न मत द्रष्टव्य है—

कबीर के रहस्य भरे पद हमारे हृदय का स्पर्श कर भी बुद्धि से टकराते हैं । अधिकतर हममें उनके विचार ध्वनित हो उठते हैं भाव नहीं जो गीत का लक्ष्य है ।[6] छायावाद के गीतात्मक रहस्यवाद के सम्बन्ध में उनका

१ पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ ...
Heaven lies about us in our infancy !
2 Wordsworth s Immortality Ode Fifth Stanza
३ रामधारी सिंह दिनकर रसवन्ती प्रथम संस्करण पृ ११६
४ वही पृ० ११७
५ ठाकुर गोपालशरण सिंह आधुनिक कवि १९६ शिशु
गोपाल कविता पृ ८
६ महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण अपनी बात पृ० ३

लिखा है कि यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित तो था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।[1] अतः भारतीय और पाश्चात्य दोनों रहस्यवादी परम्पराओं से प्रभावित होने के कारण छायावादी रहस्यवाद में भारतीय रहस्यानुभूति जो ज्ञान क्षेत्र में एक सिद्धान्त मात्र थी कबीर के हृदय की कोमलतम भावनाओं में प्राणप्रतिष्ठा पाकर तथा प्रेममार्गी सूफी सन्तों के प्रेम में अतिरंजित होकर ऐसे कलात्मक रूप में अवतीर्ण हुई जिसने मनुष्य के हृदय और बुद्धिपक्ष दोनों को सन्तुष्ट कर दिया।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी रहस्यवाद उपनिषद् गीता वैष्णव सम्प्रदाय सूफीमत आदि की अद्वैतमूलक विचारधाराओं अथवा उपकरणों से युक्त होते हुए भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनसे भिन्न अथवा कलात्मक है और उसका स्वरूप बौद्धिक और साम्प्रदायिक न होकर भावात्मक और असाम्प्रदायिक है।

---

१ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) वक्तव्य सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण से, पृ० १०

२ वही

५

छायावादी काव्य में निराशावादी दर्शन की अभिव्यक्ति

आशावाद और निराशावाद—जीवन के दो दृष्टिकोण

सामान्यतः आशावाद और निराशावाद शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी के प्रभाव के कारण जीवन के प्रति दो दृष्टिकोणों के अर्थ में होता है। साधारणतः मनुष्य किसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं, प्रत्युत परिस्थिति, मनःस्थिति, स्वास्थ्य, स्वभाव अथवा आर्थिक दशा के कारण ही आशावादी अथवा निराशावादी हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि जो व्यक्ति सामान्य जीवन में निराशावादी है वह अध्यात्म पक्ष में भी निराशावादी ही रहे। ईश्वर में चिर विश्वास रखने वाले, सुख दुःख को उसी की इच्छा का परिणाम समझने वाले दो व्यक्तियों पर भी किसी विकट घटना का अलग अलग प्रभाव पड़ सकता है और पड़ता भी है। उदाहरणार्थ यदि कोई राष्ट्र आर्थिक संकट में पड़ गया है, साथ ही उसकी आन्तरिक राजनीतिक स्थिति भी डाँवाडोल है और इसी में सहसा किसी बाहरी शत्रु का आक्रमण हो गया, तो एक इस संकट काल में साहस और धैर्य से काम लेकर शत्रु का डटकर सामना कर सकता है और सोच सकता है कि शत्रु शक्तिशाली और समर्थ होने पर भी कभी ऐसी भारी भूल कर सकता है कि विजय उसके हाथ से निकल कर अपने हाथ में आ जाय। और दूसरा उसी आक्रमण से इतना घबड़ा सकता है कि उसकी मति मारी जाय और बुद्धि ठीक से काम न करे, उसे इस संकट काल में अपने राष्ट्र के पतन के अतिरिक्त दूसरा और कुछ न सूझे। अतएव ऐसी स्थिति में एक ही घटना के आधार पर पहले के दृष्टिकोण को आशावाद तथा दूसरे के दृष्टिकोण को निराशावाद कहा जायगा और उन्हें क्रमशः आशावादी तथा निराशावादी कहा जाता है। तो भी अध्यात्म पक्ष में दोनों का यह विश्वास बना रह सकता है कि जो कुछ संसार में होता है ईश्वर की इच्छा से अच्छे के लिए ही होता

है और अन्त में इससे भी कुछ अच्छा ही होगा। अतएव यह भी अतर्क संभव आशावादिता का ही लक्षण है। किन्तु उनमें से पहला शक्ति संचित कर संकट के निवारण का उपाय करता है, आशा के सहारे उस पर का उठता है और दूसरा पहले से ही यह मान बैठता है कि किसी प्रकार वर्तमान संकट से मुक्त होना साध्य नहीं।

अस्तु इस भांति की आशा और निराशा का आधार भी मनुष्य की प्रकृति ही है। प्रकृति से ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सामान्यतः प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक स्थान में शोभन और शुभ का दर्शन करते हैं और कुछ ऐसे कि उसके विकृत और बीभत्स पक्ष पर ही दृष्टिपात करते हैं तथा कोई स्वभाव से ही इतना सरल और सीधा होता है कि झट दूसरे का विश्वास कर लेता है और सब में गुण ही गुण ढूंढता और पाता है। दूसरा उधर मानव के दुर्बल पक्ष पर ही दृष्टि डालता है। वह बराबर चाहता है कि किसी के मन्द आपसी व्यवहार में कुछ अर्थ अथवा भय तो नहीं छिपा हुआ है। ऐसे प्राणी भी मनुष्य को सन्देहात्मक अथवा निराशावादी दृष्टिकोण से देखते हैं। अतएव व्यवहार में ऐसी भिन्न भावना रखते हुए भी सिद्धान्त में इन दो प्रकार के मनुष्यों का आदर्श एक हो सकता है और मानव मात्र के प्रति पूर्ण आस्था तथा उसके चरम विकास में दृढ़ विश्वास हो सकता है।

यह कहना ठीक नहीं कि दुःख सदा मनुष्य को निराशा के अन्धकार में ही ढकेलता है। ऐसे व्यक्ति भी पाये जाते हैं जो सन्ताप में ही अपना सन्तोष और विकास पाते हैं।[1] दुःख की कामना तो सम्भवतः वे भी नहीं करते परन्तु आपत्ति आ जाने पर उसको परीक्षा काल समझ कर्त्तव्य पथ पर और भी दृढ़ता के साथ अग्रसर होते हैं। संघर्ष में अपने आत्मबल और पौरुष का और उज्ज्वल भविष्य का भव्य चित्र बनाने की वे आशा ही करते हैं इसलिए दुःख उनके किसी कार्य में बाधक न बन सहायक ही बनता है। ऐसे जीव भी आर्थिक संकट, जर्जर स्वास्थ्य, क्षीण शरीर और स्वभाव की असहिष्णुता के कारण आशा पथ में विचलित हो जाते हैं और कुछ काल के लिए निराशा की धूमिल गोद में गिर जाते हैं किन्तु इनकी यह निराशा स्थायी नहीं होती। दुःख के निराकरण के साथ ही उनके जीवन में फिर आशा का संचार हो जाता है और फिर उनकी आशावादिता प्रखर हो उठती है।

निराशा का एक दूसरा पक्ष भी है। मनुष्य जीवन अनुभव की दृढ़ चट्टान पर खड़ा है। प्रतिदिन की नवीन घटनाएँ उसकी विचारधारा में नवीन

---

१ मसीबत में बशर के जौहरे मरदाना खुलते हैं।
मुबारक बुज़दिलों को गर्दिशे क़िस्मत से डर जाना।—चकबस्त

पथ न मचाती रहती है। जो कुछ उसकी आँखों के सामने होता है अथवा जो कुछ उस पर बीतती है उसका प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क पर पडता रहता है और उन्ही के अनुकूल वह अपने जीवन को बनाता और उसकी तह म किसी दर्शन का निर्माण करता है। विकासवाद को युग धर्म समझने वाला प्राणी भी स्वभाव की विलक्षणता के कारण अपने नित्यप्रति के जीवन म युद्ध अन्याय, घृणा जुगुप्सा ईर्ष्या द्वेष कलह आदि अमानविक कृत्यों को देखते सुनते जीवन म सदा के लिए उदासीन हो सकता है। इस प्रकार स्वभाव स्वास्थ्य और अनुभव पर आधारित निराशा क्षणिक भी हो सकती है और स्थायी भी।

इसके अतिरिक्त निराशा का आध्यात्मिक पक्ष भी है जहाँ वह निश्चित वाद का रूप धारण कर लेती है। प्रत्येक प्राणी का एक निजी दर्शन होता है। जिस ढंग का जीव वह होगा उसी ढंग का दर्शन भी वह ढूँढ निकालेगा। किन्तु जिस प्रकार विषय का वह एक बार अपना लेगा उसी के अनुरूप उसकी दृष्टि नाग भी हो जायगी। अरविन्द द्वारा प्रतिपादित विकास सिद्धान्त म विश्वास रखने वाला व्यक्ति सदैव इस बात पर बल देगा कि मानव जाति निरन्तर प्रगति की ओर बढ रही है। असन्तोष को वह ईश्वर की परम्परा इसलिए समझता है कि इसके कारण ही वह भूत और वर्तमान स असन्तुष्ट रहकर भविष्य के हेतु विकास के नवीन सिद्धान्तों का अन्वेषण करता है। किन्तु ठीक इसके प्रतिकूल वह प्राणी जो जन्म को ही भारी भूल या पिछले जन्म का परिणाम मानता है कभी किसी दशा म भी आशावादिता का समर्थन नहीं कर सकता। इसके यहाँ मानव जीवन का इतिहास भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालों म दुःख म ही परिपूर्ण रहेगा। फलत वह जीवन को धोखा अथवा विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ भी न समझ सकेगा।

यह तो ठीक ही है कि एषणा के कारण मनुष्य जीवन म प्रवृत्त होता है। एषणा ही मनुष्य को सांसारिक प्रलोभनों और बन्धनों म लगाती भटकाती और उलझाती रहती है। प्रिय-अप्रिय मित्र अमित्र योग वियोग पर अपर आदि का भेद भाव एषणा ही का अनुपम सार है। एषणा ही राग की जननी है। पर इष्ट के अभाव म दुःख और निराशा का होना अनिवार्य है। अत एषणा किंवा तृष्णा का नाश करके ही मनुष्य वास्तविक आनन्द का अनुभव अथवा उपभोग कर सकता है। इस विचारकों की दृष्टि म मानव जीवन निस्सार हेय और कटु होगा और प्रकृति का सम्पूर्ण विकास और वैभव सुख का साधन न होकर दुःख का ही कारण होगा। इस कोटि के दार्शनिकों के हृदय म विश्व की बहुमूल्य विभूतियाँ आशा का सचार नहीं कर सकेंगी। इस विचारक निवृत्तिमार्गी हो होंगे और आशा का संसार अपने हृदय म बसाकर

इसी में सुख और आनन्द की खोज करेंगे। अवश्य ही ऐसे पारदर्शी प्राणी जीवन को शुभ दृष्टि से नहीं देख सकते। किन्तु जिन दार्शनिकों की दृष्टि में मानव जीवन निमग्न आनन्दमय है, सुख दुःख के बीच की कड़ी है जो सच्चे आनन्द की उपलब्धि कराता है, उनकी सत्ता में यह संसार सुख का भण्डार है। जिसमें जितनी शक्ति है उतना वह सुख संचय में समर्थ है। ये सुख और दुःख के स्वस्थ सन्तुलन पर ही निर्भर हैं और इस संसार से सुन्दरतर किसी दूसरे संसार की कल्पना नहीं करते। इस प्रकार आशावाद और निराशावाद का सम्बन्ध अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों से जुड़ा है।

हिन्दू दर्शन में निराशा का दार्शनिक पक्ष

भौतिक सुखवाद का निषेध—

हिन्दू दर्शन परम सुख आत्मानन्द की खोज करता है अतः उसमें सुखवाद (Hodonism)[1] का आत्यन्तिक निषेध पाया जाता है। क्योंकि उसके द्वारा आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति अथवा मोक्ष असम्भव है। अतः वेदान्त दर्शन श्रेय मार्ग को जो अन्तिम सुख का साधन है, प्रेय मार्ग से जो सांसारिक सुख भोग का साधन है श्रेष्ठ प्रमाणित करता है। इस मत का सुन्दरतम प्रतिपादन हमें कठोपनिषद् में मिलता है। कठोपनिषद् में मनुष्य के दो मार्ग बताए गए हैं। पहला श्रेय अर्थात् संसार के विषय सब प्रकार के दुःखों से सर्वथा छूटकर नित्य आनन्द स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करने का मार्ग और दूसरा प्रेय अर्थात् स्त्री पुत्र धन यश ऐश्वर्य आदि इस लोक के सुख भोगों को प्राप्त करने का मार्ग। ये दोनों मार्ग मनुष्य के सामने आते हैं, बुद्धिमान मनुष्य इन दोनों के स्वरूप पर अच्छी तरह विचार करके श्रेय अर्थात् परम कल्याण के साधन को अपनाता है और मन्द बुद्धि वाला मनुष्य लौकिक योग क्षेम की इच्छा से भोगों के साधन रूप प्रेय को अपनाता है। किन्तु कल्याण के साधन श्रेय को ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है और सांसारिक उन्नति के साधन प्रेय को स्वीकार करने वाला यथार्थ ज्ञान से भ्रष्ट हो जाता है।[2] इसी से सन्देह रहित नचिकेता यमराज के बार-बार पुत्र पौत्र हाथी घोड़े सम्पत्ति भूमि आदि अनेकानेक दुर्लभ सांसारिक भोगों के प्रति प्रलोभन दिखाने पर भी उनमें अनुरक्त नहीं होता, प्रत्युत इन्हें तुच्छ समझकर त्याग कर देता

---

1 Hedonism properly denotes the creed or theory that pleasure is or should be the sole end and aim of human action or conduct — Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 6 P 567

2 कठोपनिषद् द्वितीय वल्ली २

है।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि नचिकेता का यह जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण भौतिक सुखवाद के प्रति अत्यन्त निषेधात्मक तथा सामान्य मनुष्य के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण से नितान्त भिन्न है।

निराशावाद

सुखवाद का यह आत्यंतिक निषेध ही जीवन के प्रति निराशा का भाव उत्पन्न करता है। उपनिषदों में अनेक स्थलों पर भौतिक सुख समृद्धि को निषिद्ध अतः त्याज्य घोषित किया गया है। कठोपनिषद् में स्पष्ट ही स्वर्ग के प्राणियों के सुख के सामने पृथ्वी के जीवन के सुख को नगण्य अथवा हेय प्रमाणित किया गया है। वहाँ पर हम देखते हैं कि नचिकेता सांसारिक सुख भोगों को अस्थायी अथवा क्षणभंगुर समझकर स्वर्गलोक के भय, मृत्यु, बुढ़ापा, भूख, प्यास आदि से शून्य स्वर्गलोक के निवासियों के आनन्द की कामना करता है।[2] इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् में आत्मा के सुख के सामने जीवन के समस्त सुखभोगों के प्रति विरक्ति उत्पन्न की गयी है। याज्ञवल्क्य मैत्रेयीसम्वाद में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य से पूछती है कि "भगवन्! यदि यह धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाय तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ अथवा नहीं?"[3] याज्ञवल्क्य स्पष्ट उत्तर देते हैं कि "नहीं, भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है वैसा ही तेरा भी हो जायगा, धन से अमृतत्व की आशा है ही नहीं।"[4] इस पर मैत्रेयी का उत्तर यह है कि "जिससे मैं अमर नहीं हो सकती उसे लेकर मैं क्या करूँगी? श्रीमान् जो कुछ अमृतत्व का साधन मानते हों वही मुझे बतलावें।"[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदान्त दर्शन में सुखवाद का आत्यंतिक निषेध करके आत्मानन्द की प्रतिष्ठा की गई है। अतः भौतिक सुख की कामना की दृष्टि से वेदान्त की शिक्षा अवश्यमेव निराशावादी सिद्ध होती है।

संन्यास मार्ग

इसी निराशावाद से हिन्दू धर्म के संन्यास मार्ग का अति निकट का सम्बन्ध है। मनुष्य उस समय से जीवन से विमुख नहीं हो सकता जब तक कि वह उसे (जीवन) निराशा अथवा उदासीन दृष्टि से न देखे। सांसारिक

---

१ कठोपनिषद् प्रथम अध्याय प्रथम वल्ली २३, २४, २५
२ कठोपनिषद् प्रथम अध्याय प्रथम वल्ली १२, १८
३ बृहदारण्यकोपनिषद् चतुर्थ अध्याय पंचम ब्राह्मण २
४ वही ३
५ वही ४

सुखों में असंतोष अथवा अतृप्ति का अनुभव करके ही मनुष्य शाश्वत सुख अथवा परमात्म तत्त्व की कामना करता है। अतः संन्यास धर्म का स्वरूप वर्णन करते हुए बृहदारण्यक उपनिषद कहती है कि आत्मलोक की इच्छा करने वाले पुरुष इस लोक का सब कुछ त्याग कर चले जाते हैं। वे सन्तान की इच्छा नहीं करते। वे सोचते हैं कि हमें सन्तान से क्या लेना है हमें तो आत्मलोक अभीष्ट है। अतः वे पुत्रैषणा, वित्तैषणा तथा लोकैषणा से व्युत्थान कर भिक्षाचर्या करते हैं।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदान्त दर्शन ब्राह्मण को संसार से बिलकुल विरक्त हो जाने का आदेश करता है।

संन्यासी का जीवन इस प्रकार विरक्त होने का एक कारण वेदान्त का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार मनुष्य का जन्म अज्ञानकृत तथा यह संसार अनित्य और सुखरहित है। महाभारत में भी कहा गया है कि इस जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है और इस दुःख का मूल कारण तृष्णा है। तृष्णा से ही दुःख उत्पन्न होता है।[2] महाभारत शान्ति पर्व में यह भी निर्देश किया गया है कि काम अर्थात् कामना की तृप्ति होने से जो सुख होता है और जो सुख स्वर्ग में मिलता है उन दोनों सुखों की योग्यता तृष्णा के क्षय होने वाले सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है।[3] इस प्रकार वर्णित संन्यास धर्म में इस जगन्मय सृष्टि के समस्त व्यवहार तृष्णामूलक अतएव दुःखमय हैं। अतः उससे अर्थात् जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को अकाम, निष्काम तथा आप्तकाम होकर सांसारिक कर्मों का सर्वथा त्याग करते हुए आत्मनिष्ठ स्थिति में सदा निमग्न रहना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू धर्म का संन्यास मार्ग सांसारिक सुख भोग के प्रति अत्यन्त उदासीन अतः घोर निराशावादी है।

पारमार्थिक दृष्टि से निराशावाद का खण्डन

किन्तु पारमार्थिक दृष्टिकोण से हिन्दू दर्शन निराशावाद को किंचित प्रश्रय नहीं देता। हिन्दू दर्शन मनुष्य जीवन के आध्यात्मिक आनन्द पर

1 बृहदारण्यकोपनिषद्, चतुर्थ अध्याय चतुर्थ ब्राह्मण, २२

2 सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः।

महाभारत शां० प० २०५।६, ३३०।१६

3 तृष्णार्तिप्रभवं दुःखम्।

महाभारत शान्ति पर्व २४।४, १७४।१०

4 यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।

तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

महाभारत शां० प० १७४, ४८, १७७।४६

अवलम्बित है अत वह सांसारिक सुख की अपेक्षा पारमार्थिक सुख को अधिक महत्व देता है। हिन्दू दर्शन इस तथ्य को मानकर चलता है कि जब तक जीवन मरण का चक्र चलता रहेगा मनुष्य दुःख से छुटकारा नहीं पा सकता। अतः उस पर निराशावाद के प्रचारक होने का आरोप लगाया जाता है। किन्तु विचार करने पर यह आरोप मिथ्या सिद्ध होता है। हिन्दू दर्शन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में अवश्य निराशावादी है क्योंकि वह जीवन को दुःखमय मानकर आगे बढ़ता है। किन्तु वह वहीं समाप्त नहीं हो जाता प्रत्युत वह इस दुःख-बहुल जगत के वास्तविक स्वरूप को समझने तथा उसके उद्धार के निरूपण में अपनी सारी शक्ति लगा देता है जिससे इस निराशामय जगत में आशा का संचार होने लगता है और क्लेश का स्रोत आनन्द के प्रवाह में परिवर्तित हो जाता है। अतः ऐसे दर्शन को जो शाश्वत आनन्द की खोज करता है निराशावादी नहीं कहा जा सकता। निराशावाद के पक्ष में हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि इन्द्रियगम्य जगत को अस्वीकार करने के कारण हिन्दू-दर्शन अथवा वेदान्त निराशावादी है किन्तु इन्द्रियातीत प्रकृत जगत को स्वीकार करने के दृष्टिकोण से वह मात्र आशावादी है।[1]

वेदान्त दर्शन की इस विशेषता के कारण वेदान्तिक अद्वैतवाद से प्रभावित छायावाद की कविता में इन्द्रियातीत आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति होने लगी और उसकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो गई। छायावादी कवियों में जो सांसारिकता के प्रति उपेक्षा का भाव प्रचुरता से मिलता है उसका एक महान कारण वेदान्त-दर्शन की अपार्थिवता भी बनी। उपनिषदों के प्रभाव ने छायावाद के कवि को जीवन की विषमता तथा नश्वरता का सत्य मानने के लिए बाध्य किया। वास्तविक जीवन में अपनी निजी भावनाओं इच्छाओं व स्वप्नों को टूटा देख उसमें यह भावना और बद्धमूल हो गई कि जीवन में दुःख ही दुःख है। ऐसी परिस्थिति में स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त की यह शिक्षा कि वास्तविक सुख की प्राप्ति के लिए प्रवृत्तिमार्ग का त्याग कर उस निवृत्तिमार्ग का आश्रय लेना होगा[2] बहुत कुछ सत्य प्रतीत होने लगा। इस प्रकार उपनिषदों के अध्ययन तथा विवेकानन्द के प्रभाव से छायावाद का कवि यदि मन कर्म से नहीं तो कम-से-कम विचारों में तो कुछ अंशों तक एक निष्क्रिय संन्यासी बन गया। किन्तु तिलक अरविन्द गांधी टैगोर आदि के प्रवृत्तिमार्गी अथवा मानवतावादी दृष्टिकोण तथा स्वयं विवेकानन्द के इस प्रचार

---

१ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० ८६

२ विवेकानन्द स्वाधीन भारत। जय हो! पृ १

के कारण कि 'सकाम कर्म ही निष्काम कर्म की ओर ले जाता है'[1] यह विचार गाद् नानत्त्व की भाँति जीवन में पूर्ण विरक्त न हो सका। युग दर्शन की धारा प्रवृत्ति मार्ग की ओर झुक जाने में वह दार्शनिक स्तर पर प्रवृत्तिमार्ग का भी प्रबल समर्थक बना रहा।

जैन और बौद्ध धर्मों का निराशावादी दृष्टिकोण

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म भी औपनिषदिक निराशावाद की ही परम्परा में आते हैं। ये उस परम्परा अथवा विचारधारा को रोकने वाले स्वतन्त्र दर्शन अथवा धर्म नहीं हैं। ब्राह्मण धर्म के कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड अथवा गार्हस्थ्य धर्म और संन्यास धर्म अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों शाखाओं के पूर्णतया नष्ट हो जाने पर उनमें सुधार करने के लिए इन दोनों धर्मों का उदय हुआ।[2] इस प्रकार इनमें क्षणिक संन्यास धर्म का ही अनुकरण अथवा विकास हुआ है। यही कारण है कि इनमें तृष्णा के दुष्परिणामों तथा उनके त्याग का बड़ा ही विशद वर्णन मिलता है।

हिन्दू धर्म की भाँति ही जैन और बौद्ध धर्मों में भी संसार को आपदाओं का घर कहा गया है।[3] जैन ये भी जन्म मरण के बंधन से छूटने के लिए मुक्त हो जाने का मार्ग निर्धारित करते हैं। इस प्रकार जैन धर्म सत्पुरुषों के लिए आशा का त्याग कर निराशा को अपनाने का आदेश करता है। क्योंकि उसके मत में समस्त सांसारिक दुःखों का मूल आशा ही है।[4] जैन जो पुरुष समस्त आशाओं को त्याग कर निराशा का अवलम्बन करता है उसका मन किसी काल में परिग्रह रूपी कीचड़ में लिप्त नहीं होता। बुद्धदेव का भी यह निश्चित मत है कि जीवन दुःखमय है और तृष्णा का जबतक शमन नहीं होता तब तक मनुष्य को बार बार जन्म लेना पड़ता है। अतः बौद्धमत का एकमात्र

---

१ विवेकानन्द, स्वाधीन भारत! जय हो! पृ० ८२

२ तिलक: गीता रहस्य बारहवाँ संस्करण, गीता की बहिरंग परीक्षा भाग ६ पृ० ५३३

३ भवाब्धिप्रभवाः सर्वे सम्बन्धा विपदास्पदम् ।९।
दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्राचार्यविरचित ज्ञानार्णव पृ० १७

४ आशा मूलानि दुःखानि प्रभवन्तीह देहिनाम् ।३।
वही सप्तदश प्रकरणम्, पृ० १८५

५ सर्वाशा यो निराकृत्य नैराश्यमवलम्बते
तस्य क्वचिदपि स्वान्तं सङ्गपङ्के न लिप्यते ।१०।
वही सप्तदश प्रकरणम् पृ० १८५

सिद्धांत यही है कि निर्वाण के लिए संसार का शीघ्रातिशीघ्र छोड़ कर संन्यास लेना चाहिए।

दुःख की व्याख्या करते समय तथागत का कथन है—हे भिक्षुगण दुःख प्रथम आर्य सत्य है। जन्म भी दुःख है। वृद्धावस्था भी दुःख है। मरण भी दुःख है। शोक परिवेदना दौमनस्य (उदासीनता) उपायास (हैरानी) सब दुःख है। अप्रिय वस्तु के साथ समागम दुःख है। प्रिय के साथ वियोग भी दुःख है। इच्छित वस्तु का न मिलना भी दुःख है। संक्षेप में कह सकते है कि राग के द्वारा उत्पन्न पाँचों स्कन्ध (रूप वेदना संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान) भी दुःख है। आशय यह कि जगत के प्रत्येक कार्य प्रत्येक घटना में दुःख की सत्ता बनी हुई है।[1] दुःख की ऐसी व्याख्या करते बुद्धदेव ने संसार को जलते हुए घर के समान बताया जिसमें आमोद प्रमोद के लिए किंचित स्थान नहीं है।[2] उनके समीप मानव जीवन पानी के बुलबुले अथवा मृगमरीचिका के सदृश था।[3] संसार के प्रेम रति काम राग तृष्णा आदि को वे शोक और भय का जनक मानते थे।[4] और यह भी कहने में संकोच नहीं करते थे कि जो व्यक्ति जीवन को अपनाता है वह मिथ्याभाषण चोरी और व्यभिचार से किसी प्रकार नहीं बच सकता।[5]

इस प्रकार बौद्ध दर्शन में सब अनित्य है। इसी अनित्यवाद को बौद्ध दार्शनिकों ने क्षणिकवाद कहा है। बौद्धमत में जो सत् है वह भी क्षणिक है।[6]

---

१ महासति पट्ठान सुत्त (दीघ० २।९)

२ भरतसिंह उपाध्याय बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन प्रथम भाग
प्रथम संस्करण सं० २ ११ वि० पृ० २९२ पर उद्धृत
कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति। —धम्मपद १४६

३ यथा बुब्बुलकं पस्से यथा पस्से मरीचिकं। —धम्मपद १७०।४

४ पियतो जायती सोको
पियतो जायती भयं —धम्मपद २१२।४
रतिया जायती सोको
रतिया जायती भयं —धम्मपद २१४।
कामतो जायती सोको
कामतो जायती भयं —धम्मपद २१५।३

५ यो पाणमतिपातेति मुसावादं च भासति।
नाऽऽ अपि आदियति परदारं च गच्छति। —धम्मपद २४६।१२

६ यत् सत् तत् क्षणिकं —प्रमाणवा० १।१ (मनोरथ)
राहुल सांकृत्यायन बौद्ध दर्शन द्वितीय संस्करण पृ० १४८

इस प्रकार सत्ता मात्र में नाश (धर्म) निहित है।[1] अतः संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणिक अथवा क्षणभंगुर है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धधर्म संसार को दुःख तथा क्षणिक घोषित कर इसके प्रति घोर निराशा की भावना को ही पुष्ट करता है।

बौद्ध दर्शन के इस दुःखवाद तथा क्षणिकवाद का प्रभाव शंकराचार्य से लेकर आधुनिक युग तक किसी न किसी रूप में भारतीय जीवन पर पड़ता आया है। हिन्दी के सन्त कवियों का काव्य विशेष कर कबीर का काव्य बौद्ध धर्म के शून्यवाद तथा तज्जनित करुणा से प्रभावित है। छायावादी कवियों पर कबीर दादू आदि सन्त कवियों का प्रभाव तो था ही उन्होंने बौद्ध साहित्य और संस्कृति का भी गहन अध्ययन किया था। अतः अपनी निजी परिस्थितियों और स्वभाव के अनुकूल तथा मनोधारा के अनुरूप उन्होंने अपने काव्य में बौद्धमत के सिद्धान्तों का विवेचन कर उसके दुःखवाद-संसार की अनित्यता और क्षणिकता तथा इससे उद्भूत करुणा और मध्यम प्रतिपद का स्तवन किया है।

पाश्चात्य निराशावाद

निराशावाद के तत्व ईसाई मत[2] तथा ईसाई रहस्यवाद[3] में भी मिलते हैं किन्तु वहाँ पर भी भारतीय धर्मों तथा रहस्यवाद की भाँति निराशा की परिणति आशावाद में ही दिखाई गई है। इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में भी निराशावाद का एकान्तिक निरूपण हम सर्वप्रथम शोपनहॉवर के दर्शन में मिलता है। शोपनहार ने हीगल के दर्शन के इस पक्ष का कि निखिल सृष्टि अन्ध इच्छा शक्ति मात्र है बड़ा प्रबल समर्थन किया है। इसके लिए नित्य एवं इच्छा शक्ति निराधार तथा निरुद्देश्य है अतः दुःखमय है। संसार भी इसी इच्छा शक्ति का दृश्य रूप (चित्र) है अतः वह भी इसी के समान दुःखमय है। मनुष्य की

---

1 प्र० वा० १।२७२– सत्तामात्रानुबन्धित्वात् नाशस्य

वही पृ० १८०

2 Christianity is a profound philosophy of pessimism the doctrine of original sin (a sertion of the will) and salva tion (denial of the will) is the great truth which constitutes the essence of Christianity

Will Durant The story of Philosophy, cordinal edition 1953, P 338

3 Separation from God is the source of all misery Therein lies the pain of hell

W R Inge-Christian Mysticism, P 185

इच्छा दुःख की ही एक दशा है अतः उसकी तृप्ति दुःख का निषेधमात्र है।[1] इस प्रकार शोपनहार के मत में सुख की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, सुख इच्छा की क्षणिक तृप्ति भर है। संसार में यथार्थ (भावात्मक) सुख की प्राप्ति असम्भव है। दुःख ही जीवन का एकमात्र सत्य है। इसी से वह जीवन को मूल रूप में स्वीकार करता है जिसमें सर्वत्र खोखलापन ही खोखलापन दृष्टिगोचर होता है।[2] संसार को वह ईश्वर की सर्वोत्तम और सफल कृति इसलिए नहीं मानता कि एक तो उसमें सर्वत्र दुःखों का ही आधिक्य है और दूसरे उसकी सर्वोत्कृष्ट सृष्टि मनुष्य भी अपूर्ण ही है।[3] संसार के प्रति अपने उक्त निराशावादी दृष्टिकोण के कारण शोपनहार अध्यात्म दर्शन के सर्वात्मवाद में विश्वास नहीं करता। सर्वात्मवादियों के अनुसार जगत के समस्त पदार्थों में एक ही चेतन सत्ता ईश्वर निहित है। किन्तु संसार में दुःख शोक तथा मनुष्यों एवं पशुओं का एक दूसरे का आहार बनते देख कर शोपनहार कहता है कि जिस ईश्वर ने अपने को वर्तमान जगत के रूप में अभिव्यक्त होने का निश्चय किया होगा अवश्य ही शैतान द्वारा सताया गया रहा होगा।[4]

अपने निराशावाद के समर्थन में शोपनहार ब्राह्मण धर्म, बौद्धधर्म तथा पाइथागोरस आदि ग्रीक दार्शनिकों को भी स्मरण करता है जिनके मत में मनुष्य का जन्म पूर्व जन्म के कर्मों तथा अपराधों का परिणाम है जिनका दण्ड भोगने के लिए उसे इस दुःखमय जगत में आना पड़ता है।[5] इस प्रकार हम देखते हैं

---

1. Schopenhauer emphasizes the pessimistic side of Hegel's thought The universe is merely blind will not thought This will is irrational purposeless and therefore unhappy The world being a picture of the will is therefore similarly unhappy Desire is a state of unhappiness and the satisfaction of desire is therefore merely the removal of pain Encyclopaedia Britanica Vol 17 P 638
2. Bailey Saunders studies in Pessimism Schopenhauer P 37
3. Ibid P 24
4. Frederick Copelstion Arthur Schopenhauer Philosopher of Pessimism See chapter IV (The Tragedy of life)
5. I refer not to my own philosophy alone but to the wisdom of all ages as expressed in Brahminism and Buddhism and in the sayings of Greek philosopher like Empedcles and Pythagoras as also by cicero in his remark that the wise men of old used to teach that we come into this world to pay the penalty of crime committed in another state of existence
   Bailey Saunders, studies in Pessimism Schopenhauer, P 27

कि ब्राह्मण धर्म तथा बौद्धधर्म के समान ही शापनहार भी इच्छा किंवा तृष्णा को समस्त दुःखों का मूल कारण घोषित करता है तथा उसके शमन अथवा निषेध पर जोर देता है। किन्तु वह बुद्धदेव के समान दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति का कोई शुभ मार्ग नहीं ढूँढ पाता। अतः उसके दर्शन में बोधिसत्व अथवा 'निर्वाण सुख' जैसा कोई तत्व नहीं मिलता। उसके मत में मनुष्य जीवन पर्यन्त किसी ऐसी वस्तु की तलाश में रहता है जो उसे सदा बना सके किन्तु या तो वह वस्तु उसे प्राप्त ही नहीं होती या यदि प्राप्त भी हो जाती है तो टिकाऊ नहीं हो पाती। इस प्रकार कालान्तर में वह भी दुःख का ही कारण बनती है। इस प्रकार शापनहार तात्विक दृष्टि से दुःख और सुख में कोई भेद नहीं करता।[1] अतः उसके मत में जीवन की अनिच्छा का ही दूसरा नाम संन्यास है[2] और मृत्यु ही जीवन का सर्वोत्तम उपहार है।[3]

इस प्रकार शापनहार की दृष्टि में आशावाद मानवजीवन के दुःखों का क्रूर अट्टहास मात्र है।[4] जीवन में बुराई ही बुराई है और दुःख ही एकमात्र भावात्मक सत्ता है। जीवन का अनुभव यह बताता है कि उसमें सर्वत्र ईर्ष्या स्पर्धा कलह और संघर्ष का ही राज्य है। किसी अच्छी वस्तु की कामना तथा उसके लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है—मात्र विडम्बना है। कारण मनुष्य की इच्छाएं अनन्त हैं और उनकी पूर्ति के साधन अत्यन्त सीमित हैं। अतः यदि एक इच्छा की पूर्ति होती भी है तो उसके साथ दस ऐसी इच्छाएं जगा देता है जिनकी पूर्ति नहीं हो पाती। इस प्रकार मानव जीवन भिखारी की उस भिक्षा के समान है जो उसे आज बाद कल की यातना सहने के लिए जीवित रखती है। अतः जब तक मनुष्य इच्छाओं का दास बना हुआ है तब तक उसे शान्ति अथवा शाश्वत सुख नहीं मिल सकता। ज्ञान विज्ञान भी मानव दुःखों का निवारण नहीं कर सकते। कारण ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ दुःखों की भी वृद्धि होती जाती है।[5] इस प्रकार शापनहार के मत में मानव जीवन एक दुःखात्मक नाटक के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

---

1 Ibid P 35

2 Asceticism is the denial of the will to live Ibid, P 26

3 Will Durant, the story of Philosophy P 343
(The greatest boon of all is death)

4 Optimism is a bitter mockery of Men's woes
Will Durant The story of Philosophy p 327

5 The more distinctly a man knows the more intelligent he is—the more pain he has the man who is gifted with genius suffers most of all
Will Durant The story of Philosophy, p 325

शोपनहार का यह निराशावाद युग की पराजित आत्मा तथा ध्वस्त जीवन की पुकार थी। तत्कालीन यारोपीय नरीरस आत्मा निकल चुकी थी। उच्च वर्ग के अधिकांश लोगों का धर्म में विश्वास हिल गया था अतः वास्तविक जीवन की कुरूपता और कटुता को विस्मृत कर देने वाला धार्मिक आधार भी छिन गया था। लोगों को यह विश्वास करना असम्भव हो रहा था कि यह अपार दुःखों से परिपूर्ण जगत ज्ञान तथा करुणा के धाम ईश्वर द्वारा निर्मित है। उन्हें यह अनुभव होने लगा था कि जगत में आध्यात्मिक नियम तथा दैवी आशा जैसी कोई वस्तु नहीं है। और यदि ईश्वर है भी तो निरा अन्धा है।[1]

शोपनहार ऐसे ही युग की उपज था। युवावस्था में उसे अत्यन्त साधारण धार्मिक शिक्षा मिली थी। स्वभाव से भी वह अपने समय की धार्मिक संस्थाओं का विरोधी था। धर्मोपदेशकों को यह घृणा की दृष्टि से देखता था और धर्म को साधारण लोगों का तत्वज्ञान घोषित करता था।[2] अतः दुःखद परिस्थितियों में धर्म में शान्ति ढूंढना उसके लिए असम्भव था। अपने व्यक्तिगत जीवन में भी उसे माँ पत्नी सन्तान परिवार मित्र आदि में से किसी का सुख अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं थी।[3] जीवन के अन्तिम क्षण तक उसे निस्संग जीवन व्यतीत करना पड़ा। उसकी कृतियों का भी उसके जीवनकाल में उचित सम्मान नहीं हुआ। यहाँ तक कि उसकी अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक दि व र्ड एज़ विल एण्ड आइडिया के प्रकाशन के सोलह वर्ष पश्चात उसे सूचित किया गया कि उसकी अधिकांश प्रतियाँ रद्दी के भाव बिकी हैं।[4] युग

---

1 That there was no divine order after all nor any heavenly hope that God if God there was was blind Ibid p 302

2 In youth he had received very little religious training and his temper did not incline him to respect the ecclesiastical organisations of his time He despised theologians and described religion as the metaphysics of the masses
Will Durant—The story of Philosophy p 338

3 He had no mother no wife no child no family no country He was absolutely with not a single friend Ibid, p 304

4 Sixteen years after publication schopenhauer was infored that the greater part of the edition had been sold as waste paper Ibid, p 305

और जीवन की इस विषमता और विषाद ने उसे विकट विद्रोही तथा अश्वादी बना दिया। सामाजिक जीवन में भी तत्कालीन औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न बहुसंख्यक जनता की निर्धनता बेरोजगारी तथा जराजनता आदि दुष्परिणामों का उसके ऊपर बड़ा ही अशुभ प्रभाव पड़ा।[1] अतः बाह्य और व्यक्तिगत दोनों जीवनमरणियों में दुःख की सघनता का अनुभव करके वह जीवन की बाजी हार बैठा। जीवन में उसे सर्वत्र मृत्यु ही मृत्यु दिखाई पड़ने लगी। इंग्लैंड के कवि बायरन, शेली अरनाल्ड फिट्जजेराल्ड तथा हम व पुश्किन और जर्मनी के लाओपार्डी भी ऐसे ही विषादमय तथा विपात्त वातावरण की उपज हैं।

छायावाद का कवि भी जिस सामाजिक वातावरण में साँस ले रहा था वह बड़ा ही कठोर और कटु था। भारत का वह संक्रान्ति काल था और जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में महान परिवर्तन हो रहे थे। कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का ढाँचा टूट रहा था और उसका स्थान पूँजीवादी व्यवस्था ले रही थी। उस पूँजीवादी व्यवस्था में मध्यवर्गीय छायावाद के कवि की आशा आकांक्षाओं को पूरी तरह पनपने अथवा पूर्ण होने का अवसर नहीं मिला। राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन में भी उसे पराजय अथवा दुःख ही दुःख दिखाई दिया। इस प्रकार सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों का इतिहास उसके लिए बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ जिसने उसकी सहज जीवन व्यतीत करने की भावना को भीषण आघात पहुँचा। फलतः उसे संसार नश्वर[2] अथवा क्षणभंगुर दिखाई पड़ने लगा[3] सुख सपना और शोक समय प्रतीत होने लगा[4] जग के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी[5] और वसन्त के कुसुमित आवरण के भीतर पतझड़ का अस्थिपंजर सरकने लगा।[6] इस प्रकार कहीं तक छायावादी कवि के जीवन को मृत्यु के अट्टहास के रूप में देखने उसकी कामना करने नागरिक सुखों को क्षणिक मानने तथा मृत्यु का

---

1 Ibid P 300 301

2 पन्त, पल्लविनी पृ ८०

3 मजन ही है संसार। —वही पृ ८५

4 यहाँ सुख सपना शोक समय वही पृ० ८८

5 खोलता इधर जन्म लोचन,

मूँदती उधर मृत्यु क्षण क्षण —वही पृ० ७४

6 दर्शन, वही पृ० ७३

शापनहार का यह निराशावाद युग की पराजित आत्मा तथा ध्वस्त जीवन की पुकार थी। तत्कालीन योरोपीय शरीर म आत्मा निकल चुकी थी। उच्च वग क अधिकाश लोगो का धम म विश्वास छिन गया था अत वास्तविक जीवन की कुरूपता और कटुता को विस्मृत कर देने वाला धार्मिक आधार भी छिन गया था। लोगो को यह विश्वास करना असम्भव हो रहा था कि यह अपार दु खो स परिपूण जगत ज्ञान तथा करुणा के धाम ईश्वर द्वारा नियन्त्रित है। उन्हे यह अनुभव होने लगा था कि जगत म आध्यात्मिक नियम तथा दवी आशा जसी कोई वस्तु नही है। और यदि ईश्वर है भी तो निरा अन्धा है।[1]

शापनहार ऐसे ही युग की उपज था। युवावस्था म उसे अत्यन्त साधारण धार्मिक शिक्षा मिली थी। स्वभाव स भी वह अपन समय की धार्मिक सस्थाओ का विरोधी था। धर्मोपदेशको को यह घणा की दष्टि स देखता था और धम को साधारण लोगो का तत्वज्ञान घोषित करता था।[2] अत दु खद परिस्थितियो म धम में शान्ति ढूढना उसके लिए असम्भव था। अपन व्यक्तिगत जीवन में भी उसे माँ पत्नी सन्तान परिवार मित्र आदि म स किसी का सुख अथवा सहानुभूति प्राप्त नही थी।[3] जीवन के अन्तिम क्षण तक उसे निस्सग जीवन व्यतीत करना पडा। उसकी कृतियो का भी उसके जीवनकाल में उचित समादर नही हुआ। यहाँ तक कि उसकी अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक दि वर्ल्ड एज विल एण्ड आइडिया क प्रकाशन क सोलह वष पश्चात उसे सूचित किया गया कि उसकी अधिकाश प्रतियाँ रद्दी क भाव बिकी है।[4] युग

---

1 That there was no diune order after all nor any heavenly hope that God if God there was was blind Ibid p 302

2 In youth he had received very little religious training and his temper did not incline him to respect the ecclesiastical organisations of his time He despised theologians and described religion as the metaphysics of the masses
Will Durant—The story of Philosophy p 338

3 He had no mother no wife no child no family no country He was absolutely with not a single friend Ibid p 304

4 Sixteen years after publication schopenhauer was infored that the greater part of the edition had been sold as was epaper Ibid p 305

चिरन्तन सत्य स्वीकार करने का प्रश्न है[1] वहाँ छायावाद के निराशावाद पर बौद्ध धर्म के मत मे आने वाले शोपनहार के निराशावादी सिद्धान्तो (अनित्यता क्षणिकता दुःख तथा सत्य की एकमात्र सत्यता आदि) का प्रभाव माना जा सकता है। किन्तु जहाँ पराजित आत्मा से उत्पन्न निराशावाद का सम्बन्ध है वहाँ शोपनहार के निराशावाद की छाया भी छायावाद की निराशा मे देखने को नही मिलती। छायावाद का अद्वैतवादी तथा भक्तिपरायण कवि शोपनहार के इस कथन मे कि मानव जीवन के सुख अपूर्ण और अस्थायी हैं सहमत होते हुए भी यह कदापि स्वीकार नही कर सकता कि मनुष्य के लिए इस जीवन मे शाश्वत सुख अथवा आनन्द की प्राप्ति सर्वथा असम्भव है। इसी से वह जीवन की कटुताजन्य निराशा पर विजय प्राप्त कर आत्मानन्द और जीवन सौन्दर्य का गान गाता है। सापेक्ष की पराजय को निरपेक्ष की जय मे गौरवान्वित करता है। इस प्रकार छायावाद के कवि के लिए बिना दुःख के सब सुख निस्सार तथा बिना आँसू के जीवन भार—स्वरूप है।[2] इस प्रवृत्ति का कारण छायावादी कवि की रहस्यात्मकता है जिसका शोपनहार के यहाँ नितान्त अभाव है। रहस्यात्मक प्रवृत्ति के कारण भी वह संसार के समस्त रहस्यवादियों की भाँति दुःख को परम सुख का अभिन्न अंग मानता है। उनके समीप दुःख और सुख परस्पर आबद्ध हैं[3] अतः वह संसार मे दुःख की सत्ता को स्वीकार करने के साथ ही सुख की सत्ता को भी स्वीकार करता है। इस प्रकार इच्छा (काम) उसके लिए अभावात्मक अथवा दुःखात्मक न होकर मंगल से मण्डित श्रेय है[4] अतः वह शोपनहार की भाँति जीवन के प्रति अनिच्छा

---

१ मृत्यु अरी चिर निद्रे! तेरा अंक हिमानी सा शीतल

अन्धकार के अट्टहास सी मुखरित सतत चिरन्तन सत्य
छिपी सृष्टि के कण कण मे तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य।
जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन माला मे
सौदामिनी-सन्धि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला मे।
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० ? ७

२ पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति १९४५ पृ० ८९

३ अरुणा मे रहता है हास हास में अश्रुकणों का भास
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास और उच्छ्वासों में है श्वास।
पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति १९४५ पृ० ७

४ काम मंगल से मण्डित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० ६१

की भावना का त्याग कर जीवन में अनुरक्त होने का प्रयत्न करता है। इसी तरह सर्वात्मवादी होने के नाते छायावाद का कवि शापनहार के इस सर्वात्म विरोधी विचार कि यह इस समय संसार अवश्य ही शैतान द्वारा बनाये गये ईश्वर की कृति है का भी समर्थन नहीं करता प्रत्युत वह इस जगत को आनन्दमय ब्रह्म की आनन्दमय सृष्टि ही घोषित करता है।

रोमान्टिक निराशावाद

दार्शनिक निराशावाद का एक महान कारण आदर्शवादी युवक की स्वच्छन्दता अथवा रोमान्सवादी प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति के भीतर वह अपने बाह्य संसार से सम्बन्ध विच्छेद कर अपने अन्तस के तत्वों की ओर उन्मुख होता है।[1] इस प्रकार रोमान्सवाद आदर्शवाद की भी [illegible] है। आदर्शवादी होने के कारण ही रोमान्टिक कवि विश्व की आधिभौतिक व्यवस्थाओं की परवाह नहीं करता। अपने व्यक्तित्व को ही सर्वमान्य प्रधानता देने के कारण वह अपनी ही आशा आकांक्षाओं अथवा स्वप्नों में लीन रहता है और संसार से बहुत कुछ पा लेने की आशा करता है। उत्साह की बाढ़ आने पर वह अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए प्राचीन रूढ़ियों परम्पराओं नियमों तथा व्यवस्थाओं की उपेक्षा करता है तथा शौर्य एवं क्रान्ति की भावनाओं का समादर और आह्वान करता है। किन्तु भावुक और कल्पनाप्रिय होने के कारण वह यथार्थ की स्थिति में बहुधा बहुत कम रहता है। अतः यथार्थ जगत में जब उसके आदर्शलोक की आशाएँ अभिलाषाएँ साकार नहीं हो पातीं तब वह अत्यधिक निराश होता है। किन्तु ऐसी दशा में भी वह अपनी कल्पना की छायाधीन रहा करता। जिस समय उसे यह अनुभव होने लगता है कि उसके सुख का आदर्श ही वास्तविक दुःख का उपकरण बन रहा है उस समय वह अपने आप को दोषी न मान कर सम्पूर्ण समाज को अपने तथा अपने आदर्शों के प्रति अयोग्य प्रमाणित करता है।[2] इस परिस्थिति में वह नितान्त एकाकीपन का अनुभव करता है। उसकी ऐसी मनोदशा में वह निराशा को मोक्ष तथा मृत्यु को अपना उद्धारक मान लेता है। उसकी यही भावना जब

---

1 Romanticism is that attitude of mind in which it withdraws itself from communion with the outer world and turns in upon things which it finds within itself

Abercrombie Romanticism second edition p 22

2 When the romantic discovers that his ideal of happiness works out into actual unhappiness he does not blame his ideal He simply assumes that the world is unworthy of a being so exquisitely organised as himself

Will Durant The Story of Philosophy, p 345

घनीभूत होकर स्थायी रूप पकड़ लेती है तब वह शास्त्रीय निराशावाद का रूप धारण कर लेती है जिसमें सृष्टि के कण-कण में उस दुःख की व्याप्ति का अनुभव होने लगता है। छायावाद की कविता में भी इस कोटि के निराशा वाले तत्वप्रचुरता से मिलते हैं।

स्वच्छन्दतावादी होने के कारण छायावाद का कवि स्वभाव से ही स्वतन्त्र अथवा स्वच्छन्द विचारों तथा अछूते सौन्दर्य का प्रेमी था। उसमें अहं भाव की भी प्रधानता थी। स्वामी विवेकानन्द की इस शिक्षा से कि तुम अनन्तस्वरूप हो, तुम्हारे स्वरूप की तुलना में देवता भी कुछ नहीं है, तुम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो,[1] तुम सर्वशक्तिमान हो, उसके अहंभाव को और उत्तेजन मिला। अंगरेजी शिक्षा के प्रभाव से भी उसके भीतर स्वच्छन्द विचारों की अभिवृद्धि तथा स्वतन्त्र प्रेम की इच्छा उत्पन्न हुई। किन्तु तत्कालीन मर्यादावादी अथवा नैतिकतावादी समाज उसकी इस स्वतन्त्र प्रेमभावना के प्रति अत्यन्त अनुदार अथवा असहिष्णु प्रमाणित हुआ। इस व्यवधान की प्रतिक्रिया स्वरूप उसने परम्परागत प्रेमरूढ़ियों का प्रतिरोध भी किया। किन्तु कोमल वृत्ति के कारण संघर्ष की कठोरभूमि पर उसके कदम अधिक देर तक जम न सके। उसकी स्थिति प्रायः जीवन संघर्ष में पराजित एक योद्धा की सी रही है। निदान आत्मवादिता की उमंग में उसने अपने युग की संस्कृति और सामाजिकता को ही निष्क्रिय और निष्प्राण कह कर सन्तोष करना चाहा।[2] किन्तु उसका यह दृष्टिकोण भी उसे वाह्य जीवन जनित निराशा से बचा नहीं सका। जीवन संघर्ष के आघात से जैसे जैसे उसके सुनहले स्वप्न टूटते गये वैसे वैसे उसका प्रेमोन्माद अथवा उत्साह भी फीका पड़ता गया। धीरे धीरे उसमें यह विश्वास भी दृढ़ होता गया कि प्रेम प्रारम्भ में चाहे कितना ही मोहक और मधुर क्यों न हो अन्त में वह दुःखों का राजा सिद्ध होता है। इस मनोदशा में उसे दर्शन की यह उक्ति कि आशा ही परम दुःख और निराशा ही परम सुख है[3] सत्य प्रतीत होने लगी। और उसकी सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षा अथवा सम्पूर्ण उल्लास निराशा के विलाप में परिवर्तित हो गया।[4] यदि ता

१ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० १६

२ महादेवी वर्मा : आधुनिक कवि अपने दृष्टिकोण में पृ० ३१

३ आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्। श्री० भा० ११।८।४४

४ शून्य में टकराकर सुकुमार
करेगी पीड़ा हाहाकार
बिखर कर कन कन में हो व्याप्त
मेघ बन छा लेगी संसार।

महादेवी वर्मा : यामा पृ० ७८

'लहर', आदि के गीतों तथा आँसू में या उनके चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त आदि एतिहासिक नाटकों तथा कामायनी काव्य के पात्रों में देखने को मिलते हैं।

'लहर' के गीतों में प्रसाद जी ने जगत का आँसू के कन[1] तथा ज्वाला[2] के रूप में देखा है। साथ ही उन्होंने जगत को उस प्रचण्ड ज्वाला में जलता हुआ भी घोषित किया है।[3] इसी प्रकार अशोक की चिन्ता में उन्होंने सारी वसुधा को भुनते तपते तथा सृष्टिमात्र को दुखिया बताया है।[4] और आँसू में अपने निजी अनुभव के आधार पर स्पष्ट कहा है कि यह जग निर्मम व्यथित[6] कष्टवाला[7] तथा सदा से सूखा[8] और व्यथा से परिपूर्ण है।[9] प्रसाद जी के कहा जगत विषयक दुखात्मक अनुभवों को जीवन में लिप्त कामायनी के मनु दोहराते हुए जान पड़ते हैं। 'अवसाद' और निराशा के क्षणों में 'मनु' को यह विश्व दुख की आँधी और पीड़ा की लहर से उद्वेलित प्रतीत होता है।[10] उनके लिए संसार में एक ओर मौन निराशा विध्वंस तथा अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है तो दूसरी ओर अमरता का तिरोभाव तथा मरण की ही उच्चता और सत्यता सिद्ध होती है।[11] इसी प्रकार उनके नाटकों

---

१ लहर तृतीय बार पृ० ३६

२ वही पृ० ११

३ वही पृ० २९

४ भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग।

वही, पृ० ५०

५ आँसू दशम संस्करण पृ० ६३

६ वही पृ० ५२

७ वही पृ० ६०

८ वही पृ० ७०

वही पृ० ५८

१० कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० २३१

११ मौन। नाश। विध्वंस। अँधेरा।
शून्य बना जो प्रगट अभाव
वह सत्य है अरी अमरते।
तुझको यहाँ कहाँ अब ठाँव।

वही पृ० २६

उन्हें संसार में मृत्यु और छाया ही छाया दिखाई पड़ती है[1] और विद्रुम दम का नरधि अथाह उमड़ता हुआ प्रतीत होता है।[2] निराला जी ने भी संसार को दुःख अज्ञान राज्य कह कर उसे दुःखमय बताया है।[3] उन्हें भी संसार में चारों ओर मृत्यु के ही विवर दृष्टिगत होते हैं—

मैं रहूँगा न गृह के भीतर
जीवन में हूँ मृत्यु के विवर[4]

इसी प्रकार छायावाद-युग के अन्य कवियों जैसे रामनरेश त्रिपाठी रामकुमार वर्मा[6] आदि ने भी जगत को दुःखमय पाया और घोषित किया है।

आलोचकों ने छायावादी कवियों विशेषकर प्रसाद और महादेवी पर बौद्ध दर्शन के दुःखवाद का प्रभाव ढूँढा है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद जी बौद्ध सभ्यता एवं संस्कृति के एक योग्यतम विद्यार्थी थे इस विषय में उनका विशद अध्ययन और ज्ञान था। अतः बौद्ध दर्शन के अध्ययन में उनकी सारग्राही दृष्टि ने यह अनुभव किया कि व्यावहारिक दृष्टि से यह जगत दुःखमय है। अपने चन्द्रगुप्त नाटक में उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि मैं स्वयं हृदय से बौद्धमत का समर्थक हूँ केवल उसकी दार्शनिक सीमा तक—इतना ही कि संसार दुःखमय है।[7] किन्तु अपने वास्तविक रूप में प्रसाद जी भारतीय आध्यात्मिक दर्शन के अध्येता और अनुयायी हैं। वे सुख और दुःख को तात्त्विक वस्तु मानने के विरोधी हैं। सुख और दुःख की मान्यताओं के ऊपर प्रतिष्ठा पाने वाले आनन्द तत्व का प्रसाद जी ने आदर्श निरूपण किया है। उन्होंने समस्त द्वैता का परिहार इसी आनन्द के अन्तर्गत किया है।[8] अतः बौद्ध दर्शन की इस मान्यता अथवा सत्य को कि संसार दुःख अथवा दुःखमय है प्रसाद भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं करते। वह उसे उसी सीमा तक स्वीकार करते हैं जहाँ तक कि

१ यामा पृ १०
२ यामा पृ० ८०
३ परिमल अष्टमावृत्ति पृ २३२ १६८ १२२
४ गीतिका पृ ९३
५ चारों ओर यहाँ पर विस्तृत केवल दुख ही दुख है।
मन का है यह जाल दीखता वहाँ क्षणिक जो सुख है।
पथिक १ पृ० १८
६ विरह व्यथामय था उसमें निकली चिन की नव एक किरण
रूपराशि (१९३३) पृ २१
७ चन्द्रगुप्त पृ ७१
८ नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ७

वह उनके आनन्दवाद में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार दुःख उनके समीप ईश्वर का रहस्य वरदान है जो अपने भीतर सुख का नवीन प्रभात छिपाए हुए है।[1] इसी प्रकार पन्त, निराला और महादेवी भी जगत में दुःख की स्थिति और उसकी व्यावहारिक सत्ता को तो स्वीकार करते हैं किन्तु उसका पर्यवसान वे आनन्द में ही करते हैं।[2] अवश्य ही यह आनन्द मूलतः आधिभौतिक न होकर आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक आनन्द की लालसा रखने के कारण ही छायावाद का कवि सृष्टि में जो कुछ भी—सुख दुःख, जय पराजय, उन्नति या ह्रास—है उसे अभिराम घोषित करता है।[3]

प्रकृति में दुःख और क्षणभंगुरता का आरोप

छायावाद के कवि का प्रकृति के साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था, अतः व्यावहारिक दृष्टि में जगत के दुःख की व्याप्ति तथा क्षणभंगुरता को स्वीकार कर लेने पर उसने प्रकृति में भी दुःख तथा क्षणभंगुरता का आरोप

---

१ प्रसाद, कामायनी, द्वितीय संस्करण, पृ० ६१

२ (क) काँटों से कुटिल भरी हो यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के पल्लव की फूटी लाली।

दुख-छाया में नव-अंकुर पाता जग-जीवन का वन
करुणार्द्र विश्व की गर्जन बरसाती नव जीवन-कण।

पन्त, गुंजन, तृतीय संस्करण, पृ० २२

(ख) सुख-दुख के ऊपर मन का जीवन ही रे अवलम्बन।

पन्त, गुंजन, तृतीय संस्करण, पृ० ७०

(ग) प्रतिपद पराजित भी अप्रतिहत बन्दा रहा
पहुँचा मैं लक्ष्य पर।
अविचल निज शान्ति में
क्लान्ति सब खो गई—

निराला, परिमल, अष्टमावृत्ति, १९६० पृ० २३३

(घ) इस में पग-पग छू बहते झर झर
कण-कण में आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लघु मानस में वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता।

महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) पृ० ७

३ (क) सृष्टि में सब कुछ है अभिराम सभी में हैं उन्नति या ह्रास।

प्रसाद, झरना, आठवाँ संस्करण, पृ० ६८

किया। इस प्रकार अविरल मेघों से घिरा हुआ नभमण्डल उसे अज्ञात वेदनाओं का आगार प्रतीत होने लगा[1] गगन के उर में भी घाव दिखाई देने लगा[2] सरिता अपना दामन अश्रुकणों से भिगाती हुई जान पड़ने लगी।[3] और पवन ठण्डी आह भरता हुआ[4] तथा समुद्र सिसकता हुआ सुनाई पड़ने लगा[5]। छायावाद की कविता में प्रकृति के रूपखण्डों (जैसे नील गगन, घन आदि[6]) को विषाद अथवा दुःख के प्रतीक के रूप अपनाये जाने के राशि राशि उदाहरण ढूंढ़ जा सकते हैं।

हिन्दूधर्म तथा बौद्धधर्म के दुःखवाद और स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के प्रकृति दर्शन के प्रभाव से छायावाद के कवि को जो सिद्धान्तरूप में क्षणभंगुरता का भान हुआ उसका आरोप उसने प्रकृति के बीच भी किया।[7] अतः इस प्रकार के भाव कि—

अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश

---

१ (ख) घिर कर अविरल मेघों से जब नभ मण्डल झुक जाता
अज्ञात वेदनाओं से मेरा मानस भर आता।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थावृत्ति पृ० ४०

सरस अभिराम पवन उत्थान—
दया भय रूप नाथ अभिमान
दुःख-सुख-तृष्णा नानाज्ञान।
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ १००

२ गगन के उर में भी है घाव — पन्त पल्लव, चतुर्थावृत्ति पृ० १७

३ आँसू कण-कण से इधर छल-छल सरिता भर रही दृगंचल,
प्रसाद लहर तृतीयवार पृ० ४८

४ अनिल भी भरती ठण्डी आह। —पन्त, पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० १८

५ सिसकते हैं समुद्र से मन वही, पृ० १७

६ इस नील विषाद गगन में—सुख चपला-सा दुख घन में
प्रसाद लहर तृतीय बार, पृ० ४८

७ स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से प्रकृति प्रेम के साथ ही मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई। परिवर्तन में इस विचारधारा का काफी प्रभाव है। जग में सोमता

सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन।[1]

कैसा वह प्रदेश है जिसमें एक उषा वह भी नश्वर है
उज्ज्वल एक नन्दिनि है जिसका जीवन भी केवल पल भर है।[2]

छायावाद की कविता में प्रचुरता में पाये जाते हैं।

बादल के उमड़ने और मिटने, चाँद के उदय होने और छिपने, दीपक के जलने और बुझने[3] मधुमास के शिशिर में परिवर्तित होने[4] आदि प्रकृति व्यापारों के आधारभूत जीवन और जगत की क्षणभंगुरता के सिद्धान्त की ही मार्मिक अभिव्यक्ति और विशद कल्पना हमें छायावाद की कविता में देखने को मिलती है। प्रकृति में क्षणभंगुरता का यह आरोप केवल सीधे ढंग से न होकर प्रश्न किंवा जिज्ञासा के रूप में भी हुआ है। जिज्ञासा रूप में प्रकृति की क्षणभंगुरता का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण हमें निम्न पंक्तियों में मिलता है—

है कि आधुनिक दर्शन जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और इस प्रकार से प्रकृति को सर्वशक्तिमयी मानकर उसके प्रति आत्मसमर्पण सिखलाता है वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है।

एक सौ वर्ष नगर उपवन —एक सौ वर्ष विजन वन।
यही तो है असार संसार —सृजन, सिंचन, संहार।

आदि भावनाएँ मनुष्य को अपने केन्द्र से च्युत करने के बाद किसी सक्रिय सामूहिक प्रयोग के लिए अवसर नहीं करतीं बल्कि उसे जीवन की क्षणभंगुरता का उपदेश भर देकर रह जाती हैं।

पन्त: आधुनिक कवि प्रथम संस्करण, पर्यालोचन, पृ० १४

१. पन्त: पल्लव चतुर्थावृत्ति, १९४२ पृ० ७०
२. रामकुमार वर्मा: चित्ररेखा द्वितीय संस्करण, परिशिष्ट पृ० ७०
३. बिखरने मुरझाने को फूल उदय होता छिपने को चन्द
शून्य होने को भरते मेघ दीप जलता होने को मन्द
यहाँ किसका अनन्त यौवन? अरे अस्थिर छोटे जीवन!
महादेवी वर्मा: आधुनिक कवि (१), पृ० १८
४. आज तो सौरभ का मधुमास शिशिर में भरता सूनी साँस।
पन्त: पल्लव चतुर्थावृत्ति, १९४२ पृ० ७३

जब पल भर का है मिलना
फिर चिर वियोग म झिलना
एक ही प्रात है खिलना
फिर सूख धूल म मिलना
तब क्यो चटकीला सुमन रग ?[1]

किन्तु प्रश्न किंवा जिज्ञासा तथा समाधान दोनो रूपो म प्रकृति के माध्यम स व्यक्त होने वाले क्षणभगुरता के भाव सामान्यतया छायावादी कवि के व्यक्तिगत जीवन के निराशाजनित विराग की ही करुण मधुर अभिव्यक्तियाँ है। अत निराशा और विराग के क्षणो म तो उस रूप जगत का मद अस्थिर लगता है और जग की सुन्दरता अश्रु स्नात जान पडती है।[2] किन्तु आशा और उल्लास के क्षणो म प्रकृति उन्ह हसती मुस्कराती और गाना गाती हुई[3] सुन्दर उदार[4] और सुख-श्री-सौरभ स परिपूर्ण[5] प्रतीत होती है।

---

१ प्रसाद लहर ततीय वार पृ० ८९
२ अस्थिर है रूप जगत का मद

जग की सुन्दरता अश्रु स्नात —
पत युगवाणी १९३० पृ० ९५

३ (क) पुष्प म है अनन्त मुस्कान त्याग का है मारुत म गान
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुथ सस्करण पृ० १३
(ख) मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण मुस्कुरा दी थी आज विहान?
पन्त गुजन ततीय सस्करण पृ० ४६
(ग) कुसुमो के जीवन का पल हसता ही जग म देखा —
पत गुजन ततीय सस्करण पृ० २१
४ (क) नील नभ म शोभन विस्तार प्रकृति है सुन्दर परम उदार।
प्रसाद झरना आठवा सस्करण पृ० ३०
(ख) प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर
तृण तरु पशु पक्षी नर सुरवर
सुन्दर अनादि शुभ सष्टि अमर
पन्त गुजन ततीय सस्करण पृ २६
५ प्रिये कलि-कुसुम कुसुम म आज मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास
तुम्हारे रोम रोम छवि-व्याज छा गया मधुवन म मधुमास।
पन्त, गुजन, ततीय सस्करण पृ० ५८

जीवन में दुःख और निराशा का आरोप

प्रकृति किंवा सम्पूर्ण जगत को दुःख अथवा दुःखमय मान लेने के उपरान्त छायावाद के कवि ने जीवन को भी अपने कटु अनुभवों के आधार भूत दुःखमय घोषित किया। छायावादी कवि के जीवन को भी दुःखमय मानने के दो मुख्य कारण थे—एक तो अध्ययन द्वारा दुःखवादी दर्शनों का उनके ऊपर प्रभाव और दूसरा उनके व्यक्तिगत संघर्षमय जीवन की विषमताएं। छायावाद के प्राय सभी प्रमुख कवियों का जीवन कष्टाकीर्ण एवं विषादयुक्त रहा है। प्रसाद जी को एक सम्पन्न पर ऋणग्रस्त प्रतिष्ठित परिवार में जन्म पिता और भाई दोनों में कनिष्ठ होने के कारण कुछ अधिक मात्रा में स्नेह दुलार प्राप्त हो सका। किशोरावस्था में वे एक ओर शारीरिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम आदि और दूसरी ओर मानसिक विकास के लिए कई शिक्षकों से संस्कृत फारसी अंग्रेजी आदि का ज्ञान प्राप्त करते रहे। पर इसी किशोरावस्था में उन्हें पारिवारिक कलह की कटुता का अनुभव हुआ। इतना ही नहीं उनके किशोर कन्धों पर ही पारिवारिक उत्तरदायित्व अर्थ व्यवस्था और ऋण का भार आ पड़ा। ऐसा लगता है यही दुर्वह भार सारे दुलार, स्वास्थ्य और विद्या का स्वाभाविक प्राप्य था।[1] निराला जी के निकट माता बहन भाई आदि के कोमल सौहार्द के अभाव का ही नाम मात्र रहा है। जीवन का बसन्त ही उनके लिए पत्नी वियोग का पतझड़ बन गया। आर्थिक कठिनाई ने उन्हें अपनी मातृहीन सन्तान के प्रति कर्त्तव्य निर्वाह की सुविधा भी नहीं दी। पुत्री के अन्तिम क्षणों में वे निरुपाय दर्शक रहे और पुत्र को उचित शिक्षा से वंचित रखने के कारण उसकी उपेक्षा के पात्र बने।[2] पन्त जी के स्वभाव को जीवन के अनेक अभाव उभारे और सम विषम परिस्थितियों से संघर्ष करना पड़ा है और शरीर को न जाने कितने रोगों से जूझना पड़ा है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्नता की ऊंची सीढ़ी से विपन्नता की अन्तिम सीढ़ी तक उन्होंने अनेक चढ़ाव-उतार देखे हैं।[3] इसी प्रकार अन्य छायावादी कवियों का जीवन भी सांसारिक दृष्टि से बहुत कुछ असन्तोषप्रद और दुःखमय रहा है। अस्तु।

जब निराशा की छाया ने छायावाद के कवि के मानस-कुञ्जों में पूर्ण

---

१ महादेवी वर्मा पथ के साथी प्रथम संस्करण पृ० ३२ ३३
वही पृ० ४३
३ वही पृ० ८४, ८९

याऊ दी और वेदनाओ के झझावात ने उसके जीवन फूल बिखरा दिये[1] तब उसकी सारी चाह आहो म परिवर्तित हो गइ।[2] ऐसी परिस्थिति म, सुखो और आशाओ क अभाव म उसक जीवन म एक प्रकार की विरक्ति सूनापन तथा दु ख का साम्राज्य उपस्थित हो गया ।[3] विरक्ति अथवा दु ख की इस मनोदशा म जीवन उसके लिए एक विकट पहेली बन गया[4] और प्रत्येक पल असफलता के भार म बोझिल हो उठा ।[5] अत जीवन म उसे सवत्र शोक[6] क्रन्दन[7] व्यथा,[8]

१ निराशा के पाशो ने देव ! भरी मानस कुञ्जो म धूल
वेदनाओ के झझावात गए बिखरा यह जीवन फूल ।
महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्करण पृ० ४०

२ मरी चाह बदल रही निन आहो म
क्या चाह और ?
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० १४१

(क) किन्तु टूटत भी रहत है आशाओ क तार
जीवन भी बन गया हाय र अब जीवन का भार ।
भगवती चरण वर्मा मधुकण प० २७

(ख) पर मर सूने जीवन म आशा का सचार नहा ॥
होमवती अथ पृ० ९

(ग) प्र म ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था
निष्फल हृदय तो आज दुख ही देख रहता ।
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० १३९

(घ) किन्त हमारी करुण गाथा म सुख का कछ आधार नहीं ॥
होमवती अथ पृ० ८

४ प्रसाद कामायनी द्वितीय सस्करण पृ० २३७

५ एक एक असफलता का भार
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्करण पृ० ३४

६ शोक क्रन्दन के सिवा ससार म क्या मिल सकेगा ?
होमवती अथ, पृ० ३८

७ जीवन चिरकालिक क्रन्दन । —निराला अपरा, पृ० ७४

८ व्यथा व्यथा
है जगत की प्रथा
जीवन कथा
व्यथा ।
पन्त, स्वर्णधूलि, प्रथम सस्करण प० १०२

अभिशाप[1] ताप[2] चीत्कार[3] हाहाकार[4] अन्धकार[5] और मर्मान्तक दुःख[6] दिखाई देने लगा। अपने वैयक्तिक जीवन के इन कटु अनुभवों को पुष्ट करने के लिए उसे दुःखवादी दर्शनों विशेषकर बौद्धदर्शन का मुख्य आधार भी मिल गया। अतः दार्शनिक स्तर पर उसने जीवन को प्रलय एवं चिर अशान्ति[7] के रूप में देखा। केवल अपने ही जीवन को नहीं सबके जीवन को उसने आह, उत्ताप, घात, अवसान और अशान्ति से परिपूर्ण बनाया। इतना ही नहीं,

---

१ जीवन में अभिशाप शाप में ताप भरा है।
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १९०

२ (क) क्या जीवन ? जिसने आँसू ही देखे हैं मुस्कान न देखी
चिर विद्रोह का साथी है जो मधुर मिलन की आस न देखी
उसके भीतर बाहर दोनों धधक रही मरघट की ज्वाला
शिवमंगल सिंह सुमन जीवन के गान द्वितीय संस्करण पृ० ५२
(ख) मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर रसमय उर में है चपल ज्वाल।
रामकुमार वर्मा चित्ररेखा द्वितीय संस्करण परिशिष्ट पृ० ७०

३ यह असह्य चीत्कार और परवशता इतनी।
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० १९८

४ गूँजते हैं सबके दिन चार—सभी फिर हाहाकार।
पन्त, पल्लव चतुर्थावृत्ति, पृ० ७३

५ अन्धकार हो अन्धकार है यह जीवन का मार्ग विषम।
भगवती चरण वर्मा मधुकण पृ० १

६ (क) जग के दुख से जर्जर उर बस मृत्यु-रूप है जीवन॥
पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० २४
(ख) दुख। जीवन भर का विक्षेप मरु सो है नि [illegible]॥
पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० १९

७ यह मेरे मेरे जीवन रथ पर, प्रलय चल रहा अपने पथ पर।
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर, उससे हारी होड़ लगाई।
प्रसाद स्कन्दगुप्त सप्तम संस्करण पृ० १११

८ कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ? —सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति।
पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० ८२

९ अविराम घात आघात
आह ! उत्पात !
यही जग जीवन के दिन रात।
यही मेरा इनका उनका सबका स्पन्दन
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन।
यही मेरा इनका उनका सबका जीवन,

[illegible] अशान्ति।
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० १२३

हार दी और वेदनाओ के झझावात ने उसके जीवन फूल बिखरा दिय[1] तब उसकी सारी चाह आहो म परिवर्तित हो गई। ऐसी परिस्थिति म सुखो और आशाओ क अभाव म, उसक जीवन म एक प्रकार की विरक्ति, सूनापन तथा दुख का साम्राज्य उपस्थित हो गया।[3] विरक्ति अथवा दुख की इस मनोदशा म जीवन उसक लिए एक विकट पहली बन गया[4] और प्रत्येक पल असफलता के भार से बोझिल हो उठा।[5] अत जीवन म उस सवत्र शोक[6] क्रन्दन[7] व्यथा[8]

---

१ निराशा के नाला ने दव ! भरी मानस कुञ्जों म धूल
वेदनाओ के झझावात गए बिखरा यह जीवन-फूल।
महादेवी वमा यामा तृतीय सस्करण पृ० ४०

२ मेरी चाहे बदल रही नित आहो म
क्या चाह और ?
निराला परिमल अष्टमावत्ति पृ० १४१

(क) किन्तु टूटते ही रहत हैं आशाओ क तार
जीवन ही बन गया हाय र अब जीवन का भार।
भगवती चरण वर्मा मधुकण प० २७

(ख) पर मेरे सूने जीवन म आशा का सचार नही॥
होमवती अर्घ पृ० ९

(ग) प्रम ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था
विफल हृदय तो आज दुख ही दुख दखता।
निराला परिमल अष्टमावत्ति पृ० १३९

(घ) किन्तु हमारी प्रम गाथा म सुख का कुछ आधार नही॥
होमवती अर्घ पृ० ८

४ प्रसाद कामायनी द्वितीय सस्करण पृ २३७

५ एक पल असफलता का भार
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुथ सस्करण पृ० ३४

६ शोक क्रन्दन के सिवा ससार म क्या मिल सकेगा ?
होमवती अर्घ पृ० ३८

जीवन चिरकालिक क्रन्दन। —निराला अपरा, पृ० ७४

८ व्यथा व्यथा
रे जगत की प्रथा
जीवन कथा
व्यथा।
पन्त, स्वर्णधूलि प्रथम सस्करण, प० १०२

अभिशाप[1] ताप,[2] चीत्कार,[3] हाहाकार,[4] अन्धकार[5] और मर्मान्तक दुःख[6] दिखाई देने लगा। अपने वैयक्तिक जीवन के इन दुखद अनुभवों को पुष्ट करने के लिए उसे दु:खवादी दर्शनों विशेषकर बौद्धदर्शन का सुदृढ़ आधार भी मिल गया। अतः दार्शनिक स्तर पर उसने जीवन को प्रलय[7] एवं चिर अशान्ति[8] के रूप में देखा। केवल अपने ही जीवन को नहीं सबके जीवन को उसने आह उत्पात घात अघात और अशान्ति से परिपूर्ण बताया। इतना ही नहीं

---

१ जीवन में अभिशाप शाप में ताप भरा है।

प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १९९

२ (क) क्या जीवन ? जिसने आँसू ही देखे हैं मुस्कान न देखी
चिर बिछोह का साथी है जो मधुर मिलन की आस न देखी
उसके भीतर बाहर दोनों धधक रही मरघट की ज्वाला

शिवमंगल सिंह सुमन जीवन के गान द्वितीय संस्करण पृ० [illegible]

(ख) मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर रसमय उर में है धधक ज्वाल।

रामकुमार वर्मा चित्ररेखा द्वितीय संस्करण परिशिष्ट, पृ० ७०

३ यह असह्य चीत्कार और परवशता इतनी।

प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० १९८

४ गूँजते हैं सबके दिन चार—सभी फिर हाहाकार।

पन्त पल्लव, चतुर्थावृत्ति पृ० ७३

५ अन्धकार हा अन्धकार है यह जीवन का मार्ग विषम।

भगवती चरण वर्मा, मधुकण, पृ० १

६ (क) जग के दुख से जर्जर-उर, बस मृत्यु-रूप है जीवन ॥

पन्त गुंजन तृतीय संस्करण पृ० ३४

(ख) [illegible] जीवन भर का विरनद मधु [illegible] है नि [illegible] ॥

पन्त पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० [illegible]

७ घर घर घर जीवन रथ पर प्रलय चल रहा अपने पथ पर।
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर उससे हारी-होड़ लगाई।

प्रसाद स्कन्दगुप्त, [illegible] संस्करण पृ० [illegible]

८ कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ? —सृष्टि ही का [illegible]।

पन्त, पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० [illegible]

९ अविराम घात आघात
आह ! उत्पात !
यही जग जीवन के दिन रात।
यही मेरा इनका उनका सबका स्पन्दन
हास्य से मिला हुआ क्रन्दन।
यही मेरा इनका [illegible] जीवन,
[illegible] अशान्ति।

निराला परिमल [illegible]

दुःखवादी दर्शन के प्रभाव से उसने यहाँ तक कह डाला कि संसार में जिसने दुःख नहीं भोगा उसका ईमान सच नहीं है।[1] इस प्रकार सिद्धान्त रूप में उसने जन्म को ही दुःखों का घर घोषित किया[2] और जीवन के पहले ही क्षण में अंतिम क्षण का अनुभव किया।[3] एक दुःखवादी दार्शनिक की भाँति उसने यह भी उद्‌घोषणा की कि जीवन करुणामय प्रवास है तथा मृत्यु ही शांति है[4] जीवन में कुछ भी पूर्ण नहीं है[5] जीवन क्षणभंगुर है[6] नश्वर है तथा सर्वनाश का घर है।[7] किन्तु दुःख अथवा निराशा के इस स्तवन के उपरान्त छायावादी के कवि ने आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता के आग्रह से दुःख को ईश के वरदान के रूप में ही अपनाया।[8] दुःख की इसी

१ उसका सच ईमान नहीं है आज न जिसने दुःख भोगा।
नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल द्वितीय संस्करण पृ० ६३

२ जन्म ही उस विरह की रात सुनावे क्या वह मिलन प्रभात।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि चतुर्थ संस्करण पृ० ८२

३ जीवन के पहले ही क्षण में कैसा अंतिम क्षण है
बोलो क्या मेरे जीवन में छिपा मृत्यु का कण है?
रामकुमार वर्मा चित्ररेखा द्वितीय संस्करण १६वाँ गीत परिशिष्ट पृ० ११४

४ है जहाँ मृत्यु ही शान्ति और जीवन है करुणामय प्रवास
रामकुमार वर्मा चित्ररेखा द्वितीय संस्करण परिशिष्ट पृ ६८

५ चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में—पन्त युगवाणी १९३९ पृ ९५

६ (क) यह स्फुलिंग का नृत्य एक पल आया बीता।
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १९८

(ख) जग ता है युग-युग की पूँजी जीवन क्षण भंगुर दामिनि का
गोपाल सिंह नेपाली पंचमी प्रथम संस्करण १९४२ पृ० ८८

(ग) दुनिया में जीवन है केवल एक बूँद का क्षणिक चमकना—पृ ८०

(घ) क्षण भर जीवन मेरा परिचय—बच्चन मधुबाला पृ० ८

७ रूप राशि पर गर्व न करना जीवन ही नश्वर है
देखि यह इसी सुभग उपवन में सर्वनाश का घर है
रामधारी सिंह दिनकर रेणुका पृ० ८१

८ दुःख का वह रहस्य वरदान कभी मत इसको जाओ भूल
प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १

आध्यात्मिकता की सीमा पर पहुँच कर वह एकाकी जीवन[1] तथा उस पार के सत्य की ओर उन्मुख हुआ। छायावाद के कवि की उक्त एकान्तप्रियता और 'उस पार' के काल्पनिक सुख की प्रवृत्ति ही छायावाद की कविता में पलायनवाद के नाम प्रसिद्ध हुई।

पलायनवाद

अध्यात्म की ओर आरम्भ से ही छायावाद के कवि का झुकाव था और पलायनवाद अध्यात्मवाद की ही एक शाखा है। जीवन की जटिल समस्याओं से ऊब कर मधुर संघर्षहीन कल्पनाओं की सृष्टि करना अथवा हृदय में जो हाहाकार मचा हुआ है उसे भुलाकर प्रकृति के अंचल में विश्रान्ति पाना इसका उद्देश्य है। छायावाद की कविता में पलायनवाद के ये दोनों रूप उपलब्ध होते हैं।

छायावाद के कवि के लिए मनुष्य जीवन का इतिहास सदा ही करुण प्रमाणित हुआ। अतः उसकी सहज जीवन व्यतीत करने की भावना को बड़ी ठेस पहुँची। निदान, उसने अपने को इस अस्थिर, व्यथापूर्ण तथा चिर अतृप्ति के संसार से हटाकर अधिक चिरन्तन भाव जगत में स्थापित कर लिया। इस चिरन्तन भाव जगत की सृष्टि एक तो उसने प्रकृति के सान्निध्य से की और दूसरे उस पार की अध्यात्म-समन्वित कल्पना द्वारा।

छायावाद का कवि प्रारम्भ से ही ऐहिक जीवन के सुखों से विमुख रहा था किन्तु जब इस जीवन में सुख और तृप्ति की प्राप्ति न हो सकी और नर हृदय परिमित तथा स्वार्थपूरित प्रतीत हुआ तब वह सुन्दर, परम उदार प्रकृति के सान्निध्य के लिए लालायित हो उठा।[2] तब उसे यह भी विश्वास हो

---

१ (क) प्रिय है मुझको यह सूनापन,
प्रिय है मुझको निज अपनापन।
ठाकुर गोपालशरण सिंह, सुमना, १९४१, पृ० ३३

(ख) मैं न चाहता संग जीवन में, करो न चिन्ता मेरी मन में,
भार यातना ही रहने दो मुझे अकेला ही रहने दो।
ठाकुर गोपालशरण सिंह, सुमना, १९४१, पृ० ४०

(ग) इस एकान्त सृजन में कोई कुछ बाधा मत डालो,
जो कुछ अपने सुन्दर से हैं दे दो इनको।
प्रसाद, लहर, तृतीय बार, पृ० ४१

२ नील नभ में शोभन विस्तार
प्रकृति है सुन्दर परम उदार।
नर हृदय परिमित पूरित स्वार्थ
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ।
जहाँ मन मिला न उसमें तृप्ति स्वप्न-सी आशा मिली सुषुप्ति।
प्रसाद, झरना, आठवाँ संस्करण, पृ० ३९

चला कि परम उदारा प्रकृति के आड म जान म मानव जग के क्रन्दन स छुट कारा मिल सकता है तथा अपन चिर स्नेहातुर उर की व्यथा को भुलाया जा सकता है।[1] इसी अभिप्राय म व्यथित हृदय छायावाद के कवि ने प्रकृति के प्रागण म प्रवेश किया।

छायावाद के कवि का प्रकृति की ओर मुडन का एक और महान कारण उसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण था। जीवन और जगत की नश्वरता का अनु भव प्राप्त कर उसन यह भी कल्पना की कि प्रकृति के एकान्त प्रदेश म विभु सी विमुना दरसा तथा निश्चल प्रम की कथा सुनी जा सकती है। इस अभिप्राय से भी उसन अपने जीवन नाविक स इस कोलाहल की अवनी का त्याग कर निजन प्रदेश म ल जान का अनुरोध किया।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के कवि न प्रकृति को अपनी मानसिक पीडा को दूर करने के लिए भी अपनाया और आध्यात्मिक सुख प्राप्ति के साधन रूप म भी।

पलायनवाद का दूसरा रूप वह है जहा मनुष्य ससार की विषमताओ और दुःख दशाओ स ऊबकर ससार की नश्वर वस्तुओ से प्रम करना छोड देता है और आध्यात्मिक अथवा उस पार के जीवन म चिर शान्ति की खोज करता है। छायावाद की कविता म पलायनवाद का यह आध्यात्मिक स्वरूप

---

१ कहा कहा जी करता मैं जाकर छिप जाऊ
मानव जग के क्रन्दन स छुटकारा पाऊ।
प्रकृति नीड म व्योम खगा के गाने गाऊ
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाऊँ।
पन्त ग्राम्या द्वितीय सस्करण पृ० ७५

२ ले चल वहा भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे धीरे।
जिस निजन म सागर लहरी
अम्बर के कानो म गहरी—
निश्चल प्रम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।

जिस गम्भीर मधुर छाया म—
विश्व चित्र-पट चल माया म—
विभुता विभु-सी पड दिखाई
दुख सुख वाली सत्य बनी रे।
प्रसाद लहरा ततीय बार पृ० १४

भी बड़ी ही भावपूर्ण शैली में व्यक्त हुआ है। छायावाद के कवि ने संसार की ज्वाला में, वेदनापूर्ण स्थिति में व्याकुल होकर जीवन की दुःखपूर्ण वास्तविकता से बचने के लिए 'उस पार' के जीवन का आह्वान किया।[1] अतः वह अपनी रचनाओं में 'उस पार' के शाश्वत सुखमय जीवन की मनोरम झाँकी प्रस्तुत कर भौतिक तापों को भूलने अथवा मिटाने का प्रयत्न करता हुआ पाया जाता है।[2] यहाँ तक कि उसकी रंगीन कल्पना में कविता भी साकार रूप धारण कर उसे 'उस पार' का सन्देश सुनाती हुई जान पड़ती है।[3]

छायावादी कवि ने विशेषकर पन्त जी ने भीतर-बाहर में, सुख-दुख में आशा-निराशा और संयोग-वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्न को भी पलायन वृत्ति के भीतर रखा है[4] और अपने इस प्रयत्न को स्थायी

---

१ क्या है यह अरण्य चीत्कार शान्ति-सुख है उस पार।
—पन्त पल्लव पृ० ८४

२ हम जाना है जग के पार।—
जहाँ नयनों से नयन मिले
ज्योति के रूप सहस्र खिले
सदा ही बहती नव रस धार—
वहीं जाना इस जग के पार।

.....

जहाँ अधरों को हाथ हिला
हाथ अधरों से रहा मिला
साथ में सहसा प्रेम खिला
बना बना उर को उर-हार—
हम जाना जग के उस पार।—निराला परिमल अध्यात्मवृत्ति पृ० १३

३ भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका,
उस कविता का
वह थी निश्चय अविकार
अंग अंग में उठी तरंगें उमड़
वे पहुँची कवि के पास बढ़ा—
तुम चलो सुनाया है उसने उसी तुमको उस पार'
निराला परिमल अध्यात्मवृत्ति, पृ० ११०-११४

४ . नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण करने के पहले मेरी कविता छायावाद के रूप में ह्रासयुग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षाओं सम्बन्धी

दार्शनिकता का रूप कहा है।[1] किन्तु अपने वास्तविक रूप में भीतर बाहर सुख दुख आशा निराशा आदि द्वन्द्वों का उक्त सामंजस्य थोथी दार्शनिकता का रूप न होकर भारतीय दर्शन की समन्वयात्मक प्रवृत्ति का ही परिचायक है और इस दृष्टि से वह छायावाद काव्य की एक महान देन है।

निराशा अथवा वेदना का विलास

छायावाद का युवक कवि स्वच्छन्दतावादी तथा घोर अहंवादी था, और निराशावाद अहंवादी और अपने को सब कुछ समझने वाले युवक का विलास है—एक ऐसा युवक जो पहले तो संसार की बुराइयों पर बुरी तरह टूटता है और फिर निराश होकर बार-बार अपने स्वप्नों और जीवनादर्शों को छोड़ता चलता है।[2]

स्पष्ट है कि छायावादी या अहंवादी कवि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता और स्वतन्त्रता का प्रेमी तथा समाज में प्रचलित अनेक रूढ़ियों का विरोधी था। किन्तु अपने स्वप्नों और आदर्शों की पूर्ति में वह प्राय असफल ही रहा अतः उसे जीवन में बहुत निराश होना पड़ा। और जैसा कि रोमांटिक

स्वप्नों निराशाओं और सम्वेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी और व्यक्तिगत जीवन संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर पलायन के रूप में प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर भीतर बाहर में सुख दुख में आशा निराशा और संयोग वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्य स्थापित करने लगी। सापेक्ष की पराजय उसमें निरपेक्ष की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी।

पन्त आधुनिक कवि (२) प्रथम संस्करण पर्यालोचन पृ० ११

१　जातीय दृष्टि से हम अपने स्वाभाविक आत्म रक्षण के संस्कारों (सेल्फ प्रिजर्वेटिव इंस्टिंक्ट्स) को खो बैठे हैं और अपने प्रति किये गये अत्याचारों को थोथी दार्शनिकता का रूप देकर चुपचाप सहन करना सीख गये हैं। साथ ही हमारा विश्वास मनुष्य की संगठित शक्ति से हटकर आकाश कुसुमवत दैवी शक्ति पर अटक गया है जिसके फल स्वरूप हम देश पर विपत्ति के युगों में सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे गिरते गये हैं।

2　Pessimism is a luxry of self conscicus and self important youth youth that hurls it self madly against the wind mills and evils of the world and sadly shads utopias and ideals with every year

Will Durant The story of Philosophy, p 318

व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है वेदना उसके लिए रुचा अथवा विलास की वस्तु बन गई। उसे रोने में मजा आने लगा।[१] आंसू क्रन्दन व्यथा वेदना व उसके अत्यंत प्रिय शब्द बन गये और उनकी ओर बार-बार आने में वह शान्ति और सन्तोष का अनुभव करने लगा—शान्ति वह जो आंसुओं की धार बहाने में प्राप्त होती है और सन्तोष वह जो उपेक्षा के भाव का वरण करने में प्राप्त होता है।[२] इस प्रकार वेदनाप्रियता अथवा निराशा का विलास छायावादी कवियों का एक विशिष्ट गुण अथवा लक्षण हो गया। वेदना का यह विलास छायावाद के प्रत्येक कवि में पाया जाता है।

छायावाद का कवि वेदना को सामान्य मनुष्य की भाँति अनिष्ट वस्तु न मानकर उसे सुख-सम्पन्नता का स्थान बनाता है[३] और उसमें अपार उल्लास और अनोखे स्वाद का अनुभव करता है।[४] अतः वह सहज ही कह जाता है कि यदि मनुष्य दुःख में रहना सीख सके तो वह सुख से भी सुन्दर है।[५] इसी उमंग में वह दुःख में असीम सुख और उल्लास मानने का आनन्द करता है।[७] वह यह कह कर मग्न अथवा आनन्दित होता है कि मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि जो मिट गया वह जी गया।[८] अतः मैं मिटने के अधिकार की

---

१ मुझको तो हार अधिक भाती
शिवमंगल सिंह सुमन हिल्लोल द्वितीय संस्करण पृ० ३४

२ किसी पर मरना यही तो दुःख है।
उपेक्षा करना मुझे भी सुख है
प्रसाद झरना आठवाँ संस्करण, पृ० ८४

३ आज मैं सब भाँति सुखसम्पन्न हूँ वेदना के इस मनोरम विपिन में
पन्त वीणा-ग्रन्थि दिग्पावलि पृ० ९०

४ पा लिया मैंने किस इस वेदना के मधुर क्रय में ?
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१), पृ० ४१

५ नाथ मुझसे नेक बोलो इस जलन में स्वाद क्यों है ?
माखनलाल चतुर्वेदी, हिमकिरीटिनी तृतीय संस्करण पृ० ६२

६ दुःख में रहना सीख सके यदि तो वह सुख से भी सुन्दर है।
नरेन्द्र शर्मा प्रवासी-गीत द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५५

७ दुःख में भी मानें असीम सुख बाधा में बिखरा उल्लास।
पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण पृष्ठ १२१

८ मैं तो केवल यह जानता जो मिट गया वह जी गया।
शिवमंगल सिंह सुमन हिल्लोल द्वितीय संस्करण पृष्ठ १

खोना नहीं चाहता।[1] इसी प्रकार वह यह भी दावा करता है कि मेरी भग्न आशाएँ एकत्र होकर मुझे नवल वन नवल मुख और नूतन साज से सजाती रहती हैं।[2] अत वह नित्य नई व्यथा पालने के लिए उत्सुक रहता है।[3] कभी कभी उसमें वेदनाप्रियता इतनी बढ़ जाती है कि उसे शान्ति दुसह सी लगने लगती है मन अशान्ति में रमने लगता है उर को जलन सुहाने लगती है और उत्पीड़न में सुख मिलने लगता है।[4] इस प्रकार वेदना और विफलता का स्वागत कर छायावाद का कवि उन्हें दार्शनिकता का रूप दे देता है—

नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास
विफलता में है पूर्ति विकास।[5]

किन्तु इतना कुछ होते हुए भी छायावादी कवियों की वेदना प्रियता अथवा निराशा का विलास सर्वत्र वास्तविक और अनुभूत नहीं है। वह अधिकांशत उनकी विलासी प्रवृत्ति अथवा रोमान्टिक मुद्रा का परिणाम है। अत आलोचकों का यह कथन कि छायावाद में भीतर बार बार आँसू वेदना निराशा उदासी और पीड़ा का जो आख्यान मिलता है उसे व्यक्ति या समाज की वास्तविक वेदना का प्रतिबिम्ब समझने का कोई आधार नहीं है। यह मनुष्य नहीं कवि मात्र की वेदना है जो सचमुच अनुभूत नहीं हुई है वरन जिसकी काल्पनिक अनुभूति में कवि कोमल कविताएं रच रहा है[6] एक हद तक सत्य ही है। फिर भी निराशा अथवा वेदना का उक्त विलास छायावाद की चरम परिणति नहीं है। अपने स्वस्थ क्षणों में छायावाद का कवि जीवन और जगत के प्रति

---

१ रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृष्ठ ७३

२ जब कि भग्न आशाएं मेरी एकत्रित हो आज
सजाती हैं मुझको निर्व्याज
(नवल-वन नव मुख नूतन-साज।)
पन्त वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ५१

३ मैं नित्य नई पालूं व्यथा मेरी निराली हो कथा
शिवमंगल सिंह सुमन हिल्लोल द्वितीय संस्करण पृ० ६८

४ अब शान्ति दुसह-सी लगती है अब मन अशान्ति में रमता है
अब जलन सुहानी है उर को अब सुख मिलता उत्पीड़न में
नर्तन कर गायन कर नागिन मेरे जीवन के आंगन में।
बच्चन, सतरंगिनी दूसरा संस्करण १९४८ पृ० ४९

५ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ० ८६

६ निराला, पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण
प्रथम संस्करण, पृ० ५९

पनी आसक्ति निकलता है और आशा और आनन्द का गीत गाता है।[1] अत उसके विषय में यह मत कि छायावादी कवि जगत की अनित्यता और जीवन की दुर्बलताओं पर केवल विषाद प्रकट कर मौन रह जाते हैं किसी शाश्वत जीवन की कल्पना नहीं कर पाते, सही नहीं कहा जा सकता। हाँ निराशा अथवा वेदना के विषय में महादेवी जी की स्थिति छायावाद के अन्य प्रमुख कवियों से भिन्न अवश्य है। उन्हें वेदना इतनी प्रिय है कि वह उसे किसी प्रकार किसी भी दशा में छोड़ना नहीं चाहती।[3] अपनी इस वेदनाप्रियता के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा है कि जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। सुख की प्रतिक्रिया स्वरूप वेदनाप्रियता की यह प्रवृत्ति निराशा के विलास के अतिरिक्त और कुछ नहीं कही जा सकती। जहाँ तक महादेवी जी की वेदना अथवा दुःख के दार्शनिक पक्ष अथवा रूप का प्रश्न है[4] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह मत कि उन्होंने दुःख के आध्यात्मिक स्वरूप और सुख के

---

१ (क) जग जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव अभिलाष मुझे
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे —
पन्त, गुञ्जन, तृतीय संस्करण पृ० ६

(ख) जीवन की लहर लहर में हम तरल-ज्वाल रे नाविक।
जीवन के अन्तस्तल में नित बूड़-बूड़ रे नाविक।
पन्त, गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० १८

२ डा० शम्भूनाथ पाण्डेय आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद
प्र० सं० पृ० २६९

३ (क) मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ० ८८

(ग) मेरे छोटे जीवन में देना न तृप्ति का कण भर
रहने दो प्यासी आँखें भरती आँसू के सागर।
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ० २८

महादेवी वर्मा यामा, तृतीय संस्करण अपनी बात पृ० १०

४ बचपन में ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।
"दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे

भौतिक स्वरूप को सामने रख कर विचार किया है। किन्तु इसके विपरीत सुख आध्यात्मिक और दुःख का भौतिक स्वरूप भी है जिसकी ओर उनकी दृष्टि नहीं गई। दुःख की तामसिक राजसिक और सात्विक तीनों अभिव्यक्तियां हो सकती है उसी प्रकार सुख की भी। यह सब कुछ सम्वेदन पर अवलम्बित है जिससे सुख और दुःख का निःसरण होता है। महात्मा बुद्ध ने दुःखवाद का आध्यात्मिक अर्थ में लिया है उसी प्रकार भारतीय दर्शनों ने आनन्द का आध्यात्मीकरण कर लिया है। इसलिए भौतिक आधार पर सुख और दुःख का जो व्यतिरेक (या कण्ट्रास्ट) महादेवी जी ने दिखाया है उसमें उनकी व्यक्तिगत सात्विकता का परिणाम मान सकता हूं। उसे दार्शनिक सत्य या काव्य की कसौटी मानने के लिए मैं तयार नहीं हूँ। यह ही मन्तव्य का है।[1]

उपयुक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम यह सकते हैं कि छायावादी काव्य के भीतर निराशावाद अथवा दुःखवाद के विभिन्न स्वरूपों का चयन दुःखवादी तथा सन्यासमार्गी दर्शनों के आधार पर छायावादी कवि की रोमांटिक प्रवृत्ति के कारण हुआ है। किन्तु छायावादी का कवि उपनिषदों की आनन्दवादी धारा से विशेष रूप से प्रभावित था अतः दुःख की चरम परिणति वह आनन्द में ही करता है। इसी से उसका करुण क्रन्दन हमारे हृदयों का स्पर्श करता है। उसके उत्तप्त उद्गारों में मानसिक परितापों में केवल कामनाओं में उसके आत्म निवेदन विरह निवेदन और अनुनय समर्पण में दैन्य ने अपूर्व सौन्दर्य धारण किया है। इसका कारण यह है कि छायावादी दुःख को भय और घृणा की दृष्टि से नहीं देखता। वह उसे मानव आत्मा का मधुमय भाजन मानता है और विश्वास करता है कि दुःख की पिछली रजनी के बीच सुख का नवल प्रभात विकसित होता है।[2]

मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुंचा सके किन्तु हमारा एक बूंद आंसू भी जीवन को अधिक मधुर अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दुःख सबको बांट कर विश्व जीवन में अपने जीवन को निश्चिन्तता में अपना बन्ना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है कवि का मोक्ष है।

महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण अपनी बात पृ० १२

१ मीरारानी गुप्त महादेवी वर्मा दूसरा संस्करण जावाय नन्ददुलारे वाजपेयी का लेख—यामा का दार्शनिक आधार, पृ० १८५

— पन्त गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० २०

२ दुःख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात
एक परदा यह झीना नील छिपाये है जिसमें सुख गात।

प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० ५१

६

छायावादी काव्य में भोगवादी दर्शन

उमर खय्याम

भूमिका

छायावाद-युग में उमर खय्याम की रुबाइयों की धूम सी मच गई थी। उन दिनों 'भारतवर्ष' 'प्रवासी' 'माधुरी' 'सरस्वती' 'सुधा' 'वीणा' आदि पत्र-पत्रिकाओं में उमर खय्याम पर अनेक सुन्दर चित्र और लेख प्रकाशित हुए। मैथिलीशरण गुप्त, केशवप्रसाद पाठक, बलदेव प्रसाद मिश्र, डा० गया प्रसाद गुप्त, बच्चन आदि अनेक व्यक्तियों ने उमर की रुबाइयों के प्रामाणिक अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये।[1] पं० सुमित्रानन्दन पंत ने 'मधुज्वाल' नाम से सन् १९४९ ई० में उमर की रुबाइयों का भावानुवाद किया। इतने ही से उमर के प्रति उस युग के हिन्दी प्रेमियों और साहित्यिकों की वास्तविक मनोवृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। उस काल के साहित्यकारों ने उमर के जीवन-दर्शन में भारतीय जीवन-धारा का स्पर्श पाया था। अतः वे उसकी

---

१ मैथिलीशरण गुप्त का अनुवाद (प्रकाश पुस्तकालय कानपुर) १९३१, केशव प्रसाद पाठक का अनुवाद (इण्डियन प्रेस लिमिटेड जबलपुर) १९३२, बलदेव प्रसाद मिश्र का अनुवाद (मन्दार पब्लिशिंग हाउस भूतटोला काशी) १९३२ गिरिधर शर्मा नवरत्न का अनुवाद (नवरत्न-सरस्वती भवन झालरापाटन) १९३१ डा० गयाप्रसाद गुप्त का अनुवाद (हिन्दी साहित्य भण्डार पटना) १९[illegible], बच्चन का अनुवाद १९३५, मुंशी इकबाल वर्मा 'सेहर' का अनुवाद (इण्डियन प्रेस प्रयाग) १९३७ रघुवंशलाल गुप्त का अनुवाद (किताबिस्तान प्रयाग) १९३[illegible],

और न्यूनाधिक मात्रा मे खिच उठे। जिस ममत्व की भावना से प्रेरित होकर छायावाद युग ने उमर का समादर किया उसका किंचित आभास बाबू मैथिली शरण गुप्त के निम्न … में मिल जाता है—

जहाँ तक माया के सौन्दर्य मार्मिक व्यंग्य, उपालम्भ और प्रेम का सम्बन्ध है वहाँ तक वह (उमर) हमें कबीर की कोटि का कह सकते हैं।[1] उमर के जीवन दर्शन की पृष्ठभूमि की दार्शनिक और धार्मिक विचारधारा से संगति बैठाते हुए गुप्त जी ने यह भी कहा कि उमर के समीप जगत मिथ्या है। वेदों में उसका उल्लेख है बाइबिल में उसका वर्णन है। यह माया, यह अविश्वास यह निराशावाद युग परिवर्तन के समय प्रत्येक जाति और समाज के सूक्ष्मदर्शी व्यक्तियों में दृष्टिगोचर होता है।[2] उमर के जीवन दर्शन को हिन्दू धर्म के मायावाद की भूमिका में रखकर परखने की इस प्रवृत्ति से हिन्दू समाज में उसके प्रति राग उत्पन्न हो गया साथ ही छायावाद के क्षुब्ध और असन्तोषपूर्ण वातावरण में उसके प्रसार के लिए सुदृढ़ दार्शनिक आधार भी मिल गया।

उमर की प्रतिभा बहुमुखी थी। वह एक महान चिन्तक विचारक ज्योतिषी और दार्शनिक कवि था। धर्म के क्षेत्र में वह एकेश्वरवादी था। भौतिक जगत की खोज करते करते वह अध्यात्म की ओर भी उन्मुख हुआ था। दार्शनिकों की भाँति उसे भी यह जिज्ञासा हुई कि हम कौन हैं कहाँ से आये हैं और कहाँ जायेंगे किन्तु बुद्धि द्वारा इन प्रश्नों का समुचित उत्तर न पाने के कारण वह सूफियों की रहस्य साधना की ओर उन्मुख हुआ। परन्तु उसके निराशावाद को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि उस मार्ग में भी उसे ईप्सित तुष्टि नहीं मिली। जिस अल्लाह में कोई बुराई नहीं है उसी अल्लाह द्वारा निर्मित इस संसार में बुराई कहाँ और किधर से प्रवेश कर गई यह विकट समस्या उसके सामने सदा बनी रही। अतः वह जीवनपर्यन्त सन्देहवादी बना रहा।

उमर स्वाधीन चिन्तन का पक्षपाती था। किसी बात को जो तर्कसम्मत न हो मान लेना उसके लिए कठिन था। अतः उसने धर्मगुरुओं के पाखण्ड

1 मैथिलीशरण गुप्त स्वाइयात उमर खय्याम गीतावलि (२००६) आवरण पृ० २३

2 वही, पृ २२ २३

और धार्मिक अन्धविश्वासों का खण्डन किया। ज्ञान के अगाध सागर में डुबकी लगाकर उसने जीवन की निस्सारिता का अनुभव किया। ससार की अचिरता को देखकर वह अत्यन्त विचलित और विक्षुब्ध हुआ। सांसारिक आपदाओं एवं चिन्ताओं से मुक्ति पाने के लिए उसने भोगवाद का सबल समर्थन किया। उमर की इन समस्त प्रवृत्तियों को पनपने के लिए छायावाद के अध्यात्मवादी बुद्धिवादी निराशावादी, व्यक्तिवादी एवं विद्रोहवादी (क्रान्तिकारी) वातावरण में उर्वर भूमि मिल गई।

विचारों और मनोदशाओं को प्रभावित करने वाली बाह्यपरिस्थितियों के अतिरिक्त अधिकांश चिन्तनशील और विचारवान व्यक्तियों के जीवन काल में एक समय ऐसा भी आता है जब वे कह उठते हैं कि यह जगत मिथ्या है। उमर की कविता उस समय का द्योतन करती है। स्पष्ट है कि छायावाद युग चिन्तन प्रधान युग था। अधिकांश छायावादी कवि भाव प्रवण होने के साथ साथ प्रबुद्ध चिन्तक भी थे। गम्भीर चिन्तन के क्षणों में उन्होंने जीवन के मिथ्यात्व का अनुभव किया था। अतः उमर का निराशावाद यदि उन्हें सम्मोहक प्रतीत हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं। यों तो उमर के जीवन दर्शन से छायावाद के प्रायः सभी कवि किसी न किसी रूप में प्रभावित हुए जिसकी प्रतिध्वनि उनके काव्य में यत्र तत्र देखने को मिलती किन्तु छायावादयुग के एक प्रमुख कवि 'बच्चन' ने तो उमर के भोगवाद का आधार लेकर हिन्दी काव्य में एक नया 'हालावादी' (भोगवादी) आन्दोलन का सूत्रपात भी किया जो कर्मभूमि भारत में चार्वाक दर्शन की तरह अन्त तक टिक न सका। कविता के क्षेत्र में बच्चन उस आन्दोलन के एकाकी नेता थे, अनुयायी कोई नहीं।

छायावाद पर उमर के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर उसकी रुबाइयों की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा।

संसार एवं जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण

उमर के एक 'दिल' द्वारा जिसमें वह 'बुद्धि' से संवाद स्थापित करता हुआ पाया जाता है उसके संसार और जीवन विषयक दृष्टिकोण का पता लगता है। प्रश्नोत्तर के परिणाम स्वरूप वह जिस निष्कर्ष पर पहुँचा था उसका सारांश इस प्रकार है—

संसार स्वप्न है। वह कल्पनाओं का आगार है। वर्ष में दो दिन का उत्साह सुख है शेष सब दुःख ही दुःख है। मनुष्य की समस्त इच्छाओं का पद

वसान केवल दु ख म होता है । अत उसे इस द खमय ससार से कुछ सीख लनी चाहिए।[1]

उमर की दृष्टि जीवन के कृष्ण पक्ष पर अधिक टिकती थी । अत जीवन की क्षणिकता ससार की परिवतनशीलता मनुष्य क पख पौरुष की सीमाओ विफलताओ तथा परिजनों पुरजनो एव इष्टमित्रों के निधन आदि को उसने अपने काव्य का विषय बनाया । मानव जीवन उसे एक एसी पहेली प्रतीत हुआ जिसका न तो कोई ओर छोर है और न कोई लक्ष्य। ससार को उसने एक एसे स्वण पिजर के रूप म देखा जिसम मनुष्य कद पक्षी की भाँति छटपटाता रहता है, किन्तु द्वार नही पाता कि निकल भागे। इस पराधीनता के कारण उसके मन की मुराद पूरी नही हो पाती और वह निरन्तर अशान्ति और असन्तोष के गान गाया करता है।[2] उमर का विश्वास था कि मनुष्य कछ और सोचता है और ईश्वर कुछ ओर। कि तु ईश्वर की इच्छा क सामन मनुष्य की इच्छा नगण्य है। अत मनुष्य की इ छाओ का अन्तिम परिणाम दु ख ही दु ख है।[3] जीवन और जगत के उक्त दृष्टिकोण ने उमर को घोर निराशावादी बना दिया।

---

१ जीम्त ई निन्शानिय दुनिया गफत खाविस्त या खयाले चन्द
गफतम अज वे चेह हासिल अस्त बगो गुफ्त दर्दे सर व बवाले चन्द
गुफतम इ बहस अहले दनिया चीस्त गफत बेहूदा कील य काले चन्द
गफतम चीस्त कतखुदाई गुफ्ते हुफ्तय ऐन व गुस्सा साले चन्द
गुफतम चीस्त गुफनये खय्याम गुफ्त प न्देस्त हम्व हाने चन्द
Quoted by Swami Govind Tirtha in his The Nectar of Grace Omar Khayyam s life and works (C) Qita Omar Khayyam on World and Life CXXXI

2 So in this snare as sparrows we are pent
We feel so snappish and ever lament
Perplexed we flutter round but find no door
We reach no peace but chirrup discontent
Ibid p 81

3 I wish one way He wills the other way
So my desires will surely lead astray
Since what He wills is wholly for my weal
Then my desires in woes alone will pay
—Ibid p 80

उमर और निराशावाद

जीवन और जगत को घृणा की दृष्टि से देखने के कारण उमर की रुबाइयों का मुख्य स्वर निराशावाद है। वह बार बार मनुष्य की विवशता, जीवन के उत्थान पतन और मृत्यु की भयंकरता को अपने काव्य में चित्रित करता है। मनुष्य के दुख दैन्य एवं दुर्दशा को देखकर वह खिन्न हो उठता है। संसार में मनुष्य के यश कीर्ति और मान पद की अस्थिरता उसे जीवन की कर्मण्यता से विमुख कर देती है। अत बड़ी व्यथा के साथ वह कहता है कि जन्म के पूर्व संसार ने हमारी आवश्यकता महसूस न की और मरण के पश्चात भी हमारा अभाव नहीं खटकेगा। संसार पूर्ववत चलता रहेगा।[1] जीवन से बिलकुल निराश होकर वह यहाँ तक कह जाता है कि सुखी वे हैं जिन्होंने इस दुखमय संसार में कभी चरण नहीं रखा और यदि रखा भी तो शीघ्रातिशीघ्र यहाँ से विदा हो गए।[2] उमर उस समय अत्यन्त खिन्न हो जाता है जब वह कल्पना करता है कि प्रत्येक वस्तु जो आज विकृत दिखाई पड़ रही है किसी समय अत्यन्त सुन्दर रही होगी।[3] ऐसे क्षणों में उसके हृदय में करुणा का अपार पारावार उमड़ पड़ा है।

उमर मृत्यु को आध्यात्मिक दृष्टि से कभी नहीं देख सका। जीवन पर्यन्त वह मृत्यु की अजेय शक्ति से आतंकित रहा। इसी से फारस के शक्तिशाली सम्राट बहरामगोर पर मृत्यु की विजय दिखाकर उसने अपनी निराशा को और घनीभूत कर लिया है। अन्त में क्षणिक जीवन ज्योति के बुझ जाने

1 The world will last long after my poor fame
Has passed away year and my very name
Aforetime are we come we were not missed
When we are dead and gone, it will be the same
Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and His Age p 78

2 Since all we gain in this abode of woe
Is sorrows pangs to feel and grief to know
Happy are they that never came at all
And they that, having come the soonest go
—Ibid p 78 (337)

3 Days changed to nights are you were born or I
And on its business ever rolled the sky,

की कामना ही उसमें शेष रह जाती है। जीवन के अवसाद, कटुता विफलता और क्षणभंगुरता के कारण ही वह भोगवाद की शरण लेता है—

> When life s once gone what Balkh or Nishapur ?
> What s sweet or bitter if the cup runs ov r ?
> *Drink on,*[1] *(134)*

उमर और भोगवाद

जीवन की जटिल समस्याओं यातनाओं और विडम्बनाओं से पराजित होकर ही उमर घोर निराशावादी हुआ। किन्तु कोई भी व्यक्ति व्यावहारिक जीवन में निरन्तर निराशा का स्तवन नहीं कर सकता। दुःखों से छुटकारा पाने के लिए वह कोई मार्ग अवश्य निकालता है। उमर का वह मार्ग इन्द्रिय सुख अथवा भोगवाद में सूझ पड़ा। अतः बौद्धिक अशान्ति मानसिक विक्षोभ तथा कायिक क्षुधा को मिटाने के लिए उसने संगीत सुरा और सुन्दरी का अंचल पकड़ा। सुरा और सुन्दरी के अतिरिक्त संसार की और कोई वस्तु उसे नहीं सुहाई। जीवन की जाँच पड़ताल के पश्चात वह इस परिणाम पर पहुँचा कि इन्द्रिय सुख के अतिरिक्त ऐहिक जीवन का फल अरस व तिक्त और तीक्ष्ण है।[2] अतः किसी निर्झर के निकट निकुंज में बैठकर सुरा संगीत और सुन्दरी के सेवन द्वारा उसने कंटकाकीर्ण जीवन के विषाद को विस्मृत करने का प्रयत्न किया।[3] विगत के दारुण दुःख को दूर करने और अनागत के भय को भगाने

> See you tread gently on this dust, perchance
> Twas once the apple of a beauty s eye (33)

Quoted by Otto Rothfeld in his Omar Khayyam and His Age p 79

1 Ibid p 86

2 I scan the world and
See
Save pleasure life yields naught but bitter fruits (66)
Ibid—p 82

3 Get minstrel wine and Houri if you can
A green nook by a streamlet if you can
And seek naught better babble not of hell
But find a better heaven if you can (79)
Quoted by Otto Rathfeld in Umar Khayyam and His Age p 83,

के अभिप्राय से ही उसने मदिरापान का प्रचार किया। मृत्यु की दुःखदायिनी चेतना को समाप्त करने के लिए ही उसने मदिरा को महौषधि के रूप में अपनाया।[1] कल का कोई ठिकाना न होने के कारण उसने वर्तमान के उपभोग पर बल दिया।[2] मनुष्य के प्रयत्नों की विफलता को देखकर उसने सन्तोष धारण करने तथा मस्ती का जीवन बिताने का आदेश दिया।[3] किसी गुलबदन की गुलाबी मुसकान में ही उसने जीवन की अनेकानेक अपूर्णताओं की पूर्ति कर ली।[4] इसलाम शराबखोरी को हराम मानता है और उमर उसे गम गलत करने का अपूर्व साधन घोषित करता है। इस प्रकार वह धर्म विद्रोही सिद्ध होता है। ऐसे अवसर पर वह अपना व्यंग्य निशाना कर इसलाम पर भीषण प्रहार करता पाया जाता है—

> In paradise are Houris preach they so
> And fountains with pure wine and honey flows
> If these be lawful in the world to come
> What harm to love their likeness here below (105)
> Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and His Age, p 85

उमर की विद्रोह भावना

एक महान चिन्तक होने के नाते उमर इस बात में कभी भी विश्वास नहीं कर सकता था कि समस्त सामाजिक अव्यवस्था का कारण अल्लाह है

---

1 Since Death is ever pressing at your heels
  Tis best to drink or dream your life away (183)
  Ibid p 84

2 Since no one can assure thee of to morrow
  Rejoice thy heart to-day and banish sorrow (7)
  Ibid, p 82

3 Be content and in pleasure pass the world,
  For after all our schemes would only fail
  Quoted by Swami Govind Tirth in his The Nectar of Grace 1941 p 81

4 A rosy smile or a dimple at the corner Of a loving lip can be the compensation a thousand times over for those insufficiences Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khyam and his Age p 81

और बुराइयों का कारण इबलीस। वह दैविक दैहिक और भौतिक सभी तापों का कारण एक मात्र अल्लाह को ही मानता था। ईश्वर की सृष्टि को अपूर्ण और सदिग्ध वरदान (doubtful blessing) के रूप में ही वह देखता रहा। अन्त समय समय पर उसने ईश्वर के प्रति अपना रोष प्रकट किया। जीवन से तंग आकर उसने कहा था कि यदि उसे स्वतन्त्रता होती तो इस नाटकीय जीवन को वह कदापि स्वीकार नहीं करता।[1] इस दुखद जीवन के लिए ईश्वर ने मनुष्य की स्वीकृति नहीं ली थी अतः मनुष्य के पाप कर्मों का उत्तरदायित्व वह ईश्वर हो के सर मढ़ देता है।[2] उसका तर्क था कि जब ईश्वर ने मनुष्य के भाग्य का निपटारा पहले ही से कर रखा है तब वह निषिद्ध कर्मों के लिए मनुष्य को दोषी क्या कर ठहरा सकता है।[3] उमर के इस विद्रोह का मूल कारण उसका भाग्य अथवा नियतिवाद था।

उमर और भाग्यवाद

उमर भाग्यवादी था अतः वह इस मत में विश्वास करता था कि जो कुछ ईश्वर ने मनुष्य के ललाट में लिख दिया है उसे मिटाया नहीं जा सकता। उसका कहना था कि संसार रूपी जाल में ईश्वर ने मनुष्य को फंसा रखा है। हर नेकी व बदी जो संसार में चल रही है उसका कर्ता एकमात्र ईश्वर है। मनुष्य तो केवल उसके हाथों की कठपुतली है। उसे स्वतन्त्र रूप में कुछ भी

---

1 I nev r would have come had I been asked ?
When would I choose to go if I were asked ?
I would foreswear this world and would dispense
With coming being going were I asked !
The Quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 490

2 Who framed the lots of quick and dead but thou ?
Who turns the troublous wheel of heaven but thou ?
Though we are sinful slaves is it for thee
to blame us ? who created us but thou ?
The Quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 471

3 Who wasit that did knead my clay ? not I
Who spun my web of silk and wool ? not I
Who wrote upon my forhead all my good
And all my evil deeds ? in truth not I
The Quartains of Omar Khayyam by E H Whinfield, 311

करने का अधिकार नहीं है।[1] जो कुछ भाग्य ने एकबार लिख दिया, उसमें वह कोई परिवर्तन नहीं करता। भाग्य के आगे मनुष्य को कुछ भी नसीब नहीं हो सकता, इसी से उमर ने मनुष्य को व्यर्थ की चिंताओं अथवा झंझटों में न पड़ने की चेतावनी दी है।[2] भाग्य अथवा नियति की दासता से क्षुब्ध होकर उसने कहा था कि यदि उसे ईश्वर को सलाह देने का अधिकार होता तो वह उससे इस धरती और आकाश का अन्त कर एक नये संसार के निर्माण की माँग करता जिसमें मनुष्य की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति की आशा की जा सकती।[3] भाग्य की क्रूरता से ऊबकर ही उसने प्रवृत्ति को छोड़कर निवृत्ति का सहारा लिया।

उमर और निवृत्ति-मार्ग

जीवन की अनिश्चितता मानवात्मा में शाश्वत सत्य को पाने की जिज्ञासा उत्पन्न करती है। प्रश्नों के इस जीवन में नियतिवादी उमर को यह ज्ञात हुआ था कि—

सांसारिक लिप्साएँ जिन पर
आशा करते हैं हम लोग
मिट्टी में मिल जाती हैं सब
पाकर सौ विघ्नों का रोग।

---

१ सय्याद अजल दाना चू ... दाम निहाद
सद ... ब आम्मन नाम निहाद
हर नेक व बदे कि मी रवद दर आलम
ओ मा बकुनद व बहाना बर आम निहाद

Swami Govind Tirth The Nectar of Grace p 81

2 The fate will not correct what once she writes
And more than what is doled no grain alights
Beware of bleading heart with sordid cares
For cares will cast thy heart is wretched plights
The quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 333

3 Had I the power great Allah to advise
I d did him sweep away the earth and ski s
Remake a better world where man might hope
His hearts s desire perchance to realise (3 9)
Otto Rothfeld Umar Khayyam and His Age p 86

कहीं फूलती फलती भी हैं
तो बस घडी दो घडी ही
ज्यो मरु के धूसर मुख पर हो
हिमकण की आभा का योग ।[1]

अत नियति के प्रति असन्तोष प्रकट करते हुए उसने कहा—

He brought me here first to my great surprise,
From life I've gathered but a dim surmise
I go perforce Why come? Why live? Why go?
I know the questions but hear no replies [2]

इन्ही प्रश्नो का उत्तर पाने के लिए वह आत्मवाद की ओर मुडा।[3] क्योकि उसका दृढ विश्वास था कि—

जिसने तुम्हे उछाला है इस
प्रान्तर म किसलिए? इसे
वही जानता, वही जानता
वही जानता है सब कुछ ।[4]

इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसने तत्वज्ञान की छान बीन की। तत्वज्ञान के आलोक म उसकी प्रबुद्ध आत्मा ने यह अनुभव किया कि ससार,

---

१ मथिलीशरण गुप्त रुबाइयात उमर खय्याम, द्वितीयावृत्ति २००९ पृ० ३७

2 Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and his Age p 59

3 Advance and scan the tablet of your soul,
Where master wrote his word when there was nought
Quoted by Swami Govind Tirth in his The Nectar of Grace p 81

4 Maithili Sharan Gupta Rubaiyat Umar Khayyam, p 55
And He that tossed Thee down into the Field
He knows about it all He knows He knows
The palgraves Golden Treasury Rubaiyat Omar Khayyam 50

जिसमें प्रति क्षण जीवन की धूल उड़ा करती है, माया मात्र है।[1] इसी धारणा अथवा मान्यता के अनुसार उसने समस्त सांसारिक प्रलोभनों को त्याग कर एकान्तवास अथवा एकान्त साधना की हामी भरी, ताकि वह परम सत्ता का साक्षात्कार अथवा आत्मानन्द का अनुभव कर सके।[2] ज्ञान के आधारभूत जहाँ उसने विश्व का आदि अन्त अथवा रहस्य तथा उसमें अनुस्यूत परम चेतन को जानने का प्रयास किया है वहाँ उसका काव्य दार्शनिक रहस्य भावना से अनुप्राणित है[3] किन्तु जहाँ उसने परम सत्ता को प्रेम रूप मानकर प्रेम ही द्वारा उसे हृदयंगम करने का आदेश किया है, वहाँ वह सूफियों की पंक्ति में आ बैठा है। विद्वानों ने उसके रहस्यवाद पर रहस्यवादी अबू सईद की कृतियों का प्रभाव माना है।[4]

उमर खय्याम और सूफीमत

जिस शराब के प्याले को साकी के हाथ से पाकर सूफी संसार के रंज व अलम को भूल जाता है उसी हाला की मांग उमर भी अपनी रमणी में

---

1 For in and out above about below
'Tis nothing but a Magic shadow show
play'd in a Box whose Candle is the Sun
Round which we phantom Figures come and go
The palgrave's Golden Treasury Rubaiyat Omar Khayyam 46 181

2 Now the New Year reviving old Desires
The thoughtful soul to solitube retires
Where the white Hand of Moses on the Bough
Puts out, and Jesus from the ground suspires
The Palgrave's Golden Treasury Rubaiyat Omar Khayyam 4 16

3 His mysticism is that of the philosopher and his intoxication that of Divine love
E. H Whinfield Quatrains of Omar Khayyam Foreword by Akba Haidari VI

4 There is no doubt that the writings of the saintly mystic Abu said has deeply impressed him (Omar Khayyam)
Ibid, p 50

करता है ताकि उसके सेवन से वह ससार का दुख दर्द भूल जाय। सूफियो की तरह वह भी माधुर्य एव मादन भाव का भूखा है। उसके यहा भी सौन्दर्य का गुण गान होता है, प्रेम का प्रसग छिडता है साकी की पुकार मचती है और जाम का दौर चलता है। किन्तु दोनो के प्रमालम्बन तथा प्रेम व्यजना म एक महान अन्तर है। सूफिया का सौन्दर्य धाम अथवा प्रेम प्रतीक अमरद होता है उमर का प्रेम प्रतीक कोई महबूबा है सूफियो के यहाँ जहाँ विरह के मार्मिक चित्रण की प्रचुरता है वहाँ उमर के यहाँ समागम अथवा सयोगा वस्था की मादकता का ही बोलबाला है। फिर भी दोनो का प्रेम व्यजना म बहुत कुछ समानता है। उमर ने अपनी प्रेम व्यजना के लिए सूफियो के प्रतीको तथा भावभगिमा को ही अपनाया है। सूफी काव्य की भाँति उसका काव्य भी साकी और सुरा म केन्द्रित है।[1]

उमर का विश्वास था कि इस परिवर्तनशील जगत में कोई अमेय सत्ता अवश्य है जो समस्त भूतों मे अनुस्यूत है। परम सत्ता के अस्तित्व के सम्बन्ध म उसे किंचित सन्देह नही था। सूफियो के अनुसार परमात्मा प्रेम रूप है और वह अपने को प्रेम द्वारा ही इस ससार म अभिव्यक्त करता है प्रेमाकर्षण से ही जगत के समस्त भूतगण परस्पर आबद्ध और स्थिर हैं तथा विश्व म निहित चिरन्तन सत्य अथवा सत्ता का साक्षात्कार प्रेम द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार समस्त सूफी काव्य दिव्य प्रेम की भावना से अनुप्राणित है। सूफियों का यह सिद्धान्त कि परमात्मा का मानवात्मा से अटूट सबध है उमर के दार्शनिक सिद्धान्त मे तद्रूप था। अत उसने अपने प्रेमो द्गारों को सूफियों की भाषा शैली म व्यक्त कर दिया है। इतना होते हुए भी यह कह देना कि उमर सही अर्थो म सूफी था कठिन है। उमर खय्याम को रूमी और हाफिज की कोटि का सूफी नहा माना जा सकता। स्वभाव तथा धारणा दोनो दृष्टियो से वह सूफियो की निवृत्ति एव सौन्दर्य भावना से बहुत कुछ भिन्न किंवा प्रतिकूल था। उसका स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण मुश्किल से सूफियो के अतर्भावों अथवा ध्यानानुभूतियो को स्वीकार कर सकता था। प्रेम काव्य जिसम विरह का ताप तथा मिलन की मान्यता का चित्रण पाया जाता है

---

1 See Whinfields : The Quatrains of Omar Khayyam, p 50

तत्कालीन काव्य की एक सामान्य प्रवृत्ति अथवा शैली[1] थी । उसी प्रवृत्ति के अनुरूप और उसी शैली म उमर ने अपनी प्रेमानुभूतियों को अभिव्यक्त किया है । फिर भी उसकी रुबाइयों म सूफियों के अन्तवाद अथवा रहस्यवाद की झलक यत्र तत्र देखने को मिल जाती है ।[2]

अब निष्कर्ष रूप में हम यह देख लेना है कि छायावाद-युग के कवियो ने खय्याम के जीवन-दर्शन की किन विशेषताओ को और क्यों ग्रहण किया ।

निष्कर्ष

उमर ने अपने समय म धार्मिक विडम्बना प्रवचना पाखण्ड तथा कर्मकाण्ड का विरोध किया था सत्पुरुषो और पूरबीरो की खिल्ली उड़ाई थी तथा धर्मग्रन्थों की आध्यात्मिक व्याख्या को निस्सार घोषित किया था । छायावाद-युग भी प्राचीन जर्जर रूढ़ियो का विरोधी था । वैज्ञानिक उन्नति के आघात स एक ओर भारत की प्राचीन मान्यताओ एव मर्यादाओ की भित्ति ढह रही थी और दूसरी ओर योरुप की भोगवादी सभ्यता भारतीय सभ्यता के सयम का बाँध तोड़न म सलग्न थी । भोग की लिप्सा के कारण पाश्चात्य विचारधारा म बहते हुए भारतीय युवक भी आचार की प्राचीन परम्पराओं एव मर्यादाओं को शृ खला शिथिल कर देने म लग रहे थे । बुद्धिवाद की चकाचौंध से उनके धार्मिक विश्वासो आस्थाओं एव श्रद्धाओ म अन्तर अथवा कमी आ गई थी । उधर घर ही म उर्दू की महफिल म साकी का जाम चल रहा था और लोग छक कर झूम रहे थे । रिन्दों (पराङ्मुखों) और नासिहो (उपदेशको) पर खूब फबतियां कसी जा रही थी और पीने वाले तथा काफिरों

---

1 The love poems signifying the pangs of separation and the joys of reunion with the loved one were part of the Common form of the poetry of the time.
Whinfield The Quatrains of Omar Khayyam p 50

2 Some times he uses language which would imply entire concurrence with the rest of the Sufi doctrine namely the spiritual intuition the ecstasy and communion of the soul with the One
E H Whinfield The Quatrains of Omar Khayyam p 50

(विनान्यिा) को खुल कर दाद दी जा रही थी। ऐसी परिस्थिति म हिन्दी काव्य म उमर खय्याम के भोगवाद तथा विद्रोहवाद का पापण प्रारम्भ हो गया। शराब और साकी का चसका क्या नही कराता। अत जब खुमार चढा तब छायावाद–युग क उत्तरकालीन कवि हाला–प्याला म ऐसे खोये कि अपनी सुध बुध भूल गये आचार विचार म विमुख हो गये, यहा तक कि ईश्वर की सत्ता को भी चुनौती देने का दम्भ भरने या दम भरने लगे।[१]

छायावाद के प्रवतक कवि रोमाटिक थ और निराशावाद रोमाटिक का य की एक प्रमुख प्रवत्ति है। रोमान्टिक निराशा अथवा अवसाद का कारण आदश और यथाथ का पारस्परिक सघष है। छायावादी कवि स्वभाव स ही स्वप्नद्रष्टा थे अत जीवन के प्रत्येक मोरचे अथवा मोड पर ससार क वस्तु सत्या का डटकर सामना करने की सामथ्य उनम न थी। ऐसी दशा म व्यक्तिगत जीवन म उन्ह पग पग पर पराजित होना पडा था। अत विक्षुब्ध मन स्थिति स उत्पन्न दु खानुभूतियो की उनके यहा कमी न थी। इसी से उनकी हृत्तत्री क तार टूट गये उनके करुणाकलित हृदय म विकल रागिनी बजने लगी और उनकी आशा आकाक्षाए असमय मे ही कुम्हला गई। उमर खय्याम की रुबाइया व्यात मनुष्य की जीवन क प्रति आसक्ति और जीवन की मनष्य क प्रति उपेक्षा का गीत है।[२] अत छायावादी कवियो मे उमर की निराशावादी भावनाओं क प्रति समवेदना का जागरित हो जाना अत्य त स्वाभाविक था।

वासना क विलासी ससार के रोमाटिक कवियो ने असफल हो दिव्य प्रेम के गीत भी गाये है। छायावाद के कवि भी प्रेम की पीर स पीडित थ। उन्हें अपने लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक आवरण म व्यक्त करना खूब आता था। खय्याम ने अपने वासनात्मक प्रेम को सूफियों की भाषा मे बडी ही सफाई और चतुराई क साथ व्यक्त किया है। इस प्रकार छायावाद के कवि को अपनी प्रेमानुभूतियो को घुमाव क साथ व्यक्त करने के लिए एक

१ मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ मस्जिद, गिरजाघर,
प्राथना मत कर मत कर मत कर।
बच्चन एकान्त सगीत पृ० १०४

२ बच्चन खय्याम की मधुशाला' पाचवा सस्करण (तीसरे सस्करण की भूमिका) पृ० ९

मना मनाई गली हाथ लग गई। अतः अपने लौकिक प्रेम को एक अलौकिक रूप देने के उद्देश्य से छायावादी कवि उमर द्वारा प्रयुक्त सूफी काव्य के प्रतीकों (साकी, सुरा, सागर आदि) का जहाँ तहाँ उपयोग करता हुआ पाया जाता है।

उमर के निराशावाद को छायावादी कवियों द्वारा अपनाये जाने का एक महान कारण भारतीय मायावाद की पृष्ठभूमि भी थी जिसके अनुसार सब कुछ मिथ्या है। कबीर और तुलसी जैसे सन्त और भक्त कवियों ने भी जिनका छायावादी कवियों ने समादर किया है संसार और जीवन की असारता अथवा मिथ्यात्व का विशद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त अपने प्रयत्नों में असफल व्यक्ति को भाग्यवाद बड़ा ही कल्याणकर और सन्तोषप्रद प्रतीत होता है। अतः भारतीय दर्शन का एवं जीवन में व्याप्त मायावाद की पृष्ठभूमि में छायावाद के ऐहिक जीवन में पराजित कवि के लिए उमर के मायावाद को अपनी ही भावनाओं की उपज मान लेना स्वाभाविक था।

किन्तु उमर खय्याम के सम्पूर्ण जीवन दर्शन क्षणिकवाद, नियतिवाद, विद्रोहवाद, भोगवाद आदि का प्रभाव और कुछ हद तक अनिष्टकारी प्रभाव छायावाद-युग के उत्तरकालीन कवियों—बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, आरसीप्रसादसिंह आदि—पर ही पड़ा। छायावाद के प्रवर्तक कवियों—प्रसाद, निराला, पन्त—के लिए उमर द्वारा प्रचारित दुखियों की फिलासफी[1] को जीवन का एकमात्र सत्य मान लेना असम्भव था। कारण उनकी व्यापक एवं अध्यात्मवादी दृष्टि निरन्तर निराशा अथवा पराजय का स्तवन नहीं कर सकती थी। वे स्थूल की पराजय को सूक्ष्म में से उन्नत कर देने के पक्ष में थे। अतः उनका जीवन दर्शन ऐहिक जीवन की निराशा से सर्वथा मुक्त न होने पर भी अपनी चरम परिणति में आशावादी और आस्थावादी बना रहा। इसी से पन्त के काव्य में सुख-दुख के सुन्दर समन्वय अथवा सन्तुलन के प्रति विशद आग्रह मिलता है।[2]

---

1 Omar's philosophy is not the philosophy of happy people but of unhappy people (G. K. Chesterton)
Quoted by Bachha in his preface to Khayyam ki Madhu Shala V edition p 10

२ सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,

कि तु स्थूलता अथवा भौतिकता के प्रति विशेष रूप से नामरूप छायावाद युग के उत्तरकालीन कवियो ने आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता के प्रति तीव्र उपेक्षा किंवा विग्रह के भाव ही प्रकट किय। अन व्यक्तिगत एव समष्टिगत जीवन सघष म निता त असफल होने पर वे किसी स्वस्थ आदशवादी जीवन दशन की परिकल्पना नही कर सके। इस प्रकार सूक्ष्म के मधुमय दान' स जो एकातिक निराशा और विष को भी आशा और अमृत म बदल देता है य वचित रह गये। निदान जीवन के स्थूल धरातल पर भी निराशा पराजय, परवशता क्षणिकता आदि स्थूल अथवा अद्ध सत्या को ही उन्होने जीवन का एकमात्र सत्य मान लिया। ऐसी परिस्थिति म उ ह उमर खय्याम का जीवन दशन जो एक उद्विग्न और आत आत्मा की पुकार है एक विपण्ण और विपन्न मन का रोदन है एक दलित और भग्न हृदय का क्रन्दन है[1] एक मात्र सत्य प्रमाणित होने लगा। इस प्रकार जहा सश्लिष्ट प्रवत्तियो का का य होने के कारण छायावाद कतिपय दुबल तत्वों के होत हुए भी आस्था विश्वास सौन्दय और आस्तिकता का का य बना रहा[2] वहा ह्रासो मुख प्रवत्तियो को अपनाने के कारण छायावाद-युग की उत्तरकालीन व्यक्तिपरक कविता अविश्वास अनास्था अतप्ति अशाति अस्थिरता तथा यौवन के उद्दाम स्वरूप को ही अभिव्यक्ति देने म सफल हो सकी।

स देहवादी एव स्थूलता प्रमी छायावाद युग क उत्तरकालीन कवियो का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि बच्चन न स्पष्ट श दो म कहा है कि '१९३० के पश्चात मरे जीवन म जो भीषण तूफान आया और मर विचारों और भावनाओ म जो प्रबल उथल-पुथल मची उसने मुझ ठीक उस मन स्थिति म रख दिया जिसम रुबाइयात उमर खय्याम मरे प्राणो की प्रतिध्वनि हो गई। एक-एक रुबाइ एसी मालूम होने लगी जस मरे लिए ही लिखी गइ हो।[3] इसी प्रकार सामा य जनता पर उमर खय्याम के प्रभाव क सम्ब ध म उन्होने

फिर घन म ओझल हो शशि

फिर शशि स ओझल हो घन।

पत पल्लविनी प्रथम सस्करण प० २२४

१ बच्चन, खय्याम की मधुशाला १९५६ भूमिका प० ९

२ डा० शिवकुमार मिश्र नया हिन्दी-काव्य, १९६२ प० १०२

३ बच्चन खय्याम की मधुशाला पाँचवी सस्करण, भूमिका, प० ११

कहा है कि 'सन् १९३०–३५ के बीच भारतवर्ष की परिस्थिति ही कुछ ऐसी थी जिसमें वह हालावाद का स्वागत करने को तैयार था।'[1] प्रश्नोत्तर के रूप में इसे और स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—

जिस तरह मैंने कहा है कि व्यक्ति के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब वह उमर खय्याम की विचारधारा की ओर स्वयं खिंच जाता है, क्या इसी तरह देश के जीवन में भी ऐसा समय आता है जब वह इस प्रकार की कविता सुनने को आतुर-आकुल हो उठता है?

उत्तर है हाँ। ऐसा ही था १९३० का वह समय। आँधी आने के पूर्व की शान्ति में बैठा हुआ क्रान्तिकारी दल एक ऐसा षड्यन्त्र रच रहा था कि जिसके द्वारा वह विदेशी शासन के सम्पूर्ण दुःख-संकटमय यन्त्र को चकनाचूर कर डाले और हृदय के स्वप्नों के अनुकूल एक नए ही विधान का निर्माण करे। सहसा हमारे सारे देश के ऊपर वेग से बहता हुआ एक तूफान यह घोषणा कर चला, 'जागो, इधर सरदार भगतसिंह ने असेम्बली भवन के अन्दर बम फेंक दिया है जिससे हमारी गुलामी की जंजीरें उड़ गई हैं और उधर महात्मा गांधी ने अपने चरखे के तागे से ब्रिटिश सत्ता की सुल्तानी मीनार को फँसा लिया है। माँ के लाड़लो! उठो, देश-प्रेम की मदिरा पीकर मैदान में आ जाओ, देर करने से मौका हाथ से निकल जायगा।' हमारी आँखों में एक अनोखी मस्ती थी। हमारी आशा की लहरों ने आकाश छू लिया। सरकार ने नियति की दृढ़ता, कठोरता और निर्ममता से हमारा दमन आरम्भ किया। हमारे नेताओं को पकड़ पकड़ कर पिंजरे के मोहरों की तरह जेल में डालना शुरू किया। पर हम निरुत्साह नहीं हुए। इधर लार्ड अरविन के उत्तराधिकारी लार्ड विलिंगडन ने आर्डिनेंस राज चला दिया और गांधी जी हिन्दुस्तान में आते ही गिरफ्तार कर लिए गए। राष्ट्रीय आन्दोलन बिल्कुल कुचल दिया गया और सर सैमुएल होर ने गांधी जी की गिरफ्तारी पर दंभ से कहा कि एक कुत्ता भी नहीं भौंका। सरकार की कूट नीति ने जगह-जगह हिन्दू-मुसलिम दंगे करा दिए। और इस प्रकार दलित, दमित, विभाजित और पराजित देश के ऊपर [illegible] पत्थर का विषाद लाद दिया गया। उसकी जाज्वल्यमान आशाएँ जिन पर उसने न जाने कितने दिनों से आस लगाए रखी थी सब की सब, रात भर में न जाने किस ओर

1 बच्चन : खय्याम की मधुशाला, पाँचवाँ संस्करण, भूमिका, पृ० ३५

उड गई । नियति ने भारत के भाल–शिखर पर जो लेख लिख दिया था उसका एक अक्षर भी भारत के नत–नत आसुओ की धारा स न धुल सका । एसा था वह नराश्यपूर्ण समय और एसी थी वह शोकजनक परिस्थितियाँ, जिनम देश के कोने–कोने से उमर खय्याम की वाणी प्रतिध्वनित हुई ।[1]

इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की आशाओ आकाक्षाओ की विफलता तथा सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक जीवन की असफलताओ स क्षुब्ध होकर छायावाद–युग के कतिपय स देहवादी तथा स्थूलताप्रिय कवियो ने अपने मानसिक ताप अथवा विक्षोभ को मिटाने के लिए उमर के नियतिवाद, भोग वाद तथा विद्रोहवाद को स्वीकार कर लिया जिनम सबसे ऊचा स्वर बच्चन' का सुनाई पड़ा ।

उमर की नियति और छायावाद

उमर की नियति की कल्पना बडी ही भयकर और निराशावादी है । वह मनुष्य को कवल असमथ और विवश करने का गुण रखती है अत अत्यन्त क्रूर है । सम्पूर्ण विश्व उसी के सकेत पर चक्रवत घूमता रहता है । मानव जीवन उसके लिए शतरज के खेल के समान है जिसम वह मनुष्य–जीवन को मुहरो के समान घुमाया करती है और मन से जी भर जाने पर उन मुहरो के समान ही समट कर रख लेती है ।[2] मनुष्य को उसने अपना जीवन–पथ बढने के लिए अधगति के अतिरिक्त और कुछ नही दिया ।[3] मनुष्य की समस्त प्राथनाए उसकी लौह लखनी स लिखा हुआ एक अक्षर भी नहीं मिटा सकता ।[4] विश्व के समस्त नर–नारी उसी के क्रूर हाथो के खिलौने है । वह उन्ह गेंद की तरह इधर-उधर ठुकराया करती है ।[5] किन्तु इस

---

१ बच्चन, खय्याम की मधुशाला पाँचवाँ सस्करण १९५९ भूमिका, पृ० १४–१६

2 Palgrave The Golden Treasury Rubaiyat of Umar Khayyam 9 106

3 Ibid 33 130

4 Ibid 51 202

५　　दाए बाए जिधर खिलाडी
　　है उछाल देता सब कुछ

नियति के चक्र से मुक्त होना असम्भव है। इस प्रकार उमर की यह नियति भारतीय कर्मवाद अथवा प्रारब्धवाद से नितान्त भिन्न है। कर्मवाद अथवा प्रारब्धवाद में उमर की नियति जैसी कोई क्रूरता नहीं है क्योंकि वह मनुष्य को पूर्वकृत कर्मों के फलाफल को देने वाला है। उमर के साथ प्रारब्ध कर्म का झगड़ा नहीं है। क्योंकि वह जन्मान्तरवाद और परलोकवाद में विश्वास नहीं करता।[१]

इस प्रकार उमर का यह नियतिवाद एक प्रकार का आकस्मिकवाद है, जिसमें 'कृति' और पौरुष के लिए किंचित स्थान नहीं है। उसके अनुसार सभी घटनाएँ पूर्व से ही नियत हैं और वे ही घटित होती रहती हैं। दूसरे शब्दों में मानव-जीवन की सभी घटनाएँ नियति के अधीन हैं जिसमें युक्ति अथवा तर्क के लिए बिल्कुल स्थान नहीं है। अतः उमर की नियति कर्मवाद की भाँति कार्य कारण भाव का समर्थन नहीं करती।

उमर की इस 'नियति' का बच्चन की प्रारम्भिक रचनाओं—मधुबाला मधुकलश, एकान्त संगीत आदि— पर प्रकृष्ट प्रभाव पड़ा है। कवि ने अपने

कन्दुक उधर उछल जाता है
हाँ—ना करता है सब कुछ।
मैथिली शरण गुप्त, रुबाइयात उमर खय्याम द्वितीयावृत्ति पृ० ५५

१ (क) उमर क्या भया स्वर्ग की तृषा ?
कल्पना मात्र शून्य अपवर्ग
धरा पर ही यह जीवन स्वर्ग।
सुमित्रानन्दन पन्त मधुज्वाल, प्रथम संस्करण पृ० ८७

(ख) उमर का नन्दन स्वर्ग की चाह
मरा में भरा स्वर्ग का भार।
सुरालय राह स्वर्ग की राह
सुरालय द्वार स्वर्ग का द्वार।
वही पृ० ११

(ग) स्वर्ग की स्पृहा, नरक का ध्यान
मन्दिर चितवन पर दें जग वार
चूम अधरों की मदिरा-धार
वही पृ० २८

को नियति के सामने अत्यन्त असहायावस्था मे पाया है। नियति की क्रूरता जडता[1] तथा बधन म भी उसका विश्वास है। उसकी नियति उदार मन स्थिति म भी निपट क्रूर है। इसी से उसके द्वारा लिखित अपनी जीवन-कथा का पहला पष्ठ पढते ही उसका तन-प्राण काप उठता है, उसके स्वप्नो का ससार टूट जाता है और वह किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। वह इस क्रूर नियति-चक्र से किसी प्रकार मत्यु पयन्त छुटकारा पाने की कल्पना नही करता। अत वह उसके सामने घुटने टेक देता है। नियति के इसी क्रूर स्वभाव को बच्चन ने अपनी निम्न पक्तियो म पुष्ट किया है—

कल्पना-पथ अनुसरण कर
मैं नियति क गह पधारा
आख मूदे लिख रही थी
एक पुस्तक वह उदारा
यह कथा तेरी कहा उसन
तथा वह पुस्तिका दी
खोलते ही पष्ठ पहला
कप उठा तन-प्राण सारा
भूमिका पर कर पडा रा
यह मगन स्वप्नाभिलाषी —[2]

हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूण मैं चलना चलूगा
पथ सभी मिल एक होगे
तम घिरे यम के नगर में।[3]

अपने निराशावाद के सम्बध मे बच्चन ने स्वय बताया है कि मेरा निराशावाद भाग्य (नियति) और समाज क समक्ष व्यक्ति की विवशता

---

१ रात दिन-सा जड नियम है
बद्ध पतनोत्थान मेरा
बच्चन मधुकलश, पाँचवा सस्करण पृ० २६

२ बच्चन, मधुकलश, पाँचवा सस्करण १९४७ पृ० ३२

३ बच्चन, मधुकलश पाँचवा सस्करण १९४७, पृ० ५५

अथवा लाचारी का परिणाम है।[1] नियति के सामने अपनी इस विवशता को उन्होंने अपनी कविता में भी व्यक्त किया है—

प्याला है पर पी पाएँगे
है ज्ञात नहीं इतना हमको
इस पार नियति ने भेजा है
असमर्थ बना कितना हमको।[2]

अतः उनका यह कहना स्वाभाविक ही है कि

हम जिस क्षण में जो करते हैं
हम बाध्य वही हैं करने को।[3]

उमर के इस नियति का प्रभाव छायावाद युग के अन्य कवियों सुमन, गोपालसिंह नेपाली आदि पर भी पड़ा है। उनके उमर की तरह नियति को स्वीकार करने का कारण भी उनकी व्यक्तिगत जीवन की असफलताएँ तथा जगत की नश्वरता और दुखपूर्णता ही है। शिवमंगल सिंह सुमन अपनी कविता को अपने उर में निहित व्यथा की ही एक कथा मानते हैं।[4] उमर की भाँति[5] ही उन्होंने प्रणय में जलने के नियम को भी सत्य माना है—

प्रणय में जलना नियम है यह समझकर भूल जाओ
प्राण मुझको भूल जाओ।[6]

---

1 My pessimism is the individuals helplessness before society and Destiny
—रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्रथम संस्करण परिशिष्ट पृ० २७७

२ बच्चन मधुबाला १९४६ पृ ७०

३ बच्चन मधुकलश पृ० ११

४ मेरे उर में जो निहित व्यथा
कविता तो उसकी एक कथा
छन्दों में रो गाकर ही मैं क्षण भर को कुछ सुख पा जाता
—शिवमंगल सिंह सुमन हिल्लोल द्वितीय संस्करण पृ० २०

५ वह हृदय नहीं
जिसमें प्रियतम की चाह न हो
वह प्रणय नहीं
जिसमें विरहानल दाह नहीं।
—सुमित्रानन्दन पन्त मधुज्वाल प्रथम संस्करण पृ० ६६

६ शिवमंगल सिंह सुमन, हिल्लोल पृ० ०

सुमन ने अपनी इस प्रणयजनित जलन का कारण अपनी क्रूर किस्मत को बताया है जो उमर की नियति का ही पर्याय है। इसी क्रूर नियति ने उनके पनिहारिन के प्रेम को विफल कर दिया है। इस प्रसग मे उन्होने उस प्याली को भी याद किया है जो छूते ही हाथ से छलक गई थी—

जिस पनिहारिन की गगरी पर
मैं ललचाया वह ढुनक गई
जिस जिस प्याली पर धरे अधर
वह वह छूते ही छलक गई
देखो मेरे प्रति मेरी ही
किस्मत है कितनी क्रूर क्रूर
जिससे मैं मिलने को व्याकुल
वह मुझसे कितना दूर दूर ।[1]

यही नियति उनकी सारी नेकी को भी चूर कर देती है जिससे वे अपने जागतिक प्रेम व्यापार म भूल का अनुभव करने लगते हैं।

जब नियति तनिक प्रतिकूल हुई
तब सारी नेकी धूल हुई
इस जग म आकर प्यार किया
मानव से इतनी भूल हुई ।[2]

इसी प्रकार गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी नियति' को कठिन कहा है तथा जगती की काया को तिमिर ग्रस्त और अपने जीवन को अन्धकार एव धूलि भरी सन्ध्या के रूप म देखा है जिस पर कुटिल नियति की काली छाया निरन्तर छाई रहती है

मैंने चाहित ज्योति गौरव पर मिलती मुझको पीर घनेरी
जीवन के इस अन्धकार म अब पूछो, मैंने क्या पाया
अपनी की सौन्दर्य मूर्ति पर कुटिल नियति की काली छाया
ज्योति माँगती है चिर प्यासी तिमिरग्रस्त जगती की काया
मिलती उसको दवयोग से कभी न खुलने वाली माया
अभी पड़ा मैं वही जहाँ पर सन्ध्या ने थी धूल बिखेरी ।[3]

---

१ शिवमगल सिंह सुमन हिल्लोल, पृ० ३२
२ वही पृ० ९९
३ गोपालसिंह नेपाली, पचमी १९४२ पृ० ११९

पन्त जी ने भी बाल्यकाल म ही अपनी मातहीनता के लिए कुटिल नियति को ही दोषी ठहराया है—

नियति न ही निज कुटिल कर से सुखद
गोद मेरे लाड की था छीन ली,
बाल्य ही म हो गई थी लुप्त हा !
मात अचल की अभय छाया मुझे ।[१]

भगवतीचरण वर्मा का भी खय्याम की भांति जीवन म केवल असफलता स ही परिचय हो पाया है—

अनजान दिशा का मैं अनजाना पथी
केवल असफलता है जानी-पहचानी ।[२]

तथा इस राग रग और चहल पहल क ससार म उसी (उमर)[३] की तरह उन्होंने एकाकीपन का ही अनुभव किया है—

यह राग-रग यह चहल पहल सब कुछ है
पर अपन अन्दर मैं कितना एकाकी ।[४]

अत नि श्वासो स वाष्पित इस धरती पर उन्होंने नियति की परवशता को स्वीकार कर लिया है—

पल भर का जो अवलम्ब मुझ दे सकता
एसी तो कोई चाह नही जीवन म ।
विचलित कर सकती जो कि नियति के क्रम को
ऐसी तो कोई आह नही जीवन म ।[६]

---

१ पन्त वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति, १९४२ पृ० ७९
२ From Mosqu an outcast and from Church a foe
Out of what clay did Allah form me so ?
Like unfrocked monk or ugly prostitute
No hopes have I above no joy below 60
Quo ed by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and His Age p 73
३ अमृतलाल नागर भगवतीचरण वर्मा प्रथम सस्करण पृ० ३-
4 Seclusion is the only friend I find,
To good or bad of folk my eyes are blind
F H Whinfield The Quatrains of Omar Khayyam
P XXXIII
५ अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा प्रथम सस्करण पृ० ११
६ वही, पृ० ११

इसी प्रकार नरेन्द्र शर्मा ने विकराल नियति के समक्ष अपने को अत्य त दीन हीन और असहायावस्था म पाया है। उ ह यह अनुभव हुआ है कि क्रूर नियति न उनकी समस्त कामनाओं को ब न्दी बना लिया है[1] और उसके (नियति) हाथ उ ह सिर नर झुकाते जा रह है।[2] किन्तु आगे चलकर जब इन निरुपाय नियतिवादियो ने यह अनुभव किया कि उनकी नियति उनके ह्रासप्राय तथा क्षय ग्रस्त हृदय का ही परिणाम है तब उन्होने कुछ साहस और स्वस्थ मन स काम लेना चाहा।[3] फलत उ होने नियति के साथ काय कारण का सम्ब ध जोड़ा जिसस वह बहुत कुछ भारतीय कमवाद के समकक्ष की हो गई। नीचे की पक्तियो म नरेन्द्र शर्मा की नियति कमवाद की ही प्रतिरूप है—

य द कली सा राज न तेर
ताले से यो खुल पायगा
पर धीरज धर धीरे धीरे
होगा जो आगे आयेगा।
जहाँ कम कारण का ब धन
देर सही अ धेर नही है।
शाश्वत नियत नियति की गति म
वधु अबेर सबेर नही है।[4]

प्रसाद जी की नियति शैव दशन स सम्बद्ध है। उ होने उस भौतिक रूप भी दिया है। अत उसका विवेचन शवाद्वयवाद के भीतर किया गया है।

भोगवाद और छायावाद

उमर का भोगवाद भी उसकी क्रूर नियति का ही परिणाम है। अन्ध नियति क अधीन मनुष्य सवथा विवश और अपनी विवशता म ही निश्चि त

---

१ बन्दी बडी बना दी नियति ने सब कामनाए।

नरेन्द्र शर्मा प्रवासी के गीत प० १८

२ मुझको झुकान जा रह हैं निष्ठुर नियति के हाथ।

नरेन्द्र शर्मा कदली-वन प० १७

३ आज मरी मिट्टी के कन भी जाग रह बन चिनगारी
मैन भी क्या आज नियति के सम्मुख या हिम्मत हारी ?

नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल, द्वितीय सस्करण प० ६०

४ नरेन्द्र शर्मा पलाश वन, द्वितीय सस्करण, प० ६२

कारण है।' उमर ने इस जड़ नियति की गुत्थियों को सुलझाने का सतत प्रयत्न किया किन्तु वह अपने प्रयत्न में नितान्त असफल रहा। उसका समस्त बौद्धिक चिन्तन मृत्यु और नियति के रहस्य के भेदन में सर्वथा निष्फल गया।[1] इस प्रकार उसका सारा पुरुषार्थ निष्क्रिय सिद्ध हुआ।[2] फलतः उसे जगत की समस्त आशाएं तथा सम्पूर्ण जीवन ही निस्सार और क्षणिक प्रतीत होने लगा।[3] जग काटों से संकुल और छलनामय दिखाई पड़ने लगा।[3] इस प्रकार उसकी भीतर यह धारणा बद्धमूल हो गई कि जो क्षण नियति से प्राप्त हुए हैं उन्हें भोग विलास में बिताना जीवन का एकमात्र सही मार्ग है।[4] निष्ठुर नियति की परवशता को विस्मृत करने के हेतु उसने हिताहित का त्याग कर मदिरारस चखने का निश्चय किया।[5] और इस दृष्टि से इस जीवन में भरा प्याली का फिल्सफा ही उसके जीवन का सिद्धान्त वाक्य हो गया।[6] पूजा पाठ और

1 Up from Earth s Centre through the Seventh Gate
I rose and on the Throne of Saturn ate
And many knots unravel d by the Road
But not the knot of Human Death and Fate
Rubaiyat Omar Khayyam 31

2 With them the seed of wisdom did I sow
And with my own hand labour d it to grow
And this was all the Harvest that I reap d
I came like Water and like Wind I go
Rubaiyat Omar Khayyam 28

३ क्षण क्षण यह मन नव तृष्णाकुल
जीवन का मग काटों से संकुल।
—पन्त मधुज्वाल प्रथम संस्करण पृ० ५४

4 Then to this earthen Bowl did I adjourn
My lip the secret Well of life to learn
And Lip to Lip it murmur d— while you live
Drink I—for once dead you never shall return
Rubaiyat Omar Khayyam 34

५ निठुर नियति इस हो कि असफल यह चिर अविजित
चख मदिरा रस, इस परवशता त्याग हिताहित।
पन्त मधुज्वाल प्रथम संस्करण पृ० ३०

6 Awake my little ones and fill the Cup
Before life s Liquor in its Cup be dry
Rubaiyat Omar Khayyam, 2

धर्म कर्म उसे पथ का पागलपन प्रतीत होने लगा। यहाँ तक कि वह ईश्वर और उसकी कृति को भी सन्देहात्मक दृष्टि से देखने लगा।[1] अतः वह सर्वत्र सर्वविध यह प्रचारित करने लगा कि नादान! पथ की चिंता मत कर, मदिरा घर का पान कर।[2] पल पल इस क्षीण होते जीवन में सुरा का पान कर कल की चिंता मत कर।

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में फिट्जजेरल्ड द्वारा उमर की रुबाइयों के अंगरेजी अनुवाद द्वारा योरप में उमर के भोगवाद का अत्यधिक प्रचार हुआ। वैज्ञानिक उन्नति तथा औद्योगिक क्रान्ति के कारण योरप में धर्म के प्राचीन विश्वासों के प्रति लोगों में सन्देह उत्पन्न हो जाने से उमर के भोगवाद का बहुत बड़े पैमाने पर स्वागत हुआ। छायावाद युग के युग युवक वर्ग को भी अंगरेजी शिक्षा के सुलभ हो जाने पर उमर की रुबाइयों का रसास्वादन करने का सुअवसर मिला। अंगरेजी शिक्षा प्राप्त युवकों की भावनाओं अथवा विचारों पर भी योरोपीय औद्योगिक क्रांति तथा वैज्ञानिक उन्नति से उत्पन्न धार्मिक अविश्वासों का प्रभाव पड़ा। अतः ईश्वर और आत्मा की सर्वगुणसम्पन्नता तथा

---

१ करो तुम जप पूजन उपचार
नवाओ प्रभु को माथ
सुरा हो मुझे सिद्धि साकार,
मधुर साकी हो साथ।

पंत, मधुज्वाल पृ० ८२

२ पंत मधुज्वाल पृ० ३०

३ कल का दुख केवल पागलपन
पल पल बढ़ता स्वप्निल जीवन।
सुंदर में होता ज्वाला भर
सुरा पान कर मधा पान कर।
—वही पृ० ६६

Ah make the most of what we yet may sp nd
Before we too into the Dust descend
Dust into Dust and under Dust to lie
Sans Wine sans Song sans Singer and sans End
Rubaiyat Omar Khayyam 23

सत्यता में उनका विश्वास थोड़ा बहुत विचलित होने लगा।[1] व्यक्तिगत जीवन की कठिनाइयों तथा यातनाओं और तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की असफलताओं और अत्याचारों की पृष्ठभूमि में उन्हें जीवन अत्यन्त शून्य और निस्सार प्रतीत होने लगा। ऐसी परिस्थिति में छायावाद युग के कतिपय कवियों ने नियति की निष्ठुरता के सामने अपने को सर्वथा असहाय और पंगु पाया, अतः उनमें नियति के सामने आत्मसमर्पण की भावना के साथ ही क्षणिक सुखों में लिप्त रहने की मानसिक प्रवृत्ति भी घर कर गई। यद्यपि बच्चन के अतिरिक्त छायावाद युग के कवियों ने उमर की नियति को पूर्णतः नहीं अपनाया था किन्तु उसका भोगवाद बहुतों को बहुत प्रिय लगा। अतः छायावाद की कविता में हम एक सीमा तक भोगवाद की प्रवृत्ति का पोषण पाते हैं। छायावाद के निराश कवि के लिए चार्वाक दर्शन का यह सिद्धान्त कि—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

उसकी भोगवृत्ति को उकसाने में कम सहायक न हुआ होगा।

हिंदी में उमर के भोगवाद का सबसे अधिक प्रभाव बच्चन पर पड़ा है। इसका कारण यह है कि उमर की भाँति ही बच्चन ने भी अध्यात्म के प्रति सन्देहवादी दृष्टिकोण अपनाया। जीवन में उन्हें कोई विश्वसनीय मंजिल दिखाई नहीं पड़ी। हताश होकर वे अपने संस्कारगत विश्वास खो बैठे। अब उन्हें सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देने लगा—

तेज का विश्वास था उर में कभी अब तो अँधेरा
आज तो सन्देह-तम ने किया है डाल डेरा
पथ बताये कौन, अब तो मैं भटकने भूलने-से,
मच रहा है शोर, 'कब है ठौर मेरा ठौर मेरा।'

---

१ (क) भूल गया है ईश्वर जग को या मानव अधिकार।
—नरेन्द्र शर्मा प्रभातफेरी पृ० १०२

(ख) ऊपर बहुत दूर रहता है नायक आत्म प्रवंचक तक
—अंचल, मधूलिका

(ग) मैं अपना भाग्य विधाता हूँ, मेरा भगवान गया है मर।
—आरसीप्रसाद सिंह [illegible], पृ० ४८

हर दिशा की ओर बढ़ता, लौटता, फिर दौड़ता है
है किधर मंजिल न पाया जान जीवन यान मेरा ।[1]

इस प्रकार पथभ्रष्ट होकर उन्होंने स्वर्ग और अमरता दोनों को ठुकरा दिया—

अमरों ने अमृत दिखलाया
दिखलाया अपना अमर लोक
ठुकराया मैंने दोनों को ।[2]

इस मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि ईश्वर और स्वर्ग में विश्वास खोने के उपरान्त उन्हें आत्मा की अमरता में भी सन्देह होने लगा, अतः उन्होंने कहा—

मिट्टी का तन मस्ती का मन
क्षण भर जीवन मेरा परिचय ।[3]

इस प्रकार ईश्वर, परलोक और मरने के बाद जीव के अस्तित्व को अस्वीकार कर उन्होंने देहात्मवाद तथा इन्द्रियवाद को स्वीकार किया ।[4] किन्तु इस क्षेत्र में भी उन्हें निराश ही होना पड़ा । उनकी वासना की तृप्ति यहाँ भी न हो सकी । अतः उन्होंने कहा—

अल्पतम इच्छा यहाँ
मेरी बनी बन्दी पड़ी है
विश्व क्रीडास्थल नहीं रे
विश्व कारागार मेरा ।[5]

---

१ बच्चन मधुकलश पाँचवाँ संस्करण पृ० ९०

२–३ बच्चन मधुबाला पृ ३८

४ तन की क्षणभंगुर नौका पर चढ़कर हे यात्री तू आया
तूने नानाविध नगरों को होगा जीवन-तट पर पाया
जड़ शुष्क उन्हें देखा होगा रंगिन सीमित प्राचीरों में
इस नगरी में पायी होगी अपने उर की स्वप्निल छाया
है शुष्क सत्य यदि उपयोगी तो सुखदायक है स्वप्न सरस
सुन भी जीवन का अन्त अमर मत जग से डर, कुछ देर ठहर ।
है आज भरा जीवन मुझमें है आज भरी मेरी गागर ।

—मधुकलश, पृ० १०

५ मधुकलश पृ० १८

और यह ठण्डी आह भरी कि—

विश्व पूरा कर सका है
कौन सा अरमान मेरा ?[१]

इस प्रकार जीवन में उन्हें सुख वर्षों के बदले दुःख के अश्रु-कण ही हाथ लगे। ऐसी ही विकट परिस्थिति में बच्चन ने उमर के क्षणिक भोगवाद का आह्वान किया। जो उन्हें वास्तविक जीवन में न प्राप्त हो सका उसकी पूर्ति उन्होंने हाला द्वारा करनी चाही। इसी से उन्होंने अपनी 'हाला' को जीवन स्फूर्ति उत्साह प्रेम, सौन्दर्य वासना आदि का प्रतीक माना है।[२] अतः उस ही उमर की भाँति[३] जीवन के अवसाद को विस्मृत करने के लिए पुकारा है—

मैं कहाँ हूँ और यह
आज मधुशाला कहाँ है।
विस्मरण दे जागरण के
साथ, मधुबाला कहाँ है।[४]

इस प्रकार बच्चन के 'हालावाद' का मूल उमर की भाँति ही जीवन के 'हलाहल' में ही निहित है—

मुझे आया है मधु का स्वाद
हलाहल पी लेने के बाद।[५]

जीवन की क्षणभंगुरता मरण आदि को भुलाने के साधन रूप ही उन्होंने सुरा और साकी को अपनाया है—

सुरा है जीवन का वह स्वप्न पड़ता देख जिसे संसार
हलाहल जीवन का कटु सत्य जिसे छू करता हाहाकार,

---

१ बच्चन मधुकलश, पृ० २३

2 Wine for me in my earlier poetry is equel to like vitality vigour it also stands for love beauty, youth and passion
डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, बच्चन, का एक पत्र परिशिष्ट (ग) पृ० २३३

3 Nay to attain deliverance from self
Is the sole cause I drink me drink with wine
Otte Rothfeld Omar Khayyam and His Age p 81

४ बच्चन मधुकलश पृ० ३३

५ बच्चन, हलाहल पृ० ५०

अमृत है जीवन का आदर्श मगर पाता है उसको कौन ?
और जो करता भी है प्राप्त साथ वह लेता है व्रत मौन।[1]

उमर खय्याम के इस भोगवाद को बच्चन के अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा राम कुमार वर्मा अचल सुमन आदि ने भी अपनाया है। खय्याम की भाँति ही भगवती चरण वर्मा भी जीवन की कटुता विषाद तथा क्षणिकता[3] से भयभीत हो अपनी प्रयसी से कहते है—

पीने दे पीने दे यौवन की मदिरा का प्याला,
मत याद दिलाना कल की कल है कल आने वाला।
है आज उमगो का युग तेरी मादक मधुशाला।
पीने दे जी भर रूपसि अपने पराग की हाला।[4]

खय्याम[5] की तरह जीवन और जगत की परिवर्तनशीलता तथा अस्थिरता ही उनके भोगवाद का आधार है—

---

१ बच्चन हलाहल प ८९

2 Ah my Beloved fill the Cup that clears
To-day of past Regrets and future Fears—
To-morrow ?—Why Tomorrow I may
Myself with Yesterdays Seven Thousand Years
Rubaiyat Omar Khayyam 20

३ कभी उत्थान कभी है पतन।
वासनाओ का यह ससार
भयानक भ्रम का है ब धन
और इच्छाओ का मण्डन
आदि मे अन्त रुदन है रुदन
एक अनियत्रित हाहाकार
इसी को कहते हैं जीवन।
अमृतलाल नागर आज के लोकप्रिय हिन्दी-कवि भगवती चरण वर्मा प० स०, पृ० ११४

४ भगवती चरण वर्मा मधुकण प० २५

5 Lo some we loved the loveliest and best
That Time and Fate of all their Vintage drest,

जीवन-सरिता की लहर-लहर मिटने को बनती यहाँ प्रिये !
संयोग क्षणिक ! फिर क्या जाने हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?
पल भर तो साथ-साथ बह लें कुछ गा लें कुछ अपना कह लें ।
जग के उपवन की यह मधुश्री सुषमा का सरस बसंत प्रिये ।
दो साँसों में बस जाय और ये साँसें बनें अनंत प्रिये ।
मुरझाना है आओ खिल लें हम तुम जी भर भूल कर मिल लें ।[1]

मद और मदमाने की विस्मृति का आस्वाद भी यह भरपूर मिला है—

मधु छलक रहा था उर में मैं था मस्ती का दीवाना
अलसायी सी आँखों में था झूम रहा मस्ताना
पागल सा खेल रहा था विस्मृति में मैं मनमाना ।
हर रंग उमंग से पूरित हर राग यहाँ मस्ताना ।[2]

कवि की समझ में जिन्दगी सीमित है प्रेम-भर पाना है सब कुछ पाया है अतः भ्रमने का मारग ही सीधा है इसी में उम्र को तमाशबीनी में काटने तथा जीवन में छक कर छानने की उसकी सलाह है—

जिन्दगी तुम्हारी है सीमित—इतना सच है
इसमें जो कुछ पाना वह सब तो लालच है
दोस्त ! उम्र कटने दो इस तमाशबीनी में ।
पीता है प्रेम-भर इसको तुम मत ठानो
कड़वा या मीठा-रस तो है छककर छानो
चमन का अंत यहाँ जिन्दा-जान कच्चा है
भ्रमने का मारग ही सीधा है सच्चा है ।[3]

Have drunk their Cup a Round or two before
And one by one crept silently to Rest
Rubaiyat Omar Khayyam 31

१ [illegible] नागर आज के लोकप्रिय हिन्दी-कवि, भगवतीचरण वर्मा पृ० ६८-६९
२ भगवतीचरण वर्मा मधुकण, पृ० २७-२८
३ [illegible] नागर आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि भगवतीचरण वर्मा पृ० १६

और सम्भवत भ्रमने के मारग' को ही सीधा मान लेने के कारण उन्हें दर्शन-मीमांसा फुरसत की बकवास सा प्रतीत होती है—

दर्शन मीमांसा-यह फुरसत की बकवक है [1]

शिवमंगल सिंह सुमन के अपने और पराये के ख्याल को भुलाकर मस्ती का राग अलापने का कारण भी उमर[2] की भांति जीवन की नश्वरता ही है—

> जब मिट कर मिल जाना ही है
> तब अपना और पराया क्या ?
> हम अपने और पराये को मिल एक बनाने वाले हैं
> हम बड़े विकट मतवाले हैं ।[3]

जीवन की नश्वरता तथा प्रेम का पराजय[4] के कारण ही वे मधुशाला और मौज के पथगामी बने—

> हम मौज भरे गाने गाते
> दो दिन इठलाते इतराते,
> अपनी नहीं मधुशाला में
> इस पथ आते उस पथ जाते
> हम किसका किसका साथ करें सब ही चल देने वाले हैं ।
> हम बड़े विकट मतवाले हैं ।[5]

---

१ आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि भगवती चरण वर्मा पृ० ३८

2 Why spend life in Self worship and essay
All Being and Not being to survey ?
Since Death is ever pressing at your heels
T is best to drink or dream your life away 183
Otto Rothfeld Omar Khayyam and His Age p 84

३ हिल्लोल पृ० ९७

४ सच है मैंने प्यार न पाया
निज कल्पित संसार न पाया

कौन मनका मन्दा भरा ?
—हिल्लोल, पृ० ११८

५ हिल्लोल पृ० ६६

रामकुमार वर्मा ने भी संयोग-सुख को ही युग की राका का मनोरम काल माना है—

सुख की राका का केवल है एक मनोरम काल
आओ प्रेयसि, बढ़ो यह है प्रेम मिलन की डाल।[1]

और उसी के बल पर जीवन की नश्वरता को सहन करने का उपक्रम किया है—

इसी मिलन के बल पर मैं नश्वरता सुख से सहन करूँगा।[2]

यद्यपि महादेवी वर्मा आत्मानन्द की कवयित्री हैं किन्तु उमर अथवा फारसी कविता के प्रभाव से उन्होंने भी अपने प्रियतम को प्याला, हाला, मधुशाला तथा साकी के रूप में स्मरण किया है—

तेरा अधर विचुम्बित प्याला तेरी ही स्मित मिश्रित हाला
तेरा ही मानस मधुशाला फिर पूछूँ क्या मेरे साकी।
देते हो मधुमय विषमय क्या ?[3]

विस्मरण अथवा विसर्जन की भावना उमर के भोगवाद की विशेषता है। महादेवी जी का ध्यान समस्त दुःखों को लीन कर देने वाले इस विसर्जन की ओर भी आकृष्ट हुआ है—

तरी को ले जाओ मंझधार
डूबकर हो जाओगे पार
विसर्जन ही है कर्णाधार
वही पहुँचा देगा उस पार।[4]

अन्तर केवल इतना ही है कि इन्होंने उमर के प्रतिकूल सुरा के प्याले के स्थान पर विपुल वेदना के प्याले की आकांक्षा अथवा अभिलाषा प्रकट की है—

जीवन है उन्माद तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले
माँग रहा है विपुल वेदना—
के मन प्याले पर प्याले।[5]

---

१ रूपराशि द्वितीय संस्करण पृ० ३०
२ रामकुमार वर्मा, आधुनिक कवि (सम्मेलन संग्रह), पृ० २६
३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ५६
४ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण, पृ० ११
५ वही, पृ० २

जहाँ तक सिद्धान्त पक्ष का प्रश्न है वराग्य और भोगवाद दोनो का उदगम एक है– ससार को दु खमय तथा क्षणभगुर मानना । कोई क्षणभगुरता के विचार से वरागी हो जाता है कोई क्षण के आनन्द मे ही सब कुछ भूल जाना चाहता है । कामायनी म प्रसाद जी ने यह दोनो व्यापार एक ही व्यक्ति (मन) म दिखाकर उनके एक ही उदगम की ओर सकेत किया है । जीवन की विपन्नता [1] तथा नराश्य एव जगत की क्षणिकता तथा परिवतनशीलता स व्यग्र और विक्षु ध होकर मनु क्षणिक सम्भोग की कामना करने लगते हैं—

तुच्छ नहा है अपना सुख भी
श्रद्धे ! वह भी कुछ है
दो दिन के इस जीवन का तो
वही चरम सब कुछ है ।

और इस दुखपूण जीवन की पहेली को सुलझाने का माग भी वे विस्मति म ही ढूढते है—

पहेली सा जीवन है व्यस्त
उसे सुलझाने का अभिमान
बताता है विस्मति का माग
चल रहा हू बनकर अनजान ।[2]

इसी स कामायनी के प्रथम सग म ही उन्होंने विस्मति को आ जाने का आमत्रण भी दे दिया है—

विस्मति आ अवसाद घर ल
नीरवते ! बस चुप कर दे
चेतनता चल जा जडता स
आज शून्य मेरा भर दे ।[4]

---

१ किन्तु जीवन कितना निरुपाय । लिया है देख नही सदेह
निराशा है जिसका परिणाम सफलता का वह कल्पित गह ।
—कामायनी द्वितीय सस्करण पृ० ६२

२ वही पृ० १२८

३ वही पृ० ५७

४ वही पृ० १४

किन्तु मनु ऐसे जीव हैं जिनका आत्मवाद में विश्वास है, अतः देव सृष्टि के विशृंखल हो जाने पर उन्होंने यह अनुभव तो किया कि—

सुख केवल सुख का वह संग्रह
केन्द्रीभूत हुआ इतना
छायापथ में नव तुषार का
सघन मिलन होता जितना।

स्वयं देव थे हम सब तो फिर
क्यों न विशृंखल होती सृष्टि
अरे अचानक हुई इसी से
कड़ी आपदाओं की वृष्टि।[1]

किन्तु इन आपदाओं के कारण उन्होंने आत्मा में विश्वास नहीं खोया। अतः हिमालय की गुहा में स्थान बनाकर तप करने का निश्चय किया—

थी अनन्त की गोद सदृश जो
विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय,
उसमें मनु ने स्थान बनाया
सुन्दर स्वच्छ और वरणीय

...

मनु ने तप में जीवन अपना
किया समर्पण होकर धीर।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु की भोग वृत्ति एवं तपस दोनों के मूल में जीवन और जगत की क्षणभंगुरता निहित है।

स्कन्दगुप्त में उन्होंने जगत को माया का खेल कहकर जीवन की छवि रस-माधुरी के पान करने का सन्देश भी दिया है—

पी लो छवि, रस-माधुरी सींचो जीवन-बेल
जी लो सुख से आयु भर यह माया का खेल।
मिलो स्नेह से गले
घने प्रेम-तरु तले।[3]

---

1. प्रसाद—कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १६ १७
2. वही, पृ० ३४-३९
3. प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० ४८

और परना म वह प्याला भी पीना चाहते हैं जिसका नशा कभी न उतरे—

गलबाही दे हाथ बढाओ कह दो प्याला भर दे ना।
चाहता पीना मैं प्रियतम नशा जिसका उतरे नही।[1]

अत यह कहा जा सकता है कि प्रसाद क ऊपर चाहे उमर के भोगवाद का प्रभाव न हो किन्तु वे फारसी अथवा उर्दू कविता की सुरा साकी तथा मस्ती की परम्परा से सर्वथा मुक्त नही हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि हिन्दी छायावादी युग की कविता पर उमर के नियतिवाद तथा भोगवाद का प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप म पर्याप्त प्रभाव पडा है। किन्तु भारतीय अध्यात्मवादी चिन्ताधारा म भोगवाद के लिए कोई स्थान नही है। अत चार्वाक दर्शन की भाति ही हिन्दी म इस हालावाद अथवा भोगवाद का तीव्र विरोध हुआ, जिसस यह धारा बहुत दिनो तक टिक न सकी। यहाँ तक कि उसके प्रवर्तक बच्चन की विचारधारा म भी आगे चल कर पर्याप्त परिवर्तन हुआ और वे जगत और जीवन को आशावादी दृष्टि स देखने लगे। सतरंगिनी म उनके इस परिवर्तित दृष्टिकोण का सुन्दर चयन हुआ है। यथा—

दुनिया यह स्वर्ग–बेलि
दुनिया यह स्वर्ग–बीज
अश्रु–स्वेद–लोहू स
जिसको जब सींच सींच
मनुज बना लेता है
अमृत फल देता है।[2]

---

१ प्रसाद झरना
२ बच्चन, सतरंगिनी दूसरा सस्करण, १९४८ पृ० १४३

७

छायावादी काव्य में अन्य दार्शनिक विचारधाराएँ

जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट कर दिया है कि औपनिषदिक दर्शन पर आधारित १९ वीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण के प्रभाव तथा बीसवीं शताब्दी की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विषमताओं के कारण छायावादी कविता पर भारतीय दर्शन की अन्तर्भुक्त विभिन्न धाराओं (औपनिषदिक अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सर्वात्मवाद, शैव आनन्दवाद) तथा बौद्ध दर्शन के दुःखवाद का ही प्रमुख प्रभाव पड़ा है किन्तु छायावादी कवियों के पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान एवं दर्शन के सम्पर्क में आ जाने के कारण उनकी कृतियों पर उन पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं का भी यत्र-तत्र प्रभाव पड़ा है जो भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं के मेल में आ जाती हैं। उदाहरणार्थ शोपनहार का निराशावाद बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद के अनुरूप है अतः बौद्ध दर्शन के दुःखवाद के साथ-साथ शोपनहार के निराशावादी दर्शन का भी छायावाद की कविता पर प्रभाव पड़ा है जिसका साक्षात्कार जितना स्पष्ट छायावादी काव्य में निराशावादी दर्शन की अभिव्यक्ति के प्रसंग में कर लिया है। जहाँ तक अध्यात्मवादी चिन्तन का प्रश्न है पाश्चात्य आदर्शवादी चिन्तकों में हीगेल का मत शंकराचार्य और रामानुजाचार्य के मतों से बहुत कुछ मिलता जुलता है अतः शंकर और रामानुज से प्रभावित छायावादी कवियों का हीगेल के दार्शनिक विचारों की ओर जाना स्वाभाविक था।

हीगेल परम-तत्त्व को नित्य शुद्ध विज्ञान रूप मानता है और आत्मतत्त्व रूपी समस्त विश्व को उस शुद्ध विचार की अभिव्यक्ति मात्र मानता है इतना मात्र ही महत्त्व है।[1] किन्तु हीगेल के इस विशिष्ट विज्ञान के प्रति शंकाएँ।

---

१ डा० ... शर्मा पाश्चात्य दर्शन प्रमुख मतवाद पृ० १८

कवि का कोई आकर्षण नहीं जान पड़ता। इस विषय में उसका स्पष्ट मत है कि 'हीगल का विचार का निरपेक्ष जो कण-कण को जोड़कर विकसित होता है भारतीय दर्शन के विद्यार्थी के लिए हास्यास्पद दार्शनिक तलताहट से अधिक गौरव नहीं रखता।

हीगल के दर्शन में सबसे महत्वपूर्ण विचार विरोधों का समन्वयीकरण है। विरोध का असली अर्थ है भेद। भेद सदा अभेद पर आश्रित रहता है। भेद गौण है और अभेद के विशेषण रूप में ही उसकी सत्ता है। अतः विरोध भी गौण है। वह केवल साधन रूप है। साध्य है विशिष्टाद्वैतरूप समन्वय।[1] समन्वय विरोध का विरोध या निषेध का निषेध या भेदविशिष्टाभेद है।[2] केवल भेद या द्वैत और केवल अभेद या अद्वैत दोनों ही कल्पना मात्र हैं वास्तविक नहीं। अभेद और भेद दोनों एक दूसरे में घुले मिले हैं।[4] अतः हीगल के मत में तत्व भी सदा भेद विशिष्ट अभेदरूप या विशिष्टाद्वैतरूप है। इस विषय में हीगल का रामानुजाचार्य से सम्पूर्ण मतैक्य है। विशिष्टाद्वैत का अर्थ है द्वैतविशिष्टअद्वैत अर्थात अनेकता में अनुस्यूत एकता (Unity in difference) या भेद में अन्तर्यामी अभेद। हीगल का विज्ञान विशिष्टाद्वैतरूप है अर्थात अनेकता में अनुस्यूत एकता है।[3] विज्ञान का विकासनिक रूप (Triadic) में होता है। ये तीन रूप हैं—पक्ष प्रतिपक्ष और समन्वय। हीगेल के इस सुप्रसिद्ध सिद्धान्त का नाम है द्वन्द्वमूलक समन्वय (Diloctic) जिसे हम भेदविशिष्ट अभेद या भेद में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त कह सकते हैं।[6] हीगल के उक्त द्वन्द्वमूलक समन्वय का प्रभाव छायावादी कवियों के सुख दुख आशा निराशा आदि अन्तर्द्वन्द्व के समन्वयवादी दृष्टिकोण पर माना जा सकता है। छायावादी कवि उपनिषदों के प्रभाव से अनेकता में अनुस्यूत एकता का समर्थक रहा है अतः हीगल का अनेकता में अनुस्यूत एकता (Unity in difference) का सिद्धान्त भी उसके उक्त विचार को पुष्ट करने में सहायक हुआ होगा ऐसा कहा जा सकता है। वैष्णव वेदान्तवाद और शैवदर्शन की भाँति ही हीगल भी जगत को सत्य घोषित करता है अतः छायावादी कवियों की जगत को सत्य मानने की भावना को हीगल के दर्शन से भी उत्तेजन मिला

१ पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण प्रस्तावना पृ० २०
२ डा० चन्द्रधर शर्मा पाश्चात्य दर्शन प्रथम संस्करण पृ० २१०
वही, पृ० २१०
४ वही पृ० २०२
५ वही पृ० २०२
६ वही पृ० २०३

हो तो कोई आश्चर्य नहीं। प्रेम के क्षेत्र में भी छायावादी कवियों और हीगल के विचारों में साम्य है। हीगल प्रेम के आध्यात्मिक सौन्दर्य का उपासक है। वासनात्मक प्रेम को वह हेय दृष्टि से देखता है। वह उस प्रेम का समर्थक है जो मानव आत्मा को पवित्र, उन्नत एवं दिव्य बनाता है।[1] प्रसाद के प्रेम पथिक का प्रेम मानवात्मा को पवित्र एवं दिव्य भूमि पर अधिष्ठित करने वाला वासनारहित प्रेम है।[2] निराला[3] पन्त[4] आदि प्रायः छायावादी कवियों ने भी प्रेम का पवित्र आध्यात्मिक स्तर पर ही वर्णन किया है। छायावादी कवियों की मनुष्य में ईश्वरत्व की स्थापना के समान ही हीगल भी मानव रूप में ही ईश्वर की अभिव्यक्ति का समर्थन करता है।[6] किन्तु हीगल और छायावादी कवियों के उक्त विचारों में जो एकता दिखाई पड़ती है वह विचार अथवा भाव-साम्य की दृष्टि से जितनी महत्वपूर्ण है उतनी प्रभाव की दृष्टि से नहीं। प्रभाव की दृष्टि से छायावादी कवियों के उक्त दार्शनिक विचारों के मूल में भारतीय दर्शन के प्रभाव को ही स्वीकार करना समीचीन होगा।

छायावादी कवियों में पन्त जी को हीगल, [illegible] तथा अन्य पाश्चात्य विचारक प्रिय रहे हैं। अतः उनके विचारों का उनकी रचना कृतियों पर जान अनजान प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। उक्त पाश्चात्य विचारकों में

---

1 No doubt love [illegible] possesses a lofty quality in so far as it does not merely remain an impulse of sex attraction but emphasizes the beauty of a really rich beautiful and noble soul
Hegal The Philosophy of Fine Art, Vol II p 313

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नहीं
प्रसाद, प्रेम पथिक तृतीय संस्करण पृ [illegible]

निराला परिमल [illegible] पृ [illegible]

[illegible]
[illegible] पृ [illegible]

४ [illegible]
[illegible] पृ० १८८

६ If God himself is to be manifested in a corresponding expression that can only be the human form
Hegel The Philosophy of Fine Art, Vol I p 209

७ [illegible]
[illegible] (?) [illegible]

पंत जी बर्गसा के सजनात्मक विकासवाद से विशेष प्रभावित हैं,[1] अतः उनके काव्य पर उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यहाँ पर पंत काव्य पर बर्गसा के सजनात्मक विकासवाद का प्रभाव दिखाने के पूर्व उसके सजनात्मक विकासवाद) स्वरूप का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

संक्षेप में बर्गसा का सजनात्मक विकासवाद इस प्रकार है—

अपनी सजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) नामक पुस्तक के प्रारम्भ में ही बर्गसा ने लिखा है—

वह अस्तित्व (आत्मा) जिसमें हमारा पूर्ण विश्वास है और जिससे हम भली भाँति परिचित हैं निस्सन्देह हमारा अपना ही है। औरों के विषय में हमारे विचार ऊपरी और अमान्य हो सकते हैं किन्तु अपने विषय में हमारा अनुभव वास्तविक और गम्भीर होता है। आगे आत्मा के स्वरूप को और स्पष्ट करते हुए वह कहता है—

सर्व प्रथम मैं अपने को एक स्थिति से दूसरी स्थिति में सचरण करता हुआ पाता हूँ। मुझे गर्मी लगती है अथवा सर्दी मैं प्रसन्न रहता हूँ अथवा खिन्न मैं कुछ करता हूँ अथवा कुछ नहीं करता मैं आस पास की घटनाओं पर ध्यान देता हूँ अथवा किसी अन्य वस्तु पर विचार करता हूँ। संवेदना भावना इच्छा कल्पना ये हैं वे परिवर्तन जिनमें मेरा अस्तित्व विभक्त है और जो बारी-बारी उसे रंगते रहते हैं। इस प्रकार मैं अविराम बदलता रहता हूँ।[3]

व्यक्तित्व के विषय में बर्गसा का मत है—

हमारा व्यक्तित्व निरन्तर अंकुरित विकसित तथा परिपक्व होता रहता है। व्यक्तित्व का प्रत्येक क्षण कोई न कोई विशेषता लिए होता है जो

---

१ सजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) का सिद्धान्त मुझे अधिक समन्वय में आता है। —वही पृ० २८२

2 The existence of which we are most assured and which we know best is unquestionably our own for of every other object we have notions which may be considered external and superficial whereas of ourselves our perception is internal and profound

Henri Bergson, Creative Evolution p 1

3 I find first of all that I pass from state to state I am warm or cold I am merry or sad I work or I do nothing Sensations feelings volitions ideas such are the changes into which my existence is divided and which colour it in turns I change then without ceasing

Henri Bergson, Creative Evolution p 1

अपनी पूर्व स्थिति से संयुक्त होकर उपस्थित होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि वह केवल नवीन ही नहीं होता, प्रत्युत अदृष्ट (Unforeseeable) भी होता है। निस्सन्देह मेरी वर्तमान स्थिति को जो कुछ क्षण में एक क्षण पूर्व था और जो क्रिया मेरे ऊपर हो रही थी उसी के द्वारा समझा जा सकता है। इसका विश्लेषण करने पर मुझे कोई अन्य तत्व नहीं मिलेगा।[1]

आत्मा के विकास को बर्गसाँ ने एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया है—

यह एक तोप के गोले की तरह आग बरसाता है जो एकाएक छोटे टुकड़ों में फटता है जो स्वयं इस प्रकार अन्य टुकड़ों में फटते हैं ताकि उनके टुकड़े पुनः उसी तरह फूटें और उसी तरह आग भी काफी अरसे तक बरसती जाय।[2] आत्मा की इस स्वतः स्फूर्त शक्ति को बर्गसाँ ने Elan Vital (जीवनोन्मेष) कहा है। आत्मा का उक्त गुण ही उसका दर्शन भी है। संक्षेप में बर्गसाँ द्वारा प्रतिपादित आत्मा के विकास का स्वरूप इस प्रकार है—

आत्मा चेतन शक्ति है। वह स्वतः स्फूर्त विकासोन्मुख और सर्जनशील है। अपनी प्रगति के साथ ही वह काल (Duration) का सृजन करता है। आत्मा के विकास का प्रत्येक क्षण अपना पिछला इतिहास अपने साथ लाता है। इसी पिछले इतिहास की पार्श्वभूमि में आत्मा का प्रति क्षण विकास होता रहता है। इस प्रकार विकासोन्मुख आत्मा के दो भी क्षण कभी भी समान नहीं होते। आत्मा का विकास अथवा उन्नति स्वतः स्वनिर्भर है अतः उसकी प्रेरणा उसी में निहित है। वह किसी भी एक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त नहीं होता जो उसके पर अथवा उसके प्रतिकूल हो। इस प्रकार आत्मा मौलिक रूप में स्वतन्त्र है।

भारतीय आत्मवादी दर्शन जो आत्मा को कूटस्थ अथवा अपरिवर्तनशील मानता है, बर्गसाँ द्वारा प्रतिपादित आत्मा के विकास अथवा सर्जनात्मक स्वभाव को स्वीकार नहीं करता। शांकर वेदान्त के अनुसार आत्मा निर्विकार और

---

1. Thus our personality shoots, grows and ripens without ceasing. Each of its moments is something new added to what was before. We may go further: it is not only something new, but something unforeseeable. Doubtless my present state is explained by what was in me and what was acting on me a moment ago. In analysing it I should find no other elements.
Ibid P. 6
2. Henri Bergson: Creative Evolution, P. 103

अचल है और यह दृश्यमान जगत मिथ्या अथवा भ्रम है। पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा और हीगल भी आत्मा को कूटस्थ और नित्य घोषित करते हैं। परम सत्य बुद्धिगम्य (Real is Rational) मान कर हीगल ने यह सिद्ध किया है कि आत्मा हमारी बुद्धि का चरम विकास होने के कारण पूर्ण, अनिर्वचनीय और अखण्ड है।

आत्मा को अचल मानने वाले शंकर आदि दार्शनिकों का कथन है कि जगत का नानात्व मिथ्या है—अनेकता यथार्थ नहीं है—

नेह नानास्ति किंचन।

अविद्या आत्मा के सत्य को ढक देती है, जिससे परिवर्तन वास्तविक प्रतीत होने लगता है। अविद्या द्वारा उत्पन्न भ्रम के नष्ट होने पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। बर्गसाँ इस मत को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार उत्तरोत्तर वृद्धि, स्वतः स्फूर्त विकास, सर्जनशीलता, भावना एवं स्वातन्त्र्य अर्थात् अपनी ही इच्छा द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य की ओर प्रगति—ये चेतना के मुख्य लक्षण हैं और इन्हीं लक्षणों द्वारा हम चेतन को जड़ से पृथक् करते हैं। संक्षेप में चिर प्रगतिशीलता चेतना का स्वभाव है। इस गुण के अभाव में चेतना जड़ में परिवर्तित हो जाती है। बर्गसाँ के निकट आत्मा को अचलता का पक्ष उतना ही आत्मविरोधी होगा, जितना यह कहना कि आग ठण्डी है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर पर बर्गसाँ के दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। बंगाली आलोचकों (जैसे शिशिर कुमार मैत्रा) ने 'बलाका' की 'चंचला' शीर्षक कविता की निम्न पंक्तियों में बर्गसाँ के जीवनोत्प्लव (Elan Vital) का प्रतिभास देखा है—

शुधु धाव, शुधु धाव, शुधु वेगे धाव
उद्दाम उधाव—
फिरे नाहि चाव।[1]

अर्थात् जीवन शक्ति अथवा सत्ता निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। इसी से हम प्राण धारा और जीवन का गत्यात्मक पाते हैं।

बर्गसाँ के अनुसार यदि एक क्षण भी जीवन की गति रुक जाय तो विश्व जड़ता में भर जाता है। उसके उक्त सिद्धान्त की प्रतिध्वनि रवीन्द्र की इन पंक्तियों में सुनाई पड़ जाती है—

यदि तुमि मुहूर्तेर तरे
क्लान्ति भरे

१　रवीन्द्रनाथ ठाकुर : सञ्चयिता (विश्वभारती प्रकाशन) षष्ठ संस्करण, (बंगला) पृ० ४८१-८६

दाडाओ थमकि
तमनि चमकि
उच्छ्रिया उन्वि विश्व पुज पुज बस्तुर पवने [१]

रवीन्द्र रवीन्द्र स प्रभावित होने तथा भारतीय एव पाश्चात्य विचारधाराओ म सामञ्जस्य की लालसा रखन क कारण छायावादी कवि पन्त पर भी बगमा के सजनात्मक विकासवाद का प्रभाव पडा है अत उनकी स्वणधूलि म मगहीन आशका मत्युजय अन्तर्विकास आदि कविताओ पर सजनात्मक विकासवाद की रखाए स्पष्ट उभर आई हैं।[२]

यदि प्रसाद पर पाश्चात्य विचारधारा का बहुत कम प्रभाव है फिर भी उनकी—

चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
वह रूप बदलता है शत शत
कण विरह मिलन मय नत्य निरत
उल्लासपूण आनन्द सतत [३]

---

१ रवीन्द्र नाथ ठाकुर सचयिता (विश्वभारती प्रकाशन) पष्ठ सस्करण (बगला) बलाका शीषक कविता पृ० ४४६

२ (क) सजनात्मक विकास
जड जीवन मनोभाव —
पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण अन्तर्विकास पृ० ८६

(ग) केवल जीव वृद्धि पाते हैं
वे परिणत होते जाते हैं
जीवन क्षण, जीवन के युग
जीवन की स्थितियाँ
परिवर्तित परिवर्धित होकर
अव विकास करते हैं।
पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण आशका पृ० [illegible]

(ग) [illegible] म [illegible] म [illegible] म
[illegible]
[illegible] अनुभव क विजय पराजय जन्म मरण
जो [illegible] की [illegible] म अमरता वरते हो।
पन्त स्वणधूलि प्रथम सस्करण मत्युजय पृ० ९४

[illegible] कामायनी [illegible] सस्करण [illegible] ४

जसी पंक्तिया म कुछ आलोचको ने बगसाँ के जीवनोत्नव (आत्मा की स्वत स्फूत शक्ति) की छाया देखी है।[1] किन्तु प्रसाद जी की चिति शक्ति की प्रगति शीलता व इस सिद्धान्त पर बगसाँ के सजनात्मक विकासवाद के प्रभाव की अपेक्षा बौद्ध दशन के प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रभाव मानना ही अधिक उपयुक्त होगा।[2]

जहाँ तक पाश्चात्य भौतिकवादी दशन का प्रश्न है छायावाद की कविता पर उसका प्रभाव नगण्य सा है। छायावाद युग के अन्तिम चरण म मार्क्सवाद का प्रभाव छायावादी कवि पत पर अवश्य पडा किन्तु उन्होने भी मार्क्सवाद को उसी रूप म स्वीकार नही किया जिस रूप म वह पाया जाता है। पत जी न मार्क्स क दशन को अपने प्रिय ऊर्ध्व सचरण अथवा भारतीय आत्मवाद की भूमिका म रख कर ही परखा अथवा अपनाया है। उनका स्वय कथन है—

'आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) चेतना है और अध्यात्मक का विषय शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनो ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करन मे सहायक होते हैं और मान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते है।[3] (अत) मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि म वग सतुलित) जन तन्त्र तथा भारतीय जीवन दशन को विश्व शान्ति तथा लोक कल्याण के लिए आदश सयोग मानता हू जसा कि मैं अपनी रचनाओ म भी सकेत कर चुका हू —

> अन्तमुख अद्वत पडा था युग-युग से निस्पृह निष्प्राण
> उस प्रतिष्ठित करने जग म दिया साम्य न वस्तु विधान।
>
> युगवाणी
>
> परिचय का जीवन-सौष्ठव हो विकसित विश्व तन्त्र म विनरित
> प्राची के नव आत्मान्य म स्वण नवित भू तमस तिराहित। स्वर्णि
>
> स्वण किरण

---

1 देखिए वीणा (इन्दौर) मई सन १९४१ डा श्री नारायण विष्णु जोशी का बगसाँ के दाशनिक विचार
—शीषक लेख पृ० ५९६

2 व (प्रसाद) सारे जगत को आनन्दमय देखते थे और उसम चितशक्ति के प्रसार का अनुभव करते थे किन्तु बौद्धधम के प्रभाव स और वस भी उनकी परिवतनशीलता के मानन वाल थे।
गुलाबराय अध्ययन और आस्वाद १ ५७ पृ० २६२

3 पन्त आधुनिक कवि प्रथम सस्करण पर्यालोचन पृ० २१

ऐसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन 'मैं यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूँ' की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूँ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि कतिपय पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं से थोड़ा-बहुत प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उन्होंने उनका उपयोग अपनी भारतीय दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं की पुष्टि में ही किया है।



१ पन्त : उत्तरा, प्रथम संस्करण, प्रस्तावना पृ० [illegible]

कमी पंक्तियों में कुछ आलोचकों ने बर्गसाँ के जीवनोत्प्लव (आत्मा की स्वतःस्फूर्त शक्ति) की छाया देखी है।[1] किन्तु प्रसाद जी की चिति शक्ति की प्रगतिशीलता के इस सिद्धान्त पर बर्गसाँ के सर्जनात्मक विकासवाद के प्रभाव की अपेक्षा बौद्ध दर्शन के प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रभाव मानना ही अधिक उपयुक्त होगा।[2]

जहाँ तक पाश्चात्य भौतिकवादी दर्शन का प्रश्न है छायावाद की कविता पर उसका प्रभाव नगण्य सा है। छायावाद युग के अन्तिम चरण में मार्क्सवाद का प्रभाव छायावादी कवि पंत पर अवश्य पड़ा किन्तु उन्होंने भी मार्क्सवाद को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जिस रूप में वह पाया जाता है। पंत जी ने मार्क्स के दर्शन को अपने प्रिय ऊर्ध्व संचरण अथवा भारतीय आत्मवाद की भूमिका में रख कर ही परखा अथवा अपनाया है। उनका स्वयं कथन है—

आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) चेतना है और अध्यात्मवाद का विषय शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अभाव और ग्रहण करने में सहायक होते हैं और ज्ञान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं।[3] (अतः) मैं मार्क्सवादी (आर्थिक दृष्टि से वर्ग-सन्तुलित) जनतन्त्र तथा भारतीय जीवन दर्शन को विश्व शान्ति तथा लोक कल्याण के लिए आदर्श संयोग मानता हूँ जैसा कि मैं अपनी रचनाओं में भी संकेत कर चुका हूँ—

अन्तमुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निस्पृह निष्प्राण
उसे प्रतिष्ठित करने जग में दिया साम्य ने वस्तु विधान।
युगवाणी

परिचय का जीवन-सौष्ठव हो विकसित विश्व तन्त्र में विनरित
प्राची के नव आत्मोदय से स्वर्ण द्रवित भू तमस तिरोहित। इत्यादि
स्वर्ण किरण

---

१ देखिए वीणा (इन्दौर) मई सन १९४१ डा० श्री नारायण विष्णु जोशी का बर्गसाँ के दार्शनिक विचार
—शीर्षक लेख पृ० ५ ३

२ वे (प्रसाद) सारे जगत को आनन्दमय देखते थे और उसमें चित्तशक्ति के प्रसार का अनुभव करते थे किन्तु बौद्धधर्म के प्रभाव से और धर्म की इनकी परिवर्तनशीलता के मानने वाले थे।
गंगाबरा य अध्ययन और आस्वाद १९५७ पृ० २६०

३ पल्लव आधुनिक कवि प्रथम संस्करण, पर्यालोचन पृ १

ऐसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन मैं यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूं की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हूं ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि कतिपय पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं से थोड़ा-बहुत प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उन्होंने उनका उपयोग अपनी भारतीय दर्शन सम्बन्धी मान्यताओं की पुष्टि में ही किया है।



१ पंत, उत्तरा, प्रथम संस्करण प्रस्तावना पृ० २१–२२

८

छायावादी दर्शन का स्वरूप

पिछले अध्यायों के विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद का क्रीडांगण प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक भूमि रही है और उसका पृष्ठाधार मुख्यतया भारतीय *अद्वैतवादी दर्शन रहे हैं* अवश्य ही यत्र-तत्र उसमें इतर (पाश्चात्य) अद्वैतवादी दर्शनों का भी समावेश हो गया है।

छायावाद युग की सांस्कृतिक सामाजिक तथा राजनीतिक विचार सरणियों को प्रभावित करने वाले मनीषी विवेकानन्द अरविन्द तिलक गांधी टैगोर आदि—वैदिक सत्यों की नवीन युग की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या करने में संलग्न थे। उन्होंने वैदिक वाङ्मय के अमर सत्यों को जनता के बीच प्रसारित करने का प्रयत्न ही नहीं प्रत्युत उन्हें जनता द्वारा सामूहिक रूप में सामान्य जीवन में अपनाए जाने का आग्रह भी किया। निदान उनके व्यक्तित्व के व्यापक प्रभाव से छायावाद-युग की काव्यधारा भी विशेष रूप से प्रभावित हुई। स्वामी विवेकानन्द महात्मा गांधी और कवीन्द्र रवीन्द्र ने ऐहिकता को भी आध्यात्मिक स्तर पर अपनाया था। अतः उनके प्रभाव से छायावादी काव्य धारा भी स्थूल से हट कर सूक्ष्म दार्शनिक चिन्तन की ओर मुड़ गई और उसमें स्थूल जगत की भावनाएं भी सूक्ष्म धरातल पर व्यक्त होने लगीं। उक्त युग द्रष्टाओं ने सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में वेदों और उपनिषदों के अद्वैत दर्शन की ही प्रधानता दी अतः उनकी देखा देखी छायावाद की कविता में भी वैदिक मन्त्रों—एकं सत सर्वं खल्विदं ब्रह्म ईशावास्यमिदं सर्वं अयमस्मि सर्व अयमात्मा-ब्रह्म अहंब्रह्मास्मि 'तत्वमसि आदि की सशक्त अभिव्यक्ति होने लगी।

शंकर वेदान्त वैष्णववेदान्तवाद तथा शैव दर्शन का आधार भी औपनिषदिक ज्ञान ही है। छायावाद के कवियों ने उपनिषदों ने उपनिषदों का गहन अध्ययन

तो किया ही था, जन्म से ही वे वैष्णव एवं शैव सम्प्रदायों के अत्यन्त निकट थे। अतः उनके विचारों एवं भावनाओं पर विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शैवाद्वैत आदि के दार्शनिक पक्ष का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। जहाँ शांकर वेदान्त के प्रभाव से छायावाद के कवि ने यदि निराशा के क्षणों में संसार को माया अथवा मिथ्या बताया तो वैष्णव वेदान्तवाद तथा शैव दर्शन के प्रभाव में उसने सुख के क्षणों में जगत को सत्य भी घोषित किया। उपनिषद्, वैष्णव वेदान्त तथा शैव दर्शन के प्रभाव से ही छायावाद का कवि सगुणोपासना एवं आनन्दवाद की ओर उन्मुख हुआ।

द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैत, शैव सिद्धान्त, वैष्णव, शाक्त, यहाँ तक कि बौद्ध और जैन आदि जितने सम्प्रदाय भारतवर्ष में स्थापित हुए हैं, सभी इस विषय पर सहमत हैं कि इस जीवात्मा में अनन्त शक्ति अव्यक्त भाव में निहित है। चींटी से लेकर ऊँचे-ऊँचे सिद्ध पुरुष तक सभी में वही आत्मा विद्यमान है और भेद जो कुछ है वह है केवल प्रकाश के तारतम्य में। 'वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत्'[1]—किसान जैसे खेतों की मेड़ तोड़ देता है और एक खेत का पानी दूसरे में बहने लगता है, वैसे ही आत्मा भी आवरण टूटते ही प्रकट हो जाती है। सुयोग और उपयुक्त देश-काल मिलते ही यह शक्ति स्वयं को अभिव्यक्त करती है। चाहे व्यक्त अवस्था में हो, चाहे अव्यक्त में, यह शक्ति प्रत्येक में—ब्रह्म से लेकर तृण तक सभी में मौजूद है।[2] भारतीय दर्शनों की उक्त स्थापना के आधारभूत ही छायावाद काव्य में सर्वात्मवादी धारा का प्रस्फुरण हुआ। यही भारतीय सर्वात्मवाद छायावाद के व्यापक मानवतावाद का आधार बना। यही कारण है कि छायावाद का मानवतावाद पाश्चात्य मानवतावाद की भाँति उपयोगितावाद अथवा प्रयोजनवाद तक ही सीमित न रहकर आध्यात्मिक मूल्यों को ग्रहण करता है और प्राणिमात्र की निःस्वार्थ सेवा का आदेश देता है।

सर्वात्मवाद का, जो अद्वैतवाद का ही एक रूप है, रहस्यवाद से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारतीय सर्वात्मवाद के रहस्यवादी स्वरूप की सम्यक अभिव्यक्ति छायावाद की कविता में प्रकृति रहस्यवाद के रूप में हुई है। सूफी रहस्यवाद भी अद्वैतवाद अथवा सर्वात्मवाद पर अवलम्बित है। भारतीय साधना की सूफी शाखाओं की मुख्य देन प्रेमसाधना है।[3] सूफी काव्य

---

१ पातंजल योगसूत्र, कैवल्यपाद, ३

२ स्वामी विवेकानन्द : स्वाधीन भारत ! जय हो !
द्वितीय संस्करण, पृ० ६९-७०

३ परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा,
प्रथम संस्करण, पृ० ७८

कबीर तथा कवीन्द्र रवीन्द्र के माध्यम से अध्यात्मप्रेमी छायावादी कवियों के प्रेम गीतों पर सूफियों के प्रेमपरक रहस्यवाद का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। छायावाद के कवियों ने अपनी कृतियों पर स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के प्रभाव को भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है अतः उनकी प्रेम भावना स्वामी विवेकानन्द के प्रेमयोग से भी जिसके अनुसार प्रेम ही परमेश्वर है सिक्त है। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों (वर्डसवर्थ शैली आदि) का रहस्यवाद भी सर्वात्मवादी है। इसके अतिरिक्त काव्यगत (Poetic) होने के नाते वह असाम्प्रदायिक और नितान्त भावनामय है। छायावादी कवियों की रहस्यभावना को असाम्प्रदायिक एवं भावात्मक रूप देने में अंग्रेजी के उक्त भावयोगी कवियों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

छायावादी कवियों का ऐहिक जीवन प्रायः असन्तोषपूर्ण एवं दुखी रहा है अतः जीवनगत निराशा के संस्कार उनमें कुछ मज्जागत हो गये थे। किन्तु अपनी इस जीवनगत निराशा अथवा दुःख को भी उन्होंने प्रायः आध्यात्मिक दुःख की परिधि में ही व्यक्त करने का प्रयास किया है। यम शांकर वेदान्त भी संसार की असारता सिद्ध करता है और गीता में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य का जन्म अशाश्वत और दुःखों का घर है।[1] किन्तु छायावादी कवियों का बौद्ध दर्शन से विशेष अनुराग हो जाने के कारण छायावाद के निराशावाद अथवा दुःखवाद पर बौद्ध दर्शन के सर्वं दुःखम् और सर्वं क्षणिकम् का ही प्रखर प्रभाव है। शोपनहार का निराशावाद भी बौद्ध दुःखवाद का ही प्रतिरूप है अतः एक हद तक वह भी छायावाद के निराशावाद को पुष्ट करने में सहायक हुआ है।

उमर खय्याम का जीवन दर्शन भी निराशावादी है। किन्तु उसकी निराशा का प्रस्फुरण दो विभिन्न धाराओं में हुआ है— (१) पलायनवाद और (२) भोगवाद। छायावाद की पलायन वृत्ति पर उमर खय्याम के पलायनवाद का भी प्रभाव है किन्तु उसकी प्रेरक शक्ति प्रधानतया उपनिषदों बौद्ध दर्शन तथा शांकर वेदान्त का मायावाद ही है। लेकिन जहाँ तक छायावादी कविता के अन्तर्गत भोगवाद का प्रश्न है उसका एकमात्र कारण उमर खय्याम का भोगवादी जीवन दर्शन ही है। यहाँ पर स्मरण रखने की बात यह है कि उमर का भोगवाद आध्यात्मिक विरोध का परिणाम है अतः वह अध्यात्मवादी छायावाद काव्य की मूलधारा का विशिष्ट अंग नहीं है। उसका समर्थन प्रायः छायावाद के निम्न स्तर के कवियों तथा छायावाद युग के अन्तिम चरण में बच्चन द्वारा हुआ है जो सच्चे अर्थों में छायावादी कवि नहीं हैं।

---

१ मामपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।   —गीता, ८।१५

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद का वास्तविक स्वरूप आध्यात्मिक एवं अद्वैतमूलक है और स्वच्छन्दतावादी छायावादी कवि की विचरण भूमि अद्वैतवाद (सर्वात्मवाद) तथा उसकी विभिन्न शाखाएं विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, शैवाद्वैत आदि हैं। छायावादी पन्त ने हीगल, बर्गसाँ आदि जैसे कतिपय पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धान्तों के प्रति भी व्यामोह अथवा सहानुभूति प्रकट की है किन्तु उनका प्रतिष्ठान उन्होंने भारतीय दर्शन की परिधि में ही किया है। अतः छायावादी दर्शन की स्थापना में उनका कोई पृथक् स्थान नहीं है।

जहाँ तक अनात्मवादी दर्शन का प्रश्न है, छायावाद के निराशावाद अथवा दुःखवाद पर बौद्ध दर्शन के दुःखवाद का प्रबल प्रभाव है, किन्तु इस दुःखवाद का पर्यवसान भी बहुधा छायावादी की कविता में अध्यात्म विषयक आनन्दवाद में ही हुआ है।

छायावादोत्तर काल में भी प्रमुख छायावादी कवियों—पन्त, निराला, महादेवी का दृष्टिकोण मूलतः आध्यात्मिक ही रहा है। निराला जी की कविता में भक्ति का स्वर उत्तरोत्तर प्रखर होता गया है। पन्त जी भूत (मैटर) और आत्मा (स्पिरिट) के समन्वय में संलग्न अवश्य हैं, किन्तु उस समन्वय में भी प्रधानता आत्मा की ही है। वस्तुतः पन्त-काव्य में भूत और आत्मा का उक्त समन्वय औपनिषदिक अन्न पर आधारित श्री अरविन्द-दर्शन की पृष्ठभूमि में हुआ है। महादेवी वर्मा पूर्ववत् अपने निर्दिष्ट पथ पर दृढ़ता के साथ चली जा रही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादोत्तर काल में भी प्रमुख छायावादी कवियों का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी और अद्वैतमूलक ही है।

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थों की सूची

संख्या	रचना	लेखक
१	अथ	हैमवती
२	अपरा १९५०	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
३	अतिमा प्रथम संस्करण	सुमित्रानंदन पंत
४	आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण	महादेवी वर्मा
५	आधुनिक कवि (२) प्रथम संस्करण	सुमित्रानंदन पन्त
६	आधुनिक कवि (३)	रामकुमार वर्मा
७	आधुनिक कवि (४) १९४३	गोपालशरण सिंह
८	आँसू दशम संस्करण	जयशंकर प्रसाद
९	आज के लोकप्रिय कवि	डा॰ अमृतलाल नागर
	भगवती चरण वर्मा प्रथम सं०	
१०	उत्तरा प्रथम संस्करण	सुमित्रानन्दन पन्त
११	उर्वशी प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
१२	एकान्त संगीत	बच्चन
१३	कदली वन	नरेन्द्र शर्मा
१४	कानन कुसुम प्रथम संस्करण	जयशंकर प्रसाद
१५	कामायनी द्वितीय संस्करण	जयशंकर प्रसाद
१६	कुकुरमुत्ता १९४२	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
१७	खय्याम की मधुशाला पाँचवाँ सं०	बच्चन
१८	गुंजन तृतीय संस्करण	सुमित्रानन्दन पन्त
१९	गीतिका प्रथम सं०	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
२०	ग्राम्या द्वितीय सं०	सुमित्रानन्दन पन्त
२१	चित्ररेखा द्वितीय सं०	रामकुमार वर्मा
२२	जीवन के गान द्वितीय सं०	शिवमंगल सिंह सुमन
२३	झंकार द्वितीयावृत्ति	मैथिलीशरण गुप्त

२४ झरना आठवाँ स० — जयशंकर प्रसाद
२५ तुलसीदास प्रथम संस्करण — सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
२६ दीपशिखा प्रथमावृत्ति — महादेवी वर्मा
२७ पचमी प्रथम संस्करण — गोपालशरण सिंह
२८ पलाश वन द्वितीय संस्करण — नरेन्द्र शर्मा
२९ पल्लव चतुर्थावृत्ति — सुमित्रानन्दन पन्त
३० पल्लविनी, प्रथम संस्करण — सुमित्रानन्दन पन्त
३१ परिमल अष्टमावृत्ति — सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
३२ प्रणय गीत — डा० देवराज
३३ प्रभातफेरी — नरेन्द्र शर्मा
३४ प्रेम पथिक तृतीय संस्करण — जयशंकर प्रसाद
३५ प्रवासी के गीत — नरेन्द्र शर्मा
३६ बिहारी रत्नाकर नवीन स० ३ — स० जगन्नाथदास रत्नाकर
३७ मधुकण — भगवतीचरण वर्मा
३८ मधुकलश पाचवा संस्करण — बच्चन
३९ मधुज्वाल प्रथम संस्करण — अनु सुमित्रानन्दन पन्त
४० मधुशाला (१९३६) — बच्चन
४१ मधूलिका — अञ्चल
४२ मिट्टी और फूल द्वितीय संस्करण — नरेन्द्र शर्मा
४३ यामा तृतीय संस्करण — महादेवी वर्मा
४४ युगवाणी १९४९ — सुमित्रानन्दन पन्त
४५ रश्मि १९३८ — महादेवी वर्मा
४६ रश्मिबन्ध प्रथम संस्करण — सुमित्रानन्दन पन्त
४७ रसवन्ती — रामधारी सिंह दिनकर
४८ रूपराशि द्वितीय संस्करण — रामकुमार वर्मा
४९ रूबाइयात उमर खय्याम द्वितीयावृत्ति अनु० मैथिलीशरण गुप्त
५० रेणुका — रामधारी सिंह दिनकर
५१ लहर तृतीय बार — जयशंकर प्रसाद
५२ वाणी प्रथम संस्करण — सुमित्रानन्दन पन्त
५३ वीणा ग्रन्थि द्वितीयावृत्ति — सुमित्रानन्दन पन्त
५४ सचयिता — आरसीप्रसाद सिंह

५५ सांध्यगीत चतुर्थ संस्करण — महादेवी वर्मा
५६ सतरंगिनी दूसरा संस्करण — बच्चन
५७ समर्पण, प्रथम संस्करण — माखनलाल चतुर्वेदी
५८ सुमना १९४१ — गोपालशरण सिंह
५९ स्वप्न आठवाँ संस्करण — रामनरेश त्रिपाठी
६० स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण — सुमित्रानंदन पंत
६१ स्वर्णधूलि प्रथम संस्करण — सुमित्रानंदन पंत
६२ हलाहल — बच्चन
६३ हुंकार नवम संस्करण — रामधारी सिंह दिनकर
६४ हिमकिरीटिनी तृतीय संस्करण — माखनलाल चतुर्वेदी
६५ हिल्लोल द्वितीय संस्करण — शिवमंगल सिंह सुमन
६६ स्कन्दगुप्त (नाटक) सप्तम सं० — जयशंकर प्रसाद
६७ चन्द्रगुप्त (नाटक) बारहवाँ सं० — जयशंकर प्रसाद

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

१ ऋग्वेद
२ यजुर्वेद
३ ऐतरेय आरण्यक
४ तैत्तिरीय आरण्यक
५ अध्यात्म उपनिषद
६ ईशावास्योपनिषद
७ कठोपनिषद
८ छान्दोग्योपनिषद
९ तैत्तिरीयोपनिषद्
१० बृहदारण्यक उपनिषद्
११ मुण्डक उपनिषद
१२ माण्डूक्य उपनिषद
१३ श्वेताश्वतर उपनिषद
१४ गुरुरहस्योपनिषद्

१५ ब्रह्मसूत्र
१६ भगवद्गीता
१७ महाभारत शान्तिपर्व
१८ योगवाशिष्ठ
१९ श्रीमद्भागवत
२० ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग १, भाग २
२१ तन्त्रालोक
२२ तन्त्रसार
२३ त्रिपुरारहस्यम
२४ नेत्रतन्त्र, भाग १, भाग २
२५ प्रत्यभिज्ञाहृदयम
२६ बोधसार
२७ मगेन्द्र तन्त्र
२८ शिवदृष्टि
२९ शिव संहिता
३० शिवसूत्र
३१ शिवसूत्र विमर्शिनी
३२ स्पन्दकारिका
३३ ज्ञानार्णव

पाली

१ अंगुत्तर निकाय
२ धम्मपद
३ संयुत्त निकाय
४ मज्झिम निकाय

बंगला

१ चैतन्यचरितामृत— कृष्णदास कविराज
२ संचयिता रवीन्द्रनाथ ठाकुर षष्ठ संस्करण, (विश्वभारती प्रकाशन)

हिन्दी

१	अध्ययन और आस्वाद १९५७	बाबू गुलाबराय
२	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त
३	आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत प्रथम संस्करण	डा० केसरी नारायण शुक्ल
४	आधुनिक साहित्य प्रथम संस्करण	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
५	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां प्रथम बार	डा० नगेन्द्र
६	आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद प्रथम संस्करण	डा० शम्भुनाथ पाण्डेय
७	आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग २ १९२६	सरकार तथा दत्त
८	उत्तर भारत की संत-परम्परा प्रथम संस्करण	परशुराम चतुर्वेदी
९	कवि प्रसाद की काव्य-साधना, प्रथम संस्करण	रामनाथ सुमन
१०	कांग्रेस का इतिहास भाग १	पट्टाभि सीतारमय्या
११	'कामायनी-अनुशीलन' द्वितीय सं०	रामलाल सिंह
१२	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर प्रसाद
१३	काव्य की भूमिका प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह 'दिनकर'
१४	काव्य में रहस्यवाद प्रथम संस्करण	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५	गद्य-पथ प्रथम संस्करण	सुमित्रानन्दन पन्त
१६	गीता-प्रबन्ध प्रथम भाग, द्वि० सं०	श्री अरविन्द
१८	गीता-रहस्य बारहवाँ संस्करण	लोकमान्य बालगंगाधर तिलक
१८	चिद्विलास २००१	डा० सम्पूर्णानन्द
१९	छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य प्रथम बार	सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
२०	जायसी-ग्रन्थावली तृतीय संस्करण	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२१	तसव्वुफ अथवा सूफीमत १९४५	आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय
२२	ध्यान-विज्ञान प्रथम संस्करण	राहुल सांकृत्यायन

२३ दृष्टिकोण — आचार्य विनयमोहन शर्मा
२४ नया हिन्दी काव्य १९६२ — डा० शिवकुमार मिश्र
२५ नाथ-सम्प्रदाय १९५० — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६ पंत और उनका गुंजन १९५ — केसरी कुमार
२७ पंत और 'पल्लव' प्रथमावृत्ति — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
२८ पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण प्रथम संस्करण — रामधारी सिंह दिनकर
२९ पथ के साथी प्रथम संस्करण — महादेवी वर्मा
३० पाश्चात्य दर्शन प्रथम संस्करण — डा० चन्द्रधर शर्मा
३१ प्रबन्ध-पद्म द्वितीय संस्करण — सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
३२ प्राच्य और पाश्चात्य चतुर्थ सं० — विवेकानन्द
३३ प्रेमयोग तृतीय संस्करण — विवेकानन्द
३४ बौद्ध दर्शन द्वितीय संस्करण — राहुल सांकृत्यायन
३५ बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन प्रथम भाग, प्रथम संस्करण — भरतसिंह उपाध्याय
३६ बौद्ध धर्म दर्शन, प्रथम संस्करण — आचार्य नरेन्द्रदेव
३७ ब्रह्मसूत्रों में वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सं० — डा० रामकृष्ण आचार्य
३८ भगवद्गीता प्रथम संस्करण — डा० राधाकृष्णन्
३९ भारतीय दर्शन, प्रथम संस्करण — डा० उमेश मिश्र
४० भारतीय नारी चतुर्थ संस्करण — विवेकानन्द
४१ मध्यकालीन भारतीय संस्कृति १९२८ — महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
४२ महादेवी वर्मा, दूसरा संस्करण — सं० शचीरानी गुर्टू
४३ मेरा जीवन तथा ध्येय तृतीय सं० — विवेकानन्द
४४ मेरी समर-नीति, द्वितीय संस्करण — विवेकानन्द
४५ राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, प्रथम संस्करण — डा० विजयेन्द्र स्नातक
४६ रुबाइयात उमर खय्याम, द्वितीयावृत्ति — मैथिली शरण गुप्त
४७ विचार और अनुभूति १९४५ — डा० नगेन्द्र

हिंदी

	पुस्तक	लेखक
१	अध्ययन और आस्वाद, १९५७	बाबू गुलाबराय
२	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीनदयालु गुप्त
३	आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत प्रथम संस्करण	डा० केसरी नारायण शुक्ल
४	आधुनिक साहित्य, प्रथम संस्करण	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
५	आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ प्रथम बार	डा० नगेन्द्र
६	आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद प्रथम संस्करण	डा० शम्भुनाथ पाण्डेय
७	आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग २ १९४६	सरकार तथा दत्त
८	उत्तर भारत की सन्त-परम्परा प्रथम संस्करण	परशुराम चतुर्वेदी
९	कवि प्रसाद की काव्य-साधना प्रथम संस्करण	रामनाथ सुमन
१०	कांग्रेस का इतिहास भाग १	पट्टाभि सीतारमैया
११	'कामायनी'-अनुशीलन द्वितीय सं०	रामलाल सिंह
१२	काव्य कला तथा अन्य निबंध	जयशंकर प्रसाद
१३	काव्य की भूमिका प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह 'दिनकर'
१४	काव्य में रहस्यवाद प्रथम संस्करण	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५	गद्य-पथ प्रथम संस्करण	सुमित्रानन्दन पन्त
१६	गीता-प्रबन्ध प्रथम भाग द्वि० सं०	श्री अरविन्द
१७	गीता-रहस्य बारहवाँ संस्करण	लोकमान्य बालगंगाधर तिलक
१८	चिद्विलास २००१	डा० सम्पूर्णानन्द
१९	छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य प्रथम बार	सं० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी
२०	जायसी-ग्रन्थावली तृतीय संस्करण	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२१	तसव्वुफ अथवा सूफीमत १९४५	आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय
२२	दर्शन-दिग्दर्शन प्रथम संस्करण	राहुल सांकृत्यायन

२३	दृष्टिकोण	आचार्य विनयमोहन शर्मा
२४	नया हिन्दी काव्य १९६२	डा० शिवकुमार मिश्र
२५	नाथ-सम्प्रदाय, १९५	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६	पन्त और उनका गुंजन १९५०	केसरी कुमार
२७	पन्त और पल्लव' प्रथमावृत्ति	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'
२८	पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
२९	पथ के साथी प्रथम संस्करण	महादेवी वर्मा
३०	पाश्चात्य दर्शन प्रथम संस्करण	डा० चन्द्रधर शर्मा
३१	प्रबन्ध-पद्म द्वितीय संस्करण	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
३२	प्राच्य और पाश्चात्य चतुर्थ सं०	विवेकानन्द
३३	प्रेमयोग तृतीय संस्करण	विवेकानन्द
४	बौद्ध दर्शन द्वितीय संस्करण	राहुल सांकृत्यायन
३५	बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन प्रथम भाग प्रथम संस्करण	भरतसिंह उपाध्याय
३६	बौद्ध धर्म दर्शन प्रथम संस्करण	आचार्य नरेन्द्रदेव
३७	ब्रह्मसूत्रों के वैष्णव भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सं०	डा० रामकृष्ण आचार्य
८	भगवद्गीता प्रथम संस्करण	डा० राधाकृष्णन
३९	भारतीय दर्शन, प्रथम संस्करण	डा० उमेश मिश्र
४०	भारतीय नारी चतुर्थ संस्करण	विवेकानन्द
४१	मध्यकालीन भारतीय संस्कृति १९२८	महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
४२	महादेवी वर्मा, दूसरा संस्करण	सं० शचीरानी गुर्टू
४३	मेरा जीवन तथा ध्येय तृतीय सं	विवेकानन्द
४४	मेरी समर-नीति, द्वितीय संस्करण	विवेकानन्द
४५	राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य प्रथम संस्करण	डा० विजयेन्द्र स्नातक
४६	रुबाइयात उमर खय्याम द्वितीयावृत्ति	मैथिली शरण गुप्त
४७	विचार और अनुभूति, १ ४५	डा० नगेन्द्र

४८ विविध प्रसग, १९५३ — विवेकानन्द
४९ व्यावहारिक जीवन म वेदान्त १९५१ — विवेकानन्द
५० शक्तिदायी विचार चतुर्थ सस्करण — विवेकानन्द
५१ शव मत, प्रथम सस्करण १९५५ — डा० यदुवंशी
५२ सस्कृति के चार अध्याय
द्वितीय सस्करण — रामधारी सिंह दिनकर
५३ साहित्य-तरग १९५६ — सदगुरुशरण अवस्थी
५४ सुमित्रानन्दन पत प्रथम सस्करण — स नचीरानी गुटू
५५ सूफीमत-साधना और साहित्य,
प्रथम स — रामपूजन तिवारी
५६ स्वाधीन भारत ! जय हो !
द्वितीय स० — विवेकान द
५७ हिन्दुत्व — रामदास गौड
५८ हिन्दी काव्य म निर्गुण सम्प्रदाय
प्रथम स० — डा बडथ्वाल
५९ हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव
प्रथम स० — डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा
६० हिन्दी साहित्य का इतिहास सशोधित
और परिवर्धित सस्करण १९६७ — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
६१ हिन्दी साहित्य का उदभव और
विकास प्रथम स० — डा० भगीरथ मिश्र
६२ हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि
प्रथम बार — विश्वम्भर नाथ उपाध्याय
६३ हिन्दी साहित्य की भूमिका
चौथी बार — डा हजारी प्रसाद द्विवेदी

पत्र—पत्रिकाएँ

१ इन्दु (काशी) कला १ किरण ५
२ कल्याण (भक्ति अक, निर्वाक हिन्दू सस्कृति अक)
३ त्रिपथगा बुद्ध जयन्ती अक

४ नया साहित्य, निराला अंक
५ प्रतीक-शरद प्रतीक-४ हेमन्त
६ वीणा (इन्दौर), मई सन १९४१
७ संगम, फरवरी १९४९
८ सरस्वती (१९१८ १९२१)
९ हिन्दी नवजीवन पत्रिका

अंग्रेजी के ग्रन्थ

Sl no	*Name of the book*	*Writer*
1	An Advanced History of India	A C Majumdar
2	An Introduction to Indian Philosophy Fifth edition	Chatterji & Dutta
3	Arthur Sahepenhauer philosopher of pessimism	Prodorick Copelsto
4	Chambend s Ensyelopaedie, Vol VII 1926	
5	Creative Evolution	Henri Pergson
6	Christian Mysticism Sixth edition, 1925	W R Inge
7	Dicticnary of Mysticism,	edited by Frank Gaynor
8	Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol VI and Vol IX 1917	edited by James Hastings
9	Encyclopaedia of the Social Sciences Vol VII VIII, 1964	
10	Essays in Criticism, Second Series 1935	Matthew Arnold
11	History of Mediaeval India	Dr Ishwari Prasad
12	India Today and Tomorrow	R Palme Dutt
13	Mysticism 17th Edition 1944	E Underhill
14	Mysticism in English literature 1927	Spurgeon

15 Modern pantheism 1813 Emile Saisset
16 Pathway to God in Hindi literature 1959 R D Ranade
17 Poets and Mystics E I Watkin E I Watkin
18 Romanticism Second edition Aborcrombie
19 Speeches and writing of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya
20 Studies in Pessimism Schopenhaure By Bailey Saunders
21 Sri Chaitanya Mahaprahhu 1939 Tridandibhiksu Bhakti Pradipa Tirtha
22 The Discovery of India Pt Jawahar Lal Nehru
23 The English Poetry Gerald Bullett
24 The Future Poetry First Edition Sri Aurobindo
25 The Golden Treasury Palgrave
26 The Life Divine Vol I 1944 Sri Aurobindo
27 The Life Divine Vol II Part (2) 1940 Sri Aurobindo
28 The Nectar of Grace Omar Khayyam's life and works Edited by Swami Govind Tirtha
29 The Philosophy of Tagore Dr Radhakrishnan
30 The Philosophy of Upanishads Paul Deussen
31 The Philosophy of Fine Art Vol II Hegel
32 The Philosophy of History Hegel
33 The Poetical works of Robert Browning Vol I 1912 Augustine Birrel
34 The Poetical Works of Robert Browning Vol II, 1912 Augustine Birrel
35 The poetical works of P B Shelley Vol III 1357 edited by Mrs Shelley
36 The Poetical works of Wordsworth, Book second 1933 edited by Thomas Hutchinson
37 The Quatraine of Umar Khayyam edited by E H Whinfield

15 Modern pantheism 1813 — Fmile Saisset
16 Pathway to God in Hindi literature 1959 — R D Ranade
17 Poets and Mystics E I Watkin — E I Watkin
18 Romanticism Second edition — Aborcrombie
19 Speeches and writing of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya
20 Studies in Pessimism — Schopenhaure By Bailey Saunders
21 Sri Chaitanya Mahaprabhu 1939 — Tridandibhiksu Bhakti Pradipa Tirtha
22 The Discovery of India Pt Jawahar Lal Nehru
23 The English Poetry Gerald Bullett
24 The Future Poetry First Edition, Sri Aurobindo
25 The Golden Treasury Palgrave
26 The Life Divine Vol 1 1944 Sri Aurobindo
27 The Life Divine Vol II Part (2), 1940 Sri Aurobindo
28 The Nectar of Grace Omar Khayyam s life and works Edited by Swami Govind Tirtha
29 The Philosophy of Tagore Dr Radhakrishnan
30 The Philosophy of Upanishads Paul Deussen
31 The Philosophy of Fine Art Vol II Hegel
32 The Philosophy of History Hegel
33 The Poetical works of Robert Browning Vol I 1912 Augustine Birrel
34 The Poetical Works of Robert Browning Vol II, 1912 Augustine Birrel
35 The poetical works of P B Shelley Vol III 1357 edited by Mrs Shelley
36 The Poetical works of Wordsworth Book second, 1933 edited by Thomas Hutchinson
37 The Quatraine of Umar Khayyam, edited by F H Whinfield

38 The Story of Philosophy, Cardinal edition 1953 will Durant

39 The Vocabulary of Philosophy, William Fleming D D

40 Umar Khayyam and His Age, edited by Otto Rothfeld

41 The Works of Tennyson, 1913 Edited by Hallam
